राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षक– शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक छात्राध्यापक को इस प्रकार समर्थ बनाना है कि वह–

- बच्चों का ख्याल रख सके और उनके साथ रहना पसंद करे।
- सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सके।
- व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने को अधिगम अर्थात सीखना समझे।
- सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के संभावित तरीके जाने तथा सीखने के प्रकार, गति तथा तरीकों के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझे।
- ज्ञान को, चिंतनशील सीखने की सतत् उभरती प्रक्रिया माने।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के वाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखे।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील हो जिनमें उसे काम करना है।
- ग्रहणशील हो और लगातार सीखता रहे, समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके।
- वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैये को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करे बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।
- उसके भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।
- व्यक्तिगत अपेक्षाओं, आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि की पहचान कर सके।
- अपना पेशेवर उन्मुखीकरण करने के लिए सोच समझ कर प्रयास करता रहे। यह विशेष परिस्थितियाँ अध्यापक के रूप में उसकी भूमिका तय करने में मदद करेंगी।

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व-अधिगम सामग्री

बालविकास और सीखना

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष -2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,छत्तीसगढ़, रा

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व–अधिगम सामग्री

बाल विकास और सीखना

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष–2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,

छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष – 2013
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य कार्यक्रम प्रभारी
अनिल राय (भा.व.से)
संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

राज्य समन्वयक
ए.लकड़ा,
संयुक्त संचालक,राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वय
आर. के. वर्मा
यू.के. चक्रवर्ती
डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

विषय संयोजक
श्रीमती ज्योति चक्रवर्ती

तकनीकी सहयोग एवं सामग्री संकलन
एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू,
छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर, विद्या भवन सोसाईटी उदयपुर

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

''अनिवार्य एवं निःशुल्क बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' के निर्देशानुसार समस्त अप्रशिक्षित सेवारत प्रारंभिक शिक्षकों को 5 वर्ष की समय सीमा में प्रशिक्षिण प्राप्त किया जाना है। राज्य के समक्ष यह एक बड़ी चुनौती है,साथ ही एक बड़ा अवसर भी है उन शिक्षकों के परस्पर साथ आने का,अपने अनुभवों को साझा करने का जो पूर्व से ही स्कूलों में बच्चों के साथ कार्य कर रहे हैं। इसी अनुक्रम में राज्य में सेवारत अप्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षकों को डी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर डी.एड. दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध कराया जा रहा है।

आज निश्चित ही शिक्षक की भूमिका में काफी बदलाव आया है। इस बदलती भूमिका के लिए उनको बेहतर तरीके से तैयार करने की आवश्यकता है। दूरस्थ शिक्षा से डी.एड.प्रशिक्षण का यह कार्यक्रम इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसे आप सबके सकारात्मक सहयोग से निश्चित ही सफलता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस कार्यक्रम के माध्यम से आप अपने अनुभवों को एक दूसरे के साथ साझा करेंगे तथा और अधिक संवेदनशीलता के साथ स्कूल में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकेंगे, बच्चों को उनकी विशेषताओं के साथ बेहतर ढंग से समझ सकेंगे और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निर्धारित कर सकेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि वे ''सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में,उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।''

राज्य में कुछ वर्षों पूर्व से ही डी.एड. का नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री तैयार कर सेवा पूर्व डी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु लागू कर दिया गया है। डी.एड. पाठ्यसामग्री को स्व–अधिगम सामग्री में परिणित कर इसे सेवारत शिक्षकों के अनुरूप तैयार किया गया है।

प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में इन छः विषयों को सम्मिलित किया गया है–

1. ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र।
2. बाल विकास और सीखना।
3. शाला व समुदाय।
4. कला व कला शिक्षण।
5. गणित व गणित शिक्षण।
6. भाषा व भाषा शिक्षण।

इस पाठ्यसामग्री का फोकस विषयवार समझ विकसित करने की अपेक्षा एक एकीकृत समझ विकसित करने में है, किसी विशेषीकृत शिक्षण विधि से हटकर एक समग्र शिक्षण विधि जो बच्चों को सीखने में मदद करें।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके हृदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

स्व–अधिगम पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने तथा पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक–प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

कोई भी पाठ्यक्रम सम्पूर्ण नहीं होता इसमें सुधार की असीम सम्भावनाएं होती है तथा निरंतर परिवर्तन जीवित होने का एक प्रमाण भी है। अतः आपसे अनुरोध है कि सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्रियों को पढ़कर अपने सुझाव हमें अवश्य भेजे ताकि पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार कर इसे जीवित रखा जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज नं.
1. अपनी स्कूली शिक्षा पर विचार–खण्ड (अ) – बचपन के बारे में नजरिए		**1 – 49**
	(i) दिवास्वप्न	
	(ii) समर हिल का विचार	
	(iii) बच्चे असफल कैसे होते हैं	
	खण्ड (ब)– बच्चों की प्रकृति	
	(iv) तोत्तो चान	
	(v) अनारको के आठ दिन	
	(vi) पिप्पी लंबे मोजे	
	खण्ड (स)– बच्चों के अधिकार	
	(vii) बच्चों के अधिकार सामाजिक व राजनैतिक सरोकार	
	(viii) बचपन, काम और स्कूलिंग : एक चिंतन	
2. बाल विकास परिचय		**50 – 73**
	(i) बाल विकास की अवधारणा का अर्थ	
	(ii) विकास और वृद्धि	
	(iii) विकास की विभिन्न अवस्थाएं	
	(iv) शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाएं	
	(v) विकास को प्रभावित करने वाली बातें	
	● प्रकृति और पालन	
	● निरंतरता और विच्छिन्नता	
	● प्रारम्भिक और परवर्ती अनुभव	
	(vi) बाल विकास की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	
	(vii)बच्चों के बारे में जानने के कुछ तरीके	
3. बाल विकास के पहलू		**74 – 96**
	(i) शारीरिक और गत्यात्मक विकास	
	(ii) संवेगात्मक विकास – ऐरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत	
	(iii) नैतिक विकास	

4. सीखना एवं संज्ञान का विकास 97 – 167

(i) सीखने का मॉडल—बैंकिग मॉडल

• प्रोग्रामिंग मॉडल

(ii) सीखना यानी समझ का निर्माण

(iii) सीखने की विभिन्न धारणाओं की समीक्षा

• व्यावहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत

(iv) संज्ञानात्मक विकास

• पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

(v) सीखने का रचनावादी नजरिया

5. खेल तथा विकास में खेल का महत्व 168 – 199

(i) खेल क्या है?

(ii) विकास में खेल का महत्व

(iii) खेलों के प्रकार

(iv) खेल को प्रभावित करने वाले कारक

(v) खेल एक प्रमुख गतिविधि

6. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे 200 – 240

(i) विशिष्ट बच्चों से अभिप्राय

(ii) शिक्षक की भूमिका

(iii) मानसिक मंदता

परियोजना कार्य

1. आपके स्कूल में भी विभिन्न रूचियों व सीखने की क्षमताओं वाले बच्चे हैं। किन्हीं पांच बच्चों को लीजिये व उनका विस्तृत प्रोफाइल बनाइये।

2. आर्थिक रूप से समस्या ग्रस्त बच्चे का साक्षात्कार लेकर आप उसकी पृष्ठभूमि की पहचान करें तथा उसके सामाजिक एवं भावनात्मक विकास पर टिप्पणी लिखें।

3. कक्षा चौथी पढ़ने वाले बच्चे के पास क्या शब्द होते हैं उनके पास शब्दकोश का ज़रिया क्या होता है? उन्होंने उन शब्दों को कैसे सीखा ? पता करें।

4. आप अपनी कक्षा के बच्चे में हो रहे वृद्धि एवं विकास का अवलोकन कर विश्लेषण करें कि क्या यह सभी प्रक्रियाएं बच्चों में समान रूप से होती हैं ?

    - अपनी कक्षा के बच्चों के विकास पर, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रभाव का अवलोकन लिखिए?
    - अपनी कक्षा के बच्चों के विकास पर, पारिवारिक संरचना के प्रभाव का अवलोकन लिखिए?
    - अपनी कक्षा के बच्चों के विकास पर, सामाजिक वर्ग के प्रभाव का अवलोकन लिखिए?

5. मनोविज्ञान के विषय में से कोई एक विषय चुनिए: जैसे किशोरों की समस्या, शिशुओं की देखभाल आदि। किसी किताब जैसे Child development या Developmental psychology में से अनुसंधान चुनें और एक पत्रिका या समाचार पत्र में से उसी विषय पर लेख चुनें। दोनों स्रोत से लिए गए अनुसंधान लेख कैसे भिन्न हैं और उनमें क्या अंतर है? आपने इस तुलना से क्या सीखा एक रिपोर्ट बनाइए।

6. कक्षा के विद्यार्थियों के नैतिक विकास से संबंधित निम्न बिंदुओं पर लोगों के मत एकत्रित कीजिए–

    (क) क्या लड़कियों का पेंट–शर्ट पहनना उचित है?

    (ख) लड़कों को भी लड़कियों की तरह घरेलु कार्य में सहयोग करना चाहिए?

7. कोलबर्ग के सिद्धांत के आधार पर प्राप्त उत्तरों का विश्लेषण कीजिए?

8. कक्षा 4 और 5 के बच्चों से मत एकत्रित कीजिए कि क्या अच्छे अंक लाने के लिए परीक्षा में नकल करना उचित है? प्राप्त उत्तरों का विश्लेषण कोलबर्ग के सिद्धांतों के आधार पर कीजिए?

9. जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक शिशु जो कुछ करता है उसकी सूची बनाए तथा इनमें से कितनी हरकतें वृत्ताकार प्रतिक्रिया की मानी जा सकती हैं?

10. यहां दी गई तालिका में अलग–अलग उम्र के लोगों के द्वारा अपनाएं गए तरीकों को लिखिए जिससे उनके बीच पाए जाने वाले अन्तर स्पष्ट हो सकें–

कार्य	कार्य को करने के तरीके		
	11 साल तक के बच्चे द्वारा	किशोर द्वारा	वयस्क द्वारा

आप अपने परिचितों के साथ उपरोक्त प्रश्न अथवा प्रयोग करके परिणामों को रिकार्ड करिए, क्या सभी किशोर व वयस्क ये औपचारिक संक्रियाएं सही तरीके से कर पाए ....

11. दो–तीन घरों का अवलोकन कीजिए जब माता–पिता व बच्चे, दोनों मौजूद हों। बच्चों व बड़ों के आपसी व्यवहार का अवलोकन दो–तीन दिन तक चन्द घण्टों के लिए कीजिए। निम्नलिखित संदर्भों में आपको इन घरों के बीच क्या–क्या समानताएं व अन्तर नजर आते हैं?। लिखिए।

    - माँ–बाप व बच्चों की दिनचर्या।
    - कितना समय बच्चे और माँ–बाप साथ बिताते हैं।
    - बच्चों और मां–बाप का आपसी व्यवहार किस किस्म का होता है।
    - जब बच्चे अकेले होते हैं, तब वे किस तरह की गतिविधियों में लगे होते हैं।

12. पियाजे के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कक्षा दूसरी के बच्चों के लिए गतिविधियों का निर्माण करें।

13. प्रोजेक्ट– स्कूल जाने वाले 3–4 साल के कुछ बच्चों और 10–11 साल के कभी स्कूल न गए बच्चों से चित्र बनवाइए और देखिए कि दोनों प्रकार के चित्रों में क्या अन्तर व समानताएं हैं और क्यों?

14. - कुछ अनपढ़ बड़ी उम्र के लोगों को गणितीय गणनाएं करते देखिए। (यह कोई मुश्किल नहीं है आप पाएंगे कि कई ऐसे दुकानदार हैं जो हिसाब–किताब करते हैं मगर कभी स्कूल नहीं गए।) उनसे पूछिए कि वे गणनाएं कैसे करते हैं। उनकी विधि से गणना कीजिए जो हम इसी तरह के सवालों के लिए स्कूल में इस्तेमाल करते हैं।
    - अब उनसे कक्षा 3 की पाठ्यपुस्तक से कुछ ऐसे सवाल पूछिए जो उनके परिवेश से संबंधित न हों। नोट कीजिए कि वे इन सवालों से कैसे निपटते हैं।

15. अपनी शाला के बच्चों के खेल का अवलोकन करें खेलों द्वारा बच्चों में हो रहे सामाजिक कौशल के विकास के उदाहरणों की केस स्टडी लिखें?

16. लोगों की नि : शक्त व्यक्तियों के प्रति मान्यताएँ एवं दृष्टिकोण को जानने हेतु अपने आस–पास के किन्हीं पाँच लोगों से बातचीत करें और लिखें।

इकाई–I

बच्चों एवं बचपन के बारे में हमारी धारणाओं की समीक्षा

बच्चों व बचपन के बारे में नजरिए – चर्चा के बिन्दु

बच्चा कैसा होता है?

हम बच्चों को कितना देखते हैं, जानते हैं, समझते हैं, स्वीकारते हैं,

सराहते हैं, सहायता और मदद करते हैं।

बच्चे कैसी कल्पनाएं करते हैं। कैसी चाहतें पालते हैं?

कैसी बातों पर यकीन करते हैं?

क्या–क्या करना चाहते हैं?

क्या–क्या बनना चाहते हैं?

बच्चे बड़ों के बारे में क्या सोचते हैं?

क्या महसूस करते हैं?

कुछ लोगों ने बड़ी गम्भीर दिलचस्पी के साथ

बच्चों को जानने की कोशिश की है

आइए, हम यहाँ उनके लेखन के कुछ अंश पढ़कर देखें–

अध्याय – 1

अपनी स्कूली शिक्षा पर विचार

पाठ की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- उद्देश्य

खण्ड अ – बचपन के बारे में नज़रिए

- गिजुभाई बधेका
  - परिचय
  - दिवास्वन– प्रथम खण्ड, प्रयोग का आरंभ
  - माता–पिता के प्रश्न
- समरहिल का विचार – ए.एस. नील
- बच्चे असफल कैसे होते हैं– जान होल्ट
- सारांश (खण्ड अ : बचपन के बारे में)

खण्ड ब – बच्चों की प्रकृति

- तोत्तोचान– तेत्सुको कुरोयानागी
- अनारको के आठ दिन– सत्यु
- पिप्पी लंबेमोजे – ऐस्ट्रिड लिंडग्रन
- सारांश (खण्ड ब : बच्चों की प्रकृति)

खण्ड स – बच्चों के अधिकार

- बच्चों के अधिकार : सामाजिक व राजनैतिक सरोकार
- बचपन, काम और स्कूलिंगः एक चिंतन
- सारांश (खण्ड स : बच्चों के अधिकार)
- सारांश
- अभ्यास के लिए प्रश्न

सामान्य परिचय

इस इकाई में आप विभिन्न लेखकों की पुस्तकों के कुछ अंश पढ़ेंगे। इन लेखों के बारे में एक विशेष बात यह है कि ये लेख बच्चों एवं बचपन को जानने व समझने के अलग–अलग दृष्टिकोणों को उपलब्ध कराते हैं।

इस इकाई के तीन खण्ड हैं खण्ड 'अ' में दिये गये लेख मूलतः अध्यापकों के अनुभव हैं। इन लेखों के द्वारा आपको विभिन्न अध्यापकों की नजर से बच्चों को समझने का अवसर मिलेगा। उदाहरण के लिएः बच्चों को किस तरह के कार्य करना अच्छा लगता है व क्यों? उनकी क्या–क्या जरूरतें होती हैं? उनके लिए स्वतंत्रता के क्या मायने होते हैं? इत्यादि। इसी प्रकार के अन्य कई पहलुओं को समझने में भी मदद मिलेगी। आपको यह भी समझने में मदद मिलेगी कि एक अध्यापक/वयस्क के रूप में आपकी भूमिका किस तरह की हो।

खण्ड 'ब' आपको बच्चों के संसार में लेकर जाता है। बच्चों द्वारा की गई कल्पनाएं जैसे– बच्चे कैसे सोचते हैं? और क्या–क्या सोच सकते हैं कैसी–कैसी उड़ानें भरते हैं इत्यादि। खण्ड 'स' बच्चों के विभिन्न अधिकारों की जानकारी उपलब्ध कराता है, साथ ही इन अधिकारों को समझने में भी मदद करता है।

उद्देश्य

- बच्चे एवम् बचपन को समझना।
- बच्चों की जिज्ञासाओं एवम् कल्पनाओं को समझना।
- बच्चों के विकास के लिये स्वतंत्र वातावरण के महत्व को समझना।
- शिक्षक तथा बच्चों के आत्मीय संबंध के महत्व को समझना।

- विषय वस्तु एवम् शालेय परिवेश को बच्चों की रुचि के अनुकूल बनाने के महत्व को समझना।
- बाल अधिकारों को जानना व समझना।
- अलग–अलग समुदाय के जीवन में बाल अधिकारों और स्कूली शिक्षा की भूमिका को समझना।

खण्ड अ – बचपन के बारे में नज़रिए

गिजुभाई बधेका

परिचय–गुजरात के गिजुभाई बधेका पेशे से वकील रहे किंतु डॉक्टर मारिया मोंटेसरी के शैक्षिक विचारों और विधियों से परिचित होने पर वे बाल शिक्षा के प्रति आकर्षित हुए और आगे का पूरा जीवन इस काम के लिए समर्पित कर दिया। 1920 में उन्होंने भावनगर में बाल मंदिर नामक संस्था की स्थापना की। 1925 और 1928 में उन्होंने मोंटेसरी सम्मेलनों का आयोजन किया। शिक्षकों की शिक्षा के लिए उन्होंने दो अध्यापन मंदिर भी शुरू किए। उन्होंने बच्चों के माता–पिता और शिक्षकों के बीच बाल मनोविज्ञान और अपनी बाल शिक्षण योजना को पहुँचाने के अथक प्रयास किए व अनेक लेखों व पुस्तकों की रचना की। कुछ पुस्तकों को छोड़कर गिजुभाई का साहित्य बहुत समय तक गुजराती में ही उपलब्ध रहा। 1984 में उनका जन्म शताब्दी वर्ष मनाया गया और इसके फलस्वरूप उनके विपुल और मर्म भेदी लेखन को हिन्दी में प्रकाशित करने की योजना क्रियान्वित की गई। बाल शिक्षण पर गिजुभाई का लेखन प्रत्येक शिक्षक और अभिभावक की प्रेरणा का स्रोत और जीवन की राह बनाने का अमूल्य साधन है।

उनके साहित्य दिवास्वप्न तथा माता–पिता के प्रश्न के कुछ अंशों पर हम विचार करेंगे –

(i) दिवास्वप्न– प्रथम खण्ड, प्रयोग का आरंभ

यह एक शिक्षक की स्कूल में किए गए प्रयोगों की कहानी है जो सभी शिक्षकों को अपनी भूमिका का दिवास्वप्न दिखाती है। आपने **ज्ञान व शिक्षाक्रम** में इसके अंश पढ़े होंगे। आइए, उससे जुड़े कुछ प्रश्नों पर विचार करें –

- बच्चों ने शान्ति का खेल पसन्द नहीं किया लक्ष्मीशंकर ने इससे क्या निष्कर्ष निकाला –

  क. बच्चों में दोष है।

  ख. उनकी शिक्षण योजना में दोष है।
- रात को लेखक ने विचार करके अपने काम की किस कमी को पहचाना?
- ''तमाचा मारकर डराता भी कैसे'', लक्ष्मीशंकर के मन में किस तरह की बाधा थी जो तमाचा मारने न देती थी?
- बच्चों की अभिमुखता– की प्राथमिक शाला में जरूरत क्यों नहीं समझी गई? लक्ष्मीशंकर के अनुसार इसके क्या नतीजे निकलते हैं?
- आपके स्कूल की स्थिति कैसी है? बच्चों को छुट्टी प्यारी है अथवा स्कूल? आपके विचार से वे कौन–से कारण हैं जिनकी वजह से बच्चे स्कूल नहीं आना चाहते?
- आपका कक्षा में पहली बार जाने का क्या अनुभव रहा उल्लेख कीजिए?

माता–पिता के प्रश्न

बाल मंदिर में आने वाले बच्चों के माता–पिता गिजु भाई से जो सवाल करते थे उनके उत्तर वे बहुत विस्तार में, पूरे मनोयोग से देते थे। इस पुस्तक में उन प्रश्नों व उत्तरों का संकलन है। इनमें से कुछ प्रश्न व उनके उत्तर यहां दिए जा रहे हैं–

प्रश्नः (1) मेरा एक पुत्र पढ़ने में बिल्कुल ठोठ है। मास्टर लगा रखा है, फिर भी उसकी बौद्धिक–शक्ति बहुत कमजोर है। शरीर इकहरा है, पर मजबूत है। खेलकूद का बहुत शौकीन है और होशियार है। मोहल्ले के लड़कों का अगुआ है। इसी तरह से पढ़ने में भी वह आगे रहे, इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर : मास्टर लगाने से दिमाग की ताकत कमजोर होती है, अतः मास्टर नहीं रखना चाहिए। बालक के खेलकूद के शौक को आगे अधिक विकसित होने दो। अगुवाई करने के जोश को पढ़ाई की वजह से कमजोर न पड़ने दो। गली में जो क्रिया–शक्ति तथा साहस–शक्ति विकसित होती है वह पुस्तकें पढ़ने से नहीं बढ़ती। पुस्तकें पढ़ने से जो प्रेरणा हम बालक में जगाना चाहते हैं, वह पहले से ही उसमें है। उसे विकसित करने में ही बालक का और आपका भला है। पढ़ाई याने लिखना, पढ़ना और हिसाब करना। इन्हें तो व्यक्ति जब चाहे तभी सीख सकता है। परंतु जिस वय में बालक स्वतः साहस, हिम्मत, चपलता, समय की पाबंदी आदि गुण आत्मसात करना चाहता है, उस वय में अगर हम उसके लिए बाधक बन जाते हैं तो वह हमेशा–हमेशा के लिए अपंग बन जाता है और बड़ा होने पर चाहे वह कितना ही शिक्षित हो जाए, क्रियाहीन तथा शक्तिहीन ही रह जाता है। ज्यादा पढ़े–लिखे कुछ काम नहीं कर सकते। साहस के हर काम में वे पीछे रहते हैं और इसका कारण है–बचपन में माता–पिता ने या शिक्षक ने उनमें वह शक्ति विकसित नहीं की थी।

कुछ प्रश्न

• क्या आप गिजु भाई के उत्तर से पूरी तरह सहमत हैं? आप अपनी सहमति/असहमति का कारण बताइये?

प्रश्नः (2) मेरे लड़के झूठ न बोलें, चोरी–चुगली न करें या दुर्व्यवहार न कर बैठें, इसके लिए मैं उन्हें बारंबार कहती हूँ। 'अगर कोई झूठ बोलेगा, चोरी–चुगली करेगा या बुरा बर्ताव करेगा तो भगवान उसे बीमार कर देंगे और फिर उसे कड़वी दवा पीनी पड़ेगी।' क्या मेरा कथन गलत है? आप भी उक्त स्थिति में मेरे अनुरूप ही व्यवहार करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। तो क्या इस तरह का भय जताना वाजिब नहीं होगा?

अगर कभी मेरा कोई लड़का बीमार पड़ता है तो मैं उसे कहती हूँ कि'चोरी–चुगली, झूठ आदि बोलने का ही नतीजा है यह, कि भगवान ने तुम्हें बुखार दिया है।' दवा पिलाते समय मैं उसे कहती हूँ, 'बोलो, हे भगवान! अब मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा, न चोरी करूंगा। अगर मुझसे ऐसा कुछ हुआ हो तो क्षमा करो और मेरा बुखार मिटा दो।' तो क्या ऐसा प्रयत्न करना वाजिब नहीं होगा?

उत्तर : झूठ, चोरी–चुगली या दुर्व्यवहार से बचने के लिए आप 'भगवान बुखार चढ़ा देंगे या कड़वी दवा पीनी पड़ेगी' का जो भय बता रही हैं, उससे आप बालक को इन दुर्गुणों से बचा नहीं सकेंगी। मेरा अनुभव भी ऐसा ही है, और वह स्वाभाविक है। भगवान के भय से बच्चे झूठ नहीं बोलते, पर सच भी नहीं बोलते। बच्चे झूठ बोलने का जो दुर्व्यवहार करते हैं वे भगवान के डर से नहीं हमारे डर से करते हैं। दुःख की बात है कि हम स्वयं भगवान बन बैठे हैं व्यक्ति भय से कभी सत्यनिष्ठ नहीं होता। भय से तमाम गुणों–सद्गुणों का नाश हो जाता है। भय भयंकर राक्षस है जो माता–पिता अपने बालकों को भगवान के या अपने नाम से नहीं डराते, बल्कि निर्भयता का वातावरण देते हैं, वे बालक को स्वतः सत्यवादी और ईमानदार बनाते हैं। 'हे भगवान! अब मैं कभी चोरी–चुगली नहीं करूंगा, अगर मुझसे कोई गलती हो तो क्षमा करो, और मेरा बुखार मिटा दो।' इस तरह जो

बालकों से कहलवाती हैं, यह बहुत हास्यास्पद और नीति–विरोधी है। इसमें तार्किकता तो है भी नहीं। आपका बालक भी यह जानता है कि भगवान बुखार नहीं देता, वह तो खुद अधिक खाने से या ऐसे ही किन्हीं कारणों से चढ़ता है, और दवा पीने से वह उतर भी जाता है, यह नहीं कि भगवान से क्षमा मांगने पर उतरता हो। और फिर बालक जानता है कि वह कई बार झूठ बोलता है, चोरी या चुगली करता है, पर हर बार भगवान उसे बुखार नहीं देते। कहने का मंतव्य यह है कि बालक को बिल्कुल मूर्ख नहीं समझना चाहिए कि इन बातों से वह समझाते ही समझ जाएगा।

आप तो अपने घर का, आस–पास का वातावरण निर्दोष रखें, निर्भयता स्थापित करें। बालक से किसी तरह का कोई अपराध भी हो जाए तो उसे सजा मत दो, अपितु उसका कारण ज्ञात करो और उसे प्रेम से इस तरह समझाओ कि दुबारा नुकसान न हो। तभी बालक अच्छा बनेगा। इसमें कतई संदेह नहीं।

कुछ प्रश्न

• बच्चों से अपनी बातें मनवाने या सिखाने के लिए भय का सहारा लेना उचित है या अनुचित। अपने विचार बताइए?

प्रश्न : (3) मेरी पुत्री को गणित के अंक याद नहीं रहते। बार–बार भूल जाती है। क्या उसकी स्मरण–शक्ति दुर्बल है? क्या करना चाहिए?

उत्तर – जिस बालक के दिमाग में कोई खास कमी नहीं होती, तो सामान्यतया उसकी याददाश्त ठीक ही होती है। याददाश्त का नियम यह है कि हमें जिसमें रुचि होती है, वह याद रहता है और जिसमें रुचि नहीं होती, उसे भूल जाते हैं। भय अथवा प्रीति दोनों से यह रुचि पैदा नहीं होती है। रुचि का कारण है विकास–वृत्ति। भय और प्रीति के कारण जो रुचि पैदा होती है वह तभी तक रहती है जब तक कि भय या प्रीति हो। ज्योंही भय पैदा करने वाला या प्रेम देने वाला दूर हटता है, और रुचि समाप्त हो जाती है या क्षीण हो जाती है तो उसी परिमाण में स्मृति भी क्षीण हो जाती है। लेकिन इसके विपरीत जब व्यक्ति विकास के परिणामस्वरूप स्वयं ज्ञान हासिल करता है तो जब तक विकास उसे स्पर्श करता है, तब तक वह उसे याद रहता है। विकास की गति के बढ़ते ही नया आनंद तथा स्मृति–प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं।

आपके बच्चे को गणित की संख्याएँ याद नहीं रहतीं, तो उसे गणित सिखाने का आग्रह अभी मत रखो। दूसरी–दूसरी और जो बातें उसे याद रह सकें, उनके द्वारा उसके विकास की योजना करो या पढ़ाई की व्यवस्था करो। एक नन्हे बालक का विकास अनेक तरह से होता है। अपनी पैनी नज़रों से हम उसकी रुचियों का पता लगाएं और फिर ऐसा वातावरण दें, कि जो उसकी रुचियों का पोषण करें। रुचियों के पोषण के साथ ही रुचि संबंधी विषय का ज्ञान बालक आसानी से समझ जाएगा। इस दृष्टि से बालक को देखो और उसे सुविधा प्रदान करो।

प्रश्नः(4) मेरा भानुशंकर इधर मुझे बहुत तंग करने लगा है। कहता हैः 'गिजुभाई ने मुझसे घर में काम करने को कहा है।' और जब मैं घर में साफ–सफाई करने लगती हूँ तो झाड़ू मेरे हाथ से छीन लेता है और खुद झाड़ू बुहारने की जिद्द करने लगता है; बर्तन मांजने बैठती हूँ तो राख भरे हाथ लेकर बर्तन मांजने लगता है; रोटी बनाने बैठती हूँ तो बेलन हाथ से ले लेता है और बोलता हैः 'मैं बेलता हूँ रोटी।' ऐसे–ऐसे औरताना काम करने का बहुत हठ करता है वह, और जब मैं नहीं करने देती तो झगड़ा करता है। अब तो मैं बहुत ही परेशान हो गई हूँ। क्या आप कैसे भी करके उसके झगड़े को बंद कराएंगे?

उत्तर– किसी भी तरह से अगर आप भानुशंकर के लिए घर के कामों में भाग लेने का प्रबंध कर दें, तो उत्तम रहे। अपने शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए भानुशंकर जिस तरह का काम करने को दौड़ता है, वह उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अगर बालमंदिर में ऐसे कार्यों की व्यवस्था संभव हो पाती तो हम अवश्य

करते। घर में कई तरह के छोटे–छोटे काम करके बालक अपने हाथ–पैरों, आंख–कान आदि इन्द्रियों को विकसित–संस्कारित करते हैं। यही स्वाभाविक विकास है। यह सच है कि बालक के काम करने से हमें अड़चनें आती हैं, पर अगर बालक के विकास की बात लक्ष्य में रखकर सोचें कुछ तकलीफें झेलें तो बालक को रुचिकर काम दिया जा सकता है। हम उनके लिए उनकी रुचि के कामों की अलग से व्यवस्था नहीं करते तभी तो वे हमारे कामों में अवरोध बनते हैं।

भानुशंकर घर का औरताना काम करने से जनाना बन जाएगा, ऐसा डर मन में न रखना। जिस व्यक्ति को घर का काम–काज करना नहीं आता, वह सही मायने में सुशिक्षित नहीं, अपंग है। पुरुष घर के काम–काज नहीं जानते, तभी तो घर में पराधीनता भोगते हैं। भावी पीढ़ी को सब प्रकार की पराधीनता से मुक्त होना चाहिए। आपका भानुशंकर घर के छोटे–बड़े कार्य करके अन्य प्रकार के विकास के साथ–साथ स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ेगा।

भानुशंकर जिद नहीं करता, आग्रह करता है। निर्दोष काम करने में जो बल है, वह आग्रह ही है। आग्रह को जिद के नाम से पहचान कर अगर उसे तोड़ देंगे या कुचल देंगे तो भानुशंकर एक कमजोर मनुष्य बनेगा। आग्रह याने प्राण। भानुशंकर से अगर उसके प्राण छीन लेंगे तो उसमें रहेगा क्या? उसका आग्रह अगर हमें जिद प्रतीत होता है तो उसका कारण यह है कि उसके आग्रह का समुचित सम्मान देने में हमारा अपना हठ है।

भानुशंकर अगर आपसे झगड़ता है तो वस्तुतः हमारे हठ के सामने वह अपना विरोध व्यक्त करता है। रोना ही उसका झगड़ना है और झगड़ना बालक का एक मात्र हथियार है। जब बालक अपना मनचाहा काम कर नहीं पाता, तो उसे रोना ही पड़ता है। वही रास्ता बचता है। अपने विकास के लिए बालक मन में सोचा हुआ काम करना चाहता है, अगर यह बात हम समझ लें, तो उसे रोने का अवसर नहीं देना चाहिए।

हम लोग जो तमाम काम करते हैं, अगर देवता या राक्षस हमसे उन्हें छीन लें, तो रोने के सिवा हमारे पास और क्या रास्ता रह जाएगा? इसी से भानुशंकर के झगड़ने का कारण हम सोच सकते हैं। बालकों का पालन–पोषण करना और उनसे तंग होना, यह नहीं चलेगा। जब कोई चीज पसंद नहीं आती तो हमें उससे उकताहट हो जाती है और जब वह अच्छी लगती है तो उकताहट नहीं होती, अपितु आनंद आता है।

भानुशंकर के लिए आप एक झाड़ू, एक सूप, मांजने के लिए कुछ बर्तन, पाटा, बेलन आदि का इंतजाम कर दें और फिर अपने काम में तल्लीन भानुशंकर को देखें। आपको उसके चेहरे पर प्रसन्नता, उत्साह, आग्रह और शांति मिलेगी। अगर जरा उसके दिल में उतरकर उसके आनंद में भाग लेंगी तो भानुशंकर को उठाकर अपनी गोद में लेने की या चूमने की इच्छा हो आएगी। उस वक्त उसके मैले हाथ या मैला किया हुआ कमीज आप दोनों के बीच नहीं आएगा। अगर एक बार भी आपको ऐसा अनुभव हो जाएगा तो आप उससे तंग नहीं होंगी और भानुशंकर का झगड़ना भी बंद हो जाएगा।

कुछ प्रश्न

- आप से भी बच्चों के माता –पिता द्वारा प्रश्न पूछे जाते होंगे, या आपके भी मन में इस तरह के प्रश्न आते होंगे वे प्रश्न क्या हैं? लिखिये।

- यदि उपरोक्त प्रश्न आपके बच्चों के अभिभावकों द्वारा आप से पूछे जायें, तो आपके उत्तर क्या होंगे? लिखिए।

(ii) समरहिल का विचार – ए.एस.नील

यह एक आधुनिक स्कूल समरहिल की कहानी है। समरहिल 1921 में स्थापित हुआ। इंग्लैंड के सफोल्क क्षेत्र के लाइस्टॉन गांव में लन्दन से तकरीबन सौ मील दूर स्थित है ।

समरहिल के छात्र–छात्राओं के बारे में कुछ बता दिया जाए। कुछ बच्चे हमारे स्कूल में पाँच साल कि उम्र में आए तो कुछ पन्द्रह साल के हो जाने पर। लगभग सभी बच्चे सोलह साल की उम्र तक स्कूल में रहे। सामान्य रूप से हमारे पास हर सत्र में करीब पच्चीस लड़के और बीस लड़कियां रहीं।

बच्चे आयु के अनुसार तीन समूहों में बांटे गए थे। सबसे छोटे बच्चों के समूह में पांच से सात साल के, बीच वाले समूह में आठ से दस साल के और बड़े बच्चों के समूह में ग्यारह से पन्द्रह साल के बच्चे थे।

समरहिल के शिक्षार्थियों में अक्सर कुछ विदेशी छात्र–छात्राएं भी होते थे। 1968 में दो बच्चे स्कैन्डिनेविया के और चवालिस अमेरिका के थे।

बच्चे आयु के अनुसार समूहों में हाउस मदर के साथ रहा करते थे। बीच की उम्र के बच्चे पत्थर के बने एक भवन में एक साथ रहते और बड़े बच्चे झोपड़ियों में। बड़े बच्चों में केवल दो ही ऐसे थे जिनके अपने कमरे थे। शेष बच्चे एक–एक कमरे में दो, तीन या चार की संख्या में एक साथ रहते थे। लड़कियाँ भी ऐसे ही रहती थीं। बच्चों के कमरे का निरीक्षण नहीं किया जाता था। उन्हें कमरों की हालात पर कोई टोकता नहीं था। उन्हें मुक्त छोड़ा जाता था। वे क्या पहनें यह भी कोई नहीं बताता था। वे अपनी मर्जी से तैयार होते थे।

अखबारों में कई बार समरहिल के बारे में लिखा जाता कि यह मनमर्जी का स्कूल है। ऐसे लिखते समय वह यह जता देना चाहते थे कि यह जंगली लोगों का एक समूह है। जिसमें ना कोई कायदा कानून है, न शिष्टाचार। इसलिए समरहिल कि कहानी, पूरी ईमानदारी के साथ बयान करना मुझे जरूरी लगता है। जाहिर है कि मैं जो भी लिखूँगा उसमें पूर्वाग्रह होंगे। फिर भी कोशिश यह रहेगी की मैं उसकी खूबियों के साथ मैं उसकी तमाम कमियाँ भी बताऊं। उसकी खूबियाँ ऐसे स्वस्थ और मुक्त बच्चों कि खुशियाँ होंगी जो भय और घृणा से विकृत न हुए हों।

जाहिर है जो स्कूल सक्रिय बच्चों को मेजों पर बैठाकर दिन भर निरर्थक विषय पढ़ाते हैं, वे बेमानी हैं। ऐसे स्कूल केवल उनके लिए अच्छे हो सकते हैं जिनका ऐसे स्कूलों में विश्वास है, उन नागरिकों के लिए जो ऐसे रचनाहीन और आज्ञाकारी बच्चे चाहते हैं जो एक ऐसी सभ्यता का विषय बन सकें जहां सफलता का एक ही मानक होगा–पैसा। समरहिल एक प्रयोग के रूप में प्रारंभ हुआ। पर बाद में महज प्रयोग नहीं रह गया। बल्कि एक प्रदर्शन स्कूल में तब्दील हुआ क्योंकि समरहिल यह दर्शा सका कि आजादी सच में कारगर है। जब मैंने और मेरी पहली पत्नी ने यह स्कूल शुरू किया उस वक्त हमारे मन में एक मुख्य विचार था। हमारी कोशिश यह थी कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के अनुरूप बनाएँ। जहाँ बच्चे फिट न किए जाएँ स्कूल ही उनको फिट हो। मैंने बरसों सामान्य स्कूलों में अध्यापन किया था, मैं उस तरीके को बखूबी जानता था, यह भी कि वह तरीका गलत है। गलत इसलिए क्योंकि वह वयस्कों की इस धारणा पर आधारित है कि बच्चा कैसा होना चाहिए, उसे कैसे सीखना चाहिए। यह धारणा उस युग में पनपी थी, जब मनोविज्ञान जन्मा ही नहीं था।

> हमारी कोशिश यह थी कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के अनुरूप बनाएँ। जहाँ बच्चे फिट न किए जाएँ स्कूल ही उनको फिट हो।

हम एक ऐसा स्कूल बनाने में जुटे जहाँ बच्चों को, जैसे वे दरसअल हैं, वैसे बने रहने कि आजादी हो। यह

कर पाने के लिए हमने हर तरह का अनुशासन, हर तरह का निर्देशन, सुझाव देने, नैतिक और धार्मिक उपदेश देने का मोह त्यागा। कई बार कहा गया कि हम बड़े साहसी हैं। पर सच पूछें तो ऐसा करने के लिए साहस कि जरूरत नहीं थी। जरूरत बस एक ही चीज की थी जो हमारे पास पर्याप्त रूप में मौजूद थी। जरूरत थी इस तथ्य में विश्वास कि बच्चा दुष्ट नहीं, अच्छा होता है। चालीस वर्षों के अनुभव में बच्चों की अच्छाई में हमारा विश्वास कभी नहीं डिगा, बल्कि उसमें पुख़्ता हो 'अन्तिम आस्था' का रूप ले लिया। मेरी दृष्टि में बच्चा स्वाभाविक रूप से विवेकशील और यथार्थवादी होता है। अगर उसे वयस्कों के सुझावों के बिना अपने भरोसे छोड़ा जाए तो जिस सीमा तक विकसित होना उसके लिए संभव है, वह होता है। इसी तर्क से प्रेरित हो समरहिल वह जगह बनी, जहाँ जो बच्चे स्वाभाविक रूप से विद्वान बनने कि क्षमता रखते हों वे विद्वान बनें, पर जो महज इस लायक हों कि वे सिर्फ सड़कें साफ कर सकते हों, वे वही करें। वैसे अब तक कोई सड़क सफाईकर्मी हमारे यहाँ बना नहीं है। यह बात मैं दम्भ से नहीं कर रहा। मैं सच में मानता हूँ कि मैं एक मनोरोगी विद्वान के बदले एक खुश मिजाज सफाईकर्मी ही बनना पसन्द करूँगा।

समरहिल भला कैसी जगह है? एक बात तो यह है कि यहाँ कक्षाओं में जाना जरूरी नहीं ऐच्छिक है। बच्चे चाहें तो जाएँ न चाहे तो सालों साल तक न जाएं। एक टाइम टेबल जरूर है। पर वह शिक्षकों के लिए है।

कक्षाएँ अमूमन आयु के हिसाब से लगती हैं, पर यदाकदा बच्चों कि रूचि के हिसाब से भी लगती हैं। पढ़ाने के हमारे तरीके नए नहीं हैं, क्योंकि हमारा मानना है कि महज पढ़ाने का खास महत्व नहीं है। किसी स्कूल में भाग करने कि लम्बी विधि पढ़ाने का एक खास तरीका है, यह बात केवल उनके लिए अर्थ रखती है जो भाग करने कि लम्बी विधि सीखना चाहते हैं। पर सच्चाई यह है कि जो बच्चा विलंबित भाग सीखना चाहता है, वह उसे जरूर सीख लेगा, चाहे उसे किसी भी तरीके से वह सिखाया जाए।

कुछ प्रश्न

- लेखक व उनकी पत्नी किस तरह का स्कूल बनाना चाहते थे?
- नये स्कूल के लिए उनको अपने आप में क्या–क्या परिवर्तन करने पड़े?
- मैं एक मनोरोगी विद्वान के बदले एक खुश मिजाज सफाईकर्मी ही बनना पसन्द करूँगा। इस कथन के बारे में आपके क्या विचार हैं?
- सत्य/असत्य लिखिए–
    - समरहिल में बच्चों को तीन समूहों में बांटा गया था।
    - समरहिल मनमर्जी का स्कूल नहीं था।
    - समरहिल में उपदेश नहीं दिये जाते थे।
    - समरहिल में कक्षा में जाना अनिवार्य था।

जो बच्चे बालवाड़ियों से समरहिल में आते हैं वे शुरू से ही कक्षाओं में जाते हैं। पर जो बच्चे दूसरे स्कूलों से आते हैं, वे उबाऊ कक्षाओं में कभी भी नहीं बैठने का संकल्प लेकर आते हैं। वे खेलते हैं, साइकिल चलाते हैं, दूसरों के रास्ते में अटकते हैं कई बार यह स्थिति महीनों तक बनी रहती है। उन्हें इस स्थिति से उबरने में जो समय लगता है, वह पिछले स्कूल में कक्षाओं के प्रति जन्मी घृणा के अनुपात में होता है। हमारे पास एक बच्ची एक कॉन्वेंट से आई थी। वह पूरे तीन साल तक मस्ती करती रही जो कि एक रिकॉर्ड है। सामान्य बच्चों को अभ्यस्त होने में करीब तीन महीने लगते हैं।

आजादी के विचार से लोग अपरिचित हैं वे सोच रहे होंगे कि वह पागल खाना कैसा होगा जहाँ बच्चे जी में आए तो दिन भर खेल सकते हैं। कई वयस्क यह भी कहेंगे अगर मुझे ऐसे किसी स्कूल में भेजा जाता तो मैं वहाँ कुछ भी नहीं करता।' दूसरे लोग कहते हैं ऐसे बच्चों को जब उन बच्चों के साथ स्पर्धा करनी होगी जिन्हें सीखने की आदत डालनी पड़ी है तो वे स्वयं को अपंग पाएँगे।

मुझे जैक की बात याद आती है जो सत्रह साल की उम्र में एक इंजीनियरिंग फैक्ट्री में यहाँ से गया था। एक दिन उसे उसके प्रबंध निदेशक ने बुलाया।

तुम समरहिल के छात्र हो ना उन्होंने पूछा। मैं यह जानना चाहता हूँ कि अब तुम अपनी शिक्षा के बारे में क्या सोचते हो। क्योंकि अब तुम्हें दूसरे स्कूलों के छात्रों से मिलने का मौका मिला है। अगर तुम्हें फिर से चुनने का मौका मिले तो तुम कहाँ पढ़ना चाहोगे ईटन या समरहिल में !

'बेझिझक, समरहिल ही चुनूँगा' जैक ने कहा!

'वहाँ ऐसा क्या मिलता है जो दूसरे स्कूलों में न मिले?'

जैक ने अपना सिर खुजलाया और धीरे से कहा 'मुझे पता नहीं।' फिर जोड़ा

'मुझे लगता है कि समरहिल पूर्ण आत्मविश्वास की भावना जगाता है।' 'हाँ' प्रबंधक ने रुखाई से कहा। 'यह तो मैंने तभी देख लिया था जब तुम कमरे में घुसे थे। '

'हे भगवान 'जैक हँसा' 'अगर मैंने आपको यह आभास दिया हो ,तो मुझे माफ कीजिएगा'।

''नहीं यह बात तो मुझे अच्छी लगी'' निदेशक महोदय बोले' ,''अक्सर जब मैं किसी को अपने दफ्तर में बुलाता हूँ तो वे बेहद बेचैन और असहज लगते हैं। तुम ऐसे घुसे मानो मेरे बराबर के व्यक्ति हो। अच्छा , तुम किस विभाग में तबादला चाहते थे, यह तो बता दो!''

यह घटना दर्शाती है कि सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण। जैक विश्वविद्यालय की परीक्षा में फेल हो गया था क्योंकि उसे किताबी पढ़ाई से नफरत थी। पर लैम्ब के लेख और फ्रेंच भाषा के ज्ञान के अभाव ने उसे जीवन भर के लिए अपंग नहीं बना दिया। वह आज एक सफल इंजीनियर है।

इसके बावजूद बच्चे समरहिल में बहुत कुछ सीखते हैं। सम्भव है कि हमारे बारह वर्षीय छात्र –छात्राएँ अपनी उम्र के दूसरे बच्चों के सुलेख, वर्तनी या भिन्न के हिसाब में स्पर्धा नहीं कर पाये। पर अगर कोई ऐसी परीक्षा हो जिसमें मौलिकता की जरूरत हो तो हमारे बच्चे दूसरों को पछाड़ सकते हैं।

हमारे स्कूल में कक्षा परीक्षाएँ नहीं होती थीं पर मैं कभी मजे के लिए प्रश्नपत्र बना देता था। एक ऐसी ही परीक्षा की बानगी देखें।

ये कहाँ है मैट्रिक, थर्सडे द्वीप, बीता हुआ कल, प्रेम, लोकतंत्र, घृणा, मेरा जेबी पेंचकस। (मुझे अफसोस है की इस अंतिम सवाल का कोई ऐसा जवाब नहीं मिला ,जो उसे पाने में मेरी मदद करता।)

हैमलेट के 'टु बी और नॉट बी' संवाद का समरहिल भाषा में अनुवाद करो।जाहिर है कि ये सवाल गम्भीरता से नहीं पूछे गए थे और बच्चों को इनके जवाब लिखने में खूब–खूब मजा आया। नए आए बच्चों के जवाब देने का स्तर उन बच्चों का सा नहीं था जो यहां के वातावरण से वाकिफ हो चुके हों । इसलिए नहीं कि उनमें अक्ल नहीं है। बल्कि इसलिए क्योंकि सवालों के गम्भीर जवाब देते –देते हल्का–फुल्का रहने का तरीका उन्हें परेशान करता है।

कुछ प्रश्न

- 'सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण। लेखक ने यह कथन किस संदर्भ में दिया है? इस कथन के बारे में आपके क्या विचार हैं?

हमारे शिक्षण का यह एक विनोदी पक्ष है। वैसे सभी कक्षाओं में काफी काम होता है। अगर किसी कारण से कोई शिक्षक/शिक्षिका तयशुदा दिन पर अपनी कक्षा नहीं ले पाती तो छात्र–छात्राओं को बहुत बुरा लगता है।

नौ वर्षीय डेविड को कुकुरखाँसी हो गई और उसे दूसरों से अलग रखना पड़ा। वह जोर– जोर से रोया। 'मैं रॉजर की भूगोल की कक्षा में नहीं जा पाऊंगा। 'डेविड प्रायः अपने जन्म के समय से ही समरहिल में था। पाठों की उपयोगिता पर उसके स्पष्ट विचार थे। डेविड आज लंदन विश्वविद्यालय में गणित का व्याख्याता है।

कुछ साल पहले स्कूल की एक औपचारिक बैठक में (जिसमें स्कूल के सभी नियम तय किये जाते हैं और प्रत्येक छात्र–छात्रा और शिक्षक का एक–एक मत होता है) यह तय किया गया कि कुछ खास तरीकों के नियम तोड़ने वाले को साल भर तक कक्षाओं से बाहर रखा जाए। बच्चों ने इस सुझाव का विरोध किया। उनका कहना था कि यह सजा बहुत कठोर है।

मेरे सहशिक्षकों और मुझे परीक्षाओं से घृणा है। हमारी नजर में विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ अभिशाप हैं। पर हम उनमें पूछे जाने वाले आवश्यक विषय पढ़ाने से मना नहीं कर सकते। जाहिर है कि जब तक परीक्षाओं का महत्व है हम उनके गुलाम हैं। इसलिए समरहिल के सभी शिक्षक मानक शिक्षण की योग्यता रखते हैं।

अधिकांश बच्चे ये परीक्षाएँ देना नहीं चाहते हैं। केवल वे बच्चे ही ये परीक्षाएँ देते हैं जो विश्वविद्यालय में दाखिला चाहते हैं। उन्हें ये परीक्षाएँ खास कठिन नहीं लगतीं। अमूमन वे चौदह साल की उम्र में पूरी गम्भीरता से काम शुरू करते हैं। पहली कोशिश में इनमें उत्तीर्ण तो नहीं होते। पर जो महत्वपूर्ण है वह यह कि ये हताश न होकर फिर से कोशिश करते हैं।

समरहिल शायद दुनिया का सबसे खुशनुमा स्कूल है। यहाँ बच्चे नागा नहीं करते। उन्हें घर की याद नहीं सताती। बिरले ही लड़ाईयाँ होती हैं। हाँ उनकी आपसी तकरारें जरूर होती हैं। पर हम जब बच्चे थे उस समय हमारी जैसी लड़ाईयाँ होती थीं, वैसी यहाँ कम होती हैं। मैं बच्चों को रोते नहीं सुनता, क्योंकि उनके मन में उतनी नफरत नहीं होती जितनी दबाए गए बच्चों में होती हैं। घृणा से घृणा जन्मती है और प्यार से प्यार। प्यार का मतलब है बच्चों को समर्थन देना। यह किसी भी स्कूल के लिए जरूरी है। अगर आप उन्हें सजा देते हैं, उन पर चीखते–चिल्लाते हैं, तो आप बच्चों के पक्ष में नहीं हैं। समरहिल एक ऐसा स्कूल है जहाँ बच्चे जानते हैं कि उनका पक्ष लिया जाता है।

हम इन्सानी कमजोरियों से ऊपर नहीं हैं। एक बसन्त का मौसम मैंने आलू बोते बिताया था। और मैंने पाया कि जून में किसी ने आठ पौधे उखाड़ फेंके। मैंने खूब शोर मचाया। पर मेरे शोर मचाने और किसी तानाशाह के शोर मचाने में फर्क है, मेरा शोर आलूओं के बारे में था पर कोई तानाशाह इसमें नैतिकता का सवाल उठाता। वह सही या गलत बात करता। मैंने यह नहीं कहा कि आलू के पौधे चुराना गलत काम था। मैने इसे अच्छे या बुरे का मुद्दा नहीं बनाया। वे मेरे आलू थे और उसे छोड़ा नहीं जाना था। आशा है मैं यह अन्तर साफ कर पा रहा हूँ।

चलिए बात दूसरी तरह से रखता हूँ। मैं बच्चों के लिए कोई ऐसी सत्ता नहीं हूँ जिससे डरा जाए। मैं ठीक उनके समान हूँ और अगर मैं अपने आलूओं के लिए शोर मचाता हूँ तो उसका उतना ही महत्व है जितना उस लड़के का उस वक्त शोर मचाना जब कोई उसकी साइकिल का टायर पंचर कर दे। अगर आप बच्चे के समान हैं तो बच्चों के साथ झगड़ने में कोई डर नहीं।

जरूर कुछ लोग कहेंगे ''यह सब कुछ बकवास है। समता यहाँ हो ही नहीं सकती। नील बॉस है, वह बुद्धिमान है। यह बात भी सच है जाहिर है कि मैं ही बॉस हूँ। अगर कहीं आग लगे तो बच्चे मेरे पास ही आएंगे। मैं बड़ा हूँ ज्यादा जानता हूँ। पर इस बात का उस स्थिति का कोई असर नहीं जब हम एक ही धरातल पर मिलते हैं। जैसे आलू के खेत में।

जब पाँच साल के बिली ने कहा कि मैं उसके जन्मदिन की पार्टी से चला जाऊँ क्योंकि मुझे बुलाया नहीं गया था तो मैं बिना हिचक चला आया। ठीक वैसे ही जैसे बिली मेरे कमरे से उस वक्त बाहर चला जाता है जब मुझे उसका साथ नहीं चाहिए होता। छात्र – छात्राओं और शिक्षकों के इस रिश्ते को समझना शायद आसान नहीं। पर समरहिल आने वाला प्रत्येक यह समझता है कि यही रिश्ता आदर्श रिश्ता है। मेरे सहशिक्षकों के प्रति बच्चों के दृष्टिकोण में भी यही झलकता है। रूड जो रसायन शास्त्र पढ़ाता है उसे डेरेक नाम से बुलाया जाता है। शेष शिक्षक – शिक्षिकाएँ हैरी, उला और प्रेम हैं। मै नील हूँ और रसोईवाली एस्थर।

समरहिल में सबके अधिकार समान हैं। मेरे पियानो तक आने कि किसी को अनुमति नहीं है और मैं बिना अनुमति किसी बच्चे की साइकिल नहीं छू सकता। स्कूल की औपचारिक बैठक में किसी छः साल की बच्ची के मत का वजन उतना ही है जितना मेरे मत का।

पर ज्ञानी जन कहेंगे कि व्यावहारिक रूप में तो वयस्कों की आवाजों का ही महत्व रहता है। क्या छह साल की बच्ची अपना हाथ उठाने के पहले तब तक रूकती नहीं जब तक वह यह नहीं देख लेती कि तुम्हारा मत क्या है। काश वे सच में रुकते ,मेरे तमाम सुझाव धराशायी होते रहते हैं। जो बच्चे आजाद होते हैं वे आसानी से प्रभावित नहीं होते। इसका कारण है भय का ना होना और सच तो यह है कि भय का न होना ही किसी बच्चे के लिए सबसे उम्दा चीज है।

हमारे बच्चे अपने शिक्षकों से नहीं डरते। हमारा एक नियम यह है कि रात दस बजे के बाद रिहायशी भवन कि पहली मंजिल में शांति रहेगी। एक रात करीब ग्यारह बजे तकियों से युद्ध छिड़ा हुआ था। मैं अपनी मेज से जहाँ मैं बैठा लिख रहा था शिकायत करने उठा। मैं जब वहाँ पर पहुँचा तो मैंने पाया कि गलियारा शांत और खाली है। अचानक एक आवाज आई 'अरे यह तो नील ही है।' फिर से मस्ती चालू हो गई। जब मैंने समझाया कि मैं नीचे एक किताब लिखने में जुटा हूँ तो उन्होंने चिन्ता जताई और शोर न मचाने का वादा किया। वे छुपे इसलिए थे क्योंकि उन्हें यह शक हुआ था कि उनका सोने का समय जाँचने वाले अफसर जो उनमें से ही एक होता था, उनकी टोह लेने पहुँच गए।

मैं वयस्कों का डर न होने पर बल देना चाहता हूँ। एक नौ वर्षीय बच्चा आकर मुझे खुद बताता है कि उसकी बॉल से एक खिड़की टूट गई है। वह इसलिए बता सकता है क्योंकि उसे मेरी नाराजगी या आक्रोश का भय नहीं है। हो सकता है कि उसे खिड़की सुधारने की लागत देनी पड़े पर उसे भाषण सुनने या सजा पाने का डर नहीं रहता।

कुछ साल पहले स्कूल की सरकार से सबने त्यागपत्र दे दिया और कोई भी चुनाव लड़ने को तैयार नहीं था। मैंने मौके का फायदा उठाकर एक नोटिस लगाया। सरकार की नामौजूदगी में खुद को तानाशाह घोषित करता हूँ। नील की जय हो। 'तुरन्त फुसफुसाहटें शुरू हो गईं । दोपहर में छह साल का विवियन मेरे पास आया और उसने कहा ''नील मैंने व्यायाम शाला कि एक खिड़की तोड़ी है।''

मैंने इशारे से उसे हटाते हुए कहा, ''ऐसी छोटी–छोटी बातें लेकर मेरे पास न आया करो ' वह लौट गया।'' कुछ देर बाद वह लौटा और बताने लगा कि उसने दो खिड़कियाँ तोड़ी हैं। मैंने जानना चाहा कि माजरा क्या है। उसने कहा ''मुझे तानाशाह पसन्द नहीं हैं और मुझे भूखा रहना भी पसन्द नहीं है।'' (बाद में पता चला कि

तानाशाही का विरोध रसोई वाली पर जाहिर करने की कोशिश की गई थी। इस पर वह रसोई बंद कर घर भाग गई थी।)

लगातार मैं ये तमाम सवाल क्यों उठा रहा हूँ क्योंकि मेरा पेशा शिक्षक का है। ऐसा शिक्षक जिसका वास्ता किशोर–किशोरियों से है। मैं ये सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि कि अक्सर शिक्षक सवाल उठाते हैं वे गैर महत्वपूर्ण स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों के सम्बंध में है। मैं पूछता हूँ कि जीवन के स्वाभाविक लक्ष्य व्यक्ति की आंतरिक शांति के अहम् सवाल की तुलना में फ्रेंच, प्राचीन, इतिहास या किसी भी विषय पर चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है।

कुछ प्रश्न

- शिक्षकों व छात्रों के रिश्ते के बारे में क्या कहा गया है?
- आपके अनुसार शिक्षक व छात्रों के बीच का रिश्ता कैसा होना चाहिये?
- बच्चों के सीखने–सिखाने व व्यक्तित्व विकास में शिक्षक छात्र संबंध की क्या भूमिका होती है अपनी कक्षा के एक उदाहरण द्वारा समझाइये।

हमारी शिक्षा का कितना भाग वास्तविक रूप से कुछ करने या वास्तविक आत्म अभिव्यक्ति का है। हमारी हस्त कला का मतलब किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में एक पिन ट्रे बनाना भर रह जाता है। निर्देशों के साथ खेल की विश्वविख्यात मॉटेसरी पद्धति भी कुछ करते हुए सीखने का एक निहायत कृत्रिम तरीका है। उसमें मुझे कुछ भी रचनात्मक नजर नहीं आता है।

घर में हमेशा बच्चे को सिखाया जाता है। हर एक घर में एक ऐसा 'बचकाना' वयस्क जरूर होता है जो खेलते टॉमी को अपने इंजन की क्रियाविधि समझाने को हमेशा तत्पर रहता है। अगर नन्ही दीवार पर टंगी कोई चीज देखना चाहे तो कोई न कोई उसे कुर्सी पर खड़ा करने वाला भी मौजूद होता है । जब–जब हम टॉमी को उसके इंजन के बारे में बताते हैं तो दरअसल हम उससे जीवन का आनन्द छीनते हैं। खोज का आनन्द एक बाधा पार करने का आनन्द। यही नहीं हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि वह बड़ा आश्रित है, हीन है। उसे दूसरों पर निर्भर होना चाहिए।

अभिभावक यह बात बड़ी देर से समझते हैं कि स्कूल में सीखने–सिखाने का पक्ष कितना बेमानी है वयस्कों की तरह बच्चे भी वही सीखते हैं जो वे दरअसल सीखना चाहते हैं। सारे ईनाम , अंक और परीक्षाएँ उचित व्यक्तित्व विकास बच्चे को बहुत दूर ले जाते है। केवल पण्डिताऊ लोग ही यह दावा करते हैं कि किताबी शिक्षा असल शिक्षा है।

किताबें स्कूल का सबसे जरूरी उपकरण हैं। बच्चों के लिए पढ़ना, लिखना, हिसाब करना जरूरी है। उसके बाद केवल औजार, मिट्टी, खेलकूद, नाटक, रंग और आजादी ही होना चाहिए।

स्कूलों में किशोर–किशोरियों द्वारा की गई लिखाई–पढ़ाई दरअसल ऊर्जा, समय और धीरज की बर्बादी है। वह बच्चों से खेलने का अधिकार छीनता है किशोर कंधों पर बुढ़ापा लादता है।

मैं जब कभी कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक –प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थियों को भाषण देने जाता हूँ तो निरर्थक ज्ञान से भरे नये शिक्षार्थियों में बड़े होने के भाव की कमी को देख भौचक्का रह जाता हूँ। वे बहुत कुछ जानते हैं। उनकी अभिव्यक्ति व तर्कशक्ति अच्छी होती हैं। वे तमाम पथों को उद्धत करते हैं। पर जीवन के प्रति उनका नजरिया बच्चों जैसा होता है क्योंकि उन्हें हमेशा सिर्फ जानना सिखाया है महसूस करना नहीं। उनका अन्दाज दोस्ताना होता है। वे मनोहर और उत्साही होते हैं। फिर भी उनमें कुछ कमी लगती है। वह है

भावनात्मकता कि उस दुनिया कि कमी। उनमें विचारों को अहसास के स्तर पर उतारने की क्षमता नहीं होती। मैं उन्हें पाठ्य पुस्तकों में चरित्र का या प्रेम का या आजादी का या तय करने की स्वतंत्रता का उल्लेख नहीं होता। यह परिपाटी यूं ही आगे चलती जाती है। किताबें ज्ञान के लक्ष्य को पा लेने की बैसाखियाँ हैं। पर वे दिल और दिमाग को अलग रखती हैं।

वह समय आ गया है जब हम काम की स्कूली धारणा को चुनौती दें। अमूमन यह मानकर चला जाता है कि हरेक बच्चे को गणित, इतिहास, भूगोल, थोड़ा सा विज्ञान, कुछ कला और निश्चित रूप से साहित्य सीखना जरूरी है। पर वास्तव में एक प्रतिशत बच्चे की इन विषयों में कोई रूचि नहीं होती। यह समझ लेने का समय भी आ चुका है।

यह बात मैं हर नये छात्र, नई छात्रा के साथ सिद्ध करता हूँ। जब उन्हें बताया जाता है कि समरहिल मुक्त शाला है तो वे चीख कर कहते है ''हुर्रा क्या बात है। मुझे आप गणित और दूसरी उबाऊ चीजें नहीं सिखाएंगे।''

मैं ज्ञान का मखौल नहीं उड़ा रहा। इतना भर कह रहा हूँ कि पढ़ाई–लिखाई, खेल के बाद आनी चाहिए और उसे जानबूझकर खेल के साथ नहीं परोसा जाना चाहिए ताकि वह भी स्वादिष्ट लगे।

ज्ञान महत्वपूर्ण है, पर सबके लिए नहीं। निजंस्की सेंट पीटर्सबर्ग में अपनी स्कूली परीक्षाएँ पास नहीं कर सका । परीक्षाएँ पास किये बिना उसे राजकीय बैले नृत्य शाला में दाखिला नहीं दिया गया। वह स्कूली विषय सीख ही नहीं सकता था। उसका ध्यान तो कहीं और था। उसकी आत्मकथा के लेखक ने बताया कि उसकी नकली परीक्षा ली गई। प्रश्न पत्र के साथ उसे सवालों के जवाब भी दिए गये। अगर निजंस्की इन इम्तहानों में पास नहीं होता तो दुनिया को कितना बड़ा नुकसान होता।

जो रचनाकार होते हैं वे जो कुछ सीखना चाहते हैं वह सिर्फ इसलिए ताकि वे उन औजारों को हासिल कर सकें जो उनकी मौलिकता और प्रतिभा के लिए जरूरी हैं। हमें शायद इस बात का अंदाज ही नहीं है कि स्कूली कक्षाओं में सीखने पर बल देने पर कितनी रचनात्मकता कुचली जाती है।

कुछ प्रश्न

- लेखक के निम्न के बारे में क्या विचार हैं ? (1) शिक्षा (2) शिक्षार्थी
- किताबें ज्ञान के लक्ष्य को पा लेने की बैसाखी हैं। पर वे दिल और दिमाग को अलग रखती है। यह कथन किस संदर्भ में कहा गया है? आपके इस कथन के बारे में क्या विचार हैं?

मैंने एक लड़की को हर रात ज्यामिति को लेकर रोते देखा है। वह चाहती थी कि वह विश्वविद्यालय में दाखिला ले। पर इस लड़की कि आत्मा कलाकार की थी। जब मैंने सुना कि वह सातवीं बार दाखिले की परीक्षा में असफल हो गई है, तो मुझे खुशी हुई। इसलिए शायद अब उसकी माँ उसे रंगमंच में जाने देंगी, जहाँ वह हमेशा से जाना चाहती थी।

कुछ समय मुझे कॉपेनहैगन में एक चौदह साल कि लड़की मिली जिसने तीन साल समरहिल में बिताए थे। यहाँ वह अंग्रेजी बोलती थी, मैंने पूछा ''तो तुम अपनी कक्षा में अंग्रेजी में अव्वल होती होगी।''

उसने मुँह बिगाड़ा, ''न मैं सबसे नीचे हूँ क्योंकि मुझे अंग्रेजी व्याकरण नहीं आता।'' वयस्क किसे शिक्षा समझते हैं, उस पर यह उम्दा टिप्पणी है।

ठीक–ठाक छात्र–छात्राएँ अनुशासन के डण्डे के जोर पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों से किसी तरह आखिर कल्पना हीन शिक्षक, साधारण चिकित्सक, अकुशल वकील ही तो ही बनते हैं। पूरी सम्भावना यह कि वे बेहतरीन मैकेनिक, चिनाई करने वाले या पुलिस वाले बनते।

हमने पाया जो लड़का तकरीबन पन्द्रह साल कि उम्र तक ढंग से पढ़ना सीख नहीं पाता, या सीखना नहीं चाहता, उसका रुझान हमेशा मशीनों की ओर होता है। वह बाद में उम्दा मिस्त्री या बिजली मैकेनिक बनता है। मैं उन लड़कियों के बारे में ऐसा कोई सिद्धांत देने कि हिम्मत नहीं कर सकता जो कक्षाओं में, खासकर भौतिक और रसायन कि कक्षाओं में नहीं जातीं अक्सर ये लड़कियाँ अपना ज्यादातर समय सिलाई–कढ़ाई में बिताती हैं। बाद में कपड़े बनाने या डिजाइन बनाने के काम में जुड़ती हैं। वह पाठ्यक्रम बेवकूफी भरा होगा जो इन बच्चियों को चतुष्कोणीय या बॉयल का सिद्धांत पढ़ाता है।

कैल्डवेह कुक ने ''द प्ले वे'' शीर्षक से एक किताब लिखी थी। पुस्तक में खेल–खेल में अंग्रेजी भाषा सिखाने की विधि बताई गई है। किताब बेहद सम्मोहक है। उसमें तमाम बेहतरीन चीजें हैं। फिर भी मुझे लगता है कि यह उसी सिद्धांत पर बल देती है कि सीखना सबसे महत्वपूर्ण है। कुक का मानना था कि सीखना इतना महत्वपूर्ण है कि इस कड़वी दवा को खेल की चीनी से लपेटकर दिया जाना चाहिए। यह धारणा कि बच्चा कुछ सीख नहीं रहा तो वह अपना समय बर्बाद कर रहा है एक भारी अभिशाप है। यह अभिशाप हजारों शिक्षकों और अधिकांश स्कूलों को अंधा बना देता है। पचास साल पहले का नारा था 'करके सीखो'। आज का नारा है 'खेल–खेल में सीखो।' यहाँ भी खेल एक लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम भर है। पर वह लक्ष्य क्या है? यह मुझे आज तक समझ नहीं आया।

अगर शिक्षक बच्चों को मिट्टी में खेलता पाता है और उस पल को और यादगार बनाने के उद्देश्य से वह उसे नदी तट में भूक्षरण की बात बताने लगता है तो उसका उद्देश्य क्या होता है। बच्चों को भूक्षरण से क्या लेना–देना। कई शिक्षाविदों का विश्वास है कि बच्चा क्या सीखता है दरअसल इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जरूरी सिर्फ इतना भर है कि उन्हें कुछ न कुछ सिखाया जाए। स्कूलों में (जैसे कि स्कूल आज के हालत में बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों के समान हैं वहां शिक्षक और कर ही क्या सकते हैं, वे कुछ न कुछ सिखाते जाते हैं और वे यह यकीन कर लेते हैं कि सिखाना अपने आप में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है)

जब शिक्षकों को भाषण देता हूँ तो अपनी बात यह कहकर शुरू करता हूँ कि मैं पढ़ाए जाने वाले विषयों, अनुशासन या कक्षाओं पर कुछ नहीं बोलूंगा। तकरीबन एक घण्टे तक श्रोतागण पूरे ध्यान से मुझे सुनते हैं। ईमानदारी से तालियाँ बजाते हैं। तब अध्यक्ष प्रश्नोत्तर कि घोषणा करते हैं। तब पाता हूँ कि तीन–चौथाई सवाल विषयों और तौर–तरीकों से जुड़े हैं।

यह बात मैं दम्भ से नहीं कर रहा। मैं दुख के साथ कहता हूँ कि दीवारों और जेलनुमा स्कूल भवन शिक्षकों के नजरिये को कितना संकुचित कर देते हैं। शिक्षा के वास्तविक तथ्यों को वे देख भी नहीं सकते। शिक्षक का समूचा काम बच्चे कि गर्दन से ऊपर वाले हिस्से के साथ होता है। ऐसे में बच्चे का भावनात्मक पक्ष जो उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, शिक्षक के लिए अनजाना रह जाता है।

मेरी तमन्ना है कि मैं युवा शिक्षकों में एक व्यापक आन्दोलन देख सकूँ। उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालयों कि डिग्रियाँ दरअसल सामाजिक बुराइयों का सामना कर पाने की क्षमता में रत्ती भर असर नहीं करतीं। एक पढ़े लिखे मनोरोगी और अशिक्षित मनोरोगी में कोई फर्क नहीं है।

सभी देशों में चाहे वह पूंजीवादी, समाजवादी हो, बच्चों को शिक्षित करने में भारी भरकम योजनाएँ बनाई जाती हैं। स्कूल खोले जाते हैं। ये उम्दा प्रयोगशालाएँ और कार्यशालाएँ किसी जॉन पीटर या इवान को पहुँची भावनात्मक ठेस को दूर करने में कतई मददगार नहीं होतीं। भावनात्मक क्षति, बच्चे के अभिभावक, शिक्षक और हमारी सभ्यता के दमनकारी रूप के कारण, बच्चे पर लगातार दबाव डालने से पहुँचती हैं।

समरहिल से निकले बच्चों की क्या स्थिति रहती है?

भविष्य को लेकर माता–पिता के मन में बसा डर उनके बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह भय शिक्षा के इस रूप में झलकता है कि बेटा/बेटी उनसे कहीं ज्यादा पढ़ें। इस तरह का कोई पिता अपने बेटे को अपनी रफ्तार से पढ़ने–लिखने नहीं देता। उसे डर रहता है कि अगर उसने दबाव नहीं बनाया तो वह असफल हो जाएगा। ऐसे माता–पिता अपने बच्चों को उसकी गति से बढ़ने नहीं देते। वे सवाल करते हैं कि मेरे बेटे या बेटी ने बारह साल की उम्र तक पढ़ना नहीं सीखा है तो जीवन में उसकी सफल होने की क्या सम्भावना है। अगर अट्ठारह साल की उम्र में वह कॉलेज दाखिले के इम्तिहान पास नहीं कर सकता तो एक अकुशल नौकरी के अलावा वह क्या करेगा ? पर मैंने इंतजार करना, धीरज रखना सीखा है। बच्चा अपनी रफ्तार से बढ़ा या रुका रहे, मुझे कोई शक नहीं अगर उसे छोड़ा न जाए तो वह अपने जीवन में सफल रहेगा।

मेरे विरोधी कहेंगे वाह! 'एक ट्रक ड्राइवर बनने को भला जीवन में सफल कहा जा सकता है। सफलता का मेरा अपना मापदण्ड है, खुशी–खुशी काम करने और सकारात्मक जीवन जीने की क्षमता और इस भाषा से चलें तो समरहिल के अधिकांश छात्र–छात्राएँ जीवन में सफल होते हैं।

टॉम पाँच साल कि उम्र में समरहिल आया। सत्रह साल का हुआ तो उसने स्कूल छोड़ा। इस दौरान एक भी कक्षा में, एक भी पाठ के लिए नहीं आया। उसने ज्यादतर समय वर्कशाप में कुछ न कुछ बनाते बिताया। उसके माता–पिता उसके भविष्य की कल्पना कर थर्राते थे। उसने कभी पढ़ने– लिखने कि इच्छा तक नहीं जताई। जब वह तकरीबन नौ साल का था मैंने उसे एक रात बिस्तर पर पसरे डेविड कॉपरफिल्ड पढ़ते पाया।

''हैलो ! मैंने कहा, ''भई तुम्हें पढ़ना किसने सिखाया ?''

''मैंने ही खुद को सिखाया''

कुछ साल पहले वह मेरे पास यह पूछने आया आधा और एक बटा पाँच कैसे जोड़ते हैं। मैंने उसे बता दिया। मैंने पूछा की वह भिन्नों के बारे में कुछ और जानना चाहता है? तो उसका कहना था। ''नहीं धन्यवाद!''

स्कूल से निकलने के बाद उसे एक फिल्म स्टूडियो में कैमरा बॉय की नौकरी मिली। जब वह काम सीख ही रहा था कि मुझे उसके बॉय से एक डिनर पार्टी में मुलाकात करने का मौका मिला। मैंने जानना चाहा कि उसका काम कैसा चल रहा है।

अब तक जितने लड़के आए उनसे बढ़िया उन्होंने बताया। ' वह चलता नहीं दौड़ता है। पर सप्ताह के अन्त में वह सिर दर्द बन जाता है। शनिवार और रविवार को वह स्टूडियो से दूर रहता ही नहीं।

एक लड़का था, जैक जो पढ़ना–लिखना सीख ही नहीं पा रहा था। उसे कोई सिखा भी नहीं सकता था। जब वह खुद पढ़ने का आग्रह करता तो भी नहीं। कोई अन्दरूनी बाधा थी जो उसे बी (व) और पी (प), एल (ल) और के (ज्ञ) अक्षरों का अन्तर समझने ही नहीं देती थी। सत्रह साल की उम्र में। वह स्कूल से बिना पढ़ना सीखे निकला।

जैक आज औजार बनाने में उस्ताद है। उसे धातु कर्म की बात करना बेहद पसन्द है। वह मशीनों के बारे में लिखता–पढ़ता है। कभी कभार मनोविज्ञान से संबधित लेख भी पढ़ता है मुझे नहीं लगता कि उसने कभी कोई उपन्यास तक पढ़ा होगा। वह व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध भाषा बोलता है और उसका सामान्य ज्ञान विलक्षण है। एक अमेरिकी मेहमान जो उसकी कहानी नहीं जानते थे। उसने उससे मिलने पर टिप्पणी की यह लड़का चतुर है।

डायेन प्यारी सी लड़की थी। वह कक्षाओं में खास रुचि नहीं लेती थी। विद्वता के प्रति उसका रुझान नहीं था। सोलह साल की उम्र में कोई भी विद्यालय निरीक्षक उसे पढ़ाई –लिखाई में कमजोर लड़की का दर्जा देते। डायेन लन्दन में एक भिन्न पाककला के प्रदर्शन देती है। वह अपने काम में बेहद कुशल है। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि वह बहुत खुश है।

एक फर्म की माँग थी कि उसमें काम करने वाले सभी लोग कम से कम कॉलेज दाखिले की परीक्षा पास कर चुके हों। मैंने उसे राबर्ट के बारे में खत लिखा।' इस लड़के ने कोई परीक्षा पास नहीं की है। उसका रूझान विद्वता की ओर नहीं है , पर उसमें साहस है। रॉबर्ट को नौकरी मिल सकी।

विनिफ्रेड तेरह साल की नयी छात्रा है। उसने मुझे बताया कि उसे सभी विषयों से नफरत है। जब उसे पता चला कि वह जो चाहती है, वह कर सकती है, तो वह खुशी से चीख पड़ी। ' तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम्हें स्कूल जाने की कोई जरूरत नहीं है' मैंने कहा।

उसने तय किया कि वह मस्ती करेगी। यह उसने कुछ सप्ताह किया। मैंने देखा कि इसके बाद वह ऊबने लगी।

'मुझे कुछ तो सिखाओ ' उसने एक दिन मुझसे कहा 'मैं बेहद बोर हो रही हूँ' 'ठीक है मैंने खुशी से कहा ' तुम क्या सीखना चाहोगी।''

'पता नहीं' उसका जवाब था।

'मुझे भी पता नहीं ' मैंने कहा, और चल दिया।

महीनों बीत गए वह फिर से आई। 'मैं कालेज में दाखिले की परीक्षा पास करना चाहती हूँ। मुझे आप पढ़ाएँ '' वह बोली।'

हर सुबह वह मेरे और दूसरे शिक्षकों के साथ काम करने लगी। खूब मेहनत की। उसने बताया कि उसे विषयों में खास मजा नहीं आ रहा था। पर अपने लक्ष्य में उसकी रूचि थी। विनिफ्रेड स्वयं अपने लक्ष्य को तलाश पाई क्योंकि उसे यह अनुमति मिली कि वह जैसी है, वैसी बनी रहे।

मजे कि बात यह कि मुक्त बालक–बालिकाएँ गणित पसन्द करने लगती हैं। इतिहास और भूगोल में आनन्द पाते हैं। वे विभिन्न विषयों में से उन विषयों को चुन पाते हैं जो उन्हें रोचक लगें। मुक्त बच्चे अपना ज्यादातर समय अपनी दूसरी अभिरूचियों में बिताते हैं। वे लकड़ी या धातु का काम, चित्रकारी करने, कहानियाँ–उपन्यास पढ़ने, अभिनय करने या अपनी कल्पनाओं को अपने खेल में बदलने जैसे –संगीत के रिकार्ड बजाने में अपना समय बिताते हैं।

आठ साल का टॉम मेरे दरवाजे से खेलता और पूछता 'मुझे अब क्या करना चाहिए' पर उसे कोई नहीं बताता की वह क्या करे।

छः महीने बाद आप टॉम को तलाशते हुए उसके कमरे में जाते तो उसे कागजों के समुन्दर में डूबा पाते। वह घण्टों नक्शे बनाने में गुजारता। एक बार वियेना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर साहब ने बताया, 'मैंने उस लड़के से भूगोल के विषय में कुछ पूछना चाहा। वह ऐसी जगहों की बात कर रहा था जिनके नाम तक मैंने नहीं सुने हैं। '

पर मुझे अपनी असफलताओं के बारे में बताना है। बारबेल नामक पन्द्रह वर्षीय स्वीडिश लड़की हमारे पास साल भर रही। उसे इस दौरान कोई ऐसा काम नहीं मिला जो उसे रोचक लगा हो। दरअसल वह बहुत देर से समरहिल आई। करीबन दस साल से उसके शिक्षिकाएँ उसके लिए निर्णय लेती रही थीं। समरहिल आते तक उसकी पहल करने की क्षमता सूख चुकी थी।

वह ऊब गई। सौभाग्य इतना भर था कि वह अमीर परिवार की थी सो आराम की जिंदगी काट सकती थी।

हमारे यहाँ यूगोस्लाविया से आई दो बहनें थीं। एक ग्यारह और दूसरी चौदह साल की। उसकी रुचि बांधने में स्कूल असफल रहा। उन्होंने ज्यादातर समय क्रोएशियन भाषा में मेरी आलोचना करने में लगाया। मेरे एक क्रूर मित्र हमेशा टिप्पणी कर मुझे बताते। इस स्थिति में सफलता हाथ लगती तो चमत्कार ही होता क्योंकि हमारे बीच साझी भाषा एक ही थी। वह थी कला और संगीत की। जब उनकी माँ उन्हें वापस लेने आई तो मुझे बेहद खुशी हुई।

हमने सालों के अनुभव से पाया जो लड़के इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जाते हैं ,वे मैट्रिक के इम्तिहान की परवाह नहीं करते। सीधे ही व्यावहारिक केन्द्रों में जाना पसन्द करते हैं। विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के पहले वे दुनिया देखना चाहते हैं। एक जहाज में खिदमतगार बन सारी दुनिया घूमे। दो लड़कों ने केन्या में कॉफी की खेती की। एक लड़का ऑस्ट्रेलिया गया और एक दूरस्थ, ब्रिटिश गयाना।

कुछ प्रश्न

• लेखक का मानना है कि बच्चे जो बनना चाहते हैं उन्हें उस निर्णय को लेने की पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिये। आपके इस बारे में क्या विचार है?

डेरिक बॉयड मुक्त शिक्षा में एक साहसिक व्यक्ति था। वह आठ साल की उम्र में समरहिल आया और अठारह की उम्र में विश्वविद्यालय की परीक्षा पास करने के बाद उसे छोड़ा। वह डॉक्टर बनना चाहता था पर उसके पिता आर्थिक कारणों से उसे उस वक्त पढ़ा नहीं सकते थे। उसने सोचा कि वह बीच का समय दुनिया देखने में बिताएगा। वह लंदन के बंदरगाह पर गया। दो दिन उसने नौकरी तलाशने में बिताए। उसे कोई भी नौकरी मंजूर थी। जहाज की भट्टी में कोयला झोंकने वाले की भी। उसे बताया गया कि वैसे ही सैकड़ों प्रशिक्षित नाविक बेरोजगार हैं। वह काफी उदास हो घर लौटा।

कुछ ही दिनों में उसके साथी ने बताया कि स्पेन में रहने वाली एक महिला को ड्राइवर चाहिए। डेरिक ने मौका लपक लिया और स्पेन चला गया। वहाँ उसने महिला की मकान बनाने और मरम्मत करने में सहायता की। उसे यूरोप भी घुमाया और तब आगे की पढ़ाई करने लौटा। महिला ने उसकी फीस में सहायता करने का निर्णय लिया। दो साल बाद उस महिला ने आग्रह किया कि वह साल भर छुटटी ले और उसके साथ केन्या जाए। वहाँ भी अपना मकान बनवा दे। डेरिक ने अपनी पढ़ाई केन्या के केपटाउन में पूरी की।

लैरी हमारे पास बारह साल की उम्र में आया। विश्वविद्यालय में दाखिले की परीक्षा देकर सोलह साल में निकला और ताहिती में फलों की खेती करने चला गया। उसने पाया कि इस काम में कमाई कम है तो उसने टैक्सी चलानी शुरू की। बाद में वह न्यूजीलैंड गया। वहाँ उसने तमाम काम किये, टैक्सी भी चलाई। तब ब्रिसबेन विश्वविद्यालय में दाखिला मिला। उस विद्यालय के डीन जब मिलने आए तो उन्होंने लैरी की तारिफ की। जब छुट्टियाँ हो गई और हमारे सब छात्र घर चले गए तो लैरी एक मिल में लकड़ी काटने चला गया। आज लैरी एसेक्स में डाक्टर है।

कुछ प्रश्न

आपके आस–पास भी डेरिक बॉयड या लैरी जैसे व्यक्ति होगें जिन्होंने मुक्त शिक्षा प्राप्त की ऐसे ही किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त शिक्षा के बारे में लिखिए।

(iii) बच्चे असफल कैसे होते हैं– जान होल्ट

और सब की तरह, मुझ पर भी औरों का इतना ऋण है कि मैं जिन्दगी भर न तो उसे चुका सकता हूँ और न ही बता ही सकता हूँ। लेकिन कुछ चुनिन्दा व्यक्तियों के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने खासकर इस पुस्तक और इसमें निहित विचारों को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उनमें प्रथम हैं एक्सेटर में मेरे अंग्रेजी के अध्यापक रॉबर्ट कनिंघम। वे कहा करते थे, ''निश्चितता एक भ्रम है और विराम मनुष्य का भाग्य नहीं,'' और इसी वजह से पहली बार शंका और बदलाव के प्रति मेरी आँखें खुलीं। इसके बाद हैं कॉलरेडो रॉकी माउंटन स्कूल के निदेशक जॉन व ऍन होल्डन, लेस्ली–एलिस स्कूल की प्रधानाध्यापिका मेरी राइट, जिन्होंने पढ़ाने के लिए मुझे कक्षाएँ उपलब्ध करायीं और स्वतंत्रता दी कि जैसा चाहे पढ़ाऊँ, स्वतंत्रता, गलतियाँ करने की और उनसे सीखने की। अब आती हैं पेगी ह्यूज, जिन्होंने मुझे अपने शिक्षण सम्बंधी नोट्स को एक पुस्तक के रूप में छपवाने के लिए प्रेरित किया। मेरी बहन जेन पिचर, जिनसे मैंने छोटे बच्चों के बारे में काफी कुछ जाना और बच्चों के साथ रहने व आनन्द उठाने के बारे में सीखा, के प्रति भी मैं आभारी हूँ। उसके अलावा बिल हल के प्रति भी मैं आभारी हूँ। बिल ने मुझे कक्षा और मेरे द्वारा ''पढ़ाए'' जाने वाले बच्चों के दिमागों के बारे में सबसे ज्यादा समझ प्रदान की और अन्ततः उन बच्चों के प्रति जिन्होंने मुझे उससे कहीं ज्यादा सिखाया, जितना कि मैंने उन्हें।

कुछ प्रश्न

- लेखक जान होल्ट द्वारा उपरोक्त वर्णन में लोगों से सीखने के प्रति आभार व्यक्त किया गया है। उन्होने किन–किन व्यक्तियों से क्या–क्या सीखा। इसकी सूची (तालिका) बनाईये।

अधिकांश बच्चे स्कूल में फेल होते हैं और उनमें से ज्यादातर के लिए यह असफलता प्रकट रूप से सम्पूर्ण होती है। स्कूलों में दाखिला लेने वाले चालीस प्रतिशत बच्चे स्कूली स्तर की शिक्षा पूरी नहीं कर पाते। महाविद्यालय–स्तर में दाखिला लेने वाले हर तीन छात्रों में से एक बीच में ही पढ़ाई छोड़ देता है। पर जाहिर तौर पर फेल होने वाले इन बच्चों के अलावा भी तमाम दूसरे बच्चे फेल होते हैं। अंकों की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक दूसरे, कहीं गहरे अर्थ में असफल होते हैं। वे अपनी स्कूली शिक्षा महज इसलिए पूरी कर पाते हैं, क्योंकि हम शिक्षक उन्हें अपनी सहमति से अंक दे, धकियाकर, स्कूल से बाहर निकलने में सहायता करते हैं। फिर चाहे वे कुछ जानते हों, या न जानते हों। सच्चाई तो यह है कि ऐसे अप्रकट रूप से फेल होने वाले बच्चों की संख्या हमारे अनुमान से कहीं अधिक है। अगर हम ''स्कूली शिक्षा का स्तर'' कुछ ऊपर उठा दें , जैसा कि कई शिक्षाविद् करना चाहते हैं , तो हमें तत्काल अप्रकट रूप से फेल होने वाले बच्चों की सही संख्या का पता लग सकता है। हमारी सभी कक्षाएँ ऐसे छात्रों से भर जाएंगी जो परीक्षाएँ पास कर ही नहीं सके।

पर एक इससे भी गहरी असफलता है जो मुट्ठी भर छात्रों के अलावा सभी छात्रों में समान रूप से मिलती है। यह जरूरी नहीं है कि अपवादस्वरूप मिलने वाले ये मुट्ठी भर छात्र अच्छे छात्र ही हों। यह गूढ़ असफलता इस अर्थ में रहती है कि बच्चे सीखने , समझने और रचने के अपने जन्मजात और असीम सामर्थ्य का केवल एक छोटा –सा भाग ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं, जबकि जीवन के दो तीन प्रारम्भिक वर्षो में वे इस सामर्थ्य का भरपूर उपयोग करते रहे थे।

यह असफलता बच्चों में क्यों आती है?

इसलिए, क्योंकि वे डरते हैं, ऊबते हैं और भ्रमित रहते हैं। उनके मन में सबसे बड़ा भय होता है अपने आस–पास के वयस्कों को निराश और नाराज करने का। इन वयस्कों की असीम आशाएँ और अपेक्षाएँ बच्चों के

सिर पर बादलों की तरह गहराती रहती हैं।

बच्चे ऊबते इसलिए हैं, क्योंकि जो कुछ उन्हें स्कूलों में करने को दिया या कहा जाता है, वह सबका सब बेहद निरर्थक और नीरस होता है। बच्चों से रखी जाने वाली अपेक्षाएँ नितान्त सीमित होती हैं, जबकि बच्चों की मेधा, उनकी प्रतिभा और ?उनके गुण असीम होते हैं।

बच्चे भ्रमित इसलिए होते हैं क्योंकि उनके सिर पर अर्थहीन शब्दों का प्रपात संवेग झरता रहता है। ये शब्द बराबर उस सबका खंडन करते हैं जो बच्चे को पहले बताया गया था और तो और बच्चे जो कुछ स्वयं अपने अनुभव से जानते हैं उससे भी इस शब्द प्रपात का कोई सम्बंध नहीं होता। यथार्थ की जो अनगढ़–सी छवि बच्चों के मन में होती है, उससे पूरी तरह कटा हुआ होता है।

और यह व्यापक असफलता क्यों होती है? हमारी कक्षाओं में आखिर होता क्या है? ये असफल होने वाले बच्चे अपनी कक्षाओं में भला करते क्या हैं? क्या सोचते हैं वे? अपने सामर्थ्य का उपयोग वे क्यों नहीं करते?

यह पुस्तक इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के एक प्रयास का प्रारम्भिक और आंशिक लेखा–जोखा है। पुस्तक का जन्म हुआ था उन नोट्स के रूप में जो मैं हर शाम अपने मित्र और सहकर्मी बिल हल को लिखा करता था। बिल की पाँचवीं कक्षा को मैं उन दिनों पढ़ाता भी था और उसका अवलोकन भी करता था। उन दिनों लिखी इन अवलोकन टिप्पणियों को मैंने फिर से नहीं लिखा है। हाँ, उनका सम्पादन अवश्य किया है और उन्हें चार भागों में व्यवस्थित कर दिया है। ये चार भाग हैं – पैंतरेबाजी (स्ट्रेटजी), भय और असफलता (फीयर एण्ड फेलियर), वास्तविक ज्ञान (रीयल लर्निंग) और कैसे असफल होते हैं स्कूल (हाऊ स्कूल्स फेल)। पैंतरेबाजी में बच्चों द्वारा अपनाई जाने वाली हर तिकड़म का वर्णन है जिसके सहारे वे स्कूलों में वयस्कों द्वारा की जाने वाली माँगों का सामना करते हैं या उनसे बचते हैं। भय और असफलता में बच्चों के मन में भय और पराजय की परस्पर प्रतिक्रिया एवं बच्चों द्वारा अपनाई जाने वाली पैंतरेबाजी तथा सीखने की प्रक्रिया पर इन दोनों के संयुक्त प्रभाव की चर्चा है। बच्चे असल में जो कुछ सीख पाते हैं और जो कुछ जानने या सीखने की उनसे अपेक्षा की जाती है, उस अन्तर की चर्चा पुस्तक के तीसरे भाग वास्तविक ज्ञान में है। कैसे असफल होते हैं स्कूल ? में इस बात का विश्लेषण है कि स्कूल कैसे बच्चों में बुरी रणनीतियाँ पनपाते हैं, उनमें डर जगाते हैं और ऐसे ज्ञान को पैदा करते हैं जो खंडित , विकृत और अल्पकालिक तो होता ही है, साथ ही उनकी वास्तविक जरूरतों की पूर्ति तक नहीं कर पाता।

यह तो जाहिर ही है कि ये चारों भाग परस्पर एकाकी नहीं हैं। वे आपस में जुड़ते व घुल–मिल जाते हैं। शायद यह कहना उचित ही होगा कि ये सभी बच्चों के चिन्तन और उनके व्यवहार को देखने व समझने के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण मात्र हैं।

यह पहले ही स्पष्ट कर दूँ कि यह पुस्तक चुनिंदा खराब स्कूलों या प्रतिभाहीन और पिछड़े बच्चों के बारे में नहीं है। जिन स्कूलों के अनुभव पुस्तक में संकलित हैं, वे सभी ऐसे निजी शिक्षण संस्थान थे जो न केवल विख्यात हैं बल्कि जिनके स्तर भी ऊँचे थे। कुछ अपवादों को छोड़कर, जिन बच्चों का वर्णन हुआ है वे भी मेधा में सामान्य बच्चों से बेहतर थे और तो और सरसरी तौर पर देखने में सफल भी नजर आते थे। ये सभी छात्र–छात्राएँ अपने कदम ''अच्छे '' विद्यालयों की ओर बढ़ा रहे थे।

मेरे ऐसे सहकर्मी और मित्र, जो आजकल के बच्चों के चरित्र और मेधा पर स्कूलों के दुश्प्रभाव को समझते हैं और जिन्होंने मुझसे कहीं ज्यादा स्कूल देखे हैं उनका मानना है कि दूसरे स्कूल इन स्कूलों से बेहतर नहीं है बल्कि कुछ तो बदतर ही हैं।

पुस्तक छपी ही थी कि लोगों ने मुझसे यह पूछना शुरू कर दिया कि आप शिक्षकों की असफलता पर पुस्तक

कब लिखने वाले हैं? मेरा उत्तर था, ''यह पुस्तक तो है ही इस बारे में।''

पर इतना अवश्य स्पष्ट करना चाहूँगा कि अगर यह पुस्तक उस शिक्षक के बारे में भी है जो अक्सर असफल होता रहा, तो यह पुस्तक उस शिक्षक के बारे में भी है जो असफलता को स्वीकार कर संतुष्ट वरन् निरन्तर उनसे लड़ने का प्रयास करता रहा। बच्चों को सिखाना मेरी ही जिम्मेवारी थी आखिर शिक्षक का काम मैंने स्वयं अपने लिए चुना था। और जैसे ही यह स्पष्ट होता कि वे वह सब नहीं सीख पा रहे हैं जो मैं उन्हें सिखा–पढ़ा रहा था तो फिर यह दायित्व भी मेरा ही था कि मैं तब तक नए–नए तरीके अपनाता, जब तक मुझे उन्हें सिखाने का सही उपाय न मिल जाता।

बच्चों को सिखाना मेरी ही जिम्मेवारी थी, आखिर शिक्षक का काम मैंने स्वयं अपने लिए चुना था। और जैसे ही यह स्पष्ट होता कि वे वह सब नहीं सीख पा रहे हैं जो मैं उन्हें सिखा–पढ़ा रहा था तो फिर यह दायित्व भी मेरा ही था कि मैं तब तक नए–नए तरीके अपनाता, जब तक मुझे उन्हें सिखाने का सही उपाय न मिल जाता।

वर्षों से मैं शिक्षकों और छात्र –शिक्षकों से यह अनुनय करता रहा हूँ कि वे भी अपने काम के प्रति यह दृष्टिकोण अपनाएँ। पर ऐसा कहते ही वे पलटकर मुझसे यह जानना चाहते हैं, ''स्कूलों में होने वाली हरेक भूल के लिए आप हमें दोषी क्यों ठहराते हैं ? आप हमें इस कदर अपराध बोध से क्यों दबा देना चाहते हैं?''

पर ऐसा तो मैंने कभी कहा ही नहीं। मैंने तो कभी स्वयं तक को दोषी नहीं ठहराया न ही इस बात के लिए स्वयं को अपराधी माना कि मेरे छात्र वह सब नहीं सीख सके जो मैं उन्हें सिखाता–पढ़ाता रहा, न इस बात के लिए कि मैं वह नहीं कर पा रहा था जिसका संकल्प मैंने अपना काम प्रारम्भ करने के पहले किया जरूर था, पर जिसे कर पाने की राह मुझे सूझी नहीं। पर इतना जरूर था कि अपनी असफलता के लिए मैं स्वयं को दोषी नहीं, तो जिम्मेवार अवश्य मानता था।

दरअसल ''दोषी'' और ''अपराधी '' दोनों ही शब्द रोंदू हैं। अच्छा हो कि शिक्षा की चर्चा से हम इन दोनों को ही बाहर रखें। हम उनके बदले ''जिम्मेवार'' शब्द का प्रयोग करें। हम यह कामना करें कि स्कूल व शिक्षक अपने कामों के लिए स्वयं की जिम्मेवारी स्वीकार करने लगें।

मैंने अपना दायित्व हमेशा स्वीकारा था। अगर मेरे छात्र वह सब नहीं सीख रहे थे जो मैं उन्हें सिखाता था तो मेरा दायित्व यही था कि मैं यह जानने की चेष्टा करूँ कि आखिर ऐसा क्यों होता है। बच्चे असफल कैसे होते हैं? शीर्षक की यह पुस्तक, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, इस बात को जानने का अपर्याप्त व आंशिक प्रयास है कि बच्चों में यह असफलता क्यों पनपती है। पुस्तक लिखने के प्रायः बीस वर्षों के बाद आज मैं यह बेहतर जानता हूँ कि ऐसा आखिर क्यों होता है? यही बात इस संशोधित संस्करण का कारण भी है।

मूल पुस्तक को मैंने जस का तस छोड़ दिया है। पर जिन स्थानों पर पुनर्विचार किया उन्हें फिर से लिखा है और मूल के साथ शामिल किया है। पाठकों को लग सकता है कि जो कुछ भी मैंने जाना, उसे जानने में मुझे बहुत अधिक समय लगा। उन्हें यह भी लग सकता है कि मैंने ऐसी तमाम गलतियाँ भी कीं जो बेवकूफी भरी थीं। यह भी कि मैं अनेक साफ नजर आने वाले इंगितों को पढ़ नहीं पाया। पर इन सबके लिए मेरे मन में अपराध – बोध नहीं है। क्योंकि, अपनी ओर से मैंने इन सभी दुरूह बातों को जानने का हर सम्भव प्रयास किया था। बल्कि मुझे यह भी लगता है कि जो रास्ता मैंने पकड़ा, उससे कम समय लेने वाला कोई दूसरा रास्ता था ही नहीं। आशा करता हूँ कि इस पुस्तक को पढ़ते समय आप यह देख सकेंगे कि मैं कहाँ से शुरू हुआ, किन घुमावों व मोड़ों पर चलता चला और अन्तत : वहाँ पहुँचा, जहाँ आज हूँ।

आजकल हर जगह ही हमारे स्कूलों के स्तर को ऊँचा उठाने की चर्चा है। यह चर्चा भी सुनाई पड़ती है कि

बच्चों को अगली कक्षा में उतीर्ण करने से पहले हम यह ''सुनिश्चित कर लें कि जो कुछ उन्हें जानना चाहिए उसे बच्चों ने जान भी लिया है या नहीं''। पर इन सुझावों को अपनाने पर उनका व्यावहारिक रूप क्या होगा? हम केवल उस छल–कपट को बढ़ावा देंगे जिसकी चर्चा मैं पुस्तक में कर चुका हूँ। इम्तिहानों के पहले हम बच्चों को बार–बार सब कुछ दोहराने पर बाध्य करेंगे, जिससे बाहरी तौर पर यह लगने लगे कि वे वह सब भी जानते हैं जो असल में वे जानते ही नहीं। साथ ही इन नियमों को समान रूप से लागू भी नहीं किया जाएगा। इससे होगा यह कि निर्धन व अश्वेत परिवारों के बच्चे, सम्पन्न या श्वेत परिवारों के बच्चों की तुलना में अधिक बड़ी संख्या में पीछे रोक लिए जाएँगे और तब, अन्ततः हम यह भी साफ देख सकेंगे कि शायद हमें बहुत पहले ही समझ लेना चाहिए था कि किसी कक्षा को दोहराने मात्र से बच्चे पहले से अच्छे परिणाम नहीं ला पाते। बल्कि, शायद वे अपने पर्चे उतने अच्छे भी नहीं कर पाते जितने उन्होंने पहले किए थे। और क्यों हो उनके परिणाम बेहतर? अगर कोई शिक्षण पद्धति पहली बार में बच्चों को कुछ सिखा नहीं पाई तो दूसरी बार वह क्यों सफल रहेगी? सच्चाई तो यह है कि फेल होने की शर्म का बोझ उठाए–उठाए ये बच्चे पहले से कहीं अधिक नाराज और भ्रमित होते जाते हैं। वे न केवल पहले से कहीं खराब काम करते हैं बल्कि कक्षा में बाधाएँ भी उपस्थित करते चलते हैं।

दूसरे शब्दों में, ''सामाजिक उत्थान'' की बुराई के खिलाफ यह संघर्ष ज्यादा दूर तक नहीं जाएगा। न ही इसके कुछ सकारात्मक नतीजे निकलेंगे।

कुछ ही समय पहले न्यूयॉर्क में शिक्षा लेखक संघ की बैठक में हारवर्ड ग्रैज्यूएट स्कूल ऑफ एज्यूकेशन के प्रोफेसर डॉ. रॉनल्ड एडमंड्स को सुनने का मौका मिला। वे न्यूयॉर्क शहर के स्कूलों के अनुरोध पर किए गए अपने एक शोध पर बोल रहे थे। उन्होंने और उनके साथियों ने यह जानने की चेष्टा की कि ऐसी कौन – सी बातें हैं जो कुछ स्कूलों को अधिक '' कारगर '' बनाती हैं। कारगर का अर्थ इस शोध में यह था कि इन स्कूलों में आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों से आनेवाले छात्रों का एक खास प्रतिशत भी वह सब सीख रहा था , जो बच्चों के लिए किसी कक्षा में सीखना जरूरी माना जाता था। सीखने की मात्रा भी इतनी थी कि इन बच्चों को वैध रूप से अगली कक्षा में उत्तीर्ण किया जा सके। कमजोर तबके से आने वाले छात्रों का अनुपात भी प्रायः उतना ही था जितना कि मध्यमवर्गीय या सम्पन्न परिवारों से आने वाले छात्रों का था।

पहली महत्वपूर्ण बात जो इस शोध से स्पष्ट हुई वह यह थी कि संयुक्त राज्य अमरीका के सम्पूर्ण उत्तरी भाग में शोधकर्ता कुल पचपन स्कूल ढूँढ पाए जो ''कारगर'' स्कूलों की इस सीमित परिभाषा में आते थे।

इन स्कूलों की पहचान कर लेने के बाद शोधकर्ताओं ने उन्हें जाँचा और उन खासियतों को पहचानने की चेष्टा की जो इन सभी स्कूलों में समान रूप से मिली। जिन पाँच लक्षणों या विशेषताओं की सूची उन्होंने बनाई उनमें से मुझे दो निर्णायक लगती हैं। पहली समानता यह थी कि अगर छात्र कुछ नहीं सीख पाते तो उन्हें या उनके परिवारों को, उनकी पृष्ठभूमि या उनके मोहल्ले को, उनके दृष्टिकोण या उनके स्नायुतंत्र को, या ऐसे ही किसी बाहरी कारण को उनकी असफलता के लिए इन स्कूलों में उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता था। छात्रों की सफलता या असफलता का पूरा दायित्व वे स्वयं स्वीकारते थे। दूसरे, जब कभी कक्षा में प्रयुक्त कोई विधि कारगर होती नहीं लगती तो वे उसे त्यागते और कोई दूसरा तरीका या दूसरी ही चीज करने की चेष्टा करते। वे हमेशा पद्वतियों को असफल करते, छात्रों को नहीं।

अगर हम स्कूलों, उनके प्रबन्धकों व शिक्षकों को इस दिशा में सोचने पर सहमत कर सकें तो स्कूलों को बेहतर होता देख सकेंगे। पर निकट भविष्य में ऐसा होने की सम्भावना नहीं दिखती, बल्कि सारे इशारे इसके विपरीत दिशा के ही नजर आते हैं। जितने खराब परिणाम किसी स्कूल में आते जाते हैं, उतना ही ये स्कूल दावा करते हैं कि उनके तरीके सही हैं और बुरे परिणामों की जिम्मेवारी उनकी तो नहीं है।

अन्तिम टिप्पणी। बच्चों की मेधा का यह विनाश, जिसका वर्णन इस पुस्तक में है, आज से बीस वर्ष पहले भी हो रहा था।

कुछ प्रश्न

- लेखक ने स्कूल को बेहतर बनाने में किन दो बातों को सहायक माना है?
- लेखक द्वारा बच्चों के असफल होने के क्या–क्या कारण बतलाए गये हैं?
- लेखक द्वारा बच्चों के असफल होने के कारण बताये हैं। इन कारणों में से कौन से कारण आपको तर्क संगत लगते हैं और क्यों ?

फरवरी 27,1958

कुछ दिनों पहले नैल मेरी मेज तक आई और हमेशा की तरह बिना बोले, अपलक देखते हुए स्याही से लिखा अपना ताजा आलेख मेज पर रखा। हमारा नियम है कि स्याही से जब कभी कोई चीज उतारी जाए तो एक पन्ने पर तीन से अधिक गल्तियाँ नहीं होनी चाहिए। अगर हों तो पन्ना फिर से उतारना होगा। उसके पहले पन्ने को जाँचने पर मुझे पाँच गल्तियाँ मिलीं। मैंने भरसक नरमी से बताया कि उसे पन्ना फिर से उतारना होगा। जैसी शिक्षकों की वृत्ति होती है, मैंने यह भी जोड़ा कि उसे सावधानी बरतनी चाहिए थी। उसने मुझे घूरा, उसाँस छोड़ी और अपनी मेज पर लौट गई। वह बाएँ हाथ से लिखती है और कलम का सही इस्तेमाल सीख नहीं पाई है। मैं उसे एकाग्र होकर काम से जूझता देख रहा था। कुछ देर बाद वह दूसरी बार लिखकर लाई किन्तु उसे फिर उतारना होगा। कुछ देर बाद तीसरी प्रति भी आई जो दूसरी से भी बदतर थी।

ठीक उसी समय बिल हल ने मुझसे एक सवाल किया जो मुझे खुद से करना चाहिए था , जो सभी शिक्षकों को हमेशा अपने–आप से पूछना चाहिए , ''तुम कहाँ पहुँचना चाह रहे हो, तुम क्या वहाँ पहुँच रहे हो?''

यह सवाल मुँह बाए स्कूलों में खड़ा होता है, पर कौन–सी ऐसी जगह है जहाँ इसका सामना नहीं करना पड़ता? हम कितनी आसानी से फिर–फिर उसी फन्दे में फँसते हैं। लक्ष्य के लिए जो साधन हैं, वही लक्ष्य बनकर रह जाते हैं। मेरे पास तीन गलतियों वाला यह नियम था जो बच्चों को एकाग्रता के साथ, सफाई के साथ, लेख लिखवाने का साधन मात्र था। उसे सख्ती से लागू कर मुझे तो एक ऐसी बच्ची मिल रही थी जिसे लेख उतारने की इतनी चिन्ता थी कि उसके लिए ध्यान केन्द्रित करना ही असम्भव बनता जा रहा था, जिसका काम बद से बदतर होता जा रहा था। मुझे तो एक ऐसी बच्ची मिल रही थी जो अपना हर अगला पन्ना अपने हर पिछले पन्ने से अधिक खराब लिखने वाली थी।

> इससे खतरनाक होगा किसी अच्छे कारण से शुरू की गई गतिविधि को हठ व अन्धेपन के साथ करते चले जाना और यही मैं उस दिन कर रहा था। या तो मैं यह देख ही नहीं पा रहा था या देखना चाहता ही नहीं था कि मैं बच्ची को फायदा नहीं, नुकसान पहुँचा रहा हूँ।

जो कुछ हम स्कूलों में करें उसके बारे में यह पूछते जाना चाहिए, '' हम पहुँचना कहाँ चाह रहें हैं और जो हम कह रहे हैं क्या उससे हमें वहाँ पहुंचने में मदद मिल रही है?'' जब हम कुछ करते हैं क्या वह इसलिए नहीं करते कि हमें बच्चों की सहायता मिल रही है। या फिर हम वह इसलिए करते हैं कि वही स्कूल को, शिक्षकों या व्यवस्थापकों को किफायती और सुविधाजनक लगता है। या फिर इसलिए कि दूसरे भी ठीक ऐसा ही करते हैं। हमें सजग रहना चाहिए कि हम अपनी सुविधा को ही एक मूल्य का दर्ज़ा न दे डालें। न ही हमें व्यवस्थात्मक किफायत की वजह से अपनाए गए नियमों को उच्च शैक्षिक स्तर का जामा पहनाना चाहिए।

यह मेरा सहकर्मी बिल हल उस स्कूल में आया, जहाँ हम दोनों ने बाद में साथ–साथ पाँचवी कक्षा को पढ़ाया, तो वह गणित विभागाध्यक्ष के सहायक के रूप में आया था। विभागाध्यक्ष एक बुजुर्ग सज्जन थे, जिन्होंने ताउम्र गणित पढ़ाया था और इस विशिष्ट, उच्च आई. क्यू. वाले बच्चों के स्कूल में भी लम्बे समय से पढ़ाते चले आ रहे थे। एक रोज़ उन्होंने बिल को अपने जीवन–भर के उपक्रम का सार–संक्षेप इन शब्दों में बताया, ''मैं पढ़ाता तो हूँ ,पर वे सीखते नहीं हैं।''

कुछ प्रश्न

• लेखक का प्रयास था कि वह बच्चे द्वारा की गयी गलतियों को सुधारें लेकिन गलतियों को सुधारने के इस प्रयास का परिणाम यह हुआ कि बच्ची पहले से भी खराब लिखने लगी। आपके विचार से ऐसा क्यों हुआ?

• क्या आपके साथ भी कक्षा में कभी ऐसा हुआ है जब आपके द्वारा बच्चों को सिखाने के प्रयास का परिणाम वह नहीं निकला जैसा कि आपने सोचा था। क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ?

यह बात वे सभी शिक्षक जानते हैं जो अपने काम के प्रति ईमानदार हैं। यही बात मैं कॉलरेडो में पढ़ाना शुरू करने के कुछ ही दिनों में जान गया था। मैं पढ़ाता था पर वे सीखते नहीं थे। पर खराब छात्र पहले से बेहतर नहीं होते, बल्कि कुछ तो बदतर ही होते जाते थे। अगर देश–भर के ''श्रेष्ठतम'' स्कूलों का लेखा–जोखा देखें कि उनके यहाँ के कितने छात्र दूसरी या तीसरी श्रेणी से पहली श्रेणी में आए तो यह संख्या दुखदाई रूप से छोटी होगी।

जिस प्रश्न का मैं सालों से उत्तर चाहता रहा हूँ , वह यह है कि बच्चे यह सब क्यों नहीं सीखते जो हम उन्हें पढ़ाते हैं? जिस उत्तर तक मैं पहुँचा हूँ उसे यों कहा जा सकता हैः क्योंकि हम उन्हें पढ़ाते हैं, यानी उनके मन की विषयवस्तु को नियंत्रित करना चाहते हैं।

अक्टूबर 30,1968

यहाँ हरेक ऐसे पेश आता है मानो कुछेक निहायत निकम्मे छात्रों को छोड़कर बाकी सभी छात्र गणित की वे सब बातें समझते हैं जो उन्हें जाननी चाहिए। यह सच नहीं है। बीस बच्चों की कक्षा में कम से कम छः छात्र ऐसे होंगे जो साधारण जोड़ नहीं जानते और इससे कहीं बड़ी संख्या उन बच्चों की होगी जो उँगलियों पर जोड़ते हैं।

हाँ , वे उन्हें छिपाकर करते हैं। इससे भी कहीं अधिक संख्या उन बच्चों की है जो गुणा या भाग नहीं कर पाते। मुझे तो यह अनुमान लगाने की चेष्टा ही डराती है कि स्थानीय मान की उनकी समझ क्या है?

गणित के एक ऐसे पर्चे को बनाना बड़ा आसान होगा जो न तो बहुत लम्बा हो, न ही बहुत टेढ़ा; जो केवल ऐसे ही सवाल पूछता हो जो इन बच्चों को आने चाहिए पर जो कुछ को छोड़ पाँचवीं कक्षा के सभी बच्चों को चक्कर में डाल दें। और पाँचवीं का ही क्यों किसी भी कक्षा का ऐसा पर्चा बनाया जा सकता है। जिस नवीं कक्षा को मैं पढ़ाता था वे सब गणित में ठीक–ठाक नम्बर पाकर ही उत्तीर्ण हुए थे, पर भाग के बारे में वे बहुत कम जानते थे, भिन्नों के बारे में उससे भी कम और दशमलव के बारे में तो प्रायः कुछ भी नहीं जानते थे।

लगता है यह जाँच–परीक्षा नम्बर–वाली पूरी व्यवस्था ही एक बड़ी साजिश है। जिसका मकसद हैं छात्रों, शिक्षकों व स्कूलों को एक सामूहिक छलाव में भाग लेने देना। यह छलाव कि छात्र सच में वह सब जानते हैं जो उन्हें जानना चाहिए। जबकि सच्चाई यह है कि वे उसका कुछ हिस्सा ही जान पाते हैं। उच्च विद्यालयों तक में शिक्षक पहले से यह क्यों बताते हैं कि परीक्षा किन अध्यायों की होगी या सवाल किस तरह के पूछे जाएँगे? इसलिए क्योंकि अगर शिक्षक ऐसा न करें तो अधिकांश बच्चे फेल हो जाएँ। हारवर्ड या बेल तक में कोई प्रोफेसर

अगर मार्च के महीने में उन अध्यायों की परीक्षा ले डालें जो उसने अक्टूबर में पढ़ाए थे तो क्या हो? शायद इसका नतीजा हम सब जानते हैं। इसीलिए ऐसा करते नहीं हैं।

यह बात आज भी उतनी ही सच है जितनी तब थी। चाहे हमारे परीक्षा परिणाम कुछ भी क्यों न दिखाते हों, स्कूलों में जो कुछ भी पढ़ाया जाता है उसका एक छोटा—सा अंश ही सीखा या याद रखा जाता है और जो याद रखा जाता है उसका भी एक छोटा—सा हिस्सा ही काम का होता है। हम जो कुछ सीखते, याद रखते और इस्तेमाल करते हैं वे सब वही बातें होती हैं जिन्हें हम स्कूल से बाहर की जिन्दगी में तलाशते या पाते हैं।

कुछ प्रश्न

- बच्चे वह सब नहीं सीखते जो हम उन्हें पढ़ाते है? इस कथन के बारें में आपके क्या विचार है?

सही या गलत की स्थिति में फँसने पर बच्चे स्वाभाविक रूप से हर सम्भव सुराग पकड़ने की चेष्टा करते हैं। हम शिक्षकों को ऐसे सवाल उठाने होंगे, जिससे हर आलतू—फालतू इशारा उन्हें सही उत्तर तक न पहुँचा दे। हमें सीखना होगा कि कब हमारे चेहरे और दिमाग पढ़े जा रहे हैं, ताकि हम उनके संकेतों को बदल सकें। इससे भी जरूरी है बच्चों को उनकी रणनीतियों के बारे में सचेत करना। उन तरीकों के बारे में बताना होगा जिनसे वे सोचने – विचारने का अपना काम हमसे करवाते रहते हैं। किसी समस्या पर काम कर रहे बच्चों से मैं अक्सर पूछता हूँ , '' तुम मेरी ओर क्यों ताक रहे हो? उत्तर मेरे माथे पर नहीं उभरने वाला है।'' जो बच्चे ऐसा कर रहे होते हैं वे सचेत होते ही हँस पड़ते हैं। पर अच्छा होता कि मैं उनकी ओर से मुँह फेर पाता ताकि वे चेहरा देख ही नहीं पाएँ।

जब कोई बच्चा किसी अवैध तरीके से सही उत्तर पाता है और उसे जानने का श्रेय मिल जाता है जो असल में वह जानता ही नहीं, और जब वह यह भी जानता है कि वह जानता नहीं है,तो इसका दोहरा नुकसान होता है। अव्वल तो वह सीखता ही नहीं है, तो उसके भ्रम गहराते हैं। वह यह मानने लगता है कि छल—कपट, अनुमान लगाना, मन पढ़ना, इंगितों को पकड़ना व दूसरों से उत्तर पाना ही वह बात है जो उसे स्कूल में करनी है। स्कूल इसी बारे में है। वहाँ दूसरा कुछ सम्भव ही नहीं है।

अप्रैल 22, 1960

टूडी को 20 + 7 जोड़ना था। उँगलियों पर पूरी संख्या जोड़ी। मैंने सोचा, ''लो अब क्या होगा?'' मैं हमेशा यही सोचता हूँ कि मैं बच्चों के अज्ञान की अन्तिम तहों तक पहुँच गया हूँ , पर हमेशा स्वयं को गलत पाता हूँ। एक कोरे पन्ने पर मैंने लिखा : 10 + 3 =? उसने गिनकर बताया 13। मैंने संख्या लिखी। इसके ठीक नीचे मैंने लिखाः 10 + 9 =?। जब उसने 19 बताया तो मैंने संख्या लिख डाली। इसके बाद मैंने उसे एक के बाद एक 10 + 4, 10 + 5, 10 + 3, 10 + 6, 10 + 2 दिया। हर बार उत्तर पाने के लिए उसे उँगलियों पर गिनना पड़ा। तब मैंने उसे दोबारा 10+6 दिया। उसने फिर से गिनकर ''16'' कहा। पन्ने को कुछ देर घूरने के बाद उसने कहा, ''इसमें तो हमेशा पहले एक और तब जोड़ी हुई संख्या लिखी है।'' एक खोज। मैं बहुत खुश हुआ और बोला, ''देखें, अरे हाँ, तुमने बिलकुल ठीक कहा।'' तब मैंने उसे ऐसे और कई सवाल दिए और फिर 20 + 5, 20 + 9, 20 + 6, 40 + 3 आदि भी। उसने सभी जोड़ बिना गिने झटपट कर डाले।

जब मैं अपने आपसे और उससे खुश हो चुका, तो मैंने फिर से विचार किया। क्या उसने ऐसा कुछ सीखा भी है जिसका वह दूसरे सन्दर्भो में उपयोग कर सकेगी? क्या उसे लगने लगा है कि अंकों का यह व्यवहार विवेकसम्मत है? या इसे भी उसने महज एक रहस्यमय इत्तेफाक माना है। उसे यह तर्कसंगत परिणाम लगा है या एक ऐसी विधि जिसे याद करना जरूरी है, और जिसे भूलते ही वह लुढ़क जाएगी? क्योंकि अगर ऐसा कुछ है तो वह फिर से उँगलियों पर गिनने की उस स्थिति में ही लौट जाएगी, जो उसे भरोसेमन्द लगती हो। सप्ताह भी नहीं गुजरा था कि टूडी फिर से अपने पुराने ढर्रे पर लौट गई।

मुझे लगता है कि इस बच्ची को कम से कम हजार बार तो वह बताया ही गया होगा कि जब भी 10 में कोई संख्या जोड़ी जाए, तो जवाब 1 के पीछे उसी संख्या को लिखने से मिल जाता है। फिर भी जब उसने यह नियम उस दिन खोजा तो उसका व्यवहार ऐसा था मानो उसने पहले कभी यह सुना या देखा न हो। ऐसे में उसी बात को मेरे दोहरा देने भर से क्या फर्क पड़ने वाला था। जब किसी बच्चे को दसियों बार कुछ करने को कहा जाए और वह उसे फिर भी न कर सकें, तो रूक जाना ही वाजिब है। यह तो जाहिर है कि जो सम्बंध आप उसके दिमाग में बैठाना चाह रहे हैं, वह बैठ ही नहीं रहा है, यानी कोई दूसरा तरीका अपनाना जरूरी हो गया है।

कुछ प्रश्न

• क्या आपके साथ भी कभी ऐसा हुआ है जब आपने बच्चों को कुछ सिखाना चाहा हो पर वे समझ नहीं पाये। इस स्थिति में आपने फिर क्या किया?

मैंने टूडी को एक दिन 7 का पहाड़ा लिखने को कहा। उसने हरेक उत्तर उँगलियों पर गिन–गिनकर लिखा, 7 × 2 भी। उसे यह तो सैकड़ों बार बताया गया होगा कि 7 × 2 = 14 होता है और उतनी ही बार उसने यह लिखा भी होगा। शायद वह यह जानती भी होगी। यानी अगर मैं उससे पूछता कि 7 × 2 कितने होते है, तो वह 14 कहती। पर ज्ञान के इस अंश पर उसका भरोसा नहीं है। उसे तो उँगलियों पर गिनना ही भरोसेमन्द लगता है। उसने 6 × 7 = 42 तक सब ठीक –ठाक लिखा। तब उससे एक ऐसी गलती हुई जैसी बच्चे अक्सर तब करते हैं जब वे ऊब चुके होते हैं। उसने लिखा 8 × 7= 49। कोई आत्म–परीक्षक तो वहाँ था नहीं जो कहता, ''जरा ठहरो, देखो यह मामला तो गड़बड़ लग रहा है।'' इसके बाद उसने लिखाः 9 × 7= 56। इस बार उसने 6 कुछ ऐसे लिखा कि यह शून्य–सा दिख रहा था। उसने अगली बार जोड़ते समय उसे शून्य ही पढ़ा। और यों उसे 10 × 7 = 57 मिला, 11 × 7= 64 और 12 × 7= 72। और ये सारी ऊलजलूल बातें लिखते समय मन में उनके प्रति कोई शंका, सन्देह या झिझक का भाव नहीं था। फिर इन गलती की सम्भावना ही कहाँ थी?

मैंने उससे पन्ना ले लिया और उसे फिर से 7 का पहाड़ा लिखने को कहा। इस बार मुझे 7, 14, 21, 28, 36, 43, 50, 57, 64, 71, 78, 85 मिला। मैंने उसका कागज लिया और एक बार फिर से कोशिश करने को कहा। इस बार गलती करते ही मैंने उसे बताया। उसने अपनी भूल सुधारी और मुझे सही पहाड़ा लिखकर दे दिया। तब मेरे मन में एक विचार आया, जो उस समय मुझे बेहद अच्छा लगा था। मैंने सोचा कि अगर मैं, उसने जो कुछ लिखा था, उस पर उसे सोचने दूँ तो वह समझ लेगी कि उसके कौन से उत्तर तार्किक हैं। और शायद तब गलती पकड़ने की और बकवास को छाँटने की प्रक्रिया भी उसके दिमाग में शुरू हो सकेगी। मैंने उसे उसके तीनों पन्ने पकड़ा दिए और कहा कि तीनों में अन्तर है। सो वह उनकी तुलना कर ले और जो उत्तर उसे सही लगे उसके सामने (✓) का निशान बना दे और जो गलत लगे उसके सामने (×) का। और जब वह सही–गलत का निर्णय न ले पाए तो वहाँ एक सवालिया निशान (?) बना दे।

इसके कुछ पल बाद ही मुझे अपने शैक्षिक जीवन का सबसे अप्रिय अनुभव हुआ। उसने वह पर्चा जिसमें पहाड़ा सही लिखा था, मुझे लौटाया। इसमें 7 × 1 के आगे तो सही का निशान था पर दूसरे सभी उत्तरों के सामने गलत का निशान बना हुआ था।

बेचारी बच्ची। वह तो स्कूल द्वारा पूरी तरह परास्त , पूरी तरह से ध्वस्त हो चुकी थी। सवालों के अर्थहीन अभ्यास, स्पष्टीकरण और परीक्षाओं के उस सिलसिले ने जिसे हम '' शिक्षा '' कहते हैं, उसे सिवाए उसकी सामान्य बुद्धि के विनाश के कुछ नहीं दिया था। पाँच साल तक गणित से जूझने और उसे झेलने के बाद उसके

पास दिखाने को क्या था? वह किस तरह की वयस्क बनेगी? जिस दुनिया में उसे रहना है उसका क्या अर्थ समझेगी? अपने मन में अपनी सुरक्षा के लिए भ्रमों का कैसा किला गढ़ेगी?

लगता तो यह है कि अगर उसे गणित न पढ़ाया गया होता तो उसके लिए वही हर तरह से बेहतर होता। गणित ने उसके लिए स्कूल तक को एक पीड़ादायक और एक खतरनाक बना डाला है। वह उससे बच निकलने और आत्मरक्षा के उपाय सोचने में इस कदर व्यस्त रहती है उसे काम में ले सकती है।

इक्कीस वर्षों बाद, आज भी मुझे इस बात से तकलीफ होती है और मेरा क्रोध भड़क उठता है कि स्कूलों और जन सामान्य ने ऐसी घटनाओं से, जिन्हें हम इस देश की तमाम कक्षाओं के हजारों–लाखों उदाहरणों से गुणा कर सकते हैं, प्रायः कुछ भी नहीं सीखा है। सच में इस बच्ची को स्कूल ने बिल्कुल पस्त कर दिया था। पूरी तरह से नष्ट कर दिया था। शायद केवल स्कूल ने नहीं, शायद पहले पहल स्कूल ने यह नहीं भी किया हो। पर जो कुछ उसके साथ स्कूल के बाहर हुआ होगा, उस सबको स्कूल ने निश्चित रूप से बदतर बनाया।

मान लीजिए कि मैं उससे कहता, '' जितना चाहो समय लो और जो चाहो वही करो, बस उसके बाद आकर मुझे यह बताओ कि दो सत्ते क्या होता है। पर हाँ, जो बताओ उसे पूरी तरह जाँचकर, परखकर, सही लगने पर ही बताना।'' तो क्या वह यह कर लेती? तय है कि वह यह नहीं कर पाती। उसका अंकों पर, भौतिक दुनिया पर, अपने आप पर, स्कूलों पर या मुझ पर कोई भरोसा नहीं था। वह कैसे मान लेती कि अगर वह सच में उस दिशा में काम करने लगती है, यह सुनिश्चित कर लेती है कि 7X2 = 14 होते हैं, तो मैं उसे कोई दूसरा और पेचीदा सवाल इस तथ्य को गलत सिद्ध करने के लिए या उसे बेवकूफ बनाने के लिए नहीं दे डालूँगा। एक ही चीज उसने स्कूल में सीखी थी और बाकायदा सीखी थी। वही बात जो विन्स्टन चर्चिल ने कही थी,कि शिक्षकों के सवाल यह जानने के लिए थोड़े ही होते हैं कि आप क्या जानते और आपके आसपास के सभी लोगों में यह ढिंढोरा पीटने के लिए होते हैं। शिक्षकों के सवाल उनकी परीक्षाओं की तरह ही सिर्फ फंदे होते हैं।उनकी गिरफ्त में टूडी हजारों बार आ चुकी थी और हर बार उसने पटकनी खाई थी। पर अब वह उस जाल में फँसने वाली नहीं थी। मेरे द्वारा भी नहीं। मैं शायद दूसरे शिक्षकों से कुछ अच्छा था, गलती होने पर डाँटता –फटकारता नहीं था, पर था तो मैं भी दूसरों की ही तरह एक शिक्षक।

अगर उसे अपनी तरह से जानने और पनपने दिया जाता तो सम्भव था कि अंकों से भरी इस दुनिया में जीते –जीते वह संख्याओं और उनकी संक्रियाओं के बारे में स्कूल के बनिस्बत कहीं अधिक सीख लेती और अगर दस वर्ष की उम्र तक भी उसने इस बारे में कुछ भी न सीखा होता – जो शायद असम्भव था – तो भी उसका हाल बेहतर ही होता। कम से कम उसके दिमाग में झूठे ''तथ्यों, निरर्थक और विकृत नियमों, पीड़ा व भ्रम का कबाड़ा तो नहीं भरा होता। कम से कम तब जरूरत पड़ने पर उसे अंकों का कोई अर्थ निकालने का मौका तो मिला होता।

कुछ प्रश्न

- लेखक के अनुसार टूडी कैसी परिस्थितियों में ज्यादा सीखती?
- लेखक को किस बात से तकलीफ होती है?

अप्रैल 27, 1960

प्राथमिक शाला से लेकर उच्च माध्यमिक शाला तक के हम सभी शिक्षक यह सिद्ध करने में पूरे दमखम के साथ जुटे रहते हैं कि हमारे छात्र असल में जितना जानते हैं, उससे कहीं अधिक जानते हैं। आखिरकार हम सबका दूसरे शिक्षकों के बीच रुतबा और हमारे स्कूलों का दूसरे स्कूल के बीच रुतबा इस बात पर ही तो निर्भर करता है कि हमारे छात्र कितना जानने का अहसास दे पाते हैं। इस बात पर नहीं कि वे असल में कितना जानते

हैं, ना ही इस बात पर कि वे जो जानते हैं उसका इस्तेमाल कर भी पाते हैं या नहीं। जितनी ज्यादा सामग्री हम अपने पाठ्यक्रम, पाठ्य–विवरण और पाठ्यचर्चा में ''कवर'' कर पाते हैं उतनी ही हमारी छवि बेहतर बनती है। तब यह दिखना भी आसान हो जाता है कि हमारी कक्षा छोड़ते समय हमारे छात्र वह सब जान चुके थे जो उन्हें ''जान लेना चाहिए था''। ताकि अगर बाद में यह जाहिर भी हो जाए (और यह अक्सर होता है) कि जितना उन्हें जानना चाहिए उतना उन्होंने सीखा ही नहीं है, तो हम आसानी से इस दोष से स्वयं का बचाव कर सकें।

जब मैं अपने स्कूल की कक्षा में था तो हम सभी वरिष्ठ छात्र कॉलेज–बोर्ड की परीक्षाओं की तैयारी में, रटने के लिए करीब एक सप्ताह अधिक रूके थे। प्राचीन इतिहास के हमारे शिक्षक ने अपने लम्बे अनुभव के आधार पर हमें पन्द्रह विषयों की एक सूची इस सलाह के साथ दी की हमें उन विषयों पर बीस मिनट में लिखने का मसाला जुटा लेना चाहिए। हमने सूची पढ़ी और सलाह मानना ही उचित समझा। अगर हमने उनकी सलाह नहीं मानी होती तो हम उस कॉलेज में दाखिला ही नहीं ले पाते। बोर्ड परीक्षाएं होने पर हमने पाया कि उसकी सूची के आधार पर हम पर्चे के आठ सवाल आसानी से कर सकते थे। सो हमें प्राचीन इतिहास के बारे में ऐसा बहुत कुछ जानने का श्रेय मिल सका, जो असल में हम जानते ही नहीं थे और शिक्षक महोदय को एक बेहतरीन अध्यापक होने का श्रेय मिला, जो वे थे नहीं। हमारे स्कूल को यह प्रसिद्धि मिली कि जिस किसी को बढ़िया कॉलेज में दाखिला चाहिए, उसे वहीं पढ़ने जाना चाहिए। पर सच्चाई तो यह थी कि मैं प्राचीन इतिहास के बारे में बहुत कम जानता था और तभी से मुझे इतिहास से चिढ़ हो गई थी, जो सालों तक बनी रही। मैं उसे एक निरर्थक और समय बर्बाद करने वाला विषय ही मानता रहा। अगर तब दो ही महीनों के बाद फिर से कॉलेज बोर्ड की परीक्षा होती और पर्चा भी उससे कहीं आसान दिया जाता, तो मैं उसमें फेल ही होता। पर परवाह किसे थी?

यह खेल मैंने भी खेला है। जब मैंने पढ़ाना शुरू किया तो मैं अनजाने ही यह मानता था कि परीक्षा का अर्थ सच में यह जाँचना, यह पता करना होता है कि छात्र अपने पाठ्यक्रम के बारे में क्या और कितना जानते हैं? पर यह पहचानने में मुझे बहुत समय नहीं लगा कि अगर मैं बिना बताए कोई परीक्षा लें डालूँ, ऐसी परीक्षा जो पूरे पाठ्यक्रम से सम्बंधित हो, तो मेरी कक्षा का हरेक बच्चा असफल रहे। पर इससे हासिल क्या होगा– बस मेरी छबि बिगड़ेगी और स्कूल के लिए नई मुसीबतें पैदा होंगी। मैंने यह जल्दी ही सीख लिया कि छात्रों की कुल संख्या का एक सम्मानजनक प्रतिशत परीक्षा में अच्छे नम्बर लाए या केवल पास हो सके, उसका एक ही उपाय है – परीक्षाओं की पूर्व घोषणा, परीक्षा में आने वाले पाठों की सविस्तार चर्चा और जिस तरह के सवाल पूछे जाने हैं उनका पर्याप्त अभ्यास, जिसे हम शिष्टतावश पुनरावलोकन का नाम देते हैं। मुझे बाद में यह भी पता चला कि सभी शिक्षक ठीक यही करते हैं। यह हम जानते हैं कि जो कुछ हम करते हैं, वह बेईमानी है, पर इसे रोकने वाले पहले व्यक्ति के रूप में आगे बढ़ने की हिम्मत हममें नहीं हैं। हम अपनी कैफियत दें, स्वयं को दोषमुक्त करने के लिए कहते हैं कि आखिर इस सबसे कोई खास नुकसान भी तो नहीं होता। पर यहीं हम गलत हैं, क्योंकि इससे भारी नुकसान होता है।

हानिकारक तो यह है ही। अव्वल तो इसलिए क्योंकि यह सरासर बेईमानी है और छात्र भी इसे बखूबी पहचानते हैं। बोर्ड परीक्षाओं के लिए इतिहास के पाठ्यक्रम को सरसरी नजर से देखे जाते समय मेरी साथियों को और मुझे पता था कि एक छलावा हो रहा है पर हम यह नहीं समझ पा रहे थे कि छला असल में किसे जा रहा है। बोर्ड परीक्षाओं में जो हमारी सफलता थी, वह प्राचीन इतिहास के हमारे ज्ञान के बदौलत नहीं थी, क्योंकि वह ज्ञान तो था ही बड़ा छिछला। हमारी सफलता हमारे इतिहास शिक्षक के अनुमान लगा पाने के कौशल की बदौलत थी, जिसमें वे सचमुच माहिर थे। पर हमारी जो उम्र थी उससे कहीं छोटे बच्चे भी यह भाँप और सीख लेते हैं कि शिक्षक असल में जो चाहते हैं, जिसे पुरस्कृत करते हैं, वह ज्ञान या समझ नहीं है, बल्कि उसका आभास मात्र है जो बच्चे सचमुच मेधावी और कुशल होते हैं वे भी स्कूल को एक छल के रूप में देखते हैं। यह वे बाकायदा सीखते हैं। वे अपने शिक्षकों की अव्यक्त और अचेतन पसंदों व पूर्वाग्रहों को सूंघ निकालने में माहिर

हो जाते हैं। उनका पूरा फायदा उठाना सीखते हैं। प्राथमिक शाला में हमारे अंग्रेजी के शिक्षक ने हमें मैकॉले का लॉर्ड क्लाइव पर लिखा लेख कक्षा में पढ़कर सुनाया था, उससे मैं भॉंप गया कि लम्बे–लम्बे पेचीदा वाक्य जिसमें मुख्य क्रिया उनकी अंत में आती हो, उनकी कमजोरी है। इसके बाद हर बार मैं कम से कम एक ऐसा ही वाक्य उनके लिए बनाता रहा और यों मैने सुनिश्चित कर लिया कि मुझे उसके पर्चे में हमेशा अच्छे नंबर मिले।

परीक्षा के छलावे से न केवल यही हानि होती है कि बच्चे मानने लगते हैं कि ईमानदार समझ की खोज ही अनावश्यक है, बल्कि जो छात्र इस सब के बावजूद ऐसी ईमानदार खोज में लगे रहते हैं उन्हें भी हतोत्साहित होना पड़ता है। इसलिए कि शिक्षक भी शायद तथ्यों और विधियों के आगे कुछ नहीं जानते। ऐसे शिक्षक उन छात्रों से अधैर्य और नाराजगी के साथ पेश आते हैं जो केवल यह नहीं जानना चाहते कि क्या हुआ, बल्कि यह भी कि जो कुछ हुआ वह ठीक वैसा ही क्यों हुआ, किसी दूसरी तरह से क्यों नहीं हुआ। ऐसे सवालों के उत्तर दे पाने के लिए आवश्यक ज्ञान शिक्षकों के पास बिरले ही होते हैं और तो और पाठ्यक्रम की तमाम सामग्री के दबाव के सामने इस सब का समय कहां रहता है। संक्षेप में ''पहले बताओ तब परीक्षा लो'' शिक्षण –पद्धति हमारे छात्रों को भ्रमित करती है। वे जानते हैं कि उनकी शिक्षित सफलता एक कमजोर नींव पर खड़ी है। वे मानते हैं कि स्कूल एक ऐसी जगह है जहां उन्हें निरर्थक विधियों से, निरर्थक सवालों के निरर्थक उत्तर पाते हैं।

कुछ प्रश्न

- लेखक के शिक्षक ने उनकी परीक्षा की तैयारी कैसे करवाई?
- हमारे छात्र जितना जानते है, उससे कहीं अधिक जानते है? यह कहने का क्या तात्पर्य है?

जुलाई 10, 1960

परीक्षाओं के पक्ष में दो तरह के तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं। एक तो यह कि यह परीक्षा का भय बच्चों को अधिक, यानि बेहतर, काम करने को प्रेरित करता है। दूसरा यह कि परीक्षाएं शिक्षकों को यह जांच लेने देती हैं कि बच्चों ने सच में कितना सीखा है। दोनों ही तर्क गलत हैं। जिस सीमा तक बच्चे परीक्षाओं से डरते हैं, उतना ही उसका काम बदतर होता जाता है। उससे न तो यह पता चलता है कि अच्छे छात्र कितना जानते हैं और न ही उन छात्रों का भांडा फूटता है तो बिल्कुल कुछ नहीं जानते हैं। एक दिन में टूडी और एल्यनॉर के साथ काम कर रहा था। टूडी एक बेहद खराब छात्र है, अंकों की संक्रियाओं का उसे अता–पता तक नहीं है। मैने बोर्ड पर लिखा :

$$\begin{array}{r} 2\ 5\ 6 \\ +\ 3\ 2\ 7 \\ \hline \end{array}$$

तब मैंने सवाल के हर चरण को धीमे–धीमे तथा जोर से बोलते हुए, किया ताकि उन्हें, जो कुछ कुछ कर रहा था, उस पर सोचने का पर्याप्त समय मिले। मुझे उत्तर में 583 मिला, जो मैंने बोर्ड पर लिखा। उस सवाल के ठीक पास मैंने दूसरा सवाल लिखा।

$$\begin{array}{r} 2\ 5\ 6 \\ +\ 3\ 2\ 7 \\ \hline \end{array} \qquad \begin{array}{r} 2\ 5\ 6 \\ +\ 3\ 2\ 8 \\ \hline \end{array}$$

मैंने कहा, '' हमें 256 में फिर कुछ जोड़ना है पर 327 के बदले 328।

इस बार सवाल तुम करो। '' क्या वे बच्चियाँ जान पाईं कि सवाल में जोड़ी जाने वाली संख्या एक अधिक थी, सो उत्तर भी पिछले उत्तर से एक ही अधिक होगा, यानी 584? नहीं, दोनों कुछ समय तक कागज़ पर काम करती रहीं, तब जानना चाहा = 353?

इस समय मैने एक नया सवाल लिखा और फिर से हरेक चरण किया, जब तक उन्हें भरोसा नहीं हो गया कि उत्तर सही है। तब उसके पास ठीक वही सवाल फिर से लिख डाला यानी, इस बार बोर्ड पर था।

$$\begin{array}{r} 245 \\ +\;179 \\ \hline 424 \\ \hline \end{array} \qquad \begin{array}{r} 245 \\ +\;179 \\ \hline \\ \end{array}$$

मैंने उनसे सवाल करने को कहा। उन्हें यह नहीं दिखा कि सवाल वही हैं। काफी देर बाद उन्होंने कहा, ''524''

यहीं मैंने 88 + 94 = 182 के साथ दोहराया। कुछ समय बाद उन्हें यह पता चला गया कि सवाल वही है, सो उत्तर भी वही होना चाहिए।

तब मैंने लिखा 2 × 12 = 24, 2 × 13 = ?। एल्यनॉर ने तुरन्त कहा,''मुझसे ऐसे पढ़ा नहीं जाता।'' जब मैंने सवाल वैसे लिख दिया : 26। टूडी ने 68 लिख दिया। उसने मेरा चेहरा पढ़ा और जल्दी से बोली, ''एक मिनट रूकिए'' कुछ देर बाद उसने लिखा : 2 × 12 = 24, 3 × 12 = ?। उसे पता ही नहीं चला कि उसने सवाल बदल डाला है। तब उसने कहा, ''आगे एक चरण और है।'' उसने लिखा 2 + 1 = 3, 4 + 1 = 5, और उत्तर लिखा 35। उसने जानना चाहा,''क्या यह सही है?'' कुछ देर बाद एल्यनॉर ने मुझे बताया कि 20 + 10 = 29 होते हैं।

ये बच्चे प्राथमिक शाला के सभी बच्चों की तरह हर साल एक या दो बार परीक्षाओं के सिलसिले से गुजरते हैं, जिन्हें ''उपलब्धि परीक्षाओं'' का गलत नाम दिया गया है। ये परीक्षाएँ कई तरह की होती हैं, पर होती सभी निरर्थक ही हैं। सिद्धांत में वे शिक्षकों व स्कूलों को छात्रों की उपलब्धि (जो कुछ बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं, करते हैं उसके वर्णन के लिए यह कैसा शब्द छांटा गया है को आँकने में व उनकी ही उम्र के देशभर के दूसरे छात्रों से तुलना करने में सहायक होती हैं। पर असलियत यह है कि ये परीक्षाएं एक तरह के फरेब के प्रति बच्चों को प्रेरित करती हैं। शिक्षकों को इन परीक्षाओं के लिए बच्चों को रटाना नहीं चाहिए, पर यही तो वे करते हैं। खासकर उन स्कूलों में जहाँ उच्च प्राप्तांक पर जोर दिया जाता है, और ''उच्च स्तर'' को हौव्वा बनाया जाता है।

ये परीक्षाएं इस तरह बनायी जाती हैं कि बच्चे को मिले नम्बर उसकी कक्षा के समकक्ष हों। इस हिसाब से एक औसत पाँचवी के विद्यार्थी को लगभग 5.5 नम्बर मिलने चाहिए जिन भटके हुए व नाउम्मीद बच्चों के साथ मैने काम किया है उनके नम्बर उनके कुशल साथियों की तुलना में कम आते हैं। फिर भी वे उनसे एक या दो वर्ष अधिक पिछड़े हुए नहीं दिखते। इस वर्ष की परीक्षाओं के हिसाब से उन छात्रों को जोड़ना, घटाना, स्थानीय मान निकालना, गुणा व भाग करना आता है। पर यह सरासर झूठ है। इन बच्चों को गणित के बारे में कुछ भी नहीं आता। सही अर्थो में देखें तो ये बच्चे उतना भी नहीं जानते जितना एक औसत पहली कक्षा के बच्चे को जानना चाहिए। एक सटीक परीक्षा (अगर ऐसी कोई चीज़ हो सकती है तो वह नापने का ऐसा सटीक औज़ार होगी जो सच में कुछ नापता हो) को काम में लिया जाए तो इन बच्चों का प्राप्तांक एक दशमलव कुछ ही बताएगा, जबकि किसी औसत छात्र को 5.5 अंक मिलने चाहिए। नहीं, सच्चाई के और निकट, यह कहना होगा कि एक

सटीक परीक्षा (अगर ऐसी कोई चीज हो सकती है तो) बच्चों के प्राप्तांक को ऋणात्मक संख्याओं में बदल देगी। देश के एक''बेहतरीन'' स्कूल में पाँच वर्ष बिताने के बाद वे गणित में (सिर्फ गणित में ही नहीं) उस हाल में आए हैं जो उन बच्चों से भी खराब हैं जो कभी स्कूल में गए ही न हों।

फिर ये ऊंचे नम्बर मिलते कैसे हैं? परीक्षाओं के एक या दो सप्ताह पहले शिक्षक बच्चों को ऐसे सवालों का अभ्यास करवाने लगते हैं, जिस तरह के सवाल परीक्षा में आने वाले हों। जब परीक्षाएँ होती हैं तो ये बच्चे पावलॉव के कुत्ते की तरह अनुकूलित हो चुकते हैं। वे जब एक निश्चित तरह की संख्याओं और उनके सामने लगाए प्रतीकों को देखते हैं। तो उनके दिमाग में मानो बत्तियाँ–सी झपकने लगती हैं, कुछ हलचल होती है और वे रोबोट की तरह उत्तर पाने की प्रक्रिया को पूरा करते हैं। कम से कम उसके आधे रास्ते तक तो पहुँच ही जाते हैं, ताकि उन्हें कामचलाऊ नम्बर तो मिल ही जाएँ। ऐसा शिक्षकों को नहीं करना चाहिए। पर सभी शिक्षक करते हैं, मैं भी करता था। स्कूल ने मुझसे कुछ क्षमा याचना के से भाव के साथ, पर साफ –साफ कहा, क्योंकि वे इन मसलों पर मेरी भावनाओं से परिचित थे, कि अगर बच्चों के नम्बर अच्छे नहीं आए तो उनके माता– पिता और अभिभावक बखेड़ा करेंगे और फिर जब इन बच्चों को दूसरे स्कूलों में दाखिला दिलवाने का समय आएगा तो इन बच्चों को ही दिक्कत होगी। स्कूल तो जैसे हैं वैसे ही चलेंगे पर इन बच्चों को तमाम परेशानियाँ उठानी पड़ेंगी। यानी, उनके अथाह अज्ञान को जग–जाहिर करने से फायदा क्या होगा? सो मैं भी इसी पद्धति को अपनाता रहा। पर क्या अपने बच्चों को शिक्षित करने का यह रास्ता विवेकसम्मत है?

कुछ प्रश्न

- परीक्षाओं के बारे में लेखक के क्या विचार हैं?
- वर्तमान में स्कूलों में चलने वाली परीक्षा प्रणाली किस तरह की है क्या आपको लगता है कि यह बच्चों की सीखने में मदद करती है? कारण सहित बताइये।
- लेखक के अनुसार अच्छे नम्बर प्राप्त करने का क्या तरीका है।

सारांश (खण्ड अ :– बचपन के बारे में)

हमने अभी तक पढ़े हुए साहित्य के माध्यम से बच्चे व बचपन की प्रकृति को समझने की कोशिश की। गिजु भाई के उपन्यास दिवास्वप्न में एक प्राथमिक शाला के प्रधानपाठक और लक्ष्मीशंकर नामक शिक्षक, जो मारिया मोंटेसरी के विचारों व तरीकों को आजमा कर देखना चाहते थे, के बीच जो संवाद दिखाया है, उसमें बच्चों के बारे में दो विपरीत धारणाओं को देखा जा सकता है। एक धारणा बच्चों की प्रकृति व रूचियों को महत्वपूर्ण नहीं मानती और उसे संस्था के नियमों से संचालित करने पर उतारू है। दूसरी धारणा बच्चों की प्रकृति व रूचियों से अपनत्व का रिश्ता बना कर उसके अनुसार कक्षा को संचालित करने के लिए दृढ़ संकल्प है।

''माता पिता के प्रश्न'' के उदाहरणों में भी गिजु भाई बार–बार यह जोर देते हैं कि बच्चे अपने समझ से जो काम करना चाहते है उसमे सहयोग करने में ही बच्चों की तथा पालकों व शिक्षकों दोनों की भलाई है। हर उम्र में बालक अपनी कुछ क्षमताओं का विकास कर रहा होता है। इस प्राकृतिक विकास क्रम में बाधा नहीं डाली जानी चाहिए। छोटे बच्चे घर में कई तरह के काम कर के अपने हाथ–पैर, आंख कान, आदि इंद्रियों का विकास करते हैं। घर व स्कूल में बच्चों की इंद्रियों के विकास के लिए सामान, खेलों की विशेष व्यवस्थाएं की जानी चाहिए। इस तरह हम 20वीं सदी में मनोविज्ञान की विधा के जन्म और उसमें हुए नए शोध व ज्ञान का प्रभाव गिजु भाई के विचारों में स्पष्ट रूप से देख पाते हैं। बच्चे के प्राकृतिक विकास को नियंत्रित करने का असर दूर तक रहता है और वयस्क को शक्तिहीन बनाता है, यह मनुष्य के विकास की ऐसी क्षति है जो पढ़ने–लिखने व शिक्षित होने से पूरी नहीं की जा सकती।

मनोविज्ञान की यह धारणा हमें इंग्लैण्ड के शिक्षाविद ए.एस. नील के विचारों व कार्यो में भी साफ दिखाई देती है। नील मानते हैं कि शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य के व्यक्तित्व और चरित्र का विकास है, न कि विषयों की किताबी पढ़ाई! किताबी पढ़ाई संसार के व्यवहारिक समाज की एक जरूरत है जिसे बड़े होने पर वे बच्चे हासिल कर लेते हैं जो इस दिशा में जाने का फैसला लेते है। दूसरी तरफ, बचपन का समय अपने व्यक्तित्व और चरित्र के विकास में लगाने की स्वतंत्रता का समय होना चाहिए। नील मानते हैं कि चरित्र के विकास में भय की भूमिका नहीं हो सकती – जबकि यही धारणा समाज में प्रचलित है। गिजु भाई मानते थे कि निर्भयता के वातावरण में बालक स्वतः सत्यवादी और ईमानदार बनते हैं। बालक से कोई अपराध भी हो जाए तो उसे सजा देने की बजाय गलती का कारण जानना व उसे प्यार से समझना ठीक होता है। ए.एस. नील के समरहिल स्कूल की व्यवस्था में भी हम इसी सिद्धांत का पालन देख सकते हैं।

समरहिल में यह आस्था थी कि बच्चा दुष्ट नहीं अच्छा होता है। उसका पक्ष लिया जाना चाहिए। उसके प्रयासों का अनुमोदन होना चाहिए। उसे स्वतंत्रता व समानता का अधिकार होना चाहिए। स्कूल की व्यवस्था के नियम बनाने में भाग लेने का हक होना चाहिए नैतिकता के विकास पर एक नए दृष्टिकोण के साथ ही गिजु भाई स्मरण शक्ति के विकास पर भी एक अलग सोच सामने रखते है। वे विश्वास करते थे कि अगर बच्चे को वयस्कों के सुझावों के बिना अपने भरोसे छोड़ दिया जाए, तो जिस सीमा तक विकसित होना उसके लिए संभव है, वह होता है। यह सोचा मनोविज्ञान में हो रहे नए चिन्तन को प्रदर्शित करती है। मनोविज्ञान की एक शाखा यह प्रमाणित कर रही थी कि भय व प्रीति के इस्तेमाल से बच्चों की किसी बात को सीखने में रूचि पैदा की जा सकती है और सीखी गई बातों की स्मृति बनाई जा सकती है। दूसरी तरफ, मनोविज्ञान की एक और शाखा यह खोज रही थी कि व्यक्ति बाहरी भय व प्रीति से उत्प्रेरित हो कर नहीं, बल्कि अपने विकास के परिणाम स्वरूप स्वयं ज्ञान हासिल करता है। इसलिए शिक्षक व पालक के लिए यह पहचानना जरूरी है कि किसी वक्त बच्चा किस चीज का ज्ञान हासिल करने की कोशिश में संलग्न है। बच्चे की रूचियों और कोशिशों में सहयोग देने वाली गतिविधियों का आयोजन करने से उसके विकासक्रम में मदद की जा सकती है। बच्चे अपनी रूचि के काम करने के लिए निर्दोष रूप से आग्रह करते हैं – जिसे हम 'जिद' कह कर और कुचल कर गलती करते हैं। बच्चे के आग्रह को मानने में हमारा अपना हठ व दम आड़े आता है। रूचियों कि लिए यह आग्रह ही तो मनुष्य के 'प्राण' होते हैं। अपने 'प्राण' के लिए बड़ों से झगड़ना बच्चे के पास उपलब्ध इकलौता हथियार है, अगर किसी को भी ,रूचि के बगैर कोई काम करने पर बाध्य किया जाए, तो उकताहट होना स्वाभाविक है। गिजु भाई की तुलना में ए.एस. नील, मॉंटेसरी पद्धति की कमियों को लेकर ज्यादा सचेत हुए। वे मानते थे कि बच्चों को निर्देश दे कर खेल खिलाते हुए कुछ सिखाने का जो प्रयास उसमें किया जाता है , वह बच्चे की स्वतंत्रता व रचनात्मकता को कम करने लगता है और उसे एक कृत्रिम तरीके से कुछ न कुछ सिखाने की कोशिश में तबदील हो जाता है। 'कुछ सीखने' का लक्ष्य जीवन की शिक्षा का सही लक्ष्य नहीं है यह उनका विचार था। जीवन के लिए महत्वपूर्ण है वास्तविक रूप से कुछ करना, वास्तविक रूप से आत्म–अभिव्यक्ति ......

जिसके लिए जो सीखना होता है, सीख लिया जाता है। अतःकुछ करना, कुछ अभिव्यक्त करना....... इसमें मदद के लिए शिक्षा होनी चाहिए – कुछ पूर्व निर्धारित बातें सीखने के लिए नहीं। इस क्रम में नील का मानना था कि किताबें स्कूल का सबसे कम जरूरी उपकरण है। पढ़ाई–लिखाई खेल के बाद आनी चाहिए और उसे जबरदस्ती खेल के साथ नहीं परोसा जाना चाहिए। वे करके सीखे 'खेल खेल में सीखें ' इंद्रियों के विकास से सीखो जैसे तमाम माध्यमों से सीखने पर दिए जाने वाले विशिष्ट महत्व के आलोचक थे क्योंकि उनमें किसलिए सीखो जैसे मूल भूत प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता था।

नील समाज की इस धारणा को भी चुनौती देते हैं कि बच्चों को कुछ सिखाएगें नहीं तो वे जीवन में असफल हो जाएंगे। सफलता का उनका अपना मापदण्ड है – खुशी–खुशी काम करने और सकारात्मक जीवन जीने की

क्षमता यह क्षमता बच्चों पर विश्वास करने और धीरज रखने से विकसित होती है – उन पर दबाव बनाने से बच्चे पराधीन भयभीत और मायूस होना सीखते हैं। मनोरोगी बनते हैं। नील समरहिल से निकले कई बच्चों के आगामी जीवन के उदाहरणों से प्रमाणित करते हैं कि वे लोग जीवन में सफल हुए और सिद्ध कर पाए कि समरहिल में मिली आजादी सचमुच कारगर हुई।

अमेरिका शिक्षक जॉन होल्ट स्कूल से पैदा होने वाली 'सफलता' 'असफलता' का और बारीकी से निरीक्षण करते है। परीक्षा में बच्चों को जिन तरीकों से पास कराया जाता है, वह उनके वास्तविक सीखने के स्तर से पूरी तरह मेल नहीं खाता। अतः परीक्षाएँ बच्चों की सफलता का संकेतांक नहीं हो सकती। परीक्षा में असफल बच्चे व परीक्षा में सफल बच्चे दोनों ही इस दृष्टि से असफल होते हैं – और इससे भी बढ़ कर वे सीखने, समझने और रचने के अपने जन्मजात और असीम सामर्थ्य का अधिकांश मात्र स्कूल में विकसित नहीं कर पाते .... और जीवन में इस गहरे अर्थ में भी असफल होते हैं।

होल्ट के कक्षा अवलोकन इस तथ्य को उजागर करते हैं कि कैसे स्कूली पढ़ाई में बच्चे उबते हैं, डरते अटकलें लगाते हैं भ्रमित होते हैं, काम से छूटकारा पाने की तिकड़म लगाते हैं ...... क्योंकि..... 'हम उनके मन की विषय–वस्तु को नियंत्रित करना चाहते हैं '......। स्कूलों में सवालों के अर्थहीन अभ्यास, स्पष्टीकरण और परीक्षाएँ बच्चों की सामान्य बुद्धि का विनाश करती हैं। अगर बच्चों को अपनी तरह से जानने और पनपने दिया जाता तो दुनिया में जीते जीते वे चीजो के बारे में स्कूल की बनिस्बत ज्यादा सीख लेते – या जरूरत पड़ने पर सीखने के काबिल बने रहते। स्कूली शिक्षा व परीक्षाओं का दबाव उनके दिमाग में झूठे तथ्यों, निरर्थक और विकृत नियमों पीड़ा व भ्रम का कबाड़ा भर कर उन्हें असफल बना देती है। बच्चे मानने लगते हैं कि ईमानदारी से कुछ समझने की, खोजने की कोशिश ही अनावश्यक है। जबकि जन्म लेते ही, वे दुनिया को समझने और खोजने की कोशिश में लग जाते हैं।

खण्ड ब – बच्चों की प्रकृति

इस खण्ड में आप बच्चों की नज़र से बचपन कैसा दिखता है यह देखने की कोशिश करेंगे, कुछ उपन्यासों के अंश इसका माध्यम बनेंगे।

(iv) तेत्सुको कुरोयानागी –तोत्तोचान

ज्ञान और शिक्षाक्रम के पेपर की पहली यूनिट में तोतो चान उपन्यास के दिए गए अंशों को आपने पढ़ा होगा, आइए, उससे जुड़े कुछ प्रश्नों पर विचार करें –

- तोतो–चान द्वारा मेज खोलने–बंद करने की गतिविधि किसलिए महत्त्वपूर्ण है?
- माँ ने तोतो–चान को क्यों नहीं बताया कि उसे स्कूल से निकाल दिया गया है?
- तोतो–चान ने मास्टर जी से क्या–क्या बातें की?
- तोतो–चान को क्या–क्या रोचक और जरूरी लगता था... इसकी एक सूची बनाइए, अब सोचें कि आपके स्कूल के 6–7 साल के बच्चों को क्या–क्या करना रोचक और जरूरी लगता है... क्या आपकी कक्षा के बच्चों और तोतो–चान में आपको कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं? वे समानताएँ क्या हैं?

(v) अनारको के आठ दिन – सत्यु

अनारको का पहला दिन

अनारको एक लड़की है। घर में लोग उसे अन्नो कहते हैं। अन्नो नाम छोटा जो है, सो उस पर हुक्म चलाना

आसान होता है। अन्नो, पानी ले आ, अन्नो धूप में मत जाना, अन्नो बाहर अंधेरा है–कहीं मत जा, बारिश में भीगना मत, अन्नो! और कोई बाहर से घर में आए तो घरवाले कहेंगे–ये हमारी अनारको है, प्यार से हम इसे अन्नो कहते हैं। प्यार....हुँ–ह–ह!

आज अनारको का मूड खराब है। सुबह–सुबह माँ ने बिस्तर से उठा दिया और कहा कि ये लोटा ले और मंदिर में ठाकुर जी को जल चढ़ा आ। अनारको ने पूछा कि ठाकुर जी को जल क्यों चढ़ाएँ? तो माँ ने कहा, ''ठाकुर जी को जल चढ़ाने से वह खुश होते हैं।'' अनारको ने पूछा, ''ठाकुर जी को खुश क्यों करना?'' तो माँ ने जरा जोर से कहा, ''ये भी कोई पूछने की बात हुई? चल उठ और मंदिर जा।'' अनारको ने समझाते हुए पूछा, ''अच्छा, ठाकुर जी क्या सिर्फ मंदिर में ही रहते हैं?'' अम्मा को मौका मिला और झट कहने लगीं, ''बेटी, ठाकुर जी तो हर जगह रहते हैं–पत्थरों में, पेड़ों में, घर में, दीवार में, सड़क पर, खेत में और पता नहीं कहाँ–कहाँ।'' इस पर अनारको ने कहा, ''फिर मैं लोटे का यह पानी बाहर भिंडी के पौधों में डाल आऊँ?'' माँ ने इस पर कुछ नहीं कहा। खींचकर उसे बिस्तर से उतारा और जमा दी चपत। सो अनारको लोटे में पानी लेकर निकल पड़ी। वह जानती थी कि वह क्या करने वाली है। गली के छोर तक, जहाँ तक अम्मी उसे जाते देख सके, वह सीधी जाएगी, फिर अचानक मुड़ जाएगी और लोटे का पानी कहीं भी उलटकर घूमने निकल जाएगी। सो वह सीधी निकल गई और किया भी वही! रास्ते में और लोग भी लोटा लेकर मंदिर की तरफ जा रहे थे। एक पंडित जी भी जाते हुए दिखे। पंडित जी किसी को समझाते हुए जा रहे थे–''बेटा, भगवान पर भरोसा रखो। वही सब कुछ ठीक कर देगा। उसकी ताकत अपरम्पार है।'' अनारको ये तो नहीं समझ सकी कि 'अपरम्पार' क्या होता है, पर इतना जरूर समझ गई कि पंडित जी कह रहे थे–भगवान के पास बहुत ताकत है। बस, यही सोचते हुए चली जा रही थी कि इतने में किंकु दिख गया, बगीचे में। किंकु सेमल के पेड़ के नीचे लेटा हुआ था। अनारको समझ गई कि किंकु को उसके पिताजी ने सुबह–सुबह ट्यूशन पढ़ने भेजा होगा। पर इधर किंकु तो मजे से ऊपर सेमल के पेड़ को देख रहा था। जरा–सी हवा चलती और सेमल की ढोल से फलों की रुई निकलकर हवा में उड़ती जाती। बंबई के लड्डू–सी गोल–गोल, जैसे बादल हों। अनारको को देखा तो किंकु का चेहरा खिल उठा। अनारको ने उससे पूछा, ''क्यों किंकु, क्या यह सच है कि भगवान की बहुत ताकत होती है?'' इस पर किंकु सोचने लगा। सोचता रहा। फिर बोला, ''ये तो मालूम नहीं पर मेरी ताकत तेरे से ज्यादा है।'' अनारको ने समझ लिया कि किंकु बात बदल रहा है, पर उसने जाने दिया और हँस पड़ी। उसने मन–ही–मन सोचा, पतला–सा किंकु अपनी ताकत की डींग मार रहा है और वह भी सुबह–सुबह! सो अनारको ने कहा, ''चल जा–जा।'' पर किंकु तो अड़ गया। उस तरफ एक झूला बिलकुल सीधा खड़ा था। किंकु ने कहा, ''अच्छा चलो वहाँ चलकर सी–सॉ पर बैठें...एक तरफ से उसे तुम दबाओ और दूसरी तरफ से मैं। अपनी–अपनी ताकत लगाकर देखते हैं कि कौन किसको उठा पाता है।'' अनारको झट तैयार हो गई। फिर लगे दोनों दो तरफ से जोर लगाने। अनारको ने खूब जोर मारा, खूब जोर मारा, लंबी साँस खींची, फिर जोर मारा पर किंकुवाला हिस्सा टस से मस ही न हो। जब वह थक गई तो किंकु खिलखिलाने लगा और खूब उछलने लगा। अनारको को कुछ शक–सा हुआ। अंदर ही अंदर कुछ गड़बड़–सा लगने लगा। कुछ सोचकर उसने कहा, ''अच्छा चल किंकु, अब जगह बदलकर करते हैं। तू मेरी तरफ आ जा और मैं तेरी तरफ, और फिर दबाते हैं।''

यह सुनकर तो किंकु की हंसी ही गायब हो गई। उसका उछलना भी कम हो गया। पर मन मारकर जैसे–तैसे वह मान गया। इधर अनारको किंकु की तरफ आई तो क्या देखती है कि जमीन से एक हुकनुमा लोहे की छड़ निकली हुई है जो सी–सॉ के एक छोर में फंसकर उसे ऊंचा नहीं उठने देती। अनारको किंकु की झूठी ताकत का रहस्य ताड़ गई। उसने मन ही मन सोचा, 'अच्छा बेटा, तो ये बात है! आखिर, तुम्हारा छोर उठे भी तो कैसे!!' असल में जब किंकु दबाता था तो वह हुक उसके पीछे होता था और अनारको को वह नहीं दिखता था। एक, दो, तीन कहकर फिर से दोनों दबाने लगे। फिर क्या था, अनारको ने एक झटका लगाया और किंकु

महाराज ऊपर! ऐसे ऊपर उठकर गिरे कि धूल में घुलटनियाँ खा गए। उठे, तो नाराजी से कहने लगे, ''जाओ, हम तुम्हारे साथ नहीं खेलते। हमारी गुलेल लौटा देना शाम को, हाँ!'' बस इतना कहा और चल दिए। पर अनारको बैठी रही। उसे जाने की जल्दी नहीं थी, क्योंकि इतना समय तो मंदिर जाने में ही लग जाता। वह जाकर सेमल के पेड़ के नीचे बैठ गई, जहाँ उसने अपना लोटा छुपाया था। ''जब जगह की अदला–बदली की, तभी समझ में आया कि किसकी कितनी ताकत है।'' अनारको बुदबुदा रही थी। फिर सामने रंग–बिरंगी तितलियों और सेमल की रुई का उड़ना देखने लगी। फिर अचानक कुछ सोचने लगी और सोचते–सोचते वह एक जगह पहुँच गई।

उस एक जगह के अंदर एक जगह में वह क्या देखती है कि सामने से अम्मी चली आ रही हैं और पीछे–पीछे पिताजी। फिर अम्मी रुक गई तो पिताजी भी रुक गए। अम्मी घूमकर पापा को देखने लगीं। अरे ये क्या–अम्मी तो अम्मी थीं पर देख ऐसे रही थीं पिताजी की तरफ जैसे पिताजी देख रहे हों। और पिताजी तो पिताजी थे, पर देख ऐसे रहे थे अम्मी की तरफ जैसे कि अम्मी हों। अब अनारको को नहीं मालूम, वह किसी को कैसे समझाए। पर उसे देखने में ही ऐसा कुछ था कि अम्मी–अम्मी होते हुए भी पापा लग रही थीं और पिताजी पिताजी होते हुए भी अम्मी लग रहे थे। अनारको को अटपटा–सा लगा और काफी मजेदार भी। फिर पिताजी मिनमिनाते हुए बोलने लगे, ''थक गई होगी बर्तन माँजते–माँजते, बैठ जाओ। मैं चाय बनाकर लाता हूँ।'' इस पर अम्मी ने कहा, ''छोड़ो जी, मुझे जाना है काम से।'' पिताजी ने फिर वैसे ही मिनमिनाते हुए पूछा, ''क्या काम है, कहाँ जाना है?'' इस बार अम्मा ने डपटकर कहा, ''तुम क्या समझोगे हमारे काम की बात! दिन–भर तो बस, कागज़–पत्तर में लगे रहते हो। मुझे किंकु की अम्मा के पास जाना है स्वेटर की नई डिज़ाइन सीखने के लिए।'' पिताजी हाथ उठाकर अम्मी को ठहरने के लिए कहने ही वाले थे कि इतने में बगल से किंकु की अम्मा दिख गई। हाथ उठाने में पिताजी की कमीज़ का बटन खुल गया था। अम्मी ने एक बार खुले बटन को और एक बार किंकु की अम्मी को कुछ इस तरह से देखा कि पिताजी ने हड़बड़ाकर बटन बंद कर लिया। इतने में अनारको उसे एक जगह से दूसरी जगह पहुँच गई। पर उस दूसरी जगह पहुँचते–पहुँचते न जाने कैसे अनारको को भान हो गया कि घर में पिताजी और अम्मा में से किसकी ताकत ज्यादा है। दूसरी जगह में क्या देखती है कि अरे, ये तो स्कूल आ गया! उसकी क्लास साफ दिख रही थी। उसके सारे साथी बैठे हुए थे–बिट्टो, गोलू, करनल, फुलपत्ती, सूरज और किंकु भी। और मास्टरजी? मास्टरजी अपनी कुर्सी पर एक पैर पर खड़े थे, दोनों कान पकड़े हुए! रोना–सा मुंह हो रहा था उनका। ऊपर से किंकु उन्हें डाँट रहा था, ''कहिए, आज फिर पांच मिनट लेट आए! बाहर खड़े–खड़े भूगोल के गुरुजी से बतिया रहे थे? स्कूल इसलिए भेजते हैं क्या आपको? चलिए, खड़े रहिए।'' किंकु छड़ी भी हिला रहा था। अनारको को फिर से लगने लगा वही अटपटापन और साथ–साथ मजा भी आने लगा। इतना मजा जैसे उसी मजे में नहा रही हो। वह खिलखिला कर हँसने लगी। किंकु तो पहले से ही खिसियाया हुआ था। उसने अनारको की तरफ छड़ी फेंकी। छड़ी अनारको को लगी नहीं, पर उसने उसे उठा लिया और उसे लगा कि वह समझ गई कि स्कूल में मास्टरजी और उसके बीच ताकत का रिश्ता क्या है। मास्टरजी रोने–रोने को हो रहे थे, क्योंकि उनकी धोती ढीली हो रही थी और किंकु था कि कान से हाथ छोड़ने ही न दे! अजीब नजारा था। अनारको को पता नहीं क्यों, मास्टरजी पर थोड़ी दया आने लगी। सो दया करते–करते वह उस एक जगह में एक तीसरी जगह पहुँच गई। वहाँ कुछ नहीं था। चारों तरफ बस कैसा दूर–दूर सा। अनारको ने छड़ी को पैर पर बीचोबीच रखा और जोर लगाकर तोड़कर फेंक दिया, उस कहीं कुछ नहीं वाली जगह में। फिर वह आगे बढ़ गई और जब पहुँच गई। एक चौथी जगह में। यह चौथी जगह भी उसी एक जगह में थी। अरे, वहाँ तो बहुत हल्ला था। एक डॉक्टर था जिसके हाथ में सुई थी और सामने फुलपत्ती बैठी थी। डॉक्टर एक हाथ से सुई पकड़े, दूसरे हाथ से सर पीट रहा था और फुलपत्ती थी कि लगी उस डॉक्टर

पर चिल्लाने–''अरे, मरीज मैं हूँ या तुम? बीमार मैं हूँ या तुम? पेट में दर्द मुझे हो रहा है या तुम्हें? नहीं लगवानी मुझे तुम्हारी सुई!'' डॉक्टर रोते–रोते गिड़गिड़ा रहा था, ''प्लीज़, एक बार लगा लेने दो। प्लीज़ अगर तुम्हें सुई नहीं लगी तो मुझे पैसे कहाँ से मिलेंगे?'' पर फुलपत्ती तो बिल्कुल अड़ी हुई थी, टस से मस नहीं हुई। डॉक्टर पसीना–पसीना हो रहा था, उधर अनारको ये नजारा देखकर अपनी खिलखिलाहट नहीं रोक पा रही थी।

हँसते–हँसते वह एक पाँचवीं जगह में पहुँच गई। वहाँ एक बगीचा था। बगीचे में सेमल का पेड़ था। पेड़ के नीचे लोटा था, और सेमल की रुई वैसे ही उड़ी जा रही थी। अनारको समझ गई कि यह पाँचवीं जगह उस एक जगह में नहीं है। वह यह भी समझ गई कि अब घर चलने का वक्त हो गया है। सो लोटा उठाया और चल दी घर की ओर। घर आई तो माँ ने पूछा, ''क्यों अन्नो, चढ़ा आई ठाकुरजी को जल?'' अनारको ने कहा, ''हाँ अम्मी, जल चढ़ाया, फिर ठाकुर जी बहुत खुश हुए। उन्होंने हमारे गाल पर चुम्मी ली, और खाने का लड्डू भी दिया और कहा है कि कल भी जरूर आना।'' इतना कहकर अनारको अंदर कमरे की ओर चल दी। बाहर अम्मा हँस रही थीं–''जाने किस दुनिया में खो जाती है पगली।'' और अंदर? कमरे में अनारको मुस्करा रही थी।

अभ्यास

- किसने किससे कहा–

    (i) ''फिर मैं लोटे का यह पानी बाहर भिंडी के पौधों में डाल आऊँ?''

    (ii) ''थक गई होगी बर्तन माँजते–माँजते बैठ जा।''

    (iii) ''अरे, मरीज मैं हूँ या तुम? बीमार मैं हूँ या तुम?''

- अनारको द्वारा देखा गया अपनी कक्षा का दृश्य क्या था? अनारको को यह अटपटा भी लगा और मजा भी आया क्यों?

- अनारको के आठ दिन कहानी में बचपन के बारे में किन बातों की ओर ध्यानाकर्षित किया गया है?

- कहानी में अनारको द्वारा छड़ी को तोड़कर फेंक दिया गया। लेखक का इससे क्या आशय हो सकता हैं?

- इस कहानी में माता की चपत, किंकू द्वारा लगाया गया हुक एवं मास्टर जी की छड़, पिताजी जैसा देखना किस बात का संकेत देता है?

(vi) पिप्पी लबेंमोज़े – ऐस्ट्रिड लिंडग्रन

ऐस्ट्रिड लिंडग्रन स्वीडन की एक महान लेखिका थीं उनकी कम ही किताबें हैं जिन पर फ़िल्में नहीं बनीं। छोटे–बड़े सभी उन्हें और उनकी कहानियों को बेहद पंसद करते हैं, सरल भाषा, ऊँचे विचार, दुनिया और दुनियादारी की विविधता, हंसी–मज़ाक और गंभीरता –ऐस्ट्रिड लिंडग्रन के लेखन में इन सब गुणों का स्वाद मिलता है।

ऐस्ट्रिड लिंडग्रन कहती थीं कि वे बड़ों के लिए लिखना नहीं चाहतीं; लिखना चाहती थीं केवल उनके लिए जो किताब पढ़ते समय चमत्कार कर दिखा सकते हैं। उनका मानना था कि बच्चे ही पढ़ते समय चमत्कार करते हैं।

पिप्पी का जन्म कैसे हुआ– यह भी एक चमत्कार है। जब ऐस्ट्रिड लिंडग्रन की बेटी कोरिन बहुत छोटी थी, उसको एक बार बुखार हो गया था। बिस्तर पर लेटे वह अचानक अपनी मम्मी से बोली, पिप्पी लौंगस्ट्रूम्प की कहानी सुनाओ। तभी–तभी ऐस्ट्रिड लिंडग्रन, पिप्पी की कहानी को बनाते–बढ़ाते अपनी बीमार बच्ची को सुनाने लगी।

लौंगस्ट्रूम्प का मतलब यही है—लंबे मोज़े ! इस किताब में पुराने ज़माने के स्वीडन के चाल—चलन और रीति—रिवाज़ों की झलक मिलती है और यह भी देखने को मिलती है कि पिप्पी बच्ची होने पर भी बड़ों जैसे कितनी स्वतंत्र है। यह कहानी चाहे साठ साल पहले क्यों न लिखी गई हो, मगर आज भी पूरी तरह सार्थक है। तो चलिए, पढ़ें और पिप्पी की दुनिया के रंग में रंग जाएं।

पिप्पी का विल्लकुल्ल कुटीर में प्रवेश करना

एक बहुत ही छोटे शहर के बाहर था एक पुराना, सड़ा—गला बगीचा। बगीचे में थी एक पुरानी कुटिया और कुटिया में रहती थी पिप्पी लंबेमोज़े। वह नौ साल की थी और अकेली रहती थी। उसकी न माँ थी न बाबा थे। खैर, एक तरह से यह अच्छा ही था क्योंकि जब खेलने में खूब मज़ा आ रहा होता तो 'अब सो जाओ' कहने वाला कोई नहीं होता और न ही जब मिठाई खाने की इच्छा होती तो कोई कड़वी दवा पिलाने वाला होता।

एक समय था जब पिप्पी के बाबा थे और वह उनसे बहुत प्यार करती थी। माँ भी थी, मगर सालों पहले। इसलिए उसे उनकी याद नहीं थी। पिप्पी की माँ का निधन तभी हो गया था जब पिप्पी नन्हीं—सी थी और पालने में पड़ी ऐसी चीखें मारती थी कि पास खड़े रहना असंभव होता था। पिप्पी मानती थी कि अब माँ कहीं ऊपर स्वर्ग में बैठी छोटे—से छेद में से अपनी मुन्नी को देख रही होगी। पिप्पी अक्सर उनकी तरफ हाथ हिलाकर कहती, ''आप फ़िक्र मत करो। मैं अपनी देखभाल खुद कर सकती हूँ।''

पिप्पी अपने बाबा को भूली नहीं थी। वे जहाज़ के कप्तान थे और महासागरों की सैर किया करते थे। पिप्पी भी उनके साथ जहाज़ में तब तक घूमती रही जब तक एक तूफ़ानी हादसे में उसके बाबा समुंदर में बह नहीं गए। लेकिन पिप्पी को भरोसा था कि एक न एक दिन वे जरूर लौटेंगे। उसने तो माना ही नहीं था कि वे डूब गए हैं। उसे पूरा विश्वास था कि वे दक्षिणी समुद्र के किसी द्वीप पर पहुँच गए होंगे। वहाँ ढेर सारे लोगों के राजा बनकर, सिर पर सोने का मुकुट पहने, दिन भर घूमते रहते होंगे।

''मेरी माँ फ़रिश्ता है और बाबा राजा। कम ही बच्चे होंगे जिनके इतने छैल—छबीले माँ और बाबा हैं,'' पिप्पी गर्व से कहती। ''बाबा अपने लिए एक नाव बनाकर मुझे लेने आएँगे और फिर मैं राजकुमारी बन जाऊँगी। वाह! क्या जिंदगी होगी।''

इस पुराने बगीचे वाले घर को उसके बाबा ने बहुत साल पहले खरीदा था। सोचा था कि जब बुढ़ापे में सात समुंदर की सैर नहीं कर पाएँगे तब पिप्पी के साथ वहीं घर में रहेंगे लेकिन दुर्भाग्य से वे पानी में बह गए। उनके लौटने की आस लिए पिप्पी सीधे जा पहुँची उस घर में, जिसका नाम था विल्लकुल्ल कुटीर। सुंदर फर्नीचर से सजा कुटीर पिप्पी की इंतज़ार में तैयार खड़ा था।

गर्मियों की एक सुनहरी शाम थी जब पिप्पी ने बाबा के जहाजियों से विदा ली। सभी पिप्पी को बेहद प्यार करते थे और पिप्पी उन्हें। ''अलविदा, दोस्तों,'' बारी—बारी से एक—एक के माथे को चूमते हुए पिप्पी ने कहा। ''फिक्र मत करो। मैं अपनी देखभाल कर सकती हूँ।''

उसने जहाज़ से दो चीज़ें लीं। श्रीमान नीलस्सौन नाम का एक छोटा—सा बंदर (जो उसे उसके बाबा की तरफ से भेंट थी) और एक थैला भर सोने के मोहरें। सभी नाविक जहाज़ पर खड़े पिप्पी को देखते रहे। वह बिना मुड़े सीधी चलती रही, श्री नीलस्सौन को अपने कंधे पर बिठाए और थैला हाथ में मज़बूती से पकड़े।

जब पिप्पी आँखों से बिल्कुल ओझल हो गई तब एक नाविक ने अपनी आँसू पोंछकर कहा, ''अद्भुत बच्ची!'' उसने ठीक ही कहा। पिप्पी एक अद्भुत बच्ची थी। उसमें सबसे अद्भुत बात थी उसकी ताकत। दुनिया में उससे ज़्यादा ताकतवर कोई पुलिस वाला भी नहीं था। वह जब चाहे एक जीते—जागते घोड़े को उठा सकती थी और कभी—कभी ऐसा करना भी चाहती थी।

जिस दिन पिप्पी विल्लकुल्ल कुटीर में आई, उसी दिन उसने अपनी ढेर सारे सोने की मोहरों में से एक निकालकर अपने लिए एक घोड़ा खरीद लिया। हमेशा से उसकी इच्छा यह थी कि उसका अपना एक घोड़ा हो और लो देखो, अब उसके बरामदे में एक घोड़ा खड़ा था। जब कभी पिप्पी को वहाँ बैठकर कॉफ़ी पीने का दिल करता तो वह घोड़े को वहाँ से उठाकर बगीचे में उतार देती, बस!

विल्लकुल्ल कुटीर के बगल में था एक और बगीचा व घर। उस घर में रहते थे मम्मी, पापा और दो प्यारे बच्चे–एक लड़का और एक लड़की। लड़के का नाम था टॉमी और लड़की का अन्निका। वे अच्छे बच्चे थे, सुशील और आज्ञाकारी। टॉमी अपने नाखून कभी नहीं चबाता और मम्मी का कहना हमेशा मानता। अन्निका कभी नखरे या ज़िद नहीं करती और इस्तरी किए हुए साफ़–सुथरे सूती कपड़े ही पहनती, जिन्हें वह कभी मैला नहीं होने देती।

टॉमी और अन्निका एक–दूसरे के साथ तमीज़ से अपने बगीचे में खेला करते थे, पर वे अक्सर एक दोस्त की कमी महसूस करते। जब पिप्पी बाबा के साथ समुद्री यात्रा पर चली जाती थी तो वे बाड़ पर खड़े एक–दूसरे से कहते, ''कितनी बेवकूफ़ी की बात है कि इस घर में रहने के लिए कोई आता ही नहीं। किसी को तो यहाँ रहना चाहिए जिनके बच्चे हों!''

ग्रीष्म की जिस सुनहरी शाम को पिप्पी विल्लकुल्ल कुटीर में आई, टॉमी और अन्निका एक हफ्ते के लिए अपनी नानी के घर गए हुए थे। इसलिए उनको पता नहीं था कि बगलवाले घर में कोई आया है। वापस लौटने के बाद, अगले दिन जब दोनों फाटक के पास खड़े यूँ ही बाहर देख रहे थे, तब भी उन्हें मालूम नहीं था कि उनके इतने करीब एक दोस्त है।

जैसे ही वे सोच रहे थे कि अब क्या करें, विल्लकुल्ल कुटीर का फाटक खुला और एक छोटी लड़की दिखाई दी। ऐसी एक अद्‌भुत लड़की को टॉमी और अन्निका ने कभी नहीं देखा था। वह थी पिप्पी लंबेमोज़े जो निकल रही थी अपनी सुबह की सैर पर।

देखने में वह कुछ ऐसी थी–उसके गाजरी रंग के बाल दो सख्त चोटियों में गुँथे हुए सिर के दोनों तरफ कड़क खड़े थे। उसकी आलू जैसी नाक चित्तियों से छितरी थी। नाक के नीचे एक बड़ा–सा मुँह, साफ़–सफ़ेद दाँतों से भरा। उसकी पोशाक काफ़ी विचित्र थी। पिप्पी ने खुद बनाया था। नीले रंग की थी, पर नीला कपड़ा कम पड़ने से पिप्पी ने इधर–उधर लाल रंग का कपड़ा जोड़ दिया था। उसके लंबे–दुबले पैरों पर थे लंबे मोज़े, एक भूरे रंग का और दूसरा काला। उसके काले जूते पाँव से ठीक दुगने बड़े थे। पिप्पी के बाबा ने उनको दक्षिणी अमरीका में खरीदा था ताकि उसके पास कुछ तो हो जो वह बड़े होते–होते भर सके, और पिप्पी ने कभी कोई दूसरे जूते चाहे भी नहीं। लेकिन जिस चीज़ ने टॉमी और अन्निका को सबसे ज़्यादा चकराया, वह था उस अजनबी लड़की के कंधे पर बैठा हुआ एक छोटा–सा बंदर जिसकी पूँछ थी लंबी, पतलून नीली, जैकेट पीली और तिनकेवाली टोपी सफ़ेद।

पिप्पी सड़क पर तो चल रही थी, पर एक पैर पटरी पर था और दूसरा नाली में। दोनों बच्चे उसको तब तक देखते रहे जब तक वह नज़रों से गायब नहीं हो गई। वह उलटे पाँव लौटी, इस बार पीछे–पीछे चलती हुई ताकि घर लौटते वक्त उसे मुड़ने की तकलीफ न हो! टॉमी और अन्निका के फाटक के बराबर आने पर वह रुक गई। बच्चे चुपचाप एक दूसरे को देखते रहे। आखिर टॉमी ने पूछा, ''तुम पीछे–पीछे क्यों चल रही हो?''

''मैं पीछे–पीछे क्यों चल रही हो?'' पिप्पी ने दोहराया। ''यह एक आज़ाद देश है ना? अपनी मर्ज़ी से नहीं चल सकती क्या? क्यों, मिश्र में हर कोई ऐसे ही चलता है और किसी को यह बात अजीब नहीं लगती।''

''तुम्हें कैसे पता?'' टॉमी ने पूछा। ''तुम मिश्र थोड़ी न गई हो?''

''तुम मिश्र थोड़ी न गई हो? शर्त लगाओ! पूरी दुनिया घूम आई हूँ मैं और पीछे–पीछे चलने वाले लोगों से कई गुना ज्यादा अजीबोगरीब चीज़ें देखी हूँ मैं। मैं अगर अपने हाथों पर चलकर आती, जैसे इंडोचीन में लोग करते हैं, तो तुम क्या कहते?''

''अब तुम झूठ बोल रही हो,'' टॉमी ने कहा।

इस बात पर विचार करके पिप्पी दुखी स्वर में बोली, ''हाँ, ठीक कहते हो। मैं झूठ बोल रही थी।''

''झूठ बोलना बुरी बात है, ''मौन तोड़कर अन्निका ने कहा।

''हाँ बिल्कुल बुरी बात है,'' पिप्पी और भी दुखी स्वर में बोली। ''मैं कभी–कभी भूल जाती हूँ। पर तुम ही बताओ, एक बच्ची जिसकी माँ फ़रिश्ता है और बाबा दक्षिणी समुद्र में राजा और जिसने अपनी ज़िंदगी समुंदर में बिताई हो, वह हर वक्त सच कैसे बोल सकती है? वैसे देखा जाए तो–''अब उसके चित्तियों से भरे चेहरे पर मुस्कान छा गई–''कोंगो देश में एक भी व्यक्ति नहीं जो सच बोलता है। वहाँ लोग दिन भर झूठ बोलते रहते हैं, हर दिन। सुबह सात बजे से लेकर दिन ढलने तक। इसलिए अगर मैं कभी–कभी झूठ बोल दूँ तो माफ़ करना, हाँ और याद रखो कि मैंने कोंगो में ज़्यादा वक्त गुजारा है न, इसलिए ऐसा होता है। मगर हम दोस्त तो बन सकते हैं, न?''

''ज़रूर,'' टॉमी ने कहा। उसे अचानक लगा कि आज का दिन नीरस़ नहीं रहेगा।

''चलो, क्यों नहीं मेरे घर नाश्ता करते?'' पिप्पी बोली।

''चलो, चलते हैं,'' टॉमी ने कहा।

''हाँ चलो,'' अन्निका ने भी कहा।

''पहले तुमको श्री नीलस्सौन से मिलवाती हूँ'' पिप्पी बोली। बंदर ने बड़ी तमीज़ से अपनी टोपी उठाकर सलाम किया। और इसी तरह वे विल्लकुल्ल कुटीर के रट–पट फाटक से गुज़रते हुए पेड़ों के बीचवाली रास्ते से होकर घर के बरामदे में पहुँचे। वहाँ खड़ा था एक घोड़ा, शोरबे की परात से जई के दानों को चाट–चाटकर चबाता हुआ।

''घोड़ा बरामदे में क्यों है?'' टॉमी ने पूछा। उसकी पहचान के सभी घोड़े घुड़साल में रहते थे।

सोच–विचारकर पिप्पी बोली, ''रसोई में अटता नहीं है और बैठक में उसका जी नहीं लगता।'' टॉमी और अन्निका घोड़े को थपकी देकर घर के अंदर गए। एक रसोई घर था, एक बैठक खाना और एक सोने का कमरा। पर ऐसा लगा जैसे कि उस हफ्ते पिप्पी कमरों को साफ़ करना ही भूल गई थी। टॉमी और अन्निका ने बड़ी सावधानी से इधर–उधर ताका, कहीं कोने में दक्षिणी समुद्र का राजा तो नहीं छिपा था। उन्होंने राजा कभी नहीं देखा था। पर यहाँ न कोई बाबा नज़र आया न कोई माँ। अन्निका ने व्याकुलता से पूछा, ''यहाँ अकेली रहती हो?''

''बिलकुल नहीं,'' पिप्पी बोली। श्री नीलस्सौन और घोड़ा भी यहाँ रहते हैं।''

''हाँ, पर तुम्हारे मम्मी और पापा यहाँ नहीं हैं क्या?''

''नहीं तो,'' पिप्पी खुशी से बोली।

''तो फिर कौन तुमसे कहता है कि अब सो जाओ, रात हो गई है, ऐसी सारी बातें...?'' अन्निका ने पूछा।

''मैं कहती हूँ,'' पिप्पी बोली। ''पहली बार प्यार से कहती हूँ। बात नहीं सुनी तो ज़ोर से दोहराती हूँ और फिर भी मैंने नहीं सुना तो बुरी तरह पिटाई होती है।''

टॉमी और अन्निका को यह सब बातें समझ में तो नहीं आईं पर लगा कि शायद तरकीब अच्छी ही है। इतने में वे रसोई घर में आ गए थे और पिप्पी ज़ोर–ज़ोर से हुँकारने लगीः ''अब सेकेंगे हम मालपुआ! अब परोसेंगे हम मालपुआ! अब तलेंगे हम मालपुआ!''

पिप्पी ने एक साथ तीन अंडे निकालकर ऊपर फेंके। एक उसके सिर पर आ फूटा। सारी ज़र्दी उसकी आँखों में आ गई। पर बाकी दोनों को उसने ढंग से एक कटोरी में पकड़ लिया, जिसमें गिर के वे टूट गए। आँखें पोंछकर पिप्पी बोली, ''सुना है अंडे की ज़र्दी बालों के लिए अच्छी होती है। देखना अब मेरे बाल इतनी जल्दी बढ़ जाएँगे कि उनके चरचराने की आवाज़ सुनाई देगी। ब्राजील देश में लोग बालों में अंडा लेपकर घूमते–फिरते हैं। एक भी गंजा सिर नहीं दिखता। बस, एक बूढ़ा था, इतना अजीब कि अंडों को बालों पर मलने के बजाय उनको खाता था! गंजा तो वह हो ही गया और जब भी सड़कों पर निकलता तो ऐसा हंगामा मचता कि पुलिस को बुलाना पड़ता था।''

बातें करते–करते, पिप्पी कटोरी में पड़े हुए छिलकों को चुन–चुनकर निकाल रही थी। फिर नहाने वाले बुरुश को दीवार से उतारकर, उससे मालपुए के घोल को ऐसे फेटने लगी कि वह दीवारों पर छिटकने लगा। बचाखुचा घोल चूल्हे पर रखे हुए तवे पर फेंक दिया। जब मालपुआ एक तरफ़ से पक गया तो उसे ऊपर फेंका और वह पलट कर वापस तवे पर आ गिरा। जब तैयार हो गया, तो पिप्पी ने मालपुए को रसोई घर के उस पार फेंका और वह ठीक मेज़ पर रखी हुई थाली में जा टपका।

''खाओ ' वह बोली। ''ठंडा हो जाने से पहले खा लो!'' टॉमी और अन्निका ने खाया। उनको मालपुआ बहुत ही स्वादिष्ट लगा। बाद में पिप्पी उन्हें बैठक में ले गई। वहाँ पड़ी थी एक मेज़ जिसमें खूब सारी छोटी–छोटी दराज़ें थीं। पिप्पी ने उनको एक–एक करके खोला और टॉमी व अन्निका को उनमें रखे खज़ाने दिखाए। अजीबोगरीब चिड़ियों के अंडे थे, खास किस्म की सीपियाँ और पत्थर, सुंदर–सी संदूकचियाँ, चाँदी के आईने, मोतियों के हार और बहुत कुछ जो पिप्पी और उसके बाबा ने दुनिया की सैर के दौरान खरीदा था।

पिप्पी ने अपने नए साथियों को तोहफ़े दिए। टॉमी को छुरी मिली जिसका चमकीला दस्ता मुक्ता का बना था। अन्निका को मिला एक डिब्बा जिसका ढक्कन गुलाबी रंग की सीपियों के टुकड़ों से सजा हुआ था। डिब्बे में हरे पत्थरों का एक अंगूठी थी।

''अच्छा तो अब तुम लोग घर जाओ,'' पिप्पी बोली, ''ताकि कल फिर लौट सको। घर नहीं जाओगे तो वापस नहीं आ पाओगे और वह बड़ी अफ़सोस की बात होगी।'' टॉमी और अन्निका चल पड़े। उन्होंने घोड़े के पास से गुज़रते हुए देखा कि वह जई खा चुका था। फिर विल्लकुल्ल कुटीर के फाटक से बाहर निकले। श्री नीलस्सौन ने अपनी टोपी हिलाई।

कुछ प्रश्न

- पिप्पी ऐसा क्यों कहती है कि ''मेरी मां फरिश्ता है और बाबा राजा''?
- ''पिप्पी किस प्रकार की बच्ची है, उसकी गतिविधियां कैसी थी?
- आपके अनुसार बच्चों में किस–किस प्रकार की नैर्सगिक प्रवृत्तियां होती हैं उदाहरण देकर स्पष्ट करें?
- लेखिका ने पिप्पी के माध्यम से बाल चरित्र की किन–किन विशेषताओं का महियागान उजागर किया है?
- पिप्पी, टामी और अन्निका के बीच क्या संवाद हुआ? आप इस संवाद के माध्यम से पिप्पी की कुछ विशेषताओं को लिखिए?

सारांश (खण्ड ब :– बच्चों की प्रकृति)

इस खण्ड में कुछ बाल–चरित्रों के जरिए बच्चों की नज़र में बचपन क्या होता है, यह प्रस्तुत किया गया है। बच्चे जो ये दुनिया को समझने और खोजने की कोशिश में लगे है – जैसे जापान की तोत्तो चान, (जिसकी कहानी आपने ज्ञान व शिक्षाक्रम पढ़ी होगी) स्वीडन की पिप्पी लम्बे मोजे और भारत की अनारको। ऐसी ही और कहानियां भी हैं – जैसे एलिस इन वन्डरलैण्ड और द लिटिल प्रिंस, जो आपके पुस्तकालय में होंगी। इन कहानियों में हमें बड़ों पर आश्रित और उनसे सीखते अबोध–अज्ञानी बच्चे नहीं दिखते, हमें दिखते हैं अपनी खोज में अपनी कल्पना से नए–नए विचारों और संभावनाओं की रचना करते बच्चे। अपने तर्को से दुनिया की हर परिस्थिति को जाँचने वाले बच्चे। उसकी विसंगतियों को मापने वाले बच्चे –उन्हें बदलने का साहस भरने वाले बच्चे ! स्वतंत्र,सबल,सुगढ़,सक्षम होने की फिराक में तन्मय बच्चे .... सुरक्षा को तलाशते और अपनी असुरक्षा पर काबू पाने में संघर्षरत बच्चे – कल नहीं– आज के एक–एक पल में चमत्कार ढूंढते बच्चे। एक पल भी खाली न बैठने वाले, ऊब और अनमनापन न सहने वाले..................

भविष्य की बाध्यताओं से अछूते .... लगातार सोचने, खोजने, जानने,करने, बनने और बनाने में मग्न बच्चे। ये बच्चे मात्र साहित्य के पात्र नहीं है– सभी बच्चे ऐसे होते हैं – अपनी–अपनी तरह से ! उन्हें भविष्य के लिए नियंत्रित करने के बजाय यदि हम उनके वर्तमान को स्वीकार करें उसकी महिमा का उत्सव मनाएँ।तो हमें भी अपने ही बीच दिखने लगेगी कितनी ही तोत्तो चान, पिप्पी और अनारको।

खण्ड स – बच्चों के अधिकार

(vii) बच्चों के अधिकार : सामाजिक व राजनैतिक सरोकार

प्रस्तावना :– बच्चों का अपने पालकों के साथ सम्बंध एक निजी मामला समझा जाता रहा है। दूसरी तरफ वयस्कों को प्राप्त अधिकारों की रक्षा के लिए समाज में प्रयास होते रहे हैं – पर उनमें बच्चों के हितों पर प्रमुखता से ध्यान नहीं दिया जाता। कानून में कुछ मानवीय आधारों पर बच्चों के कुछ हितों की रक्षा करना एक बात है, और बच्चों की प्रकृति का सम्मान करते हुए, उनके समग्र अधिकारों की बात करना एक अलग बात है। विश्व में और भारत में भी बच्चों के अधिकारों के बारे में क्या सोचा गया है और उनके किन आयामों को शासन ने मान्यता दी है, यह इस खण्ड में प्रस्तुत किया जा रहा है।

बच्चों के अधिकारों के विचार से कुछ विषमताएँ भी पैदा होने लगी हैं। बच्चों से जुड़े वयस्कों के जीवन की स्थितियों को बिना बदले, क्या उन पर आश्रित बच्चों के अधिकारों की रक्षा करना उचित व संभव है? समाज के अलग–अलग वर्गों की भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में पनपने वाले बचपन की प्रकृति एक समान कैसे मानी जा सकती है? क्या एक आदर्श बचपन की बात सोचना और उसके ''अधिकारों'' को सब पर एक जैसा लागू करवाना सही है? इन पेचीदा प्रश्नों पर लोगों के बीच क्या मत भेद है उन्हें भी हम यहाँ समझने का प्रयास करेंगे।

'संविधान में किन्हीं बातों को जोड़ देना एक बात है और उन्हें अमली जामा पहनाना दूसरी। बच्चों के मामले में जिन कानूनों और अधिकारों की बात हमारे संविधान में की गई है उनमें और वर्तमान जमीनी वास्तविकताओं में गहरा भेद है। शारदा कुमारी का यह लेख इसी फांक को उजागर करता है।

''स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली की एक सड़क राजपथ पर 26 जनवरी 2004 की सुनहरी सुबह में बालिका शिक्षिका को समर्पित एक भव्य झांकी गुजर रही है। ठीक इसी समय ''अति विशिष्ट व्यक्तियों'' की कार पार्किग में लगभग 12 वर्षीय बालिका एक हाथ में एल्युमिनियम की केतली व दूसरे हाथ में चार–पाँच प्यालियाँ थामे कार चालकों को चाय देने के लिए बढ़ रही है।

दूसरा दृश्य है प्राथमिक विद्यालय की पाँचवी कक्षा का। एक बालिका गृह कार्य करके नहीं लाई। तड़ाक से उसके गाल पर शिक्षिका का वजनदार हाथ पड़ता है और साथ ही कर्कश स्वर कानों को बेंधते हैं क्यों? रोटियाँ सेक रही थी जो कार्य नहीं कर पायी?'' अपने मानस चक्षुओं को एक और दृश्य की ओर ले जाएं। बहुत ही मंहगे विद्यालय में पढ़ रहा बच्चा अभी–अभी अपने विद्यालय से आया। वह अपनी दादी के पास बैठ लाड़ जताना चाहता है पर नहीं, उसे अभी ट्यूशन पढ़ने जाना है। फिर गिटार वाले ''सर'' आएंगे उसके बाद स्कैटिंग की कक्षा में जाना है। ''मैं खेलने कब जाऊं'' के लिए उत्तर मिलता है ''हम तुम्हारे लिए इतनी महंगी–महंगी ट्यूशन लगा रहे हैं और तुम्हें खेलने की पड़ी है।''

शहरी–ग्रामीण, धनी–निर्धन हर क्षेत्र व तबके में ऐसे बहुत से दृश्य देखने को मिल जाएंगे, जहाँ बच्चों की स्थिति एक ही समान है। कहीं निर्धनता के कारण बचपन छिन रहा है तो कहीं धनिकों की उच्च महत्वाकांक्षाओं के कारण।

शिक्षाविद् और राजनैतिक और सामाजिक नेता जब भी बच्चों के समूह को संबोधित करते हैं, प्रायः यह उद्घोषणा करते हैं कि ''आज के बच्चे कल के नागरिक हैं।'' निःसंदेह यह सच है परन्तु क्या कोई यह भी सोचता है कि इन बच्चों को इनके वर्तमान में स्वाभाविक रूप से जीने दिया जा रहा है या नहीं। माता–पिता, शिक्षक गण, समाज और सरकार बच्चों के प्रति किस प्रकार अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं, इस पहलू को ध्यान में रखते हुए बच्चों के अधिकारों पर विचार करना बहुत जरूरी है।

बच्चों के अधिकार

1. उत्तरजीविता का अधिकार
2. विकास का अधिकार
3. संरक्षण पाने का अधिकार
4. जन्म लेने का अधिकार
5. जीवित रहने और संरक्षण पाने का अधिकार
6. शिक्षा का अधिकार

जब हम किसी के अधिकारों की बातें करते हैं तो इसका यह अर्थ होता है कि जब भी आवश्यक हो उन अधिकारों को न्यायालय या अन्य उपयुक्त मंचों के हस्तक्षेप से प्राप्त कर लिया जाए। परन्तु बच्चे अपने अधिकारों के हनन की स्थिति में स्वयं कहीं नहीं जा सकते। इसलिए जब भी बच्चों के अधिकारों की बात कही या सोची जाती है तो उसका सबंध माता–पिता , अध्यापक , समाज व सरकार के दायित्वों से होता है। इन दायित्वों से ही बच्चों के अधिकारों की पूर्ति होती है। बच्चों के अधिकारों के सबंध में संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन 20 नवम्बर 1989 को अपनाया गया था। इसमें बच्चों के अधिकारों से सबंधित कुल 54 अनुच्छेद हैं कुछ महत्वपूर्ण अधिकार इस प्रकार हैं :–

उत्तर जीविता का अधिकार – जन्म के बाद सर्वाधिक बुनियादी आवश्यकताओं के माध्यम से बच्चों को जीवित रहने का अधिकार है। इन बुनियादी जरूरतों में शामिल हैं–भोजन, आश्रय और स्वास्थ्य उपचर्या।

विकास का अधिकार – शिक्षा, खेल–कूद व कौशल वे सभी बातें जो बच्चों के लिए पूर्ण शारीरिक , मानसिक विकास की दृष्टि से आवश्यक हैं।

संरक्षण पाने का अधिकार– इसके अंतर्गत यह अपेक्षित है कि बच्चों को दुरुपयोग उपेक्षा व शोषण के सभी स्वरूपों से बचाया जाए।

बच्चे किसी भी समाज के लिए रीढ़ की हड्डी के समान हैं। उनका सकारात्मक व रचनात्मक बचपन भविष्य में सामाजिक–आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु बन जाता है। पर यह तभी सम्भव है जब उन्हें कुछ बुनियादी अधिकार दिये जायें। जैसे :–

जन्म लेने का अधिकार – बच्चे को माँ के गर्भ में आते ही यथा समय जन्म लेने का अधिकार हो जाता है। अतः यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि माँ की उचित देखभाल की जाए। ताकि बच्चा गर्भ में पूर्ण एवं स्वस्थ रूप से विकसित हो तथा यथा समय पर जन्म ले। बच्चे के जन्म को रोकने का प्रयास गर्भस्थ बच्चों के अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है और उसे कानून में एक अपराध माना जाता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 312 गर्भपात को एक अपराध मानती है। धारा 313, 314, 315 व 316 में भी ऐसे प्रावधान दिए गए हैं। जिनमें अजन्मे बच्चे की सुरक्षा की बात की गई है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 416 में यह व्यवस्था है कि यदि कोई महिला जिसके विरूद्व न्यायालय ने मृत्यु दण्ड सुनाया हो गर्भवती हो तो न्यायालय को यह अधिकार है कि मृत्यु को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए या सजा को स्थगित भी किया जा सकता है।

दुर्भाग्यवश अजन्मे बच्चे की रक्षा हेतु बनाये गए कानूनों का गुप्त रूप से उल्लंघन किया जाता है। माता–पिता व चिकित्सा व्यवसाय की नैतिकता से यह अपेक्षा की जाती है कि बच्चे को जन्म लेने के अधिकार से वंचित न किया जाए। हाल के वर्षों में एक नयी प्रवृति उभरी है–बालिका भ्रूण हत्या। बड़े पैमाने पर बालिका भ्रूण हत्या के परिणाम 2001 की जनगणना में देखे जा सकते हैं। बालिका भ्रूण की हत्या व पैदा होने वाले बच्चे के अधिकार के उल्लंघन को एक जघन्य अपराध समझा जाना चाहिए।

जीवित रहने और संरक्षण पाने का अधिकार – माँ के गर्भ से दुनिया में अवतरित होने के पश्चात् बच्चे को विकास और वृद्धि के लिए सभी प्रकार के संरक्षण का अधिकार चाहिए। शिशु मृत्यु दर के आंकड़ों पर नजर डालें तो पता चलता है कि निर्धन वर्ग में बाल उत्तर जीविता लगभग 80 प्रतिशत है, मध्य वर्ग में 85 प्रतिशत व उच्च आय वर्ग में 89 प्रतिशत हैं। राज्यों को बच्चों की उत्तर जीविता के लिए किए जाने वाले उपायों व प्रयासों को प्राथमिकता प्रदान करना चाहिए ताकि बच्चे की उत्तर जीविता और संरक्षण के अधिकार की रक्षा की जा सके। एक स्वस्थ जीवन के बाद बारी आती है शिक्षा के अधिकार की।

शिक्षा का अधिकार – संविधान के 86 वें संशोधन 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21 में 21 क जोड़ कर यह मौलिक अधिकार बनाया गया है–

राज्य ऐसी रीति से , जैसा कि विधि बना कर निर्धारित करें, छह वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध किया–

उपरोक्त संशोधन के आधार पर 1 अप्रैल 2010 से निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अनिनियम 2009 प्रभावशील कर दिया गया है इसके कुछ प्रमुख बिन्दु हैं–

– 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को उनकी आयु के अनरूप कक्षा में प्रवेश मिलेगा व आवश्यक दक्षताएं सीखने के लिए व्यवस्था दी जाएगी ।

– कक्षा 8 यानी प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने तक किसी बच्चे को फेल नहीं किया जाएगा व शाला से निकाला नहीं जाएगा।

– किसी शाला में बच्चों को प्रवेश देने के लिए परीक्षा नहीं ली जाएगी या उनके अभिभावकों का साक्षात्कार नहीं किया जाएगा व उनसे कैपीटेशन फीस नहीं ली जाएगी।

– जन्म प्रमाण–पत्र, स्थानान्तरण प्रामाण–पत्र आदि दस्तावेजों के अभाव में किसी बालक को शाला में प्रवेश देने से मना नहीं किया जाएगा।

– सभी निजी शालाओं को अपने पड़ोस के क्षेत्र में रहने वाले सुविधावंचित परिवारों के बच्चों को अपनी कुल उपलब्ध सीटों में से न्यूनतम 25 प्रतिशत् सीटें प्रवेश के लिए दी जाएंगी।

– सभी शालाओं को निर्धारित मानदण्ड पूरे करना अनिवार्य होगा।

– किसी बच्चे को शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना नहीं दी जाएगी।

उपरोक्त मौलिक अधिकार के अलावा, भारतीय संविधान में बच्चों के हितों की रक्षा के लिए अन्य प्रावधान भी है।संविधान के अनुच्छेद 39 (च) के द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि बच्चों और युवाओं का नैतिक और भौतिक परित्याग न किया जाये, यह दायित्व राज्य का है। अर्थात् बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए उन्हें उचित परिवेश सुलभ करवाया जाए। यह सुनिश्चित करना सरकार का कर्तव्य है कि राष्ट्रीय हित की परवाह न करने वाले स्वार्थी व्यक्तियों से बच्चों को बचाया जाए। बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन के साधन प्रदान किया जाय। खेलकूद, कलाओं को बढ़ावा दिया जाये।

इन सब अधिकारों के साथ उल्लेखनीय है ''माता–पिता से संरक्षण पाने का अधिकार।'' परिवार समाज की एक मूलभूत इकाई है। परिवार के सभी सदस्यों को सरंक्षण प्रदान करना उसका प्रमुख दायित्व है। शोषण के विरूद्व संरक्षण का अधिकार भी आवश्यक है। 1960 का बाल अधिनियम उपेक्षित अथवा दोषी और पुर्नवास की बात कहता है। बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम 1986 विशिष्ट उददेश्यों के प्राप्ति के लिए बनाया गया।

1. जोखिम पूर्ण व्यवसायों/प्रतिक्रियाओं 14 वर्ष की आयु से कम बच्चों की भागीदारी पर रोक।

2. निषिद्ध व्यवसायों/प्रतिक्रियों की अनसूची में संशोधन करने के लिए नियम।

3. जो काम काज निषिद्ध नहीं हैं उनमें बच्चों की स्थिति का नियमन ''बच्चे की परिभाषा में एकरूपता लाना।''

अनुच्छेद 32 के द्वारा बच्चों को आर्थिक शोषण से रोकने की बात कही गई है। 34 के द्वारा बच्चों को यौन शोषण और यौन दुरूपयोग से बचाने का दायित्व राज्य को दिया गया है। अनुच्छेद 36 व 37 बच्चे का उत्पीड़न न हो, यह सुनिश्चित करते हैं।

समाज में जीवंतता बच्चों से ही आती है। उनकी निश्छल हँसी, भोली बातें सभी के मन को गुदगुदा देती हैं। बच्चे कल तक की प्रतीक्षा नहीं कर सकते। उन्हें सुन्दर आज प्रदान करना माता– पिता, अध्यापक, समाज व सरकार का दायित्व है। मगर इतना कह देने व अनेक कानून बना देने मात्र से बच्चों के हित सुरक्षित नहीं होते जब तक सभी व्यक्ति, माता–पिता, अध्यापक, नीति निर्धारक, योजनाकार, संयुक्त रूप से कार्य न करें। बच्चों की शिक्षा को पूरा करना जन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण विषय होना चाहिए। हमें बच्चों की जन्मजात वृति, उनकी क्षमताओं, उन्हें दिलचस्प लगने वाली बातों की कद्र करनी चाहिए।

कुछ प्रश्न

• बच्चों के अधिकारों के संरक्षण में शिक्षक/स्कूल की क्या भूमिका है?

• आप अपने आसपास बाल अधिकारों का हनन देखते हैं इन अधिकारों की जागरूकता लाने हेतु आप क्या–क्या कर सकते हैं?

• क्या अपने बचपन के अनुभव से बता सकते है कि आपके या आपके किसी साथी के बाल अधिकार का हनन हुआ था उदाहरण देते हुये बतलाइये?

(viii) बचपन, काम और स्कूलिंग : एक चिंतन – डी. वसन्ता

आम धारणा है कि स्कूली शिक्षा बच्चों के शोषण का सबसे बड़ा इलाज है। फिर भी हमारे सामने ऐसे जीवन–जगत हैं जहाँ बच्चों के काम करने को बाल मजदूरी नहीं कहा जा सकता और स्कूल व काम के बीच हमेशा टकराव नहीं रहता। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनिकीकरण के संदर्भ में इस मुद्दे से संबंधित स्थापित धारणाओं पर पुनर्विचार जरूरी है क्योंकि इस प्रक्रिया में विविध सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश से आने वाले बच्चे एक ही दायरे में खड़े होते हैं। आंध्र प्रदेश के सरकारी स्कूलों के अध्ययन से प्रेरित इस पर्चे में बहुत सारे दस्तावेजों की समीक्षा के आधार पर यह दलील दी गई है कि विकास मनोविज्ञान, शिक्षा, कल्याण नीति और बच्चों से संबंधित कानूनों में मध्यवर्गीय, शहरी बचपन को ही 'स्वाभाविक' माना जाता है। न केवल विशेषज्ञों की राय इस धारणा से प्रभावित रहती है बल्कि सांस्कृतिक तौर–तरीके और रवैये भी इस से काफी हद तक निर्धारित होते हैं।

ज्यादातर संस्कृतियों में स्कूली शिक्षा को बचपन का 'सामान्य' हिस्सा माना जाता है। आम धारणा है कि स्कूली शिक्षा के जरिए बच्चों, खासतौर से गरीब तबकों के बच्चों के शोषण पर रोक लगाई जा सकती है। जो लोग इस बात पर यकीन रखते हैं उनका यह भी मानना है कि स्कूलिंग की वजह से बच्चों के समय में मां–बाप का हिस्सा सिमट जाता है। परंतु ऐसे लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि खुद स्कूल भी बच्चों पर नए तरह के नियंत्रण स्थापित कर देते हैं। जिन बच्चों का काम बाल मजदूरी की परिभाषा में नहीं आता उनके जीवन परिवेश पर हुए अध्ययनों का निष्कर्ष है कि स्कूलिंग और काम के बीच हमेशा सीधा टकराव नहीं होता और बहुत सारे बच्चों के लिए ये दोनों अलग–अलग दायरे हैं जो एक–दूसरे के लिए पूरक का काम करते हैं। लिहाजा, स्कूलों में गरीब तबके के बच्चों की बढ़ती संख्या को देखते हुए जरूरी है कि हम बचपन, काम और स्कूलिंग से संबंधित कुछ स्थापित धारणाओं पर पुनर्विचार करें।

कुछ प्रश्न

• आपके अनुभव में स्कूलिंग और बच्चों के द्वारा किए गए घरेलू व अन्य कामों के बीच किस हद तक व किस तरह का टकराव होता है, उदाहरणों सहित बताइए।

बाल्यावस्था के अंतर्सांस्कृतिक स्वरूपों पर हुए शोध

मयाल (1999) ने बच्चों और बचपन से संबंधित विचारों के कुछ विकल्प पेश करने के उद्देश्य से किए गए नए प्रयासों पर चर्चा की है। ब्रिटेन में शुरू की गई इस परियोजना की मूल प्रस्थापना यह है कि बच्चा कोई प्राकृतिक श्रेणी नहीं होता बल्कि बच्चा क्या है और बचपन को कैसे जिया जाता है, ये बातें वयस्कों के तौर–तरीकों, उद्देश्यों और संस्कृतियों से निर्धारित होती हैं।

आनंदलक्ष्मी और बजाज (1981) के अलावा वीरूरू (2001) ने अपने लेखन में वाराणसी के मोमिन अंसारी समुदाय के बच्चों की जिंदगी का मानवशास्त्रीय अध्ययन पेश किया था। शोधकर्ताओं का कहना था कि इस समुदाय में चार साल की छोटी–छोटी लड़कियों की आवाजाही भी नियंत्रित होती है। उन्हें मोहल्ले के केवल परिचित परिवारों में जाने की छूट होती है। उन्हें घर में ही रहने और घरेलू काम सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

6 साल की उम्र तक ज्यादातर लड़कियां साफ–सफाई, बर्तन धोना और भाई–बहनों की देखभाल करना सीख जाती है। 9 साल की उम्र में उन्हें बिना पर्दे बाहर जाने की छूट नहीं मिलती। 13 या 14 साल की उम्र में यानी यौवनारंभ/प्यूबर्टी पर पहुंचने के कुछ समय बाद ही उनको ब्याह दिया जाता है। शादी लड़कियों के बचपन का

अनौपचारिक समापन होती है। इसके विपरीत लड़कों को तीन या चार साल की उम्र से बुनाई की कला सिखानी शुरू कर दी जाती है। 10 साल की उम्र तक ज्यादातर लड़के किसी कुशल बुनकर के पास काम करने लगते हैं। 13—14 साल की उम्र तक सभी लड़के स्वतंत्र रूप से बुनाई करना शुरू कर देते हैं। लड़कों को समुदाय के धार्मिक जीवन से भी परिचित कराया जाता है। उनमें से कुछ मदरसों (धार्मिक स्कूलों) में भी जाते हैं।

कुछ प्रश्न

• मोमिन अंसारी समुदाय के लड़कों व लड़कियों के जीवन में स्कूल की दिनचर्या किस प्रकार सार्थक बन सकती है... विश्लेषण करें।

कृष्ण कुमार द्वारा (कुमार 1993) वयस्क बच्चा नैरन्तर्य की अवधारणा के अनुसार दैनिक जीवन में बच्चे को वयस्क परिधि का हिस्सा माना जाता है। यह बात सभी सामाजिक वर्गों के बारे में सही दिखाई देती है। खासतौर से कृषि अर्थव्यवस्था के संदर्भ में कुमार का तर्क है कि वयस्क—बच्चा नैरंतर्य अर्थव्यवस्था में आए बदलावों से प्रभावित हुआ है। उन्होंने इस बात का खासतौर से उल्लेख किया है कि ग्रामीण बेरोजगारी ने काम की तलाश में बड़े पैमाने पर शहरों की ओर पलायन को बढ़ावा दिया है। और हो सकता है कि इससे भी बच्चे की दुनिया में पारिवारिक वयस्कों की संख्या कम हुई हैं। कुमार का कहना है कि समकालीन शहरी भारत में दो परस्पर विरोधी ताकतें बच्चे के समाजीकरण को प्रभावित करती हैं : एक तरफ तो परिवार और दूसरी तरफ स्कूल, मीडिया व बाजार।

ताकेई; (1999) ने आंध्रप्रदेश के एक गांव में किए गए अपने अध्ययन का उल्लेख किया है। इस अध्ययन के जरिए वे बच्चों के 'जीवन जगत' में उनके द्वारा किए जाने वाले कामों और स्कूली शिक्षा पर उनके असर को समझना चाहते थे। 1994 से 1997 के बीच ताकेई ने जो अध्ययन किया है उससे पता चलता है कि इस गांव के बच्चे इस तरह के काम करते थे : पानी लाना, मवेशियों की देखभाल करना, खाना बनाना, खेती के काम और अन्य भाई—बहनों की देखभाल आदि। इस गांव के बच्चों द्वारा किया जा रहा काम उनके समाज की जीवन संरचना में गहरे तौर पर गुंथा हुआ था, यह उनके समाजीकरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, इससे परिवार को केवल अप्रत्यक्ष रूप से मदद मिल रही थी; क्योंकि इनमें से किसी भी काम के लिए कोई वेतन नहीं दिया जाता। ताकेई का तर्क है कि इन बच्चों के काम को 'बाल श्रम' की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। क्योंकि काम का स्वरूप पूरे तौर पर स्थानीय समाज की संरचना और जीवन शैली पर आधारित है इसलिए हमें इस तरह के कामों से स्कूलिंग पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के लिए समाज की जीवन शैली का अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए। ताकेई के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वयस्क या बच्चे के जीवन जगत का स्कूल की दुनिया से कोई संबंध नहीं होता। यहां तक कि स्कूल में पढ़ाए जाने वाले सबकों में भी दोनों अलग—अलग जगत होते हैं। दूसरी तरफ मध्यवर्गीय शहरी पृष्ठभूमि के बच्चे साफ देख सकते हैं कि उनके जीवन के कई आयाम उनकी पाठ्यपुस्तकों में भी प्रतिबिंबित होते हैं।

बच्चों के काम और स्कूलिंग के आपसी संबंधों की पड़ताल करने वाले एक और अध्ययन का हवाला नुईवेनहुईस (1999) ने दिया है। केरल के मजदूर वर्गीय बच्चों के एक समूह का अध्ययन करते हुए उन्होंने बताया है कि अपने परिवार के सदस्यों के साथ काम . मछली पकड़ना और जूट की रस्सियां बनाना . करने वाले बच्चों की भूमिका को लेकर वयस्कों के रवैये और आकांक्षाओं को समझने के लिए और अध्ययन जरूरी हैं।

कुछ प्रश्न

• बच्चों और वयस्कों के जीवन के बीच एक नैरन्तर्य होता है — विच्छिन्तता नहीं... इसके किन उदाहरणों का उल्लेख यहां किया गया है?

सुजेन बिसेल (2003) ने 1997–98 के दौरान ढाका, बंग्लादेश के परिधान उद्योग में काम करने वाले 7–14 साल की उम्र के 225 बच्चों के बारे में इकट्ठा किए गए आंकड़ों की चर्चा की है। यह मानवशास्त्रीय अध्ययन बच्चों के जीवन अनुभवों और बाल्यावस्था की उनकी परिभाषाओं एवं छवियों पर केंद्रित था।

उनके लिए विवाह बचपन की सीमा को पार कर लेने का एक संस्कार है। अध्ययन में लिए गए बच्चों ने अपने परिवारों को सहारा देने, सीखने और खेलने जैसी जरूरतों का उल्लेख किया था। बिशेल बताती है कि अमेरिकी व्यापारिक पाबंदियों की धमकी के कारण उदाहरण के लिए अमेरिका की विधायिका द्ववारा पारित किया गया हारकिन बिल दुनिया भर में निर्यातोन्मुखी उद्योगों से बच्चों को हटा दिया गया है। इसका एक नतीजा यह हुआ कि एक तरफ तो बांग्लादेश के लगभग 10,000 बच्चे ऐसे स्कूलों में जाने लगे जिन्हें खासतौर से उनकी जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। दूसरी ओर 50,000 से 2,00,000 बच्चे ऐसे थे जो इस घटनाक्रम की वजह से आजीविका का अपना सबसे आकर्षक विकल्प गंवा बैठे थे। बिशेल इस घटना को इस बात का उदाहरण मानती हैं कि बचपन की वैश्विक सामाजिक अवधारणा राष्ट्रीय और स्थानीय सरोकारों को कितना कमजोर कर देती हैं। उनका निष्कर्ष है कि सामाजिक नीति के तत्वों को बच्चों की सक्रिय सहभागिता के आधार पर तय किया जाना चाहिए और उन्हीं के माध्यम से लागू किया जाना चाहिए। उनका एक निष्कर्ष यह है कि इस तरह की सामाजिक नीतियों को निर्धारित करने में हमें जीवन परिस्थितियों, परिवार, समुदाय और राष्ट्रीय उद्देश्यों पर विचार करना चाहिए। गरीब परिवारों के बच्चे खुद महसूस करते हैं कि 'काम' उनके दैनिक जीवन का हिस्सा है और उन्हें दो वक्त की रोटी जुटाने में हिस्सा बंटाना चाहिए।

कुछ प्रश्न

• हारकिन बिल पास करके अमेरिका ने उद्योगों में चल रही बाल–मजदूरी को रोकने की कोशिश की, बांग्लादेश के कितने बच्चों पर इसका क्या असर हुआ?

आंध्र प्रदेश में हैदराबाद स्थित नलसार लॉ यूनिवर्सिटी द्वारा बाल अधिकार संधि (सीआरसी) पर 2001 में तैयार की गई रिपोर्ट में एक बॉक्स का शीर्षक था–हमें काम क्यों नहीं करना चाहिए? इसमें एक छोटे से स्कूली लड़के ने कहा था : स्कूल से लौट कर हम काम क्यों न करें? तीन बजे के बाद हम क्या करें? मैं तीन साल की उम्र से ही मां–बाप के साथ खेतों में जाने लगा था। मैं गाय–भैंस और बकरियां चराता हूं। जब मैं उनके साथ जाता हूँ तो मैं खेती–बाड़ी के ऐसे काम सीख लेता हूँ जिनके लिए बच्चों को 15 रूपए प्रति घंटा मिल जाता है; बड़ों को 20 रूपए प्रति घंटा मिलता है। अगर मैं ये सब ना करूं तो क्या पता मैं खेती करना भी भूल जाऊं और पढ़ाई से भी मुझे कोई आमदनी न हो।

परिवार और स्कूल के यथार्थ के बीच बाल–अधिकार

अधिकारों के दृष्टिकोण से प्रेरित लोग उन परिवारों के सामाजिक यथार्थ को नजरअंदाज कर देते हैं जिनमें बच्चे 'काम' की कोई जिम्मेदारी नहीं लेते। कई अनुसंधानों में दलील दी गई है जब कोई गरीब परिवारों अपने एक या सारे बच्चों को 'शिक्षा' से निकालने का फैसला लेता है तो इस फैसले को परिवार के सामाजिक यथार्थ के आधार पर सही संदर्भ में देखना जरूरी हो जाता है; तथा बच्चे के विकास को नुकसान पहुंचा सकने वाले बाल श्रम तथा बच्चे को कुछ क्षमताएं, जिम्मेदारियाँ और सरोकार विकसित करने में मदद देने वाले बाल श्रम के बीच फर्क किया जाना चाहिए कहने का मतलब यह है कि बाल मजदूरी को संबंधित परिवार द्वारा स्वेच्छा से लिए गए फैसले के रूप में देखने का मतलब उस परिवार की वंचनाओं को पूरी तरह नजरअंदाज कर देना होगा। चाइल्ड लेबर ऐण्ड फूड सिक्योरिटी किताब की समीक्षा करते हुए लियेतेन 2003 का तर्क है कि अगर सार्वजनिक वितरण प्रणाली पी डी एस मजबूत हो और संबंधित परिवारों को सस्ती कीमत पर अनाज मुहैया करा सके तो बाल मजदूरी समस्या पर अंकुश लगाया जा सकता है। उनका कहना है कि स्कूल न जाने वाले 8 करोड़ बच्चों मे से केवल 1.1 करोड़ बच्चे ही बाल मजदूरी कर रहे हैं। लिहाजा, हमें बाकी बच्चों की भी चिंता करनी चाहिए

और ये समझना चाहिए की वे स्कूल क्यों नहीं जा रहे हैं इसका मतलब है कि केवल बच्चों या उनके माता–पिता को संबोधित करने वाली बाल मजदूरी विरोधी योजनाएं सफल नहीं हो सकतीं। नई योजनाओं में उन पर भी ध्यान देना चाहिए जो घर के भीतर अभावों को जन्म देते हैं।

आमतौर पर मजदूर वर्ग के बच्चे अपने मां–बाप की मदद के लिए घर का कुछ काम हाथ में ले लेते हैं (शिवाजी 2003)। इस प्रक्रिया में वे बाल केन्द्रित स्कूली पाठ्यचर्या का हिस्सा कभी नहीं बन पाते हैं। अन्वेषी संस्था द्वारा किए गए अध्ययन में बच्चों के साथ जो साक्षात्कार लिए गए उनसे पता चलता है कि इस तरह के बच्चों का आत्मबोध बहुत दृढ़ होता है लेकिन मुख्यधारा की संस्कृति से मदद न मिलने के कारण वयस्क कार्य जगत में सहभागिता से उपजा यह आत्मबोध हमेशा के लिए कुंद हो जाता है। जिन परिवारों में कई पीढ़ी से शिक्षा की परंपरा रही है उनके बच्चों के पास कई तरह से लाभ की स्थितियां होती हैं जो स्कूलिंग से और पुष्ट होती हैं। दीपा श्री निवास ने दर्शाया है कि अमर चित्रकथा ने 1970 – 80 के दशकों में भारत के सैकड़ों मध्यवर्गीय बच्चों की आत्मछवि को एक खास सांचे में ढाल दिया था। लेकिन मजदूर वर्गीय बच्चों को स्कूली पाठ्यपुस्तकों में कभी अपनी जिंदगी की झलक नहीं मिलती। उन्हें अपने समुदाय के लोगों की कहानियां सुनने या पढ़ने का मौका कभी नहीं मिलता। ऐसे साहित्य का अभाव चिंता का विषय होना चाहिए जो देश के अधिकांश लोगों के जीवन जगत का वर्णन करता हो।

कुछ प्रश्न

• बाल मजदूरी को रोकने के प्रयास अपने आपमें असफल क्यों होने लगते हैं? इसके लिए और किस तरह के प्रयासों की जरूरत है?

शिक्षा की अंतर्वस्तु का आलोचनात्मक अध्ययन

अब तक की चर्चा से स्पष्ट है कि बचपन की कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं होती और पढ़ाई बीच में छोड़ देने की वजहें सिर्फ जबरन बाल मजदूरी के ही मुद्दे से ही ज्यादा व्यापक होती हैं। अधिकारों पर केंद्रित दृष्टिकोण निष्क्रिय हो चुके स्कूलों, सजा के तौर पर मारपीट विस्थापन, न्यूनतम फीस चुकाने, कापी पेन खरीदने की अक्षमता, समुदाय में विकलांगता और समझ में न आने वाली पाठ्यचर्या जैसे कारणों को नजर अंदाज करता है। जैन एवं अन्य (2003) जो लोग अधिकारों के दृष्टिकोण पर जोर देते हैं वे शिक्षा की अंतर्वस्तु के आलोचनात्मक अध्ययन की कोशिश विरले ही कभी करते हैं। इस बारे में कोई बहस नहीं है कि स्कूली शिक्षा के दायरे में पाठ्यपुस्तकों में बच्चे के स्वबोध को किस तरह संबोधित किया जा रहा है या बच्चे के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों को किस तरह मान्यता दी जा रही है नहीं या दी जानी चाहिए। श्रम को श्रम की शर्तों के साथ जोड़ देने की वजह से अधिकारों की वकालत करने वाले लोग वास्तव में बाल मजदूरी की जटिल समस्या से सिर्फ मुँह चुराने की कोशिश कर रहे हैं। अगर हम ये समझना चाहते हैं कि प्राथमिक कक्षाओं में भी बच्चों के पढ़ाई जारी रखने की दर इतनी कम क्यों है तो हमें लड़कों और लड़कियों, दोनों के घरों और स्कूलों को प्रभावित करने वाली स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन करना चाहिए। हमें मजदूर वर्ग के बच्चों के जीवन जगत का अध्ययन करना होगा। हमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्रों, सामाजिक कार्य एवं शिक्षा विभागों के विद्यार्थियों को पढ़ाए जा रहे बाल विकास पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्रों की समालोचना करनी होगी। हमें जाति आधारित व्यवसायों की सूची तैयार करनी होगी और इस आशय के ब्यौरे इकट्ठा करने होंगे कि उन समुदायों में बच्चों का सामाजीकरण किस तरह किया जा रहा है। हमें ऐसे विद्यार्थियों और शिक्षकों की जीवनियां इकट्ठी करनी चाहिए जो अपने परिवार में पढ़ने–लिखने वाली पहली पीढ़ी के सदस्य हैं ताकि ऐसी चीजों को शिक्षा सामग्री में शामिल किया जा सके। हमें विभिन्न समुदायों के लड़कों और लड़कियों से वर्ग, जाति और जेंडर से जुड़े मुद्दों पर बात करनी चाहिए क्योंकि बच्चे की आकांक्षाओं, भावनाओं तथा वर्गीय चेतना पर भौतिक अभावों के प्रभावों के बारे में हमें खास पता नहीं है। मेरा मानना है कि बच्चों से संबंधित मौजूदा समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के एजेंडा को नए सिरे से लिखने के लिए ये सारी जानकारियाँ बहुत उपयोगी साबित होने वाली हैं।

कुछ प्रश्न

- बाल श्रम किसे कहते हैं?
- बाल कार्य की अवधारणा क्या है?
- बाल कार्य स्कूलिंग में बाधक नहीं है। इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए?

सारांश (खण्ड स – बच्चों के अधिकार)

इस खण्ड में हमने 1989 के संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन में अपनाए गए बाल अधिकारों का परिचय प्राप्त किया जिसे भारत ने भी स्वीकार किया है। प्रमुख बाल अधिकार हैं– जन्म लेने का उत्तर जीविता का, विकास का और संरक्षण का अधिकार। भारत के संविधान में, वैसे तो सभी नागरिकों के मौलिक अधिकार बच्चों के लिए भी हैं पर कारखानों, खदानों व अन्य खतरनाक व्यवसायों में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे से श्रम करवाना निषिद्ध किया गया है (धारा 24) और 2009 में 6 से 14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य और मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार 6 से 14 वर्ष के बच्चों को एक मौलिक अधिकार के रूप में प्राप्त हुआ है (धारा 21) इसके अलावा संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के द्वारा राज्य का यह दायित्व बनाया गया है कि वह बच्चों और युवाओं का नैतिक और भौतिक परित्याग न होने दे, शोषण न होने दे, और बच्चों को गरिमा व स्वतंत्रता के साथ माहौल में विकास करने का मौका दे। 1960 व 1986 में भारत सरकार द्वारा बनाएगए दो अधिनियम बाल अधिकारों को विशेष तौर पर निरूपित करते हैं।

इन कानूनी प्रावधानों के बावजूद व्यवहार में इन्हें उतारने के प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। कानूनों का उल्लंघन भी खुले आम होता है। बालिका भ्रूण हत्या का होना इसका उदाहरण है। शिशु मृत्यु दर भी गरीब बालको में अन्य बालकों से ज्यादा ऊँची बनी हुई है (20 प्रतिशत्) बड़ी तादात् में बच्चे होटलों, फुटपाथों, खेतों ,घरों आदि में श्रम करते पाए जाते हैं व स्कूल नहीं जा पाते है।

विश्व में 8 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते और उनमें से 1.1 करोड़ बच्चे ही बाल मजदूरी करते है। शेष बच्चे घर की जिम्मेदारियों को संभालने की वजह से स्कूल नहीं जाते।

किन्तु समस्या सिर्फ बच्चों की पारिवारिक हालत में नहीं है। बहुत से बच्चे सुबह व शाम को परिवार के कामों में हाथ बँटाने के साथ–साथ स्कूल भी जाने की कोशिश करते हैं। ऐसे बच्चों में एक अलग प्रकार का आत्मबोध विकसित होता है, अनुभव , ज्ञान व कुशलताएँ विकसित होती हैं। वे इस पर गर्व भी करते है। उनका यह ''बाल–कार्य'' उनकी स्कूलिंग के आड़े नहीं आता। किन्तु, स्कूल की मध्यम वर्गीय शहरी संस्कृति, न समझ आने वाली पाठ्य चर्चा उनके जीवन जगत के अनुभवों व कौशलो के प्रति स्कूल में उदासीनता उपेक्षा या तिरस्कार – स्कूल में टिके रहने में बड़ी बाधाएँ पेश करती हैं।

बाल अधिकारों के कार्यकर्त्ताओं का मानना है कि चाहे जो स्थिति हो, बच्चों को स्कूल में लाना ही शोषण से उनके अधिकारों की रक्षा का एक मात्र उपाय है। जब यह लागू कर दिया जाएगा तो अन्य परिस्थितियों को बदलना होगा। इस मत के विरोध में कई लोगों का मानना है कि जिन समुदायों पर अधिकारों को लागू किया जाना है, उनके अभिभावकों व बच्चों की सलाह व भागीदारी के साथ ही अधिकारों के क्रियान्वयन के तरीकों का विकास किया जाना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि वयस्कों के कार्यजगत में हिस्सेदारी करने वाले बच्चे यह महसूस करें कि उनका मासूम बचपन छिन गया है। वयस्कों की जिम्मेदारी से मुक्त मासूम स्वच्छन्द बचपन की धारणा कोई सार्वभौमिक धारणा नहीं है। बचपन व शिक्षा को परिवार व समुदाय की स्थिति से अलग–थलग कर देना उचित नहीं है। ऐसा करने से हम स्कूलों में गरीब तबके के बच्चों की बढ़ती संख्या के लिए सकारात्मक

वातावरण नहीं बना पाएंगें। यदि सार्वभौमिक शिक्षा को एक सच में बदलना है तो मजदूरों, विकलांगों, विस्थापितों, बालिकाओं, निराश्रितों .... जैसे लोगों के जीवन के अनुरूप स्कूलों को और शिक्षा की धारणा को बदलना होगा। ऐसा करने से पहले उन अनुभवों को जानना–समझना व प्रकाश में लाना भी जरूरी होगा।

सारांश

उपर्युक्त अध्याय से हमने सीखा कि बच्चे स्वच्छंद एवं स्वतंत्र वातावरण में अधिक सीखते हैं। बच्चों की जिज्ञासा व कल्पना असीमित व अनंत होती हैं। प्रायः वे ऐसे क्षेत्रों की कल्पना करते हैं जिन्हें वे वास्तविक संसार में पूर्ण नहीं कर पाते हैं। बच्चे अपने कल्पना में अप्रत्यक्ष रूप से अपने अधिकारों को प्राप्त करना चाहते हैं।

बच्चों को सीखने के लिए आवश्यक है कि विषय वस्तु एवं शालेय परिवेश रूचिकर हो तथा शिक्षक की उनके साथ आत्मीय संबंध रखे। कुछ घरेलू कार्य कभी–कभी स्कूलिंग को प्रभावित भी करते हैं तथा कुछ नहीं भी करते हैं। शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चों से अपनत्व दर्शाते हुए सकारात्मक अनुसंधान कर बच्चों की समस्या को हल करे।

बाल अधिकार यद्यपि बच्चों के लिए आवश्यक हैं उनके लिए नियम व कानून भी हैं परंतु वास्तविकता में बाल अधिकार के प्रति समाज का कोई भी वर्ग गम्भीर नहीं है। हमें बाल अधिकारों के प्रति जागरुकता लानी होगी।

अभ्यास प्रश्न

1. गिजुभाई शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए बच्चों से किस प्रकार की गतिविधि कराने का सुझाव देते हैं और क्यों?

2. समरहिल के छात्रों का व्यवहार अपने शिक्षकों के प्रति कैसा था? एक शिक्षक के रूप में आप अपनी शाला में क्या ऐसे ही व्यवहार की अपेक्षा रखेंगे। समझाइए।

3. आपके विचार में क्या समरहिल को 'पागल खाना' कहा जाना उचित है, विवेचना कीजिए।

4. 'अनारको के आठ दिन' और 'पिप्पी लंबे मोजे' जैसी कोई कहानी खोज कर उस पर कक्षा में चर्चा करें।

5. आपके द्वारा पढ़े गए साहित्य के आधार पर ''बच्चे'' की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

6. तोत्तोचान को पहली शाला से दूसरी शाला क्यों अधिक पसंद आई? दोनों में आपने क्या अंतर पाया?

7. आप अपनी कक्षा में बच्चों से आत्मीयत्ता बढ़ाने हेतु क्या प्रयास करते हैं? उल्लेख कीजिए?

8. आपके अनुसार आपकी शाला का परिवेश कैसा होना चाहिए उल्लेख कीजिए?

9. आप अपनी कक्षा के बच्चों के साथ कौन–कौन सी गतिविधियां करेंगे जो उनके कल्पना शक्ति के विकास में सहायक हो?

10. बच्चों की असफलता शिक्षक द्वारा चुनी गई शिक्षण पद्धतियों की देन है। उदाहरण सहित समझाइये।

11. बचपन में सिखाने की प्रक्रिया में कठोरता ''सीखने'' को विचलित कर देती है।'' विवेचना कीजिए।

12. क्या बच्चों की कक्षा में उन्नति के लिए परीक्षा ली जानी चाहिए? आपके विचार में उनकी परीक्षा का स्तर किस प्रकार का होना चाहिए।

☹☹

अध्याय – 2

बाल विकास – परिचय

पाठ की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- उद्देश्य
- बाल विकास की अवधारणा एवं अर्थ
- विकास और वृद्धि
- विकास की विभिन्न अवस्थाएँ
- शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक, भावनात्मक प्रक्रियाएं
- विकास को प्रभावित करने वाली बातें
  - ◦ प्रकृति और पालन (Noture and Nurtare)
  - ◦ निरंतरता और विच्छिन्नता (Continuity and discontinuity)
  - ◦ प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव (Early and later experience)
- बाल विकास की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
  - ◦ लिंग
  - ◦ सामाजिक वर्ग
  - ◦ धर्म
  - ◦ पारिवारिक संरचना और परस्पर संबंध
  - ◦ परिस्थितिकी संदर्भ
- बच्चों के बारे में जानने के तरीके
- सारांश
- स्वमूल्यांकन
- अभ्यास के प्रश्न
- प्रोजेक्ट कार्य

सामान्य परिचय

बच्चों को छोटे से बड़ा होते हम सभी देखते हैं लेकिन क्या हम कभी यह सोच–समझ पाते हैं कि उनका विकास कैसे हो रहा है? इस दौरान उन्हें किन–किन प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है ? उनमें क्या– क्या शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावात्मक परिवर्तन हुए? क्या विकास एवं वृद्धि की यह प्रकिया निरंतर चलती है या रूक–रूक कर चलती है? एक ही अभिभावक के दो बच्चे बिल्कुल ही अलग क्यों होते हैं? बच्चे के विकास पर किन–किन कारकों का प्रभाव होता है एवं क्या प्रभाव होता है ?

हर बच्चा अपने आप में अलग होता है अतः बच्चों के विकास को समझना तथा उन विधियों एवं तरीकों को जानना आवश्यक है जिनसे बच्चे के बारे में हमारी समझ बेहतर बन सके।

उद्देश्य

- बाल विकास के अर्थ को समझना।
- बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं से परिचय प्राप्त करना।
- विकास और वृद्धि के अन्तर को समझना।
- बच्चों के विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न (सहायक एवं बाधक) कारकों को जानना।
- बच्चों को समझ पाने हेतु विभिन्न तरीकों, विधियों को जानना।

(i) बाल विकास की अवधारणा एवं अर्थ

माँ के गर्भ में एक निषेचित अण्डाणु के बारे में सोचिए। कितना आश्चर्यजनक लगता है कि एक कोशिका नौ महीनों में एक पूर्ण शिशु के रूप में विकसित हो जाती है। इस शिशु के श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, कंकाल तंत्र जैसे कई जटिल तंत्र होते हैं जो उसके जीवन के लिए आवश्यक हैं। नवजात बच्ची स्पर्श का अनुभव करती है, वह देखती है, सूंघती है और रोती भी है। ये क्षमताएं उसे जन्म के बाद बहुत भिन्न परिवेश में समायोजन करने में मदद करती हैं। परन्तु इन योग्यताओं के बावजूद बच्ची पालन–पोषण के लिए पालनकर्ता पर निर्भर करती है। पूर्ण रूप से पालनकर्ता पर आश्रित बच्ची धीरे–धीरे बैठना, फिर खड़े होना और फिर चलना सीख जाती है। वह स्वयं भोजन करना, कपड़ा पहनना सीखती है तथा अपनी आवश्यकताओं को शब्दों में व्यक्त करना भी सीख जाती है। धीरे–धीरे बच्ची अधिक स्वावलंबी होती जाती है और उसकी रूचियों में विस्तार होता है। आगे चलकर वह मित्र बनाएगी और उनके साथ खेल–क्रियाओं में भाग लेगी। वह घर के कार्यो में भी सहयोग देगी और संभव है कि वह आय उत्पादक क्रियाओं में भी भाग ले। यह भी हो सकता है कि वह एक व्यवसाय चुने और उसके लिए अध्ययन करे। यह बच्ची वयस्क होकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी बन सकती है। उसका विवाह होगा और बच्चे भी होंगे। एक गर्भस्थ कोशिका से एक सुयोग्य वयस्क व योग्य नागरिक कैसे बन जाता है?

क्या आपने कभी यह सोचा है कि आप जिस प्रकार के व्यक्ति हैं वैसे क्यों हैं? आपके भाई और बहनें आपसे भिन्न क्यों हैं? केवल देखने में ही नहीं परन्तु व्यवहार में भी। इसका क्या कारण है कि एक बालिका अपने पड़ोस में लोकप्रिय है, ,उसके कई मित्र हैं जबकि दूसरी बालिका संकोची है और अपने अध्यापक के समीप रहती है। क्या सभी बच्चों में विभिन्न कौशलों व योग्यताओं का विकास एक ही समय होता है? क्या सभी तीन वर्षीय बच्चे एक समान होते हैं? एक चार वर्षीय बच्चे से हम क्या अपेक्षा कर सकते हैं? क्या–विकास का कोई निश्चित स्वरूप है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक तीन वर्षीय बच्ची का व्यवहार पांच वर्षीय बच्ची से भिन्न होगा? ऐसे सभी प्रश्न बाल विकास विषय के अंतर्गत आते हैं।

क्या आपने कभी यह सोचा कि आप जिस प्रकार के व्यक्ति हैं वैसे क्यों हैं? आपके भाई और बहनें आपसे भिन्न क्यों हैं?

बाल विकास विषय का संबंध बच्चों के व्यवहार में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों से है। यह विषय इससे भी संबंधित है कि ये परिवर्तन क्यों और कैसे होते हैं? अतः इस विषय का उद्देश्य शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, भाषायी व ज्ञानात्मक क्षेत्रों में विकास को समझना और उसकी व्याख्या, करना है। वास्तव में व्यक्ति के सोचने का ढंग व व्यवहार बचपन के अनुभवों से प्रभावित होते हैं। अतः बाल विकास के विषय में विद्यार्थी का संबंध बच्चों की उस वृद्धि और व्यवहार से है जिसका प्रभाव उनके सम्पूर्ण जीवन काल पर पड़ता है। परन्तु, इस पाठ्यक्रम को हम केवल जन्म से लेकर 14 वर्ष तक की उम्र वाले बच्चों के विकास का करेंगे।

कुछ प्रश्न

- बाल विकास विषय में हम किन बातों को समझते हैं?

(ii) विकास और वृद्धि

उपर्युक्त चर्चा में हमने 'विकास' और 'वृद्धि' शब्दों का प्रयोग किया है। क्या आप बता सकते हैं कि 'वृद्धि' और 'विकास' में क्या अंतर हैं? विकास शब्द का प्रयोग शारीरिक परिवर्तन, चिन्तन शक्ति और सामाजिक व भावात्मक व्यवहार में परिवर्तनों के संदर्भ में किया गया है। क्या हम सभी परिवर्तनों को विकास कह सकते हैं? आइए, एक उदाहरण द्वारा इसे समझें। एक तीन महीने की बालिका भूख लगने पर रोना शुरू कर देती है और खाना मिलने पर चुप हो जाती। पेट भर जाने के बाद बच्ची के व्यावहारिक परिवर्तन को विकास नहीं कहा जा

सकता। विकास शब्द का प्रयोग व्यक्ति की उन शारीरिक और व्यावहारिक विशेषताओं में परिवर्तन के लिए किया जाता है जो कि क्रमानुसार उभरते हैं।

प्रगतिशीलता शब्द का तात्पर्य है कि इन परिवर्तनों की वजह से बालिका को ऐसे कौशल व क्षमताएं प्राप्त होती हैं जो पहले के कौशलों से अधिक जटिल, उत्कृष्ट और अधिक प्रभावशाली हैं। इसको समझने के लिए बालिका का घुटनों के बल चलने से लेकर पैरों पर चलने तक और बबलाने से बोलने तक के विकास पर विचार कीजिए। ठीक से चलने के लिए यह आवश्यक है कि बालिका सीधी खड़ी होकर और संतुलन बनाकर एक पैर के बाद दूसरा पैर रखे। इसके लिए मांसपेशियों में अधिक समन्वय की आवश्यकता होती है और इसलिए यह घुटने चलने से अधिक जटिल हैं। चलना वैसे भी अधिक उपयोगी है क्योंकि इससे हाथ अन्य क्रियाओं के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं और बालिका ज्यादा आगे तक देख सकती है। इसी प्रकार बोल पाना बबलाने से उभरता है और यह निश्चय ही बबलाने से अधिक जटिल और दूसरों से संवाद करने में अधिक प्रभावी भी है।

'क्रमबद्धता' से तात्पर्य है कि विकास एक क्रम से होता है। विकास का प्रत्येक चरण पहले वाले विकास पर आधारित होता है और उससे पहले नहीं हो सकता। अतः बच्चे घुटनों पर चल पाने के बाद ही पैरों पर चल पाते हैं और चलने के बाद ही दौड़ना सीखते हैं। इसी प्रकार वयस्क की जटिल परिस्थिति को संभालने की योग्यता बचपन में सरल कार्य करने की क्षमता से उभरती है। वयस्क जीवन में निर्णय लेने की योग्यता बाल्यावस्था के अनुभवों जैसे यह सोचना कि कौनसा खेल या कौनसी पुस्तक पढ़ें आदि से विकसित होती हैं। इस प्रकार विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अधिक सरलता और सामर्थ्य से कार्य करना सीखता है।

प्रगतिशीलता– परिवर्तनों की वजह से ऐसे कौशल व क्षमताएं प्राप्त होती हैं जो पहले के कौशलों से अधिक जटिल, उत्कृष्ट और अधिक प्रभावशाली हैं।

'क्रमबद्धता'. विकास एक क्रम से होता है।

वृद्धि– वजन, लम्बाई और आंतरिक अंगों का बढ़ना।

वृद्धि से तात्पर्य शरीर के आकार में वृद्धि से है। वजन, लम्बाई और आंतरिक अंगों का बढ़ना ही वृद्धि है। वृद्धि से अभिप्राय है मात्रात्मक परिवर्तन अर्थात् वह परिवर्तन जिसे मापा जा सकता है। लेकिन हमारी वृद्धि मात्र आकार में ही नहीं होती।

अगर ऐसा ही होता तो नवजात शिशु 20 वर्ष की आयु में केवल बड़ा बच्चा ही होता। आकार में वृद्धि के अतिरिक्त शरीर में अन्य परिवर्तन भी होते हैं। इनमें शारीरिक अंगों के रूप में परिवर्तन, उनकी जटिलता और प्रकार्यो में वृद्धि, और सोचने–समझने की योग्यताओं और कौशलों में वृद्धि शामिल है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो, हमारी मात्र वृद्धि ही नहीं होती बल्कि विकास भी होता है। इस विकास से अभिप्राय है मात्रात्मक परिवर्तन के साथ–साथ गुणात्मक परिवर्तन। इसमें केवल संरचना संबंधी ही नहीं बल्कि प्रक्रियात्मक परिवर्तन भी शामिल हैं। विकास से तात्पर्य है शारीरिक और तांत्रिकीय संरचना, प्रक्रियाओं, और व्यवहार में समय के साथ होने वाले क्रमबद्ध और अपेक्षाकृत स्थिर परिवर्तन। जिनसे प्रत्येक व्यक्ति जन्म के आरंभ से लेकर अंत तक गुजरता है। वृद्धि विकास की वृहत्तर प्रक्रिया का केवल एक पहलू है। शारीरिक परिवर्तन दृष्टिगोचर न होने पर भी विकास जारी रहता है। किशोरावस्था के बाद शारीरिक वृद्धि काफी धीमी पड़ जाती है और विकास की गति में इतना परिवर्तन नहीं आता। विचारों और सामाजिक कौशलों की जटिलता तथा भाषा में विकास इस निरंतर विकास के सूचक हैं।

कुछ प्रश्न

- विकास में क्रम होता है जैसे............ (उदाहरण दें)

- विकास में प्रगति होती है, जैसे........... (उदाहरण दें)
- क्या आप में भी वृद्धि एवं विकास हो रहा है ? हां/नहीं, तो क्यों?

(iii) विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

बच्चों के विकास को व्यवस्थित ढंग से समझने के उद्देश्य से सामान्यतया उसका वर्णन आयु के विभिन्न कालखण्डों के संदर्भ में किया जाता है। बाल विकास के संदर्भ में सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला वर्गीकरण उसे इन कालखण्डों की क्रमिक श्रृंखला के रूप में देखता है–गर्भावस्था, जन्म के पहले का काल (Prenatal Period) शैशवावस्था, (Infancy) प्रारंभिक बचपन (Early Childhood), मध्य और अंत का बचपन और किशोरावस्था (Adolescense)।

गर्भावस्था (Prenatal Period) – गर्भधारण होने से लेकर जन्म तक के लगभग नौ माह के समय को गर्भावस्था कहते हैं। इस विस्मयकारी परन्तु छोटे से समय में एक अकेली कोशिका विकसित होकर मस्तिष्क और व्यावहारिक क्षमताओं से सज्जित सर्वांग विकसित जीव बन जाती है।

शैशवावस्था (Infancy) – जन्म से लेकर लगभग 18 से 24 माह की आयु तक के विकास कालखण्ड को शैशवावस्था कहते हैं। यह पूरी तरह से बड़ों पर निर्भरता का दौर होता है। शैशवावस्था अनेक मनोवैज्ञानिक गतिविधियों के प्रारंभ होने का भी समय है जैसे बोलने की क्षमता, इन्द्रियों के अनुभवों और शारीरिक क्रियाओं में तालमेल बिठाना, प्रतीकों का उपयोग करते हुए सोचना और दूसरों की नकल करके उनसे सीखना। जन्मोपरांत अन्य अवस्थाओं की तुलना में इस अवस्था में सबसे तीव्र गति से वृद्धि और विकास होता है। बालिका की कुशलताएं और योग्यताएं कई गुना बढ़ती हैं। शैशवावस्था के अंत तक वह चलने, दौड़ने और शब्दों द्वारा अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने योग्य हो जाती है। स्वयं खा सकती है, परिवार के सदस्यों व स्वयं को पहचानने लगती है और जाने–पहचाने माहौल में आत्मविश्वास से घूमने लग जाती है। इस अवस्था में बच्चे चलना, दौड़ना, शब्दों के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं को बताना आदि चीज़ें कर पाते हैं। परिवार के सदस्यों की पहचान कर सकते है आत्मविश्वासी हो जाते हैं। शैशवावस्था तीव्र विकास की अवस्था होती है।

बाल्यावस्था (Childhood) – दो से बारह वर्ष के बीच की अवस्था बाल्यावस्था होती है। इस अवस्था में विकास शैशवावस्था जितना तीव्र नहीं होता है। बाल्यावस्था में बालिका शैशवावस्था के दौरान प्राप्त कुशलताओं में अपनी निपुणता बढ़ाती है व नए कौशल भी सीखती है। यही समय है जब शरीर के अंगों का समन्वय सुधारता है। बाल्यावस्था के दौरान बालिका व्यवहार के वे ढंग भी सीखती है, जो समाज में मान्य हैं। बालिका परिवार के अलावा अन्य कई बाहरी लोगों से मिलती है और उनसे लगाव बढ़ाती हैं। जैसे–जैसे बालिका बड़ी होती है और उसके सोचने की क्षमताएं परिपक्व होती हैं तो उसे यह अहसास होता है कि वह बहुत कुछ कर सकती है। वह झूले में स्वयं झूल सकती है, रेत से घर बना सकती है, चित्र बनाकर उनमें रंग भर सकती है और गाना गा सकती है। स्वयं कार्य कर पाना उसे आत्मविश्वास की भावना प्रदान करता है। चाहे इस काल में वह काफी स्वावलम्बी हो जाती है, फिर भी बालिका के लिए वयस्कों का मार्गदर्शन निरंतर आवश्यक होता है।

शैशवावस्था में सीखे गये कौशलो में निपुणता/दक्षता का समय बाल्यावस्था हैं उस दौरान बच्चों में शारीरिक अंगों का समन्वय, सामाजिक व्यवहार का विकास होता है।

बाल्यावस्था का समय दो अवस्थाओं में विभाजित है– प्रारंभिक बाल्यकाल (दो से छः वर्ष) और मध्य बाल्यकाल (छः से बारह वर्ष)। प्रारंभिक बाल्यावस्था का समय शालापूर्व समय भी कहलाता है। क्योंकि इस उम्र में बालिका ऐसे कौशल सीखती है, जो भविष्य में शिक्षा से संबंधित कार्यों में उसकी मदद करेंगे। शालापूर्व उम्र की बालिका का भाषायी विकास तीव्र गति से होता है और वह प्रायः आस–पास की वस्तुओं व लोगों के बारे में

प्रश्न पूछती है। वह अंकों, रंगों आकारों के बारे में सीखती है व प्रतिदिन की घटनाओं के कारणों के बारे में समझने लगती है। इन सभी संकल्पनाओं का विकास वस्तुओं को वास्तविक रूप में देखने और विविध कार्यकलाप करने से ही होता है। किसी कार्य को सीखने के लिए उसे करना बहुत महत्वपूर्ण है। इस काल में बालिका मित्र बनाना सीखती है और लोगों से संबंधों को महत्व देने लगती है। इस अवस्था में बच्चों की कल्पनाशक्ति बहुत तेजी से बढ़ती है और उनकी यह कल्पनाशक्ति खेल में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उनकी रूचि ऐसे खेलों में होती है जिनमें उन्हें नाटक या अनुकरण करना है। इस उम्र के बच्चे देर तक एक साथ नहीं खेल सकते। कुछ समय बाद वे फिर अपने–अपने खेल खेलने लगते हैं चाहे वे एक साथ ही बैठे हों।

छः से बारह वर्ष की आयु वर्ग की बालिका अधिक परिपक्व हो जाती है और शालापूर्व बालिका की अपेक्षा उससे अधिक जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार की आशा की जाती है। बालिका के प्रति माता–पिता की आशाएं भी बढ़ती हैं। संभव है वह कुछ कार्यो के लिए घर से बाहर निकलने लगे और स्वयं पाठ्शाला भी जाने लगे। मध्य बाल्यावस्था वह समय है जब बालिका उन कौशलों को सीखने में संलग्न हो जाती है जो भविष्य में व्यवसाय चुनने में उसकी मदद करते हैं। बालिका की जानकारी का क्षेत्र तेजी से बढ़ता है। उसकी विचारशक्ति का विकास होता है और बाहर की दुनिया में रुचि तीव्रता से बढ़ती है। इस अवस्था में हमउम्र बच्चों के साथ बालिका के संबंध अधिक सक्रिय हो जाते हैं। खेलों में उनका आपसी सहयोग बढ़ता है और इसी कारण वे खेल के नियमों का पालन भी कर पाते हैं। सामूहिक खेल खेलना इस समय के विकास का परिणाम है।

बाल्यावस्था

प्रारंभिक बाल्यावस्था (प्रारंभिक बाल्यकाल)	**मध्य बाल्यावस्था (मध्य बाल्यकाल)**
i. 2 से 6 वर्ष शालापूर्व का समय	i. 6 से 12 वर्ष शाला का समय
ii. शालापूर्व का समय	ii. विचार शक्ति का विकास
iii. तीव्र भाषायी तथा कल्पना शक्ति विकास	iii. समूह में खेलना पसंद करते हैं। खेल के नियमों का पालन भी कर पाते हैं।
iv. खेल, अकेले खेलना पसंद करते हैं।	iv. जिम्मेदारी उठाने की तत्परता रखते हैं।

कुछ प्रश्न

1. आप एक 6 एवं 12 साल के बच्चे के व्यवहार का अवलोकन कीजिए एवं देखिये की उनके व्यवहार में क्या अंतर होता है?

2. सत्य – असत्य बताइए–

- बालक के तीव्र विकास की अवस्था शैशवावस्था होती है।
- प्रारंभिक बाल्यावस्था में बच्चे खेल के नियमों का पालन करते है।
- बाल्यावस्था , तीव्र संवेगात्मक परिवर्तन की अवस्था है।

किशोरावस्था (Adolescence)

अगली अवस्था किशोरावस्था है जो बारह से अठारह वर्ष होती है। यह अवस्था यौवनारंभ की अवस्था होती है। लगभग ग्यारह से चौदह वर्ष के आसपास की अवस्था यौवनारंभ कहलाती है, जब शारीरिक विकास बहुत

तेजी से होता है। इसके परिणामस्वरूप ऊंचाई और वजन तेजी से बढ़ता है। लड़कियों में वक्षस्थल का विकास इसके उदाहरण हैं। लड़कियों में यौवन का आरंभ लड़कों की अपेक्षा पहले होता है। तेज शारीरिक परिवर्तनों के कारण संवेदना के स्तर पर पुनः समायोजन की आवश्यकता होती है। इस उम्र में हमउम्र साथी बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं और किशोर अपने समूह के नियमों व संहिता का पालन करते हैं। समूह के प्रति निष्ठा और गर्व की भावना प्रबल होती है। कभी–कभी तो हम उम्र व्यक्तियों की मान्यताएं परिवार की मान्यताओं से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं। किशोरों से परस्पर विरोधी आशाएं रखी जाती हैं अर्थात् कभी तो उनसे बड़ों की तरह व्यवहार की अपेक्षा की जाती है तो कभी उनको बच्चे समझकर बर्ताव किया जाता है। इस अवस्था में उन्हें व्यवसाय भी चुनना होता है और संभवतः विवाह के लिए भी तैयार होना पड़े। किशोरावस्था के दौरान विचार और भी विकसित तथा अधिक जटिल हो जाते हैं। किशोर अलग–अलग परिस्थितियों को समझ सकते हैं और सम्भाल सकते हैं। वे अमूर्त समस्याओं के विषय में सोचकर उनका समाधान कर सकते हैं। ये सब उन भूमिकाओं व दायित्वों की तैयारी करने में किशोरों की मदद करते हैं जिनकी वयस्क होने पर उनसे अपेक्षा की जाती है। अठारह वर्ष की उम्र के बाद किशोर व्यक्ति कहलाता है। एक व्यक्ति को वयस्क मानने के लिए भिन्न–भिन्न मापदण्ड हो सकते हैं। एक मापदण्ड आर्थिक सामर्थ्य और दूसरा वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करना हो सकता है। परन्तु एक ओर तो कुछ परिवार में व्यक्ति 25 वर्ष की उम्र तक भी माता–पिता पर आर्थिक रूप से आश्रित रहते हैं, दूसरी ओर कुछ परिवारों में वयस्क होने से पहले ही उनका विवाह हो जाता है और वे व्यवसाय में जुट जाते हैं। यही वयस्कता की सामाजिक और कानूनी परिभाषा भी है। उदाहरणतः एक भारतीय 18 वर्ष की उम्र में मताधिकारी हो जाता है। कानूनी तौर से लड़कों और लड़कियों के विवाह की उम्र क्रमशः 21 व 18 वर्ष है। तथापि वयस्क किशोरावस्था तक शारीरिक परिवर्तन लगभग पूरे हो चुके होते हैं और व्यक्ति परिपक्व हो जाता है। आपको यह याद रखना चाहिए कि अवस्थाओं का यह विभाजन कड़ा नहीं है। ऐसा परिवर्तन क्रमिक और निरन्तर होने वाली प्रक्रिया हैं और इनसे हम जीवन के एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हैं। यद्यपि यह प्रक्रिया प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न रूप में घटित होती है। आजकल विकास के अध्येता यह नहीं मानते कि किशोरावस्था बीतने के साथ ही परिवर्तनों का अंत हो जाता है। वे विकास को जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया की तरह देखते हैं। विकास के इन सभी कालखंडों में होने वाले बदलाव, शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाओं का समेकित परिणाम होते हैं।

किशोरावस्था के गुण

- तीव्र शारीरिक विकास/बदलाव।
- तीव्र संवेगात्मक परिवर्तन।
- यौवनारंभ।
- भूमिकाओं एवं दायित्वों का निर्वहन।
- साथी समूह विशेष होते हैं।

कुछ प्रश्न

• किशोरावस्था को शारीरिक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक–भावनात्मक रूप से परिवर्तन का काल कहा गया हैं क्यों?

(iv) शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाएं

मनुष्य के विकास का सिलसिला कई परस्पर गुथी हुई प्रक्रियाओं के फलस्वरूप चलता रहता है। ये प्रक्रियाएँ शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक होती हैं।

शारीरिक प्रक्रियाएँ – व्यक्ति के शरीर में बदलाव लाती हैं। माता–पिता से विरासत में पाये आनुवांशिक गुणसूत्र हमारे मस्तिष्क का विकास, ऊंचाई और वज़न का बढ़ना, अंगों के संचालन का कौशल और किशोरावस्था में हार्मोनों के कारण होने वाले परिवर्तन, ये सभी विकास में शारीरिक प्रक्रियाओं की भूमिका दर्शाते हैं।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ – वे हैं जिनके कारण व्यक्ति के विचारों, बुद्धि और भाषा में परिवर्तन होते हैं। जब कोई शिशु पालने के ऊपर झूलता हुआ कोई खिलौना लटकता देख रहा होता है या थोड़ा बड़ा होकर दो शब्दों को जोड़कर छोटे वाक्य बनाता है, कविता याद करता है तो यह उसकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं होती हैं। थोड़ा और बड़ा होकर बच्चा गणित का सवाल हल करता है, कल्पना करता है कि फिल्मी सितारा बनना कैसा लगता होगा तो इन सभी कामों के पीछे संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ होती हैं।

सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाएं – इनके अन्तर्गत व्यक्ति के दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंधों में होने वाले परिवर्तन, भावनाओं के परिवर्तन और व्यक्तित्व में होने वाले बदलाव आते हैं। मां के स्पर्श के उत्तर में किसी शिशु का मुस्कुराना, किसी बच्चे का खेल में अपने साथी पर हमला करना, किसी साथी में अपना अधिकार जताने की भावना का विकास या किसी किशोरी में छलकता किसी मांगलिक आयोजन का उल्लास, ये सभी सामाजिक भावनात्मक विकास के परिचायक हैं।

शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक भावनात्मक प्रक्रियाएँ आपस में रस्सी के सूत्रों जैसी बारीकी से गुथी हुई होती हैं। ज़रा विचार करें कि मां के स्पर्श से किसी शिशु के चेहरे पर कैसी मुस्कान आती है। यह सहज छोटी–सी प्रतिक्रिया भी इन तीनों प्रकार की प्रक्रियाओं पर निर्भर हैं–शारीरिक प्रक्रियाएं–स्पर्श और उसकी प्रतिक्रिया में निहित शारीरिक कृत्य, संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ–जानकर किये गये कृत्यों को समझने की क्षमता और सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाएँ–मुस्कराना अच्छे विधायक भाव का लक्षण है और इससे शिशुओं को दूसरे व्यक्तियों से संबंध जोड़ने में मदद मिलती है।

यद्यपि हम इस वर्गीकरण के मुताबिक प्रत्येक प्रकार की प्रक्रियाओं का पृथक रूप से अलग–अलग हिस्सों में अध्ययन करेंगे तथापि यह ध्यान रखें कि उनका विकास पृथकता में नहीं होता। हम यहां एक बच्चे के संपूर्ण और समेकित विकास का अध्ययन कर रहे हैं जिसके पास सिर्फ एक ही परस्पर निर्भर मन और शरीर है।

कुछ प्रश्न

- अपने आस–पास के 4 वर्ष के बच्चे का अवलोकन कीजिए और बताइए कि उसके विकास में कौन–कौन सी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं हो रही हैं? उदाहरण भी दीजिए।

(v) विकास को प्रभावित करने वाली बातें

विकास को प्रभावित करने वाले मुद्दे, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सदियों से चर्चा में हैं

प्रकृति और पालन, निरंतरता और विच्छिन्नता, प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव

विकास के मुद्दों का मूल्यांकन

बच्चों के विकास के बारे में अनेक प्रश्न अभी भी अनुत्तरित हैं। उदाहरण के लिए विकास की शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रियाओं का प्रेरक बल वास्तव में क्या है? तथा शैशव में जो घटता है उसका मध्य बचपन और किशोरावस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है? विकासवादियों के द्वारा हासिल किये गये तमाम ज्ञान के बावजूद यह बहस अभी भी जारी है कि विकास प्रक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारकों का तुलनात्मक महत्व क्या है? और विकास के विभिन्न कालखंडों का आपस में कैसा संबंध है? बच्चों के विकास के अध्ययन में कुछ सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं–प्रकृति और पालन (Nature and Nurture) निरंतरता और विच्छिन्नता या अनिरंतरता (Continuity and discontinuity) तथा प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव (EarlyAnd later experience)।

• प्रकृति और पालन

प्रकृति और पालन के मुद्दे का संबंध इस बहस से है कि प्राथमिक रूप से विकास प्रकृति से प्रभावित होता है या पालन–पोषण से। यहां प्रकृति से आशय किसी जीव की जैविक शारीरिक विरासत से है जबकि पालन का तात्पर्य उसके परिवेशगत अनुभवों से है। अब लगभग कोई भी यह तर्क नहीं देता कि विकास को केवल प्रकृति या केवल पालन–पोषण के संदर्भ में समझा जा सकता है। लेकिन कुछ लोग जो प्रकृति के पक्षधर हैं वे दावा करते हैं कि विकास में सबसे प्रमुख भूमिका शारीरिक विरासत की होती है और कुछ अन्य लोग जो पालन के पक्षधर है, वे दावा करते हैं कि पालन का प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण होता है।

अब लगभग कोई भी यह तर्क नहीं देता कि विकास को केवल प्रकृति या केवल पालन–पोषण के संदर्भ में समझाया जा सकता है।

प्रकृति के पक्षधरों के अनुसार जैसे एक सूरजमुखी नियमबद्ध तरीके से बढ़ता है बशर्ते कि उसे प्रतिकूल वातावरण न हरा दे, ठीक वैसे ही व्यक्ति भी विकसित होता है। वातावरण में अनेकों भेद हो सकते हैं, परंतु आनुवांशिक गुणों का नक्शा ऐसा है कि हमारे बढ़ने में और विकसित होने में कई समानताएं दिखायी देती हैं। हम सभी बोलने से पहले चलने लगते हैं, दो शब्द इकट्ठे बोलने से पहले एक बोलते हैं, शैशव में बहुत तेजी से बढ़ते हैं फिर प्रारंभिक बचपन में कुछ कम तेजी से और किशोरावस्था में लैंगिक हार्मोनों का आवेग अनुभव करते हैं। परिवेश की ऐसी चरम दशाएं जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बंजर या प्रतिकूल है, विकास को अवरूद्ध कर सकती हैं लेकिन प्रकृतिवादी फिर भी आनुवांशिक रूप से पैदायशी प्रवृत्तियों के प्रभाव पर जोर देते हैं।

इसके विपरीत अन्य मनोवैज्ञानिक विकास में पालन या परिवेशगत अनुभवों के महत्व पर जोर देते हैं। अनुभवों के विस्तृत दायरे में व्यक्ति के शारीरिक वातावरण, पोषण, स्वास्थ्य की देखभाल, दवाओं और शारीरिक दुर्घटनाओं के अनुभवों से लेकर उसके सामाजिक परिवेश, परिवार, साथी, स्कूल, उसका समुदाय, प्रचार माध्यम और संस्कृति तक के सभी अनुभव आ जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी बच्चे का आहार इस बात को प्रभावित कर सकता है कि उसकी ऊंचाई कितनी बढ़ेगी या कि वह कितनी कुशलता से सोच पायेगा और समस्याओं को हल कर पायेगा। आनुवांशिक संरचना के बावजूद बांग्लादेश के किसी गांव में जन्मा और बड़ा हुआ बच्चा और अमेरिका के किसी सम्पन्न उपनगर में बड़ा हुआ बच्चा दोनों के कौशल संसार के बारे में सोचने के ढंग और लोगों के साथ व्यवहार करने के तरीकों में काफी फर्क होने की संभावना है।

• निरंतरता और विच्छिन्नता (Continuity and discontinuity)

ज़रा एक क्षण के लिए अपने स्वयं के विकास के बारे में सोचें। क्या आप अभी जो व्यक्ति हैं, वह आप क्रमशः धीरे–धीरे बने जैसे कि कोई पौधा धीरे–धीरे बड़ा होकर एक विशाल वृक्ष बन जाता है या कि आपने अचानक घटित होने वाले स्पष्ट परिवर्तनों का अनुभव किया जैसे कि एक इल्ली (Caterpillar) तितली में रूपांतरित हो जाती है।

निरंतरता और विच्छिन्नता का मुद्दा इस द्वंद्व पर ध्यान केन्द्रित करता है कि किस सीमा तक विकास सतत् क्रमशः जुड़ते हुए परिवर्तनों के द्वारा होता है। निरंतरता, यह स्पष्ट रूप से विभिन्न चरणों में घटित होती है। जो विकासवादी पालन पर जोर देते हैं वे विकास को एक क्रमिक, निरंतर होने वाली प्रक्रिया की तरह वर्णन करते हैं जैसे कि पौधे का वृक्ष बनना। परंतु जिनका जोर प्रकृति पर है वे अक्सर विकास को स्पष्ट रूप से भिन्न चरणों की श्रृंखला की तरह निरूपित करते हैं जैसे कि इल्ली का तितली में बदलना।

पहले निरंतरता पर विचार करें। जब एक पीपल का पौधा वृक्ष बनता है तो वह क्रमशः अधिक बड़ा पीपल बनता जाता है अर्थात् उसका विकास लगातार होता है। इसी प्रकार किसी बच्चे का पहला शब्द बोलना देखने

में एक अचानक होने वाली विच्छिन्न घटना लगती है, परंतु वह वास्तव में हफ्ता और महीनों से हो रहे विकास और अभ्यास का परिणाम होता है। किशोरावस्था का आगमन जो एक अन्य अचानक और विच्छिन्न ढंग से होने वाली घटना प्रतीत होती है वास्तव में कई वर्षों से चल रही प्रक्रिया होती है।

विच्छिन्नता की दृष्टि से देखने पर हर व्यक्ति के विकास का वर्णन ऐसे अलग–अलग चरणों की क्रमिक श्रृंखला की तरह किया जाता है जिनमें परिवर्तन का ढंग मात्रात्मक न होकर गुणात्मक होता है। जब इल्ली परिवर्तित होकर तितली बनती है तो वह अधिक इल्ली नहीं हो जाती बल्कि एक नयी जैविक संरचना बन जाती है। अतः इसका विकास विच्छिन्न ढंग से होता है। इसी प्रकार किसी बिंदु पर आकर कोई बच्चा संसार के बारे में अमूर्त निराकार ढंग से सोचने में सक्षम हो जाता है जो वह पहले नहीं कर पाता था। यह विकास का गुणात्मक और विच्छिन्न परिवर्तन है न कि मात्रात्मक और लगातार होता हुआ परिवर्तन।

कुछ प्रश्न

• बालक के समुचित विकास के लिये परिवेश तथा वंशक्रम दोनों आवश्यक हैं आपका इस कथन पर क्या विचार है लिखिए?

• बच्चे के द्वारा पहला शब्द बोलने की प्रक्रिया किस मायने में निरंतर विकास को दिखाती है और किस मायने में विच्छिन्न विकास को स्पष्ट कीजिए।

• प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव

प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव का मुद्दा इस बात पर केन्द्रित है कि बच्चे के विकास में प्रारंभिक अनुभव खास तौर से शैशवावस्था में होने वाले या परवर्ती अनुभव (बाद के बचपन में होने वाले किस हद तक निर्णायक भूमिका निभाते हैं। अर्थात् यदि शिशु को क्षति या कष्ट पहुंचाने वाले अनुभव होते हैं तो क्या उनका प्रभाव बाद में होने वाले अच्छे अनुभवों से मिटाया जा सकता है या प्रारंभिक अनुभव आधारभूत हैं वे शिशु के पहले बुनियादी अनुभव हैं तथा उन्हें बाद के बेहतर वातावरण से निरस्त नहीं किया जा सकता। जो लोग प्रारंभिक अनुभवों पर जोर देते हैं उनके लिए जीवन एक अटूट पगडंडी की तरह होता है, जिस पर किसी मनोवैज्ञानिक गुण के सूत्र को पकड़कर उसके मूल तक जाया जा सकता हैं। इसके विपरीत जो बाद के अनुभवों को महत्व देते हैं उनके लिए विकास एक नदी की तरह है जो लगातार उतरती, चढ़ती और बहती रहती है।

प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव के मुद्दे का लंबा इतिहास है और इस पर अभी भी विकासवादियों में गरमागरम बहसें होती रहती हैं। यूनानी दार्शनिक प्लेटो का ख्याल था कि वे बच्चे जिन्हें पालने में झुलाया गया हो बेहतर खिलाड़ी बनते हैं। 19वीं सदी के अमेरिका पादरी अपने उपदेशों में लोगों से कहते थे कि उनके शिशुओं से वे जैसा बर्ताव करेंगे वही उनका परवर्ती बाद का चरित्र निर्धारित करेगा। कुछ विकासवादियों का तर्क है कि यदि शिशुओं को जीवन के पहले दूसरे साल में भावों की ऊष्मा से भरी स्नेहिल देखभाल का अनुभव न मिले तो उनका कभी भी पूरी तरह समुचित विकास नहीं होगा।

दूसरी ओर परवर्ती अनुभव की वकालत करने वाले मानते हैं कि विकास के पूरे दौर में बच्चे लचीले, नमनीय होते हैं और इसलिए बाद की संवेदनशील देखभाल भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की शुरू की संवेदनशील देखभाल। अनेक जीवनपर्यन्त विकासवादी जो विकास को पूरे जीवन तक चलने वाली प्रक्रिया मानते हैं वे इस बात पर जोर देते हैं कि विकास में बाद के अनुभवों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि शुरूआती अनुभवों का विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है, परंतु उतना ही जितना बाद के अनुभवों का होता है। एक विद्वान के अनुसार जिन बच्चों में संकोची, अंतर्रोधी, झिझकवाला (inhibited) स्वभाव के लक्षण दिखायी देते हैं जिसे आनुवांशिक माना जाता है, वे यदि चाहें तो अपना व्यवहार बदल सकते हैं। उसने अपने

शोध में पाया कि दो वर्ष की आयु में संकोची स्वभाव वाले बच्चों के एक समूह में से करीब एक–तिहाई बच्चों का स्वभाव चार वर्ष की आयु तक पहुंचकर बदल गया था। फिर वे असमान्य रूप से संकोची या सहमे नहीं रह गये थे।

पाश्चात्य संस्कृति के लोगों में खासकर उनमें जो फ्रॉयड के सिद्धांतों से प्रभावित हैं, प्रारंभिक अनुभवों को परवर्ती अनुभवों से अधिक महत्वपूर्ण मानने की प्रवृत्ति रही है। अनेक एशियाई देशों के लोग मानते हैं कि लगभग 6–7 वर्ष की आयु के बाद होने वाले अनुभव उससे पहले के अनुभवों की तुलना में विकास के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। यह दृष्टिकोण पूर्वी सभ्यताओं में लंबे समय से चली आ रही इस धारणा पर आधारित है कि बच्चों के तार्किक कौशल के महत्वपूर्ण पक्षों का विकास मध्य बचपन में प्रारंभ होता हैं।

कुछ प्रश्न

• क्या आप ऐसे प्रारंभिक अनुभव को पहचान सकते हैं जिन्होंने आपके या आपके किसी परिचित व्यक्ति के विकास में योगदान दिया हो? क्या आप ऐसे परवर्ती अनुभव (जो अभी या तुरंत का अनुभव) बता सकते हैं जो आपके या आपके किसी परिचित व्यक्ति के विकास में सहायता दे रहा हैं?

(vi) बाल विकास की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सभी बच्चे विकास के दौरान भाषा बोलना सीख जाते हैं। भारत में रहने वाली बालिका अपने क्षेत्र की कोई भाषा सीखती है और स्पेन में रहने वाली बच्ची वहां की भाषा स्पैनिश। पाँच वर्ष का एक बालक स्कूल जाने लगता है उसी उम्र का दूसरा बालक दूध दोहने तथा खेती–बाड़ी में अपने पिता की मदद करता है और पाँच वर्षीय अन्य बालक सड़कों पर अखबार बेचता है। कुछ कारक जो कि बचपन के अनुभवों को प्रभावित करते हैं वे इस प्रकार हैं–परिवार में सदस्यों की संख्या और आर्थिक स्थिति परिवार तथा समुदाय के रीति–रिवाज, परम्पराएँ उनके नैतिक मूल्य और विश्वास, आवास, जैसे–गाँव शहर या जनजातीय क्षेत्र पहाड़ समतल रेगिस्तान अथवा तटवर्ती इलाका। जिस प्रकार के समाज में हम रहते हैं, वह हमारे बचपन को प्रभावित करता है।

यद्यपि हम व्यापक रूप में भारतीय संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों की बात कर सकते हैं, फिर भी हमारे देश में एक समूह के रीति–रिवाजों, विश्वासों और रहन–सहन के तरीकों में दूसरे समूह से भिन्नताएं हैं। हम एक समरूपी भारतीय संस्कृति की बात नहीं कर सकते। इसका कारण है समूहों के आर्थिक स्तर, शिक्षा, व्यवसाय, क्षेत्र, भाषा और धर्म में एक–दूसरे से भिन्नता। प्रत्येक समूह का बच्चा जो सीखता व अनुभव करता है वह दूसरे समूह के बच्चे से भिन्न होता है। अब हम उन सभी कारकों के बारे में पढ़ेंगे जिनसे बच्चों के अनुभवों में विविधताएं आती हैं।

(क) लिंग

बच्चे का लड़का या लड़की होना एक महत्वपूर्ण कारक है जो कि उसके अनुभव निर्धारित करता है। पालन–पोषण किस प्रकार हुआ, बच्चे को कैसे अवसर और सुविधाएँ मिलीं और अन्य लोगों का उसके साथ परस्पर संबंध कैसा था, यह सभी बातें अधिकांशतः बच्चे के लिंग से निर्धारित होती हैं। एक स्पष्ट भिन्नता जो हमें दिखाई देती हैं वह है उनका पहनावा। परन्तु इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली भिन्नता है–लोगों की लड़कों और लड़कियों के प्रति भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तियाँ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे देश के अधिकांश भागों में लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। लड़के का जन्म खुशी का मौका होता है जबकि कई परिवारों में लड़की के जन्म पर माता–पिता रो पड़ते हैं।

कई परिवारों में लड़कियों को कम प्यार मिलता है, उनकी परवाह भी कम की जाती है और अपेक्षाकृत उनकी देखभाल भी उचित नहीं होती तथा उन्हें भोजन, वस्त्र और संसाधन नहीं दिया जाता जबकि लड़के की

बीमारी पर तुरंत ध्यान दिया जाता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के लिए शिक्षा आवश्यक समझी जाती है। अधिकांश माता–पिता जहाँ एक ओर लड़के की पढ़ाई के लिए संपत्ति बेच देते हैं, दूसरी ओर इसी संपत्ति को वह लड़की के विवाह पर लगा देते हैं।

अधिकांश मामलों में लड़कियों के लिए आचार–संहिता कहीं अधिक सख्त है। लड़कों को दृढ़, स्वतंत्र और महत्वाकांक्षी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और लड़कियों से अपेक्षा की जाती है कि वे घर के कामकाज में निपुण हों, आज्ञाकारी हों तथा अन्य लोगों का आदर करें। स्वयं निर्णय लेने की योग्यता को लड़कियों में बढ़ावा नहीं दिया जाता और यदि लड़कियां ज्यादा बहस करती हैं, खुलकर हंसती हैं या जोर से बोलती हैं तो उनको डांट दिया जाता है। लड़की के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है जैसे कि वह अपने घर में स्थायी सदस्य न होकर अस्थायी सदस्य हो। हर समय उसको ससुराल के लिए तैयार करने के नज़रिए से शिक्षण दिया जाता है।

तथापि, उपर्युक्त चर्चा से केवल सामान्य प्रवृत्ति का पता चलता है। सभी लड़कियों के साथ उपेक्षा का व्यवहार नहीं होता। लड़कियों के प्रति कैसा व्यवहार होगा यह काफी हद तक उसके परिवार के सदस्यों पर निर्भर करता है। जिस परिवार में लड़के–लड़कियों में भेद नहीं होता वहाँ दोनों से समान व्यवहार किया जाता है। परिवार का आर्थिक सामर्थ्य एक अन्य कारक है जो लड़के और लड़की के प्रति माता–पिता के व्यवहार को प्रभावित करता है। इसी प्रकार सामाजिक वर्ग से भी बच्चों के अनुभव में भिन्नता आती है।

कुछ प्रश्न

• आपकी अब तक की शिक्षा में क्या आप को ऐसा अनुभव हुआ है कि किसी शाला या शिक्षक ने लड़के या लड़कियों में से किसी एक को ज्यादा महत्व दिया हो? इस लिंग भेद को समाप्त करने के लिए एक शिक्षक के रूप में आप क्या प्रयास करेंगे?

ख. सामाजिक वर्ग

व्यक्ति किस सामाजिक वर्ग का है इसका निर्धारण उसके परिवार की शिक्षा, व्यवसाय व आय द्वारा होता है। उच्च सामाजिक वर्ग के लोगों की आय अधिक होती है और वह बड़े मकानों में रहते हैं। कम आमदनी, गरीबी, निम्न शैक्षिक स्तर, रहने के लिए छोटे मकान आदि निम्न सामाजिक वर्ग से संबंधित होते हैं। धनी और निर्धन लोगों के बीच सामाजिक–आर्थिक दर्जों के कई स्तर हैं। सामाजिक वर्ग यह निर्धारित करता है कि बालिका को किस प्रकार के अवसर और सुविधाएं उपलब्ध होंगी। उसे पेट भर खाना, पहनने को कपड़ा और शिक्षा प्राप्त होगी या नहीं, बिजली–पानी की सुविधा उपलब्ध होगी या नहीं और रहने के लिए कैसी जगह मिलेगी, ये सभी उसके परिवार के सामाजिक आर्थिक दर्जे पर निर्भर करता है।

1. निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार

एक निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे अपनी सभी मूल आवश्यकताएं पूरी कर सकें। बच्चों को पर्याप्त भोजन और पहनने को कपड़े नहीं मिलते। सीमित संसाधनों के कारण लड़कियों को अपेक्षाकृत और भी कम हिस्सा मिलता है। निम्न वर्गीय परिवारों के पास घर के नाम पर एक या दो कमरे होते हैं जिनमें पूरा परिवार रहता है। बच्चे भी इसी भीड़ भरे माहौल में रहते हैं। झुग्गी–झोपड़ी और भीड़भाड़ वाले इलाकों में चारों ओर गंदगी और अस्वच्छता की वजह से संक्रामक रोग व बीमारियाँ हो जाती हैं। गरीब परिवार के बच्चों की कई आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती। अत्यधिक गरीबी में ये सभी कठिनाइयाँ बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चों को एक बार का भोजन भी मुश्किल से नसीब हो पाता है और आश्रय न होने के कारण वे सड़कों के किनारे या रेलवे स्टेशन आदि पर ही सो जाते हैं।

गरीब परिवारों के बच्चों पर छोटी सी उम्र में ही जिम्मेदारियां आ जाती हैं। आपने देखा होगा कि चार या पांच वर्ष की लड़कियां पानी लाने, ईंधन जमा करने, खाना बनाने और छोटे–मोटे कामों में माँ की मदद करने लगती है। लड़के पिता के व्यवसाय में मदद करते हैं – वे मवेशी की निगरानी करते हैं, खेती में सहायता करते हैं और पिता के साथ नाव में जाते हैं। अगर पिता का व्यवसाय किसी कौशल से संबंधित हो जैसे –बढ़ईगिरी, कुम्हारगिरी इत्यादि तब लड़के छोटे–मोटे कामों में उनकी मदद करते हैं। घर के कामकाज में माता–पिता की मदद करने के अतिरिक्त बहुत बच्चे घर के सुरक्षित वातावरण से निकलकर पैसे कमाने लगते हैं और परिवार की आमदनी को बढ़ाते हैं। वे घरेलू नौकर का, कारखानों में या फेरी वाले का काम करते हैं।

जब माता–पिता दोनों ही घर से बाहर काम करने जाते हैं तो छोटी लड़कियों का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व घर चलाना और अपने से छोटे बच्चों की देखभाल करना होता है। यदि घर में देखरेख के लिए लड़की न हो तो माँ शिशु को अपने कार्य स्थल पर अपने साथ ले जाती है। शिशु सारा दिन एक पालने में रहता है और माँ बीच–बीच में आकर उसको देखती रहती है। जब माता–पिता दोनों ही काम करते हैं तो बच्चों के साथ कम समय व्यतीत कर पाते हैं।

निम्न वर्ग की इन परिस्थितियों में शिक्षा को, विशेषतः लड़कियों की शिक्षा को बहुत कम महत्व दिया जाता है। जहाँ जीने के लिए ही संघर्ष करना पड़ता है, वहाँ माता–पिता शिक्षा को अनिवार्य कैसे समझेंगे ? बच्चे या तो अभिभावकों की काम में मदद करते हैं या पैसा कमाने में जुटे रहते हैं। इसके बाबजूद भी यदि संभव होता है तो निम्न सामाजिक वर्ग के बहुत से बच्चे स्कूल जाते हैं। इस प्रकार वे काम और पढ़ाई साथ– साथ करते हैं।

उत्तरदायित्व और अभावों का सामना करने के कारण बच्चे छोटी उम्र में ही भावनात्मक रूप से परिपक्व हो जाते हैं। वे दुनियादारी समझने लगते हैं। उदाहरणतः छोटी उम्र में ही बालिका फल–सब्जी के सही दाम देना सीख जाती है और अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है। संभव है वह दूर गाँव से रेल द्वारा शहर में काम की तलाश के लिए अकेली ही आई हो।

निम्न सामजिक वर्ग के बच्चों के लिए बाल्यावस्था जिम्मेदारी और व्यस्तताओं से भरी होती है। परंतु इन सब के बीच भी वे अपने कुछ सुखद अनुभव बटोर लेते हैं। समय–समय पर उन्हें माता–पिता से स्नेह, पोषण और प्रोत्साहन मिलता रहता है। पारिवारिक आमदनी में सहयोग देने की वजह से बच्चे की महत्ता और भी बढ़ जाती है। फिर भी ये बच्चे अच्छी आर्थिक स्थिति वाले घरों के बच्चों की तुलना में परिश्रमी एवं कठिन जिंदगी व्यतीत करते हैं।

2. मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के परिवार

मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है और उन्हें मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव नहीं होता। लड़कों और लड़कियों दोनों को ही पर्याप्त मात्रा में भोजन ओर कपड़ा मिलता है और आमतौर पर स्वास्थ्य की देखरेख में भी कोई कमी नहीं होती। अधिकांश परिवार बच्चों के लिए बाजार से खेल सामग्री, जैसे– गुड़िया, बंदूक, पहेली, खेल, ड्राइंग कापियाँ, रंग और किताब खरीद सकते हैं। आमतौर पर बच्चों को आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। उन्हें घरेलू काम में तथा छोटे बच्चों को मदद नहीं करनी पड़ती। एक संपन्न परिवार में बच्चे के पास ऐशो–आराम के अधिक साधन होते हैं। प्रायः उनके पास अधिक कपड़े होते हैं, ज्यादा महंगे खिलौने होते हैं। साथ ही साथ उन्हें अलग–अलग तरह का भोजन भी खाने के लिए मिलता है।

इन परिवारों में शिक्षा को प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण समझा जाता है। दूसरे अर्थों में बच्चे का एक मात्र लक्ष्य स्कूल में अच्छी तरह से पढ़ना होता है। आमतौर पर लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए शिक्षा समान रूप से महत्वपूर्ण समझी जाती है। परन्तु, फिर भी यह देखा गया है कि लड़कों को इस मामले में प्राथमिकता दी जाती है। अच्छे स्कूल में प्रवेश पाने के लिए तीन–चार वर्ष की कोमल उम्र से ही कड़ी शिक्षा आरंभ हो जाती है। अधिकांश बच्चों का दिन स्कूल जाने, घर लौटकर स्कूल का काम करने और खेलने में बीतता है।

आदर्श रूप से शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि बच्चे स्वावलंबी बनें और उनके विचारों में सुस्पष्टता व दृढ़ता आए। हमारे समाज के बदलते हुए मूल्यों के साथ–साथ इन विशेषताओं को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। परन्तु लड़कियों के प्रति इस मामले में पक्षपात अब भी दिखाई देता है। हालांकि एक ओर तो लड़कियों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, दूसरी ओर अभिभावक उनसे यह अपेक्षा करते हैं कि वे उनके अधीन ही रहें। लड़कियाँ अगर ज्यादा बोलती हैं, सवाल–जबाव करती हैं तो उन्हें यह कह कर डांट दिया जाता है कि इन आदतों से उन्हें भविष्य में कठिनाई होगी।

जैसा कि आपको आभास हुआ होगा कि संपन्न परिवारों के बच्चों का समय निश्चिंतता से गुजरता है तथा बच्चे उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठा पाते हैं।

बाल श्रम– आपने ऊपर पढ़ा कि कुछ बच्चे घर का काम करके, पारिवारिक व्यवसाय में अथवा पैसा कमाकर अभिभावकों की मदद करते हैं। जब बच्चे घर में या पारिवारिक व्यवसाय में काम करते हैं तो उनकी जरूरतों का पूरा ध्यान रखा जाता है, और उन्हें माता–पिता का स्नेह भी मिलता है। बच्चों के पास खेलने और मन बहलाने के लिए समय होता है। पारिवारिक व्यवसाय में काम का अनुभव बच्चे के लिए लाभप्रद हो सकता है और ऐसा करते हुए बच्चे कुछ ऐसे कौशल भी सीखते हैं जो कि बाद में उनको व्यवसाय चुनने में सहायक होते हैं। आर्थिक क्रियाकलाप में इस प्रकार से बच्चों का सम्मिलित होना बाल कार्य कहा जाता है जो कि बाल श्रम से भिन्न है, जिसके बारे में अब आप आगे पढ़ेंगे।

कुछ बच्चे अस्वस्थ, कठिन और शोषणकारी परिस्थितियों में काम करते हैं, जहां उन्हें कार्य के अनुरूप मजदूरी नहीं मिलती ओर जो काम वे करते हैं वे जोखिम भरे होते हैं। कोल्हू के बैल की तरह काम करते हुए उन्हें न तो खेलने और न ही स्कूल जाने का अवसर मिलता है। जो कार्य बच्चे करते हैं, प्रायः उनमें खास कौशल की आवश्यकता नहीं होती और भावी जीवन में व्यवसाय चुनने में भी मदद नहीं मिलती। इस प्रकार के काम का अनुभव उनके विकास में बाधा डालता है। कई छोटे पैमाने के और घरेलू उद्योगों में बच्चों को मजदूर रखा जाता है। सिवाकासी, तमिलनाडु में माचिस उत्पादन, मंदसौर, मध्यप्रदेश में पैंसिल उद्योग, जम्मू कश्मीर में कढ़ाई और अलीगढ़ में ताला उद्योग कुछ ऐसे ही उद्योग हैं, जहाँ बाल श्रम प्रचलन में है। उद्योगों में श्रमिक का काम करने के अलावा बच्चे घरेलू नौकर, क्लीनर या मैकेनिक का काम करते हैं। बहुत देर तक कमर तोड़ काम करने के बाद उन्हें मामूली मजदूरी मिलती है। आइए, अब हम अलीगढ़ के ताला उद्योग में काम कर रहे बच्चों की परिस्थितियों का जायजा लें।

इस उद्योग में छः और सात वर्ष के बच्चे कार्यरत हैं। वे दिन में औसत बारह से चौदह घंटे काम करते हैं। कुछ बच्चे तो अट्ठारह से बीस घंटे तक लगातार काम करते हैं। थक जाने पर वे या तो थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं, अथवा चाय पी लेते हैं। जिन कमरों में वे काम करते हैं वे खचाखच भरे हुए होते हैं ओर हवादार नहीं होते। साथ ही साथ वहाँ कार्य परिस्थितियां स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। बच्चों को जोखिम भरे कामों के लिए कम मजदूरी दी जाती हैं। विद्युत लेपन, हाथ की छपाई मशीन (हस्त प्रेस), स्प्रे पेंटिंग, पॉलिश व बफिंग मशीनों पर काम करना काफी खतरनाक होता है और इन कार्यों में 50 से 60 प्रतिशत मजदूर बच्चे ही होते हैं। उदाहरण के लिए विद्युत लेपन के लिए बच्चे अम्ल व क्षारीय घोलों में धातु को डुबोते हैं। इसमें प्रयुक्त पोटैशियम साइनाइड, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, क्रोमिक अम्ल, और सोडियम हाइड्रॉक्साइड जैसे रसायन बहुत खतरनाक होते हैं। बच्चे यह कार्य बिना ऐप्रन व दस्ताने पहने करते हैं। लगभग सारा दिन उनके हाथ इसी घोल में डूबे रहते हैं। यह उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। उन्हें विद्युत के झटके प्रायः लगते ही रहते हैं। छह–सात साल काम करने के बाद ही, जबकि उनकी उम्र केवल 13–14 वर्ष की होती है, वे त्वचा की बीमारियों, एलर्जी और कैंसर से ग्रस्त हो जाते हैं।

अलीगढ़ ताला उद्योग में काम कर रहे बाल श्रमिकों की परिस्थितियों को देखने से ज्ञात होता हैं कि किस प्रकार कुछ बच्चों के लिए अत्यधिक कठिनाइयां बाल्यकाल का हिस्सा बन सकती हैं तथापि हर बच्चे का बाल्यकाल ऐसा कठोर नहीं होता। बच्चे सामान्यतः खेलने और अपनी स्थिति के अनुकूल कौशलों के विकास के अवसर ढूंढ ही लेते हैं।

कुछ प्रश्न

• "निम्न सामाजिक वर्ग में आर्थिक परिस्थितियां, बालिका के कंधों पर जिम्मेदारी का पहाड़ लादती हैं।" तर्क दीजिये?

• बाल श्रम व बाल कार्य में अन्तर स्पष्ट करिये?

ग. धर्म

धर्म दैनिक जीवन से संबंधित नियमों, नैतिक मूल्यों और आचार संहिता को निर्धारित करता है। धर्म लोगों को परस्पर संबंध बनाने के दिशानिर्देश प्रदान करता है। सभी धर्मों में बच्चों के कोमल, बहुमूल्य बचपन को सीखने का समय माना गया है। बच्चों के अनुभवों में धर्म की वजह से भिन्नता धर्मानुष्ठानों और पूजा के अलग तरीकों के कारण होती है।

अधिकांश धर्मो में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के शुरू होने पर कुछ विशेष धार्मिक अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। एक धर्म के अनुष्ठान दूसरे धर्म के अनुष्ठान से भिन्न होते हैं। हिन्दुओं के कुछ धार्मिक अनुष्ठान निम्नलिखित हैं–नामकरण संस्कार (बच्चे का नाम रखना), अन्नप्राशन संस्कार (बच्चे को पहला अल्प ठोसाहार का दिया जाना), मुंडन संस्कार (पहली बार सिर के बाल उतरवाना), विद्यारम्भ (वर्णमाला से परिचय)। ईसाइयों की कुछ धर्मविधियां हैं– बपतिस्मा व प्रथम कम्युनियन। मुसलमानों में वयस्कों के साथ नमाज पढ़ना, धार्मिक कर्त्तव्य समझा जाता है। परन्तु, समाज में परिवर्तन आने के कारण कुछ परिवारों में इन विधियों का इतना कड़ा पालन नहीं किया जाता। सभी धर्मों में तीर्थ स्थानों और पवित्र चीजों के प्रति आदर प्रारम्भ से ही सिखाया जाता है।

घ. पारिवारिक संरचना और परस्पर संबंध

परिवार के सदस्यों का बालिका के साथ व्यवहार, घर के सदस्यों की संख्या और बालिका के साथ उनके संबंध कैसे हैं–ये सभी बालिका के अनुभवों को प्रभावित करते हैं। जिसे परिवार में बालक या बालिका के माता–पिता के अतिरिक्त अन्य लोग भी होते हैं, वहां उसकी देखभाल कई लोगों द्वारा की जाती है। अगर माँ बहुत व्यस्त है और बालक–बालिका की देखभाल नहीं कर सकती अथवा उसके साथ खेल नहीं सकती तो दादी, चाची घर के बड़े बच्चे या अन्य सदस्य तो हैं ही। बालिका कई लोगों के साथ भावनात्मक संबंध जोड़ती है, दूसरी ओर एक छोटे परिवार में, जहाँ माता–पिता और उनके एक या दो बच्चे होते हैं, बालिका की देखभाल अभिभावक ही करते हैं और बालिका लगभग सारा समय माँ के साथ रहती है। जब माँ घर में अकेली होती है तो वह काम के समय बालिका को सुरक्षित स्थान पर खिलौने आदि खेलने के लिए दे देती है। इस दौरान बालिका अकेली होती है। अगर बालिका दो या तीन वर्ष की है तो माँ अपना काम करते हुए उसे खेल में संलग्न कर लेती है। उदाहरण के लिए सब्जियाँ काटते समय वह बालिका को एक–एक करके सब्जियाँ पकड़ाने को कहती है। ऐसा करने में बालिका को बहुत मजा आता है। यदि घर के कामों के लिए नौकर हों तो माँ बालिका के साथ अधिक समय व्यतीत कर सकती है।

जिन परिवारों में माता–पिता दोनों ही काम पर जाते हैं वे बालिका को शिशु–गृह या घर में किसी बड़े भाई–बहन, या किसी नौकर के पास छोड़ जाते हैं। कई बार माँ बालिका को अपने कार्य–स्थल पर भी ले जाती

है। शिशु–गृह में उसे अन्य बच्चों के साथ एक वयस्क की देखरेख में दिन बिताना होता है। यह बालिका के लिए एक बिल्कुल अलग प्रकार का अनुभव होता हैं। जब माता–पिता दोनों ही काम पर जाते हैं तो वे बालिका के साथ कम समय व्यतीत कर पाते हैं। जिन दिनों, वे बहुत थके हों तो संभव है कि वे बच्चे की और पूरा ध्यान न दे पाएँ। तथापि, कितना समय साथ बिताया से अधिक महत्वपूर्ण सवाल है साथ बिताया हुआ समय 'कैसे बिताया गया।

यहाँ कैसे समय बिताया से तात्पर्य है कि देखभाल करने वाले और बालिका में अंतः क्रिया किस प्रकार की है। ऐसा भी संभव है कि एक व्यक्ति बालिका के साथ सारा दिन बिता दे परंतु उस की ओर समुचित ध्यान न दे न तो उसके साथ बात करें न ही खेले और न ही उचित रूप से बालिका के प्रश्नों का उत्तर दे। अर्थात् वह बालिका की उपेक्षा करता रहे। वयस्कों की प्रतिक्रिया से ही बच्चों को चाहे जाने और प्यार किए जाने का अहसास होता है। अतः बच्चों के साथ बिताये गये समय से यह नहीं जाना जा सकता कि बच्चे की देखभाल कैसी की गई है। यदि देखभाल करने वाला बच्चे की अच्छी तरह देखभाल करे बच्चे के साथ सार्थक संवाद स्थापित करे, उसकी जरूरत पूरी करे और उसकी समस्याओं की ओर समुचित ध्यान दे तो थोड़ा समय भी अर्थपूर्ण हो जाता है।

कभी–कभी पिता परिवार से दूर किसी अन्य शहर में रहता है। ऐसी स्थिति में परिवार का सारा उत्तरादायित्व माँ पर आ जाता है। कभी–कभी परित्यक्ता या विधवा होने के कारण माँ अकेले ही बच्चों का पालन करती है। अतः जीवनयापन के साथ ही बच्चों की देखभाल का उत्तदायित्व भी उस पर होता है। ऐसी स्थिति में बालिका जल्द ही आत्मनिर्भर होना सीखती है। संभव है कि ऐसे में वह अपने पिता के न होने का अभाव महसूस करे और अपने को अन्य बच्चों से भिन्न भी महसूस करे। माता– पिता में से एक का अभाव भी बच्चे पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। परंतु यह प्रभाव किस सीमा तक होगा यह परिवार के अन्य लोगों की उपस्थिति पर निर्भर करता है।

(ङ) परिस्थितिकी संदर्भ

परिस्थितिकी का तात्पर्य है वह भौतिक पर्यावरण, जिसमें व्यक्ति जीवन–यापन करता है। इसमें भौगोलिक स्थिति, वनस्पति, पशु जगत एवं प्राकृतिक संसाधन सम्मिलित हैं। परिस्थितिकी को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि उपलब्ध सुविधाएँ सड़क, अस्पताल, स्कूल व बिजली आदि किस प्रकार की हैं, अर्थात् अच्छी हैं या बुरी। खाद्य सामग्री, कपड़े व व्यवसाय, कार्य विभाजन व पुरूष और स्त्री की जिम्मेदारियाँ परिस्थिति से निर्धारित होते हैं।

ग्रामीण शहरी और जन जातीय क्षेत्रों की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। पहाड़ी मैदानी रेगिस्तानी और तटवर्ती क्षेत्र भी एक दूसरे से परिस्थिति के आधार पर भिन्न हैं। बच्चे वे कौशल सीखते हैं जो उन्हें परिस्थिति में जीवन–यापन के लिए मद्द करते हैं। पहले क्षेत्रों के गाँव में जहाँ भेड़ –पालन मुख्य व्यवसाय है बच्चे भेड़ों को चराने ले जाते है और ऊन बनाना भी सीखते हैं। इसी प्रकार तटवर्ती क्षेत्र के गाँव के बच्चे तैरना, नाव चलाना, मछली फाँसना, उसे साफ करना आदि सीखते हैं। रेगिस्तान में रहने वाले बच्चे ऊँट की देखभाल करना सीखते हैं और साथ ही साथ रेत के टीलों को पार करने में निपुण होते हैं।

इस इकाई में विभिन्न भौगोलिक स्थानों को ग्रामीण शहरी और जन जातीय क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि ग्रामीण समुदाय की कुछ खास विशेषताएँ होती है– चाहे वह तटवर्ती क्षेत्र में हो पहाड़ी क्षेत्र में हो या रेगिस्तानी क्षेत्र में. वे शहरी या जन जातियाँ इलाकों से भिन्न होते हैं। आगे की चर्चा इस विभाजन पर आधारित है।

शहर में रहने का अनुभव

जब आप शहर के बारे में सोचते हैं, तो पहले आपके ध्यान में क्या आता है? शहर में घनी आबादी और विविधता होती हैं। एक ओर अमीर लोग हैं, जो सब कुछ खरीदने की क्षमता रखते हैं। और दूसरी ओर वे गरीब हैं, जो जीवन निर्वाह के लिए परिश्रम करते हैं। भव्य तथा आलीशान घरों के समीप झुग्गी झोपड़ियाँ दिखाई देती हैं। उच्च आय वर्ग का एक पाँच वर्षीय बालक स्कूल जाता है, तो निम्न आय वर्ग का हमउम्र बालक नट का खेल दिखाकर अपनी जीविका अर्जित करता है।

शहरों में अस्पताल, होटल, स्कूल, सिनेमा, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, यातायात के विभिन्न साधन और अन्य कई सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। शहर में समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयुक्त सामान और सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं जिनके पास साधन हैं सर्वोत्तम सामान खरीद सकते हैं। बालिका किस प्रकार रहती है। किन सुविधाओं का उपयोग कर सकती है वह दिन कैसे व्यतीत करती है—ये सब उसके सामाजिक वर्ग और परिवार के मानदंडों से निर्धारित होता है। उदाहरण के तौर पर झुग्गी—झोपड़ी में रहने की स्थिति कुछ इस प्रकार की होती है कि बालिका को न चाहते हुए भी पता रहता है कि पड़ोस में क्या हो रहा है। लोगों के बीच व्यावहारिक आदान—प्रदान बहुत रहता है और बालिका कई साथियों के साथ बड़ी होती है। दूसरी ओर उच्च आय वर्गो के लोग बड़े व निजी मकानों में रहते हुए अपनी इच्छा अनुसार पड़ोसी से संबंध बनाते हैं। ऐसी स्थिति में अगर बालिका इकलौती हो तो संभव है कि जब तक वह स्कूल नहीं जाती तब तक उसकी कोई सहेली न हो। पर इन सब भिन्नताओं के बाद भी शहर में रहने वाले सभी बच्चों के अनुभवों में जो एक समानता है वह है शहरी जीवनयापन की तेज रफ्तार।

गाँव में रहने का अनुभव

एक चीज़ जो गाँव को शहर से अलग करती है वो है आबादी। गांव की आबादी शहरों की अपेक्षा कम होती है। छोटे गाँवों में अधिकांश लोग एक दूसरे को जानते हैं। गाँवों में यातायात, अस्पताल, सिनेमा, स्कूल और पक्की सड़कों जैसी सुविधाएँ शहरों की अपेक्षा कम होती हैं। यहाँ के जीवन की गति भी धीमी होती है। परिवार और जाति समूह के बीच कड़ी सीमाएँ नहीं होती हैं। परिणामस्वरूप संभव है कि बालिका दिन का काफी समय अन्य घरों में बिताए और अनेक साथियों के बीच बड़ी हो।

गाँवों के अधिकतर बच्चे अपने माता—पिता का व्यवसाय अपनाते हैं। चाहे वह खेती—बाड़ी हो या कोई शिल्पकारी, दस्तकारी, कारीगरी जैसे मिट्टी के बर्तन या गलीचे बनाना। बच्चों का अधिकांश समय माता—पिता की काम में मदद करते हुए बीतता है और माता—पिता को काम में मदद किस हद तक चाहिए, यह परिवार की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। अगर परिवार गरीब है तो सभी सदस्यों को काम में हाथ बटाना पड़ता है। यदि परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी है तो बच्चों को स्कूल जाने का समय मिल जाता है और स्कूल की छुट्टियों में वह माता—पिता की मदद करते हैं। बदलते हुए मूल्यों के साथ गाँवों में शिक्षा को महत्वपूर्ण मान्यता मिलने लगी है, जो माता—पिता समर्थ हैं वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं और बेटियों को कम से कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य देना चाहते हैं।

गाँवों में अस्पतालों और योग्य चिकित्सकों की कमी के कारण लोगों की कई बीमारियों का उचित उपचार नहीं हो पाता। अगर गाँव के आसपास कोई स्कूल न हो तो अधिकांश बच्चे औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। यातायात के अपर्याप्त साधनों के कारण बच्चे गाँव से बाहर नहीं जा पाते हैं। अतः उन्हें बाहरी दुनिया से परिचित होने का मौका नहीं मिलता।

जबकि एक शहरी बच्चे को अखबार, पत्रिकाओं, टेलीविजन और किताबों से विविध जानकारियाँ मिल जाती है। ग्रामीण बच्चों की तुलना में शहरी बच्चों की जानकारी का स्तर भिन्न होता है। तीन वर्षीय शहरी बालिका

यह जानकार हैरान होती है कि भैंसें दूध देती हैं क्योंकि उसके अनुसार दूध तो डिपो से बोतलों में आता है। इसके विपरीत गाँव की बालिका रोज ही भैसों को दुहते हुए देखा करती है। शहर में रहने वाली बालिका बड़े विश्वास से हवाई जहाज, कम्प्यूटर और मोटरकारों के बारे में बातचीत कर सकती है। संभव है गाँव की बालिका को इस प्रकार की जानकारी न हो, परंतु वह केवल पत्ता देखकर पौधों को पहचान लेती है और यह जानती है कि पौधे कैसे उगाये जाते हैं।

ग्रामीण जीवन में समानताएँ होते हुए भी प्रत्येक गाँव की एक अलग तस्वीर होती है। शहरों के नजदीक के गाँव में या उन गाँवों जिनमें औद्योगिक इकाइयाँ जैसे कि कारखाने या कोई अन्य उत्पादन इकाई हैं, वहाँ अस्पताल स्कूल और यातायात की सुविधा बेहतर होती हैं। रेडियो और टेलीविजन नेटवर्क के विस्तार से बाहरी दुनिया गाँवों तक पहुँच गई है। लोग अपना पारिवारिक व्यवसाय छोड़कर शहरों में अधिक आमदनी कमाने के लिए जाते हैं। दूसरी ओर राजस्थान का भैया गाँव जैसे दूरस्थ गाँव भी हैं। इस गाँव से निकटतम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र 60 किमी दूर है और एकमात्र अस्पताल 150 किमी दूरी पर जैसलमेर के पास है। नजदीकी प्राथमिक शाला 50 किमी की दूरी पर देवड़ा में है और निकटतम बस स्टाप 20 किमी की दूरी पर है। अब तो आप समझ ही गए होंगे कि अलग–अलग परिस्थितियों में अनुभव भी अलग–अलग प्रकार के होते हैं।

जनजातीय क्षेत्र में रहने का अनुभव

भारत में अनेक जन जातियाँ हैं और हर जनजाति में रीति रिवाज कानून व्यवसाय और महिलाओं व पुरूषों की भूमिकाएँ व उत्तदायित्व अलग–अलग हैं। जन जातीय जीवन में बहुत विविधता है। शहरों और कस्बों के नजदीक की जन जातियाँ बाकी दुनिया से बिल्कुल अलग रहती हैं। उनका बाहरी लोगों से ना के बराबर संपर्क होता है। ये जन जातियाँ लगभग पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होती हैं और केवल कुछ वस्तुओं के लिए ही बाहरी दुनिया पर आश्रित होती हैं। इस प्रकार की स्थिति में बालिका इस धारणा के साथ बड़ी होती है कि उसकी जनजाति की जीवनचर्या ही जीने का एकमात्र तरीका है। चलिये, अब हम पहाड़ी मढ़िया जनजाति के बारे में पढ़ते हैं जो छत्तीसगढ़ राज्य के जिले में है और जिसका बाहरी दुनिया से बहुत कम संपर्क रहता है। यहाँ जीवित रहने का एकमात्र साधन झूम खेती है। इसलिए सारा गाँव हर दो–तीन वर्ष में स्थान बदलता रहता है। भूमि पर सामूहिक स्वामित्व होने के कारण निजी जायदाद को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है। लोग बाहरी दुनिया पर केवल नमक, मिर्च और तंबाकू के लिए निर्भर हैं।

तथापि राज्य सरकार और स्वैच्छिक एजेंसियों की मध्यस्थता की वजह से पहाड़ी मढ़िया जनजाति बाहरी दुनिया से परिचित हो गई है। इस कारण उनके रहन–सहन में बदलाव आया है। अब वहाँ पर एक अस्पताल, स्कूल, व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र और उचित दर की दुकान भी है। हालांकि अधिकांश लोग अब भी गाँव के वैद्य के पास जाते हैं। यह जन जातीय गाँव जहाँ पहले पहुँचना कठिन था अब सड़कों द्वारा जिलों से जोड़े जा चुके हैं और सौर ऊर्जा का भी कुछ गाँवों में उपयोग किया जा रहा है। झूम खेती को व्यवस्थित खेती में परिवर्तन करने का प्रत्यन्न किया जा रहा है। भोजन संबंधी आदतों में भी बदलाव आया है।

कुछ प्रश्न

• आपके विकास में आपके परिवार का क्या सहयोग रहा या आपके अभिभावक की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने इस विकास को किस प्रकार प्रभावित किया।

• एकल परिवार में माता–पिता दोनों के कामकाजी होने से बालिका का विकास किस तरह प्रभावित होता हैं। उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

• आपके विचार में बच्चों को दिए गए समय की तुलना में यह ज्यादा महत्तवपूर्ण क्यों हैं कि बच्चों के साथ किस तरह का समय बिताया गया है?

(vii) बच्चों के बारे में जानने के तरीके

बच्चों के साथ कार्य करने के लिए बच्चों को जानना जरूरी है। इस अध्याय में हम बच्चों को जानने के कुछ तरीकों/प्रक्रियाओं के बारे में जानेंगे।

जैसे– 1. बच्चों का अवलोकन करना

2. उनसे बातचीत करना

3. उनके बारे में जानने के लिए उनसे, उनके परिवार से, उनसे संबंधित अन्य लोगों से बातचीत करना एवं समय बिताना। इन तीनों प्रक्रियाओं को अध्ययन की भाषा में–

a) अवलोकन प्रक्रिया

b) सर्वे या साक्षात्कार प्रक्रिया

c) व्यक्तिगत अध्ययन प्रक्रिया कहा जाता है।

अध्ययन की बहुत सारी प्रक्रियाओं में से हम इन तीनों प्रक्रियाओं को जानेंगे। इन तीनों प्रक्रियाओं का उपयोग एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों के जीवन विकास के पहलुओं को जानने, बच्चों के आपसी संबंध, सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का प्रभाव आदि समझने और आत्म निरीक्षण करने में उपयोग कर सकते हैं। शाला अनुभव के समय अध्यापक इस प्रक्रिया का उपयोग कर इसकी उपयोगिता समझ सकते हैं।

इन तीनों प्रक्रियाओं का उपयोग एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों के विकास को जानने और आत्म निरीक्षण करने में कर सकते हैं।

1. अवलोकन प्रक्रिया

इस प्रक्रिया का उपयोग छोटे–बच्चों और शिशुओं की समस्याओं के अध्ययन के लिए किया जाता है। बाल मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन में इस विधि का सबसे पहले उपयोग जर्मनी में हुआ। अमेरिका के वाटसन ने इसका उपयोग बच्चों के प्राथमिक संवेगों के अध्ययन में किया। गैसेल ने चलित कैमरे (Moving Picture Camera) का उपयोग किया और चित्रों के विश्लेषण से बच्चों के व्यवहार के संबंध में जानकारी प्राप्त की। इस तरीके में ऐसी व्यवस्था भी हो सकती है कि अवलोकनकर्ता ही बच्चे को देख पाता है लेकिन बच्चा अवलोकनकर्ता को नहीं देख पाता है। उस प्रक्रिया में अवलोकन कक्ष का निर्माण किया जाता है। कक्ष में उपस्थित बच्चे के व्यवहार का अवलोकनकर्ता, अवलोकन कक्ष के बाहर से करता है। ये कक्ष इतने बड़े होते हैं कि कक्ष के अंदर घर जैसा वातावरण भी उत्पन्न किया जा सकता है। इस विधि में बाल व्यवहार के अवलोकन के लिए भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग–अलग तरीके अपनाए हैं जैसे डायरी वर्णन तथा बायोग्राफी लेखन आदि।

अवलोकन के पद

1. उपयुक्त योजना बनाना– अवलोकन आरंभ करने से पहले अवलोकनकर्त्ता को यह तय कर लेना चाहिए कि उसे किन लोगों का अवलोकन करना है और किस प्रकार के व्यवहार का अवलोकन करना है। अवलोकन के लिए क्षेत्र, समय, उपकरण के संबंध में पहले से योजना बना लेना चाहिए। पहले से योजना बनाने से हमारा उद्देश्य पूर्ण होता है तथा शुद्ध आंकड़े भी प्राप्त होते हैं।

2. व्यवहार का अवलोकन– अवलोकनकर्त्ता योजना के अनुसार व्यवहार के उस पक्ष का आँखों से तथा उपकरणों के द्वारा अधिक ध्यान से अवलोकन कर नोट करता है।

3. व्यवहार को नोट करना– अवलोकनकर्त्ता व्यवहार को नोट करने के लिए उपकरणों का उपयोग भी करता है जैसे मूवी कैमरा, टेपरिकार्डर आदि।

4. विश्लेषण– समस्या से संबंधित व्यवहारों के अवलोकन को नोट करने के बाद अवलोकनकर्त्ता प्राप्त अवलोकन को अंकों में बदलता है और उसका सारणीयन कर विश्लेषण करता है। यदि अवलोकन को आंकड़ों में बदलना संभव नहीं हो तो किसी अन्य अवलोकन के आधार पर अवलोकित व्यवहार का विश्लेषण किया जाता है।

5. व्याख्या और सामान्यीकरण– विश्लेषण करने के बाद अवलोकित व्यवहार की व्याख्या की जाती है। संभव हो तो यह व्याख्या विभिन्न सिद्धांतों के आधार पर की जाती है अथवा कारणों के विषय में विचार लिखे जाते हैं। परिणामों के विषय में देखा जाता है कि प्राप्त परिणाम कहाँ तक सामान्य जनसंख्या पर लागू होते हैं।

अवलोकन के प्रकारः

बच्चों के बारे में जानने के तरीके

1. अवलोकन प्रक्रिया

I. सरल व अनियंत्रित अवलोकन

II. व्यवस्थित अथवा नियंत्रित अवलोकन

III. सहभागी अवलोकन

I. सरल व अनियंत्रित अवलोकन– यहाँ वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में सूक्ष्मता से, यंत्रों की सहायता से अवलोकन किया जाता है। अवलोकित घटना की सत्यता की जांच का प्रयास नहीं किया जाता है।

1. विश्वसनीय परिणाम प्राप्त नहीं होते।

2. अवलोकनकर्त्ता की भावनाओं और विचारों के कारण दोषपूर्ण परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

3. भिन्न–भिन्न अवलोकनकर्त्ता एक ही समस्या का अवलोकन कर अलग–अलग निष्कर्ष निकालते हैं।

इस विधि की विशेषता यह है कि इसमें अवलोकनकर्त्ता का कोई नियंत्रण नहीं रहता। अतः कई मनोवैज्ञानिक अध्ययनों जैसे समाज मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान में इसका उपयोग होता है।

उदाहरण– एक सामान्य वातावरण में खेलते हुए बच्चों को देखना और उनके खेल व्यवहार के बारे में अनुमान लगाना।

II. व्यवस्थित अथवा नियंत्रित अवलोकन– जब अवलोकनकर्त्ता और घटना दोनों पर नियंत्रण करके अध्ययन किया जाए तब इसे व्यवस्थित अवलोकन कहते हैं।

उदाहरण– हर आयु के एक या दो बच्चों को एक निश्चित समय और एक निश्चित खिलौने से खेलते हुए अवलोकन करना।

एक दो साल के बच्चे की बॉल के साथ प्रतिक्रिया और एक पाँच तथा दस साल के बच्चे की प्रतिक्रिया का अवलोकन और बच्चों के खेल व्यवहार के बारे में निष्कर्ष निकालना।

III. सहभागी अवलोकन– इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता जिस समूह के व्यक्तियों के व्यवहार का अवलोकन करना चाहता है वह उस समूह में जाकर एक सदस्य के रूप में बस जाता है, घुल–मिल

जाता है और फिर उनके व्यवहार का अध्ययन करता है। इस विधि द्वारा छोटे समूह का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है।

इस विधि का दोष यह है कि अवलोकनकर्त्ता समूह से प्रभावित हो जाता है। उनके दुःख–दर्दों को अपना दुःख–दर्द समझने लगता है। इस अवस्था में उसकी मनोवृत्ति अवलोकन को प्रभावित करती है। अतः अवलोकनकर्त्ता कुशल तथा प्रशिक्षित होना चाहिए। इस विधि की एक सीमा और है कि इसके द्वारा छोटे समूह का ही अध्ययन किया जा सकता है।

उदाहरण– इस प्रक्रिया में बच्चों के खेल व्यवहार के अध्ययन के लिए अवलोकनकर्त्ता बच्चों के साथ एक संबंध बनाकर, घुल–मिल जाएगा और बच्चों की खेल प्रक्रिया में जुड़ जाएगा। बच्चों के साथ खेल में एक निश्चित समय बिताने के साथ–साथ अवलोकन कार्य करेगा और उनके व्यवहार के बारे में निष्कर्ष निकालेगा।

कुछ प्रश्न

• सरल, व्यवस्थित या सहभागी तरीके से– बच्चों को जानने के लिए आप किस तरह का अवलोकन करना पसंद करेंगे और क्यों?

• कोई एक विषय चुनें और उस पर समझ बनाने के लिए बच्चों के साथ तीनों प्रकारों का अवलोकन कर निष्कर्ष निकालें तथा तीनों निष्कर्षों में अंतर खोजें।

2.सर्वे और साक्षात्कार– यह जानकारी एकत्र करने का सबसे सरल और सर्वोत्तम तरीका है। लोगों से सीधे बातचीत कर जानकारी लेना एक सीधा साक्षात्कार करने का तरीका है। सर्वे भी इससे मिलती–जुलती प्रक्रिया है जो अधिक लोगों से जानकारी इकट्‌ठा करने में मदद करती है। कई बार इसे प्रश्नावली द्वारा जानकारी प्राप्त करना भी कहते हैं।

निश्चित प्रकार के मानकीकृत प्रश्न, लोगों की किसी भी विषय के प्रति मान्यता और अभिवृत्ति की जानकारी प्राप्त करने में उपयोगी होते हैं। एक अच्छे सर्वे में प्रश्न स्पष्ट और पक्षपात रहित हों यह जरूरी है। सूचनादाता बिना उलझे प्रश्नों के जवाब दे सकें।

सर्वे तथा साक्षात्कार का तरीका उदाहरणार्थ अभिभावकों की अभिवृत्ति (Attitude), किशोरों का ड्रग्स के प्रति दृष्टिकोण आदि के अध्ययन में उपयोगी होता है। यह दोनों विधियाँ साक्षात् व्यक्तिगत रूप से टेलीफोन द्वारा या इंटरनेट के माध्यम से जानकारी इकट्‌ठा करने में मदद करती हैं।

कुछ सर्वे और साक्षात्कार में प्रश्न अप्रतिबंधित और खुले होते हैं। जैसा कि आपके बच्चे के साथ संबंध के बारे में बताएं ? आपका स्कूल कैसा है? इस तरह के प्रश्न उत्तरदाता/सूचनादाता को खुलकर जवाब देने का मौका देते हैं और हमें विषय के बारे में कुछ विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने में मदद करते हैं।

उदाहरण– छत्तीसगढ़ की शालाओं को सुधारने के लिए क्या करना जरूरी है, आदि प्रश्न।

एक राष्ट्रीय परीक्षा में प्रश्न थाः ''निम्न चार विकल्पों (Possibilities) में से आपके अनुसार कौन सा विकल्प सबसे पक्के तौर पर सरकारी शालाओं को सुधारने में कामयाब होगा। हर कक्षा/वर्ग में एक योग्य और सक्षम शिक्षक, अभिभावक के पास निजी या सरकारी शाला में अपने बच्चों को पढ़ाने का विकल्प, उच्च कक्षा की पढ़ाई, अकादमिक मानक, आधे से ज्यादा सूचनादाताओं ने हर कक्षा में योग्य और सक्षम शिक्षक की आवश्यकता को चुना।

सर्वे और साक्षात्कार पद्धति की एक समस्या है कि ज्यादातर सूचनादाता ऐसे उत्तर देते हैं जो सामाजिक दृष्टि में मान्यता रखते हैं ना कि वह उत्तर जिन्हें वह सही मानते हो और उनकी व्यक्तिगत सोच दर्शाते हैं। उदाहरण– कोई भी किशोर यह जवाब नहीं देगा कि वह नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं, अगर वह सही में करते होंगे तब भी।

• किशोरों के व्यवहार को जानने हेतु अपने आस–पास के किशोरों से बातचीत कीजिये इस हेतु एक प्रश्नावली तैयार कीजिये?

केस स्टडी (व्यक्तिगत अध्ययन)– एक केस स्टडी यानी किसी व्यक्ति को गहराई से जानना। केस स्टडी को ज्यादातर मानसिक स्वास्थ्य के कार्यकर्ता उपयोग में लेते हैं। जब वे किसी व्यक्ति की विशिष्ट जीवन प्रणाली को दूसरे व्यक्ति की जीवन प्रणाली के साथ जांच नहीं पाते। यह विधि व्यावहारिक कारणों की वजह से उपयोग में ली जाती है।

एक केस स्टडी में एक व्यक्ति के डर, आकांक्षा, सपने, बुरे अनुभवों, पारिवारिक संबंध, स्वास्थ्य और सभी बातें जो कि एक मनोवैज्ञानिक को एक व्यक्ति का मन और व्यवहार समझने में मदद करती है की जानकारी प्राप्त की जाती है।

प्रसिद्ध केस स्टडी है एरीक एरिक्सन के द्वारा भारत के (Spiritual leader) आध्यात्मिक नेता महात्मा गांधी का विश्लेषण। एरिक्सन ने गांधीजी के जीवन को गहराई से समझा और युवावस्था में आध्यात्मिक पहचान का अध्ययन किया। गांधीजी की पहचान के विकास के विभिन्न हिस्सों को जोड़कर, एरीक्सन ने संस्कृति, इतिहास परिवार और अन्य कारक जो व्यक्ति की पहचान को प्रभावित करते हैं, का अध्ययन किया।

केस स्टडी (इतिहास) व्यक्ति के जीवन की गहरी और विस्तृत जानकारी देती है। पर हमें ऐसी जानकारी को सामान्य बनाने में सावधानी रखनी होगी। केस स्टडी का विषय और पात्र विशिष्ट वैयक्तिक इतिहास और वंशानुक्रम से होगा जो किसी और से मिलता–जुलता नहीं होगा। केस स्टडी किन्हीं अज्ञात निर्णयों पर आधारित होती है। मनोवैज्ञानिक जो केस स्टडी करते हैं वे दूसरे मनोवैज्ञानिक उनके निरीक्षण से सहमत होते हैं या नहीं। इसकी ज्यादातर जांच नहीं करते हैं।

कुछ प्रश्न

1. शाला अनुभव कार्यक्रम के समय एक सर्वे/साक्षात्कार कर आपकी कक्षा के बच्चों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति जानें व एक रिपोर्ट तैयार करें।

2. किन्हीं पाँच बच्चों का साक्षात्कार करें और उनकी रुचि, दिनचर्या, आकांक्षा आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त कर एक रिपोर्ट बनाएं।

3. आपकी कक्षा में यदि कोई बच्चा ऐसा है जिसके परिवार में पिता कोई व्यसन करते हैं। तब उस बच्चे के जीवन, पारिवारिक संबंध, पढ़ाई पर प्रभाव आदि को समझने के लिए एक केस स्टडी तैयार करें?

4. केस स्टडी व सर्वे में किन बातों को शामिल कर सकते हैं , छांटिए–

- ज्यादा संख्या में आंकड़े
- गहराई से विश्लेषण
- ऐसे निष्कर्ष जो बहुत लोगों पर लागू हो सकें
- विशिष्ट पहलुओं की खोज
- ऐसे निष्कर्ष जिन्हें बहुत लोग जांच सकें व मान सकें

सारांश

एक ही अभिभावक के दो बच्चों में शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक, भावात्मक/भावनात्मक भाषायी एवं ज्ञानात्मक क्षमता में अंतर होता है क्योंकि ये सब बालक/बालिका के बचपन के अलग–अलग अनुभवों से प्रभावित होते हैं। बाल–विकास का संबंध बालक/बालिका के व्यवहार में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों से है तथा ये परिवर्तन क्यों और कैसे होते हैं, बाल विकास का संबंध बच्चों की उस वृद्धि और व्यवहार से है जिसका प्रभाव उनके सम्पूर्ण जीवन काल पर पड़ता है।

विकास शब्द का प्रयोग व्यक्ति की उन शारीरिक और व्यावहारिक विशेषताओं में परिवर्तन के लिए किया जाता है जो कि क्रमानुसार उभरते है जिसमें निरंतर प्रगति होती है। क्रम के प्रत्येक चरण पूर्व चरण पर आधारित होता है। शरीर के आकार में बढ़ने को वृद्धि कहा जाता है। जो मापा जा सकता है वृद्धि मात्रात्मक होती है एवं विकास गुणात्मक।

बालक/बालिका में होने वाले विकास को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

1. गर्भावस्था (गर्भाधारण से लेकर जन्म तक)
2. शैशवावस्था (जन्म से लेकर 18 से 24 माह)
3. बाल्यावस्था (दो से बारह वर्ष)
4. किशोरावस्था (बारह से अठारह वर्ष)

बालक/बालिका में जन्म के पश्चात् शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक–भावात्मक विकास एवं परिवर्तन होता है। बच्चे का विकास कई कारकों के कारण प्रभावित होता है। ये कारक काफी चर्चा में रहे हैं तथा इस पर अभी भी चर्चा जारी है।

- प्रकृत्ति और पालन
- निरंतरता और विच्छिन्नता
- प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव

प्रकृति अर्थात् जैविक शारीरिक विरासत और पालन अर्थात् परिवेशगत अनुभव है। निरंतरता एवं विच्छिन्नता, विकास की गति से संबंधित है। क्या आज दिखाई दे रहा परिवर्तन अचानक हुआ या वह लम्बे समय से हो रहा था और अब परिलक्षित हुआ। निरंतरतावादी मानते हैं कि विकास सतत् क्रमशः जुड़ते हुए परिवर्तनों के द्वारा होता है जबकि विच्छिन्नता के अनुसार विकास अचानक घटित होने वाले स्पष्ट परिवर्तनों का अनुभव है।

प्रारंभिक और परवर्ती अनुभव भी बाल विकास में अहम भूमिका रखते हैं ऐसे अनुभव जो बच्चे को आरंभिक अवस्था में होते हैं प्रारंभिक अनुभव कहलाते हैं। परवर्ती अनुभव विकास की अवस्था में बाद में होने वाले अनुभव हैं।

बचपन के बहुत से अनुभव सार्वभौम होते हैं फिर भी सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण प्रत्येक बच्चे का बचपन भिन्न होता है। बचपन के अनुभवों को प्रभावित करने वाला एक कारक लिंग है। हमारे देश में लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है और यही कारण है कि खाने–पीने में, कपड़ों में, शिक्षा में और माता–पिता के प्यार में लड़कियों के साथ भेद–भाव किया जाता है। निम्न सामाजिक वर्ग के बच्चों की बहुत सी मूलभूत आवश्यकताएँ और अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं। आर्थिक कठिनाईयों के कारण बच्चों की छोटी उम्र में जल्द ही काम करना पड़ता है। कभी–कभी बच्चों को जोखिम भरे काम भी करने पड़ते हैं और वे स्कूल नहीं जा पाते। मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चों को इस प्रकार की कमियों का सामना नहीं करना

पड़ता है। जिस प्रकार के परिवार में वे रहते हैं और परिवार के सदस्यों का आपसी व्यवहार उसके विकास को प्रभावित करता है। पारिस्थितिकी का बालिका के कला–कौशल और योग्यताओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

• आप अपने बच्चों को जानने, समझने एवं पहचानने हेतु विभिन्न विधियों को उपयोग में लाते हैं–

• अवलोकन

• सर्वे / साक्षात्कार

• व्यक्तिगत अध्ययन (केस स्टडी)

1. सरल व अनियंत्रित अवलोकन वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का गहराई से व विभिन्न यंत्रों की सहायता से अवलोकन करते है, एक ही घटना के निष्कर्ष अलग अवलोकनकर्ता के अलग–अलग हो सकते हैं।

2. व्यवस्थित एवं नियंत्रित अवलोकन में घटना एवं अवलोकनकर्ता दोनों पर नियंत्रण होता है, यह अवलोकन नियंत्रित परिस्थितियों में किया जाता है।

3. सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता जिस समूह के व्यक्तियों के व्यवहार का अवलोकन करना चाहता है वह उस समूह में जाकर एक सदस्य के रूप में बस जाता है घुल–मिल जाता है और फिर अध्ययन करता है।

• सर्वे एवं साक्षात्कार में लोगों से सीधे बातचीत कर या लिखित प्रश्नावलियां भरवाकर उनके विचारों, अनुभवों, संबंधित जानकारी एकत्र करने में सहायक होता है। इससे सूचनादाता बिना उलझे प्रश्नों के जवाब दे पाते हैं।

सर्वे और साक्षात्कार पद्धति की एक समस्या है कि सूचनादाता द्वारा दिए गए अधिकांश ऐसे उत्तर होते हैं जो वह सही में सोचते हैं पर दर्शाते नहीं, बल्कि वे उत्तर ऐसे तो है जो समाज में आदर्श स्थिति दर्शाते हैं।

• केस स्टडी जिसमें किसी व्यक्ति को गहराई से जाना जाए। केस स्टडी व्यक्ति के जीवन की गहरी और विस्तृत जानकारी देती है।

स्वमूल्यांकन

1. आपके कौन–कौन से गुण, आपके परिवार के किस–किस सदस्य से मिलते हैं? आपके अनुसार यह गुण आपके वंशानुक्रम या वातावरण किससे प्रभावित हुए लगते हैं?

अभ्यास के प्रश्न

1. आपके मतानुसार वृद्धि एवं विकास में क्या अंतर है।

2. क्या एक ही परिवार के दो बच्चों के विकास में अंतर होता है – हाँ / नहीं, तो क्यों?

3. पारिवारिक संरचना एवं पारिवारिक संबंधों के आधार पर भी विकास निर्भर करता है अपने विचार लिखिए?

4. निरंतर विकास एवं विच्छिन्न विकास को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए?

5. प्रारंभिक एवम् परवर्ती अनुभव क्या हैं? उदाहरण द्वारा बतलाइए?

6. प्रकृति एवम् पालन की बाल विकास में क्या भूमिका है उदाहरण सहित बतलाइए।

7. मध्यम वर्गीय एवं गरीब परिवार के बच्चों के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु इन बच्चों से जानकारी अवलोकन एवं बातचीत से प्राप्त करें?

8. बच्चों के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी लेने हेतु आप क्या–क्या करेंगे?

9. आप अपने शिक्षण के दौरान लैंगिक भिन्नता से उत्पन्न स्थितियों को कैसे नियंत्रित करेंगे?

10. मानव के विकास की शारीरिक, संज्ञानात्मक एवं सामाजिक–भावनात्मक प्रक्रिया को उदाहरण देकर समझाइए।

11. शहरी और ग्रामीण परिवेश में रहने वाले बच्चों के शैक्षिक विकास की तुलना कीजिए।

12. आपकी शाला के ऐसे पांच बच्चों की सूची बनाइए, जो स्कूलिंग के साथ बाल कार्य भी करते हैं? इन बच्चों के संबंध में अपने विचार लिखिए? इन बच्चों के किन अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है और कैसे? विवेचना कीजिए।

13. एक किशोर की घनिष्ठता अपने परिवार से ज्यादा मित्रों से होती है, क्यों?

14. एक बच्चे को बचपन में बात–बात पर डांट पड़ती थी तथा उसका कक्षा के अन्य बच्चों से भी मेलजोल बहुत कम है। उसके इस व्यवहार का विश्लेषण कीजिए।

15. एक संकोची बालक को व्यवहार कुशल बालक बनाने के लिए आप क्या उपाय करेंगे?

अध्याय – 3
बाल विकास के पहलू

पाठ की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- उद्देश्य
- शारीरिक और गत्यात्मक विकास
- विकास की गति
- गत्यात्मक कौशलों का विकास
- विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
- संवेगात्मक विकास
  - नवजात शिशु अवस्था
  - प्रारंभिक बाल्यावस्था
  - किशोरावस्था
  - ऐरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत
- नैतिक विकास
  - नैतिक विकास क्या है?
  - पियाजे के सिद्धांत
  - कोलबर्ग के सिद्धांत
- मूल्यांकन
- सारांश

सामान्य परिचय

अभी तक के अध्यायों में हमने बाल विकास के बारे में कुछ बुनियादी जानकारी प्राप्त की। हम यह जान पाएं हैं कि विकास का एक सार्वभौमिक पैटर्न होता है। यह जन्म से वृद्धावस्था तक चलने वाली एक सतत् प्रकिया है। पर यह भी समझना जरूरी है, कि क्या विकास का कोई एक आयाम है या अनेक। यानि, किन–किन बातों का विकास होता है जैसे शरीर, संवेग, संज्ञान, नैतिक सोच आदि। दरअसल, विकास के विभिन्न पहलू होते हैं जो बालक के विकास को प्रभावित करते हैं। इन्हें हम इस इकाई में विस्तार से समझेंगे।

उददेश्य

1. शारीरिक और गत्यात्मक विकास के सिद्धांत, विकास की गति एवं विकास की दिशाओं को समझना।
2. संवेगात्मक व नैतिक विकास के सिद्धांतों, गति एवं दिशा को समझना।
3. मनोसामाजिक विकास के सिद्धान्त, गति एवं दिशा को समझना।
4. विकास के विभिन्न चरणों को जानना।
5. विकास पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न कारकों को जानना।

   (इकाई 4 में संज्ञानात्मक विकास के पहलू पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।)

(i) शारीरिक और गत्यात्मक विकास

(क) विकास के सिद्धांत

आपने विकास के बारे में पढ़ा है। विकास क्रमिक और प्रगतिशील होता है और उसके परिणामस्वरूप जो परिवर्तन आते हैं, वे लम्बे समय तक टिके रहते हैं। इस भाग में आप उन सिद्धांतों के बारे में पढ़ेंगे जो विकास को निर्धारित करते हैं।

विकास की दिशा

शारीरिक और गत्यात्मक विकास दो दिशाओं में होता है। एक दिशा है सिर–से–पैर की दिशा (सिफेलोकॉडल) और दूसरी दिशा है शरीर के मध्य से बाहर की दिशा (प्रोक्ज़िमोडिस्टल)। सिर से पैर की दिशा वह क्रम है जिसमें सबसे तेज विकास सिर–से–पैर की दिशा में होता है। शारीरिक भार, ऊँचाई और नाक–नक्शे में परिवर्तन क्रमशः ऊपर से नीचे की तरफ होते हैं, उदाहरण के तौर पर गर्दन से कंधे की तरफ, धड़ की तरफ, और अंततः टांगों वाले हिस्से में ये परिवर्तन होते हैं। यही पैटर्न सिर वाले हिस्से में भी दिखाई देता है ; सिर के ऊपरी हिस्से जैसे आँखें और दिमाग, निचले हिस्सों जैसे जबड़ों की तुलना में तेजी से बढ़ते हैं। यह सिद्धांत प्रसव–पूर्व तथा प्रसवोपरांत जन्म के बाद विकास, दोनों में लागू होता है। यह देखा गया है कि भ्रूण में सबसे पहले सिर वाला हिस्सा, उसके बाद धड़ और उसके बाद टांगे विकसित होती हैं। वस्तुतः गर्भावस्था के आठ सप्ताह पश्चात् भ्रूण के सिर की लम्बाई, पूरी लम्बाई के आधे हिस्से के बराबर होती है। पूरी गर्भावस्था में अन्य अंगों की अपेक्षा सिर का विकास सबसे तीव्र गति से होता है। लेकिन इसका अभिप्राय ये नहीं हैं कि शरीर के शेष हिस्सों का विकास साथ–साथ नहीं होता। कहने का तात्पर्य ये है कि सिर अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से विकसित होता है।

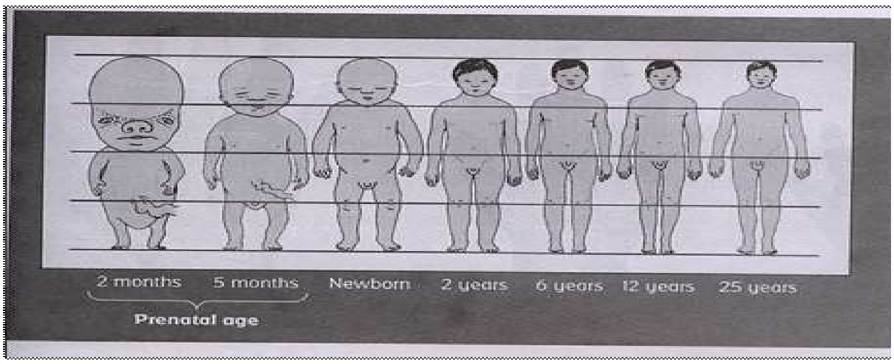

संरचना और प्रकार्यों में वृद्धि एवं विकास सर्वप्रथम सिर वाले हिस्से में होते हैं, उसके बाद धड़ में और अंततः टांगों वाले हिस्से में विकास होता है। यह सिद्धांत प्रसव–पूर्व तथा प्रसवोपरांत विकास, दोनों में लागू होता है।

विकास की दिशा के संदर्भ में यह बताना महत्वपूर्ण है कि जब शरीर का एक हिस्सा तीव्र गति से बढ़ रहा होता है तो उसके साथ–साथ शरीर के अन्य हिस्से भी विकसित तो होते हैं परंतु उनके विकास की दर, अपेक्षाकृत धीमी होती है। अतः प्रसव–पूर्व काल में चूंकि सिर का हिस्सा तीव्रतम गति से विकसित होता है, तो स्वाभाविक ही है कि जन्म के समय शरीर के अन्य हिस्सों की अपेक्षा यह ज्यादा विकसित होगा। जन्मोपरांत विकास का केन्द्र शरीर के अन्य निचले हिस्सों की ओर स्थानांतरित हो जाता है। जन्म के बाद धड़ की वृद्धि तीव्र गति से होती है, इसके पश्चात् बाहों और टांगों की वृद्धि की दर तीव्र होती है। जन्म से परिपक्व होने तक शरीर के विभिन्न भागों के आकार में वृद्धि पर ध्यान दें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। जन्म से परिपक्व होने तक सिर का आकार केवल दुगना होता है जबकि शरीर के निचले भागों को वयस्क शरीर का आकार प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है। वयस्क होने तक धड़ का हिस्सा लम्बाई में तीन गुना, बाहें एवं हाथ लम्बाई में चार गुना और टांगें एवं पैर लम्बाई में पाँच गुना बढ़ते हैं।

गत्यात्मक विकास भी सिर से पैर की दिशा में होता है। सिर वाले क्षेत्र की मांसपेशियां सबसे पहले नियंत्रित होती हैं जिसके फलस्वरूप आंखों और चेहरे की गतिविधियां नियंत्रित होती हैं। तत्पश्चात् गर्दन की मांसपेशियां

नियंत्रित होती है, बाद में धड़ और बाजू और अंत में टांगों की मांसपेशियों पर नियंत्रण हो पाता है। इसी के परिणाम स्वरूप आपने देखा होगा कि शिशु धड़ पर नियंत्रण करने से पहले चीजों को देखना शुरू करता है, बैठ पाने की योग्यता अर्जित करने के पूर्व सिर को टिकाना सीखते हैं और चलना सीख पाने से बहुत पहले ही हाथों का उपयोग करना शुरू कर देते हैं।

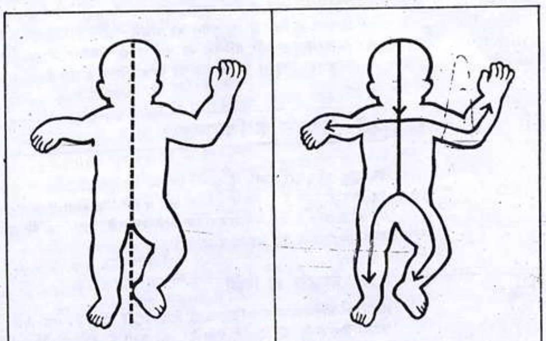

चित्र 3.1 केन्द्रीय कक्ष

चित्र 3.2 विकास की दिशा – मध्य-से-बाहर और सिर-से-पैर

शारीरिक और गत्यात्मक विकास की दूसरी दिशा है शरीर के अक्ष से बाहरी ओर। इसमें विकास का क्रम शरीर के अंदर से बाहर की ओर होता है। चित्र दो में शरीर का केन्द्रीय अक्ष दिखाया गया है। जो अंग और मांसपेशियां शरीर के अक्ष के नजदीक होती हैं, वे पहले विकसित होती हैं और जो अक्ष से दूर होती हैं वे बाद में विकसित होती हैं। जन्म पूर्व सिर, धड़, हृदय और उदर, जो शरीर के मध्य में स्थित हैं, वे पहले विकसित होते हैं। भ्रूण की बांहें व टांगें जो कि अक्ष से दूर होती है, वे बाद में विकसित होती है, और अंगुलियां व पंजे जो बिल्कुल अंतिम छोर पर होते हैं, वे सबसे अंत में विकसित होते हैं। यह सिद्धांत गत्यात्मक समन्वय में भी प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। सबसे पहले शिशु कंधों की मांसपेशियों का प्रयोग करते हुए बांहों को नियंत्रित रूप से हिला पाते हैं। ये मासपेशियां अक्ष के पास होती हैं। धीरे–धीरे वे कोहनी की मांसपेशियाँ, तत्पश्चात् कलाई की और सबसे अंत में अंगुलियों की मांसपेशियों पर नियंत्रण कर पाते हैं। यदि आप शिशु को किसी वस्तु की और हाथ बढ़ाते हुए देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। तीन महिने की बालिका अपने पास पड़ी वस्तु को लेने के लिए पूरी बांह का प्रयोग करती है। जैसे–जैसे वह बड़ी होती है, पास पड़ी वस्तुओं तक पहुंचने के लिए केवल कोहनियों का प्रयोग करती है। इस प्रकार किसी वस्तु को उठाने के लिए बालिका पहले पूरे हाथ का प्रयोग करती है और केवल अंगुलियों से वस्तुओं को उठाना वह बाद में सीखती है। इससे स्पष्ट है कि बालिका अंगुलियों की मांसपेशियों (जो शरीर के सिरे पर होती हैं) के प्रयोग से पहले कंधे की मांसपेशियों (जो मध्य के पास होती हैं) का प्रयोग करती है। इसी प्रकार बालिका पंजों पर नियंत्रण करने से पहले अपनी टांगों की गतिविधियों पर नियंत्रण पाती है। इन उदाहरणों से मालूम होता है कि बालिका पहले शरीर की बड़ी मांसपेशियों में तालमेल कर पाती है क्योंकि वे अक्ष के समीप हैं और इसके बाद ही छोटी मांसपेशियों में तालमेल करती हैं जैसे अंगुलियाँ और पंजे जो सिरे की ओर होते हैं। चित्र क्रमांक 3.1 और 3.2 विकास के दोनों सिध्दांत सिर–से–पैर की ओर व अक्ष से बाहरी सिरे की ओर दर्शाता है।

कुछ प्रश्न

- शिशु का शारीरिक और गत्यात्मक विकास किस तरह से होता है?
- प्रसव पूर्व और प्रसव के उपरांत के विकास के क्रम में क्या अंतर होता है?
- जब सिर का विकास तीव्र गति से होता है तब क्या शरीर के अन्य शेष हिस्सों का विकास नहीं होता है?

(ख)– शरीर के आकार में वृद्धि

पैदा होने से लेकर युवा अवस्था तक शरीर का वजन व ऊंचाई बढ़ती है। यह प्रक्रिया कभी बहुत तेजी से और कभी बहुत धीमी गति से होती है। पैदा होने के समय से अपने पहले जन्मदिन तक किसी भी बच्चे की ऊंचाई डेढ़ गुना हो जाती है और दूसरी सालगिरह तक 75 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। इस दौरान शरीर का वजन चार

गुना बढ़ जाता है। शैशवावस्था में यह वृद्धि तेज और बाल्यावस्था में कुछ धीमी हो जाती है। यह गति किशोरावस्था में फिर तेज हो जाती है। नीचे औसत भारतीय बच्चों (बालक/बालिका) की ऊंचाई व वजन में वृद्धि का विवरण दिया गया। क्या आप इसे पढ़कर बता सकते हैं कि इन दोनों की वृद्धि में क्या समानता व असमानता है?

सारणी–1

आयु	औसत ऊंचाई से.मी.में		औसत भार कि.ग्राम में	
	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के
3 महीने से कम	55.0	56.2	4.2	4.5
3 महीना	60.9	62.7	5.6	6.7
6 महीना	64.4	64.9	6.2	6.9
9 महीना	66.7	69.5	6.6	7.4
1 वर्ष	72.5	73.9	7.8	8.4
2 वर्ष	80.1	81.6	9.6	10.1
3 वर्ष	87.2	88.8	11.2	11.8
4 वर्ष	94.5	96.0	12.9	13.5
5 वर्ष	101.4	102.1	14.5	14.8
6 वर्ष	107.4	108.5	16.0	16.3
7 वर्ष	112.8	113.9	17.6	18.0
8 वर्ष	118.2	119.8	19.4	19.7
9 वर्ष	122.9	123.7	21.3	21.5
10 वर्ष	128.4	124.4	23.6	23.5
11 वर्ष	133.6	133.4	26.4	25.9
12 वर्ष	139.6	138.3	29.8	28.5
13 वर्ष	143.9	144.6	33.3	32.1
14 वर्ष	147.5	150.1	36.8	35.7
15 वर्ष	149.6	155.5	38.8	39.6
16 वर्ष	151.0	159.5	41.4	43.2
17 वर्ष	151.5	161.4	42.4	45.7
18 वर्ष	151.7	163.1	42.4	47.4
19 वर्ष	151.7	163.4	42.4	48.1

Grownth and Development of Indian infants and children, Technical report series no.18, ICMR, 1972

(ग) विकास की गति

विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नताएं – सभी बच्चों में विकास का एक विशिष्ट अनुक्रम होता है। उदाहरणतः गत्यात्मक विकास के अंर्तगत सभी बच्चे पहले करवट लेना, बैठना, घुटनों के बल चलना, खड़े हो कर चलना आदि क्रमशः सीखते हैं। प्रत्येक बालिका विकास की इन सभी अवस्थाओं से गुजरती है। बच्चे भिन्न–भिन्न आयु में ये क्षमताएं प्राप्त करते हैं। संभवतः एक बालिका नौ महीने में चलना आरंभ करे और दूसरी तेरह महीने की उम्र में। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि विकास का अनुक्रम तो निश्चित होता है किन्तु विकास की गति में वैयक्तिक विभिन्नताएं होती हैं। इसीलिए विकास के एक विशेष चरण तक पहुंचने या एक विशेष क्षमता प्राप्त करने की उम्र में भी वैयक्तिगत विभिन्नताएं होंगी। विकास में इन वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण कुछ बच्चों को तीन वर्ष की उम्र में ही रंगों की पहचान हो जाती है और उनके नाम सीख लेते हैं जबकि कुछ बच्चे पांच वर्ष की उम्र तक यह सीख पाते हैं। संभवतः एक लड़की का मासिक धर्म 10 वर्ष की उम्र में ही आरंभ हो जाए और दूसरी का तेरह वर्ष की आयु में। ऐसा भी संभव है कि एक लड़के की वृद्धि तीव्र हो और वह बारह वर्ष की उम्र अपनी पूरी लम्बाई तक पहुंच जाए जबकि एक बच्चे की वृद्धि धीमी हो और वह सोलह वर्ष की उम्र तक ही अपनी लम्बाई प्राप्त कर पाए।

विकास की गति में लिंग संबंधित विभिन्नताएं – लड़कों और लड़कियों के विकास की गति में भिन्नताएं होती हैं। जन्म से पूर्व लड़के की तुलना में लड़की के कंकाल तंत्र में अधिक तेजी से वृद्धि होती है, इस कारण जन्म के समय बालिकाओं का कंकाल तंत्र बालकों की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। लड़कियों में यौवनारंभ भी लड़कों से दो वर्ष पहले होता है।

कुछ प्रश्न

• कुछ बच्चे एक समान उम्र के बाद भी दूसरे बच्चे की तुलना में अधिक लम्बे या कम लम्बे रह जाते हैं? इसके क्या कारण हो सकते हैं?

• उपरोक्त तालिका के अनुसार 13 से 14 वर्ष की आयु में लड़कों की ऊंचाई लड़कियों से अधिक है और वजन कम। इसके क्या कारण हो सकते हैं ?

• पिछले पृष्ठ पर दी गई भारतीय बच्चों (बालक / बालिका) की ऊंचाई व वजन में वृद्धि तालिका के अनुसार तीन माह की औसत लड़कियों की ऊंचाई व वजन लड़कों की तुलना में कम होता है किन्तु 10 वर्ष तक आते–आते लड़कियों का वजन व ऊंचाई लड़कों से अधिक होता है, क्यों?

(घ) गत्यात्मक कौशलों का विकास

बच्चों के शालापूर्व वर्ष गति, बल और समन्वय में वृद्धि के कारण विशिष्ट होते हैं। इस समय उनकी हड्डियां मुलायम और शरीर लचीला होता है जिससे वे और अधिक कौशल सीखने के लिए समर्थ होते हैं। वे नए–नए कौशल सीखते रहते हैं एवं निरंतर अभ्यास करते हैं। बच्चे कई शारीरिक क्रियाओं में भाग लेते हैं और अन्य बच्चों के साथ अधिक अंतःक्रिया करते हैं। उनके शरीर और क्रियात्मक कौशल उन्हें अधिक स्वतंत्र बनाते हैं और इन कौशलों के प्रयोग से बच्चे अपने वातावरण को समझ पाते हैं।

गत्यात्मक कौशलों को दो भागों में बांटा गया है –

अ. स्थूल गत्यात्मक कौशल

ब. सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल

अ. स्थूल गत्यात्मक कौशल – स्थूल गत्यात्मक विकास के फलस्वरूप बच्चे शारीरिक गतिविधियों का नियंत्रण एवं समन्वय सीखते हैं, जिससे वे गतिविधियों को कर पाने में, शारीरिक संतुलन, गति एवं नियंत्रण कर पाने में समर्थ हो पाते हैं। स्थूल क्रियात्मक कौशल हैं– चलना, दौड़ना, कूदना और पैरों से प्रहार करना, ठोकर लगाना आदि। स्वयं पैदल चल पाने की योग्यता बच्चों में आत्मनिर्भरता पैदा करती है। 11–15 माह की आयु के दौरान बच्चे बिना किसी सहारे के चलना शुरू करते हैं। जब बच्चे पहली बार पैदल चलने का प्रयास करते हैं, तो उनके दोनों पांव एक दूसरे के पास न पड़कर अधिक दूरी पर पड़ते हैं। 16–18 माह के होने पर चलते हुए किसी मेज या कुर्सी को धकेल सकते हैं। चलते हुए वे खिलौने व अन्य हल्की वस्तुओं को उठा लेते हैं। 18 माह की आयु के आस–पास वे छोटे–मोटे इधर–उधर के खिलौनों से हटाकर चलने के बजाए उनको लांघकर चलते हैं। लांघकर चलने में उन्हें ज्यादा मजा आता है। अगर पालना फर्श पर रखा हो तो बच्चे स्वयं उससे निकल सकते हैं। वही फर्नीचर जो पहले बच्चों के लिए बाधा था अब उनके लिये एक चुनौती बन जाता है। वे उसके ऊपर चढ़ते है और उसे धकेलते हैं। ढाई साल के बच्चे पैदल चल लेते हैं। तीन वर्षीय बच्चे, पीछे की ओर चल लेते हैं। पैदल चल पाने में माहिर हो कर वे दौड़ना शुरू कर कर देते हैं। 19–24 की अवधि के अंतर्गत बच्चे किसी का हाथ पकड़ कर सीढ़ियां चढ़ने लगते हैं, हालाँकि वे घुटनों के बल चल कर स्वयं सीढ़ियां चढ़ और उतर पाते हैं। खेल में बच्चे सीढ़ियों या बॉक्स पर से चढ़ते–उतरते हैं और इन्हीं क्रियाओं के दौरान कूदना सीख जाते हैं। प्रारंभ के प्रयास से बच्चे कूदने के लिए एक पांव तो उठा लेते हैं, परंतु दूसरे पांव को उठाने में घबराते हैं। इस कारण दोनों पावों को उठाकर कूदने की बजाय ऊंची सतह से मात्र उतरते हैं। 3 वर्ष के बच्चे को गेंद फेंकने और पकड़ने वाले खेल अधिक रूचिकर लगते हैं।

गतिशीलता बच्चों को खोज करने के अवसर प्रदान करती हैं। वे अपने आस–पास की दुनिया का अन्वेषण करते हैं और अन्य लोगों से संपर्क में आते हैं। गतिशीलता से संतुलन और समन्वय बेहतर होता है।

जब वे वस्तुओं को एक दूसरे के ऊपर रखते हैं, उन्हें धकेलते हैं और अपने खिलौने को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रखते हैं तब वे यह सीखते हैं कि वे अपने आसपास की चीजों पर क्या प्रभाव डाल सकते हैं। वस्तुओं और खिलौनों के साथ खेलते हुए स्थान और दिशा के बारे में भी उनकी जानकारी बढ़ती है। वे अपने अनुभवों से लगातार सीखते हैं। बच्चों के स्वबिंबन और स्वमान्यता के विकास में गतिशीलता की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अपने आप चल पाने की योग्यता बच्चों को स्वतंत्रता का एहसास दिलाती है, आत्म विश्वास दिलाती है और आत्म विश्वास के साथ चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाती है।

3–4 वर्ष के अधिकांश बच्चे दौड़ सकते हैं। इस उम्र में बेहतर नियंत्रण के प्रयास में वे दौड़ते समय अचानक रूकते हैं, फिर दौड़ते हैं और तेजी से कोनों पर मुड़ते हैं। पांच वर्ष की उम्र तक वे अपनी गति एवं दिशा पर नियंत्रण रख पाते हैं। इस समय तक दौड़ना शुरू करते समय और रूकते समय उनके नियंत्रण में सुधार आता है। अब बच्चों के कदमों की लंबाई का बढ़ना, बाधाओं से बच–बच कर भीड़–भाड़ में से रास्ता बनाना, एक दूसरे से दौड़ में आगे निकलना, सीढ़ियों पर ऊपर नीचे भागना शुरू हो जाता है। जैसे–जैसे बच्चों के क्रियात्मक कौशलों में सुदृढ़ता और संतुलन आता है वे एक साथ दोनों पांव जमीन से उठाकर समन्वित ढंग से कूदना सीखते हैं।

फुदकने की योग्यता अर्थात् दोनों पावों को एक साथ उठाकर उछल–उछल कर चलने की योग्यता कूदने के कौशल से बहुत घनिष्ठ रूप से संबंधित है। कूदना सीखने के पश्चात् ही बच्चे फुदकने लगते हैं। पांच वर्षीय बच्चे एक पांव पर लगातार दस या अधिक बार फुदक कर चल सकते हैं , परन्तु छह वर्ष की उम्र तक ही वे दोनों पांवों में से किसी भी एक पांव पर कुशलता से फुदक पाते हैं। जैसे–जैसे क्रियात्मक कौशल विकसित होते हैं, बच्चे अधिक नियंत्रण, समन्वय बना पाने में समर्थ हो जाते हैं। चलना, दौड़ना और कूदना मूल कौशल हैं,

जिनका विकास बाल्यकाल के प्रांरभिक वर्षों में सहज ही होता है, तथापि मूल कौशल सीखने के पश्चात् कुछ कौशलों को सीखना और उनका अभ्यास करना बच्चों के लिए आवश्यक होता है। उदाहरणतः साइकिल चलाना, कलाबाजी दिखाना, पेड़ पर चढ़ना, तैरना आदि। साढ़े तीन और पांच वर्ष की उम्र के बीच बच्चे गेंद फेंकना और फिर बांयी और घुमाते हुये गेंद फेंकते हैं। इस अवस्था में उनके पांव जमीन पर जमे रहते हैं। यद्यपि चार वर्ष की उम्र के बच्चे जोर लगाकर गेंद को बहुत तेजी से नहीं फेंक पाते, तथापि वे धड़ को हिलाए बिना ही अपनी बांहों को तेजी से घुमा सकते हैं। फेंकने की इस विधि के अभ्यास के जब और अवसर दिये जाते हैं तो उस क्रिया में बच्चे और सक्षम हो जाते हैं। 6 वर्ष की उम्र में वे जिस हाथ से गेंद फेंकते हैं उसी तरफ का अपना पांव भी आगे बढ़ाते हैं। साढ़े 6 वर्ष या और बड़े होने के बाद वे गेंद को अधिक समन्वित ढंग से फेंक पाते हैं। अब फेंकने की तैयारी में वे अपना वजन उस तरफ डालते हैं जिस तरफ उन्होंने गेंद पकड़ी होती है और फिर गेंद फेंकते समय वे अपना वजन दूसरी तरफ डालते हैं और बांह तथा कलाई दोनों के संतुलन से गेंद फेंकते हैं।

कुछ प्रश्न

• बच्चों की अपने आप चल पाने की योग्यता से और किस तरह के कौशलों को विकसित करने में मदद मिलती है?

• एक पांव से फुदकने के कौनसे खेल आप अपने आसपास के बच्चों को खेलते देखते हैं?

• इस खेल में सबसे कम उम्र के बच्चे का अवलोकन करके देखो? बड़े बच्चों में और उसमें क्या बातें अलग लगती हैं? और क्यों?

• आप किसी एक हाथ से अधिक दूरी तक गेंद फेंक पाते हैं किन्तु दूसरे हाथ से कम ऐसा क्यों होता है?

ब. सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल – बालिका के संसार के बारे में सीखने के विभिन्न प्रयासों में वस्तुओं को उठाने, पकड़ने और जांच परख करने की क्रियाएं भी शामिल होती हैं। जैसे–जैसे बालिका के हाथ और अंगुलियों की क्रियाएं समन्वित और नियंत्रित होती हैं, वह वस्तुओं को संभालने और जोड़–तोड़ मरोड़ करने में निपुण हो जाती है। 13–36 माह की अवधि के दौरान बच्चे अपने हाथों का प्रयोग अधिक कुशलता से कर पाते हैं। वे अब छोटी–छोटी वस्तुओं को बेहतर ढंग से उठा और पकड़ सकते हैं। परिणाम स्वरूप वे कई ऐसे कार्य कर लेते है जो कि पहले उनके लिए कठिन होते थे।

पकड़ना– 15 माह के बच्चे वयस्कों की भाँति अंगूठे और कनिष्ठिका अंगुली के प्रयोग से चीजों को पकड़ सकते है। कनिष्ठिका अंगुली और अंगूठे से किसी वस्तु को पकड़ पाने की यह योग्यता बहुत महत्वपूर्ण है और हम इसका प्रयोग अपने दैनिक जीवन में कई कार्यों जैसे– लिखने, बटन बंद करने या खाना खाने के लिए करते हैं। इस आयु वर्ग के बच्चे बटन, कंकड़ या बीज जैसी छोटी वस्तुओं को सफलतापूर्वक उठा सकते हैं। बच्चों के पकड़ने के कौशल का विकास होने पर गुटकों को एक के ऊपर एक रखकर जमाना, मजबूती से दोनों हाथों में गिलास को पकड़ना, स्वयं चम्मच से भोजन खाने की जिद का विकास होता है। तीन वर्ष के होने तक वे बिना गिराये खाना खा सकते हैं और पानी पी सकते हैं।

13–36 माह के बच्चों को कागज पर रंगीन पेंसिल की शारीरिक गतिविधियों में ही आनंद आता था तथापि शालापूर्व अवस्था में प्रवेश करते ही बच्चे अपनी लिखाई को नियंत्रित करने का प्रयत्न करते हैं और लिखे हुए चिह्नों तथा आस–पास की वस्तुओं में संबंध ढूंढ निकालते हैं। रंगीन पेंसिल से बनी लकीरें अब बालिका के लिए कागज पर बने निशान न होकर अर्थपूर्ण हो जाती है। 4 वर्षीय बच्ची रंगीन पेंसिल को अधिक मजबूती से पकड़ सकती है और अंगुलियों की छोटी पेशियों का बेहतर प्रयोग भी कर पाती है। 5 वर्ष की उम्र में उनके द्वारा बनाए गये व्यक्ति, मकान जानवर या पेड़ों की चित्रकारी को स्पष्ट पहचाना जा सकता है। जिस ढंग से

शालापूर्व बच्चे वस्तुओं को उठाते, पकड़ते, जांचते व समझते हैं, उससे उनका सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों का विकास प्रतिबिम्बित होता है। आंखों और हाथों के बेहतर समन्वय की वजह से शालापूर्व बच्चे गत्ते पर बने छेदों में से तार या मोटा धागा पिरो सकते हैं और कंचों को भी लुढ़काने मारने में निपुण हो जाते हैं। पाँच–छह वर्ष के होने पर उनमें से अधिकांश बच्चे स्वयं नहाने, कपड़े पहनने और बाल बनाने जैसे कुछ कार्यो को स्वयं करने की हठ करेंगे बालिका द्वारा संसार के बारे में सीखने के कई प्रयासों में वस्तुओं को उठाने पकड़ने और जांच परख करने की क्रियाएं शामिल होती है जैसे–जैसे बालिका के हाथ और अंगुलियों की क्रियाएं समन्वित और नियंत्रित होती हैं वह वस्तुओं को संभालने और जोड़–तोड़ करने में निपुण हो जाती है।

स्थूल क्रियात्मक कौशल

चलना, दौड़ना

कूदना

पैरों से प्रहार करना

आत्मविश्वास से स्वयं चल पाना आदि

सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल

वस्तु को पकड़ना

उठाना, जांचना, परखना

बटन लगाना

चम्मच, गिलास पकड़ना

स्वयं हाथों से भोजन करना आदि

कुछ प्रश्न

• मिट्टी से खिलौने बनाने के दौरान बच्ची को अपने कौनसे कौशलों का अभ्यास व कौनसे नए कौशलों को विकसित करने का अवसर मिलता होगा?

ड. विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

शैशवास्था से किशोरावस्था तक की अवधि में तीन बातों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पहली–पोषण, दूसरी–खेल या दुनिया को खोजने, समझने के लिए बच्चे द्वारा इंद्रियों का उपयोग और तीसरी–माता–पिता, पालक द्वारा उसे दिया जाने वाला सहारा तथा प्रेरणा।

पोषण

ऐसा हो सकता है कि किसी को अपने आहार से बहुत कम या अपेक्षाकृत बहुत अधिक पोषक तत्व मिल रहे हों। आहार संबंधी ऐसी स्थिति यदि लम्बे समय तक जारी रहे तो इससे कुपोषण की संभावना बढ़ सकती है। कुपोषण का शारीरिक विकास पर बुरा असर पड़ सकता है। कुपोषण शब्द से तात्पर्य है – अल्पपोषण अथवा अतिपोषण। अल्पपोषण वह स्थिति है, जब व्यक्ति को अपने आहार द्वारा बहुत कम पोषक तत्व मिल रहे हों। इसके विपरीत अतिपोषण वह अवस्था है, जब व्यक्ति को अपने आहार द्वारा अपेक्षा से अधिक पोषक तत्व मिल रहे हों। प्रारंभिक वर्षों के दौरान कुपोषण से मस्तिष्क के कुछ भाग और तंत्रिका तंत्र स्थायी रूप से प्रभावित हो सकते हैं। कुपोषण से वृद्धि दर और गत्यात्मक समन्वय भी प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त, कुपोषित बच्चे साधारणतः बहुत सक्रिय नहीं होते और गत्यात्मक कौशलों के साथ ही उनके संज्ञानात्मक कौशलों का विकास भी प्रभावित होता है।

बालिका को एक संतुलित और पोषक आहार देना जरूरी है। संतुलित आहार वह आहार है जिसमें शरीर के लिए अपेक्षित सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में होते हैं। पोषक तत्वों के पांच वर्ग होते है मांड, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज तत्व। जहां तक संभव हो, शालापूर्व बालिका के आहार में इन सभी वर्गों के पोषक तत्व होने चाहिए। चूंकि बच्चे अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होते हैं अतः उनके आहार में पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्रदान करने वाले पोषक तत्वों का होना अनिवार्य है। सक्रियता स्तर अधिक होने के साथ ही उनकी शारीरिक वृद्धि भी तीव्र

गति से होती है, अतः उनके आहार में प्रोटीन की प्रचुरता वाले खाद्य पदार्थ भी होने चाहिए। प्रारंभिक बाल्यावस्था में केल्सियम, विटामिन 'ए' और लौह तत्व की समुचित मात्रा उन्हें मिलनी चाहिए। वृद्धि के दौरान इन पोषक तत्वों की शरीर में अनिवार्यता महत्वपूर्ण है। कुछ खाद्य पदार्थ जिनमें प्रचुर मात्रा में कैल्सियम, लौह तत्व और विटामिन 'ए' होते हैं, विकास और वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। इनकी सूची नीचे दी गई है–केल्सियम : दूध और दूध से बने पदार्थ, जैसे मक्खन, घी, पनीर। लौह तत्व : हरी पत्तेदार सब्जियां, साबुत अनाज और दालें, गुड़। विटामिन 'ए' : पीले और नारंगी रंग के फल तथा सब्जियां जैसे पपीता, आम, कद्दू, गाजर और हरी पत्तेदार सब्जियां।

शालापूर्व बच्चों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार, पौष्टिक आहार मिले, यह सुनिश्चित करने के साथ ही उनके आहार अल्पाहारों के समय के बारे में जानना भी महत्वपूर्ण है। बालिका एक समय में ज्यादा नहीं खा सकती, अतः उसे थोड़ी–थोड़ी देर के बाद खाने को देना चाहिए। इस तथ्य का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अनुसरण की जाने वाली पद्धति में नियमितता होनी चाहिए। आहारों के बीच अंतराल न तो बहुत कम होना चाहिए और न ही बहुत ज्यादा। शालापूर्व बच्चों के एक दिन के आहार में दो गिलास दूध और तीन मुख्य आहार दे सकते हैं और मुख्य आहारों के बीच में आपको उन्हें ऊर्जा, प्रोटीन, केल्सियम, विटामिन 'ए' और लौह तत्व युक्त अल्पाहारों को भी देना चाहिए।

सुबह का नाश्ता, दोपहर और रात्रि का भोजन जो कि तीन मुख्य आहार हैं– उनमें बालिका वही खा सकती है जो परिवार के अन्य सदस्य उस समय खाते हैं। शोध अध्ययन दर्शाते हैं कि सुबह का पौष्टिक नाश्ता बालिका को शारीरिक रूप से सक्रिय और ध्यान मग्न रखने में सहायक होता है। माता–पिता, पालक व समाज की भूमिका को हमने इकाई बाल विकास परिचय में समझा है तथा खेल की भूमिका को हम आने वाली इकाई में समझेंगे।

कुछ प्रश्न

• दी गई तालिका में उन खाद्य पदार्थों के नाम लिखिए जिनमें केल्सियम, लौह तत्व एवं विटामिन 'ए' पाया जाता है?

कैल्शियम	लौह तत्व	विटामिन 'ए'

2. संवेगात्मक विकास

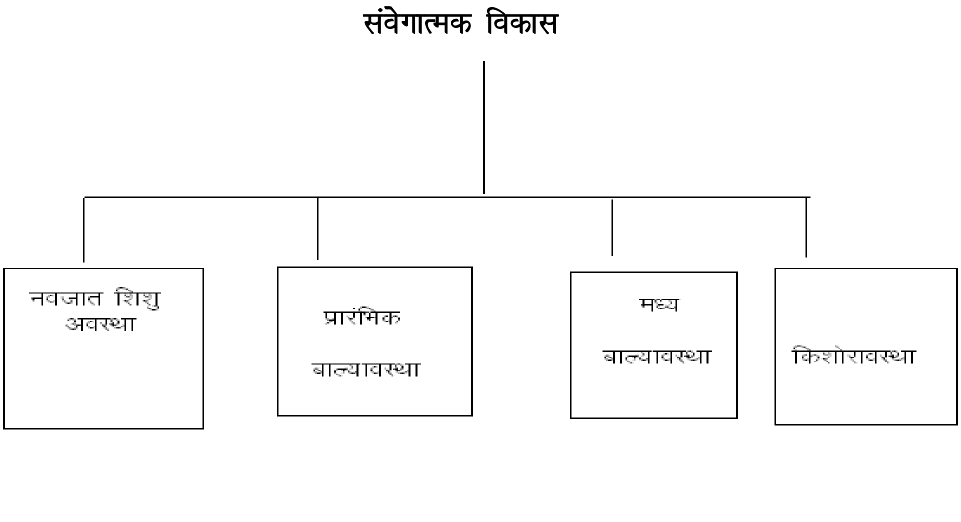

क्या एक किशोर का संवेगात्मक जीवन एक बच्चे के संवेगात्मक जीवन से भिन्न है? क्या एक बच्चे का संवेगात्मक जीवन, एक नवजात शिशु के संवेगात्मक जीवन से अलग है? इस भाग में हम देखेंगे कि नवजात शिशु अवस्था से किशोर अवस्था तक कौन–कौन से संवेगात्मक बदलाव आते हैं। हम न केवल संवेगात्मक अनुभवों में बदलाव देखेंगे बल्कि संवेगात्मक ''कॉम्पिटेंस'' का विकास भी देखेंगे। क्या एक नवजात शिशु का संवेगात्मक जीवन होता भी है?

- **नवजात शिशु अवस्था**

संवेगों में प्रारंभिक विकासात्मक बदलाव

प्रारंभिक संवेगात्मक विकास में शोध से पता चला है, कि संवेग को बड़े तौर पर दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्राथमिक संवेग जो कि मानव और पशुओं में पाए जाते है। इन भावनाओं के अंतर्गत आश्चर्य खुशी, रूचि, गुस्सा, दुख और भय आते हैं। ये सभी भावनाएं जीवन के प्रथम 6 महीनों में उपस्थित होती हैं।

2. ''सेल्फ कौन्शियस संवेग'' उसमें संज्ञान की विशेष तौर पर ''कौन्शियसनैस'' की जरूरत है। इसके अंतर्गत सहानुभूति, ईर्ष्या और शर्मिंदगी आते हैं जो डेढ़ से दो वर्ष की आयु में (कान्शियसनैस की उपज के बाद) नजर आते है। गर्व, शर्म, ग्लानि, जो ढाई वर्ष की आयु में पहली बार नजर आते हैए सेल्फ कौन्शियस संवेग के दूसरे सेट के संवेग है। इनके विकसित होने पर बच्चे सामाजिक मापदण्डों और नियमों को ग्रहण करते है और इन्हें अपने व्यवहार का मूल्यांकन करने में प्रयोग कर पाते है।

प्रारम्भिक भावनाएं	
4 मास	खुशी, दुख, चिढ़
2 से 6 मास	गुस्सा
प्रारम्भिक 6 मास	आश्चर्य
सेल्फ–कौन्शियस ''संवेग''	
1/2 से 2 वर्ष	ईर्ष्या, शर्मिंदगी, सहानुभूति
ढ़ाई वर्ष	गर्व, शर्म, अपराध बोध, ग्लानि

नवजात शिशु केवल प्रारंभिक संवेगों का अनुभव कर पाते हैं, व उनके संवेगात्मक हाव–भाव उन्हें अपने पहले संबंधों को बनाने में मद्द करते हैं। न केवल माता–पिता अपने बच्चों की संवेगात्मक हाव–भाव की प्रतिक्रिया में अपने संवेगात्मक हाव–भाव बदलते हैं बल्कि नवजात शिशु भी अपने माता–पिता की संवेगात्मक अभिव्यक्ति के उत्तर में अपने संवेग बदल लेते है।

रोना और हंसना ऐसी दो संवेगात्मक अभिव्यक्तियां है जो नवजात शिशु अपने माता–पिता से सम्पर्क बनाते हुए दिखाता है और ये नवजात शिशु के संवेगात्मक वार्तालाप के पहले प्रकार हैं।

1. रोना – यह नवजात शिशु के लिए विश्व से संपर्क बनाने के लिए सबसे जरूरी तरीका है। बच्चे के रोने की पहली आवाज से यह पता चलता है कि उसके फेफड़ों में हवा भर गई है। यह बच्चे के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के बारे में भी जानकारी देता है। बच्चे के रोने को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

(क) प्राथमिक रोना – इसमें एक लयबद्ध पैटर्न का प्रयोग होता है। रोना, उसके बाद थोड़ी देर की शांति फिर ऊँची ध्वनि में एक छोटी सीटी, फिर थोड़ा सा विश्राम अगले रोने तक। विशेषज्ञ मानते है कि इस प्रकार के रोने का मुख्य कारण बच्चे की भूख हो सकता है।

(ख) गुस्से में रोना – यह प्राथमिक रोने से भिन्न है क्योंकि इसमें गले की वोकल कॉर्ड से कहीं ज्यादा हवा बाहर फेंकी जाती है।

(ग) दर्द में रोना – अचानक से जोर से बहुत देर तक रोना जिसके बाद सांस रोक ली जाती है, इसमें बच्चा पहले रिरयाता नहीं है।

कुछ प्रश्न

- नवजात शिशु के रोने की पहली आवाज से क्या पता चलता है?

अधिकतर वयस्क ये पता लगा सकते हैं कि नवजात शिशु का रोना गुस्सा दिखा रहा है या दर्द। माता–पिता दूसरे बच्चों के रोने की तुलना में अपने बच्चों के रोने को बेहतर पहचान पाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या रोते हुए बच्चे की तरफ ध्यान आकर्षित करना चाहिए और उसे चुप करवाना चाहिए और क्या यह नवजात शिशु को बिगाड़ता हैं ?

बहुत समय पहले व्यवहारवादी जॉन बाटसन् ने यह कहा था कि माता–पिता अपने रोते हुए बच्चों की तरफ ध्यान देने में बहुत समय गुजारते है। उसका नतीजा यह होता है कि माता–पिता बच्चे के रोने को पुरस्कृत करते है जिससे शिशु की रोने की घटनाओं को बढ़ावा मिलता है। दूसरी तरफ मैरी ऐन्सवर्थ (1979) और जॉन बौल्बी (1989) इस बात पर जोर देते हैं कि शिशु के पहले वर्ष में आप उसके रोने पर जरूरत से ज्यादा ध्यान देने की बात सोच ही नहीं सकते। वे मानते हैं कि इस समय बच्चे के रोने को तुरन्त शांत करने और उसे दुलारने, दिलासा देने की बहुत जरूरत है क्योंकि इसी से शिशु और उसकी देख भाल करने वाले के बीच एक मजबूत संबंध बनता है। उनके अध्ययन में यह पाया गया कि जिन नवजात शिशुओं की माताएं बच्चे के रोते ही उन्हें तुरंत प्रतिक्रिया देती हैं उन शिशुओं का एक वर्ष की आयु तक बिगड़ना संभव नहीं है। अर्थात् माता–पिता को अपने रोते हुए शिशुओं को चुप कराना चाहिए, उनकी तरफ उदासीन नहीं होना चाहिए। इससे शिशु में एक विश्वास की भावना विकसित होती है और वह देखभाल करने वाले से जुड़ा हुआ महसूस करता है।

2. हंसना – यह एक और महत्वपूर्ण तरीका है, जिससे बच्चा अपने हाव–भाव प्रस्तुत कर सकता है। शिशु की मुस्कान को दो भॉगों में विभाजित किया जा सकता है।

(क.) रिफलेक्टिव स्माइल – वह मुस्कान जो बाह्य उद्दीपन की प्रतिक्रिया में उत्पन्न नहीं होती और जन्म के कुछ महीनों बाद तक दिखती है, अधिकतर नींद के दौरान।

(ख.) सामाजिक मुस्कान – वह मुस्कान जो बाह्य उद्दीपन की प्रतिक्रिया में उत्पन्न होती है। यह 2–3 मास तक उत्पन्न नहीं होती।

3. भय – भय बच्चों के प्रारंभिक संवेगों में से एक है जो 6 माह की आयु में पहले दिखाई देता है और 18 वे मास तक अपने उच्च्च स्तर तक पहुंच जाता है। जो हावभाव शिशु के भय में दिखायी देते है उनमें एक है अनजान व्यक्ति का भय। इसके अन्तर्गत नवजात् शिशु भय दर्शाता है और अंजान व्यक्ति से घबराता है। ''स्ट्रेन्जर एन्जाइटी'' धीरे–धीरे उत्पन्न होती है। यह सर्वप्रथम 6 माह की आयु में बच्चों में आती है। 9 महीने की आयु में अंजान व्यक्तियों का भय और भी गहरा जाता है और 1 साल की आयु तक बढ़ता ही जाता है। ऐसा जरूरी नहीं है कि हर नवजात शिशु एक अंजान व्यक्ति से तनाव महसूस करे। यह व्यक्तिगत भिन्नता के

अलावा सामाजिक संदर्भ और अंजान व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। नवजात शिशु स्ट्रेन्जर एन्जाइटी कम दिखाएगा अगर वह परिचित, वातावरण में है या मां की गोद में संरक्षित है। स्ट्रेन्जर एन्जाइटी के अलावा नवजात शिशु में अपनी देखभाल करने वाले से बिछड़ने का भी डर होता है। उसका नतीजा होता है बिछड़ने के विरोध में रोना। पालनकर्ता से अलग होने का विरोध हर संस्कृति में अलग–अलग होता है पर सभी जगह यह संवेग 13 से 15 महीने की आयु में सबसे चरम पर पहुंच जाता है।

सामाजिक संदर्भ से जन्मे संवेग – शिशु ना केवल अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं बल्कि दूसरे व्यक्तियों के हाव–भाव को भी पढ़ सकते हैं। इसमें चेहरे के भावों को पढ़ना शामिल है जो उन्हें यह जानने में मदद करते हैं कि किसी विशेष स्थिति में कैसे व्यवहार करना है। सामाजिक संदर्भ को जानने की क्षमता का विकास नवजात् शिशु को समस्याओं के बारे में बेहतर तरीके से पता करने में मदद करता है। जब भी वे किसी अंजान व्यक्ति का सामना करते है तो यह कुशलता उन्हें यह जानने में मदद करती हैं कि क्या उससे डरना जरूरी है नवजात शिशु अपने जीवन के दूसरे साल में सामाजिक संदर्भ को भापने में बेहतर बन जाता है। इस आयु में बच्चे व्यवहार करने से पहले अपनी माता को देखकर स्थिति की जांच करते हैं। वे पता लगाते हैं कि वो हंस रही है, रो रही है, या फिर गुस्से में है। एक अध्ययन में पाया गया कि 6 से 9 महीने के शिशुओं की तुलना में 14 से 22 महीने के शिशु अपने सामाजिक संदर्भ की जानकारी प्राप्त करने के लिए अपनी मां के चेहरे को ज्यादा देखते हैं।

संवेगों का नियमन और उन से उबर पाना – जीवन के पहले साल में नवजात शिशु में अपने संवेगों की प्रतिक्रिया की गहनता और अवधि को कम करने या रोक पाने की क्षमता का विकास होता है। प्रारंभिक नवजात शिशु की अवस्था में बच्चे अपना अंगूठा मुंह में डालकर अपने आपको संतुष्ट करते है। परंतु सबसे पहले वे अपने संवेगों को संतुष्ट करने के लिए अपने पालनकर्त्ता पर निर्भर करते हैं, जैसे उनके द्वारा लोरी सुनाना, गोदी में लेना, सहलाना आदि। कई विकासवादी लोग मानते है कि इससे पहले कि बच्चा बहुत ही गुस्से और बेकाबू अवस्था में पहुँचे पालनकर्त्ता द्वारा उसे संतुष्ट करना एक अच्छी रणनीति है। शैशव के बाद के हिस्से में जब शिशु किसी बात से उत्तेजित हो जाते हैं तो कभी–कभी अपनी उत्तेजना पर काबू पाने या उसे कम करने के लिए अपना ध्यान कहीं और लगाने का प्रयास करते पाए गए हैं। 2 साल की उम्र के घुटने चल रहे शिशु भाषा के उपयोग से भी अपने संवेगों की स्थिति और परेशानी पैदा करने वाले संदर्भ का आभास देने में सक्षम हो जाते हैं। जैसे कोई बच्चा कह सकता है ''भौं, भौं मारा '' इस तरह की अभिव्यक्ति भी पालनकर्ता को बच्चे के संवेग को संभालने में सहायता करती है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था – बड़े बच्चे वयस्कों की तरह दिन भर कई संवेगों का अनुभव करते हैं। कई बच्चे दूसरों के संवेगों और भावनाओं का भी मतलब समझ पाते हैं।

सैल्फ कौन्शियस संवेग – ढाई साल की उम्र में सबसे पहले बच्चों में अपनी छवि से संबंधित संवेग जन्म लेते हैं जैसे गर्व, ग्लानि और इससे हम जान सकते हैं कि बच्चे में यह चेतना आ गई है कि वह दूसरों से भिन्न है और वह सामाजिक मापदण्डों और नियमों को अपने व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग कर पा रहा है। गर्व तब प्रस्तुत होता है जब बच्चे किसी विशेष क्रिया के सफलतापूर्वक नतीजे की वजह से खुशी महसूस करते हैं। गर्व को कई बार किसी विशेष लक्ष्य तक पहुंचने से भी जोड़ा जाता है। शर्म तब आनी शुरू होती है जब बच्चे यह देख पाते है कि उन्होंने लक्ष्यों को हासिल किया है। बच्चे शर्म महसूस करते है, वे कहीं छिप जाने की इच्छा करते है। जिन बच्चों को शर्म आती है उनका शरीर ऐसा लगता है कि वे अपने आपको सिकोड़ कर दूसरों की नजरों से बचना चाहते है। शर्म किसी विशेष परिस्थिति से उत्पन्न नहीं होती बल्कि व्यक्ति की स्वयं की घटनाओं की समझ होती है।

अपराध–बोध तब उत्पन्न होता हैं जब बच्चे व्यवहार का आकलन करते हुए यह सोचते हैं कि वे असफल है। अपराध–बोध और शर्म के अलग–अलग भौतिक, चारित्रिक गुण हैं, जब बच्चे शर्म अनुभव करते है तो वे अपने शरीर को सिकोड़ कर दूसरों से छिपने की कोशिश करते हैं परन्तु जब वे अपराधबोध महसूस करते है, तब वे अपनी गलती को सुधारने की कोशिश करते है और छिपते नहीं हैं। एक अध्ययन में यह पाया गया कि लड़कों की तुलना में लड़कियों को अधिक शर्म महसूस होती हैं। यह रोचक अंतर है क्योंकि लड़कियों द्वारा अवसाद और चिन्ता जैसे विकारों को आत्मसात करने का खतरा ज्यादा रहता है, जिनमें शर्म व स्वयं की आलोचना जैसे भाव प्रमुख होते हैं।

कुछ प्रश्न

- आप अपराध–बोध और शर्म में किस तरह से भेद करोगे?
- क्या लड़कियों की तुलना में लड़के कम शर्मीले होते हैं?

बच्चों की भाषा, संवेग और संवेगों की समझ – प्रारंभिक बाल्यावस्था में विकास में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं उनमें से एक यह है कि अपने व दूसरों के संवेगों के बारे में बात करने की क्षमता में वृद्धि होती हैं और संवेगों को समझ पाने की क्षमता में वृद्धि होती है। 2 से 4 साल के बीच बच्चे संवेगों को परिभाषित करने के लिए पहले से कहीं ज्यादा शब्दों का इस्तेमाल करने लगते हैं। वे संवेगों के कारणों और परिणामों के बारे में भी सीखना शुरू कर देते हैं। वे इस बात की भी जागरूकता दिखाने लगते हैं कि उन्हें सामाजिक मापदण्डों के अनुरूप अपने संवेगों/भावनाओं को संभालना पड़ेगा।

जब बच्चे 4–5 साल के होते हैं तब वे संवेगों पर विचार करने की अधिक क्षमता दिखाते हैं। वे ये भी समझने लगते हैं कि एक ही घटना अलग–अलग लोगों में अलग–अलग भावना जागृत करती है। वे भावनाओं का नियमन करने की बढ़ती जागरूकता दिखाने लगते हैं ताकि वे सामाजिक मापदण्डों के अनुरूप व्यवहार कर सकें।

बच्चों की भाषा में संवेगों पर बातचीत और समझ के कुछ चारित्रिक गुण

बच्चों की आयु	**विस्तार**
2 से 4 वर्ष	संवेगों का शब्दकोश जल्दी से बढ़ना, स्वयं को और दूसरों को साधारण भावनाओं को ठीक से बता पाते हैं, अपनी पिछली और भविष्य की भावनाओं के बारे में बात कर सकते हैं। कुछ संवेगों के कारणों और नतीजों के बारे में बात कर सकते हैं और कुछ स्थितियों से जुड़ी भावनाओं को पहचान सकते हैं। अपने खेल में भावना वाली भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।
5 से 10 वर्ष	समझते हैं कि अलग–अलग लोगों में समान स्थिति के प्रति अलग–अलग भावनाएं आ सकती हैं और ये भावनाएं उस घटना के पश्चात् काफी लंबे समय तक रह सकती है। सामाजिक मापदण्डों के अनुसार संवेगों के नियंत्रण की बढ़ती हुई जागरूकता का प्रदर्शन करते हैं।

माता–पिता, शिक्षक और अन्य वयस्क बच्चों को संवेगों को समझने और नियंत्रित करने में मदद करते हैं। वे बच्चों से तनाव, दुख, गुस्सा और ग्लानि से उबरने के बारे में बातचीत कर सकते हैं। उन्हें दूसरों की भावनाओं को समझने के लिए भी प्रेरित किया जा सकता है। किसी बच्चे के सफल सामूहिक संबंधों में संवेगों की अहम भूमिका होती है। नकारात्मक संवेग वाले बच्चों को अपने दोस्तों से ज्यादा अस्वीकृति का अनुभव होता है, जबकि सकारात्मक संवेग वाले बच्चे ज्यादा लोकप्रिय होते हैं। संवेगों को नियमन कर पाने की क्षमता अपने दोस्तों के साथ संबंध बनाने का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि भावनाओं का आत्म नियमन सामाजिक दक्षता को बढ़ाता है।

कुछ प्रश्न

- वयस्क बच्चों के कौनसे संवेगों को समझने और नियंत्रित करने में मदद कर सकते हैं?
- शिक्षक बच्चों के संवेगों को समझने और नियंत्रित करने किस तरह से मदद कर सकते हैं?

• माध्यमिक और बाद की बाल्यावस्था

नीचे माध्यमिक और बाद की बाल्यावस्था के दौरान संवेगों में होने वाले कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन दिए गए हैं–

1. शर्म और गर्व जैसी जटिल भावनाओं की बढ़ती हुई समझ।
2. यह समझना कि एक स्थिति में एक से ज्यादा भावनाएं भी हो सकती हैं।
3. भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को निर्मित करने वाली घटनाओं को पूर्णता में समझ पाने की क्षमता।
4. नकारात्मक भावनाओं को दबाने या काबू करने की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि।
5. अपनी भावनाओं को दूसरी ओर मोड़ने के लिए स्वयं सचेत तौर पर प्रयास करने की कुशलता में वृद्धि।

किशोरावस्था

किशोर न केवल तनाव की अवस्था में रहते हैं बल्कि वे संवेगात्मक उतार–चढ़ाव से भी जूझते हैं। वे कभी बहुत खुश तो कभी बहुत उदास हो जाते हैं। वे कभी–कभी अपने माता–पिता और रिश्तेदारों पर भी भड़क उठते हैं। वे नहीं समझ पाते कि अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त करें और कभी–कभी लोगों को अपनी परेशानियों का लक्ष्य बना डालते हैं। वयस्कों के लिये यह समझना जरूरी है कि संवेगात्मक उतार–चढ़ाव किशोरावस्था का साधारण पहलू है और कई किशोर इस संवेगात्मक उतार–चढ़ाव से निकलकर दक्ष वयस्क बनते हैं। लड़कियां किशोरावस्था में डिप्रेशन की अधिक शिकार होती है।

प्रारंभिक किशोरावस्था में भावनात्मक परिवर्तन इस काल के दौरान होने वाले हार्मोंस के स्त्राव से संबंधित होते हैं। महत्वपूर्ण हार्मोनल बदलाव प्यूबर्टी को दर्शाते हैं। प्यूबर्टी नकारात्मक संवेगों से जुड़ी हुई अवस्था है और समय के साथ किशोर बदले हुए हार्मोन स्तर के साथ अनुकूलित हो जाता है और उसका मूड सामान्य रहने लगता है। कई शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यद्यपि हार्मोनल प्रभाव होते हैं लेकिन वे कई और कारकों जैसे कि तनाव, खाने–पीने का पैटर्न, यौन गतिविधि और सामाजिक संबंध से भी जुड़े होते हैं। हार्मोनल परिवर्तन से भी ज्यादा वातावरणीय अनुभव किशोरों के संवेगों में योगदान देते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हार्मोनल परिवर्तन और वातावरणीय अनुभव दोनों ही किशोरावस्था में तेजी से बदलती मनोदशाओं के लिए जिम्मेदार होते हैं।

कुछ प्रश्न

- किशोरावस्था को संवेदनाओं की वेगता का समय कहा जाता है, क्यों?
- संवेग बच्चों में किस क्रम में उभरते है?
  (1) रोना (2) अपराध–बोध (3) गर्व
- आपको अपने संवेगों के विकास के बारे में क्या याद आता है? बतलाइए।

ऐरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत – ऐरिक्सन के सिद्धांत के अनुसार पूरे जीवन भर विकास के आठ चरण क्रमानुसार चलते रहते हैं। प्रत्येक चरण में एक विशिष्ट विकासात्मक मानक होता है, जिसे पूरा करने में आने वाली समस्याओं का समाधान करना आवश्यक होता है।

ऐरिक्सन के अनुसार समस्या कोई संकट नहीं होती है, बल्कि संवेदनशीलता और सामर्थ्य को बढ़ाने वाला महत्वपूर्ण बिन्दु होती है। समस्या का व्यक्ति जितनी सफलता के साथ समाधान करता है उसका उतना ही अधिक विकास होता है।

1. विश्वास बनाम अविश्वास – यह ऐरिक्सन का पहला मनोसामाजिक चरण है जिसका जीवन के पहले वर्ष में अनुभव किया जाता है। विश्वास के अनुभव के लिए शारीरिक आराम, कम से कम डर, भविष्य के प्रति कम से कम चिन्ता जैसी स्थितियों की आवश्यकता होती है। बचपन में विश्वास के अनुभव से संसार के बारे में अच्छे और सकारात्मक विचार जैसे संसार रहने के लिए एक अच्छी जगह है, आदि उम्रभर के लिए विकसित हो जाते हैं।

2. स्वायत्ता बनाम शर्म – ऐरिक्सन के द्वितीय विकासात्मक चरण में यह स्थिति शैशवावस्था के उत्तरार्ध और बाल्यावस्था (1 से 3 वर्ष) के बीच होती है। अपने पालक के प्रति विश्वास होने के बाद बालक यह आविष्कार करता है कि बालक का व्यवहार उसका स्वयं का है। वह अपने आप में स्वतंत्र और स्वायत्त है। उसे अपनी इच्छा का अनुभव होता है। अगर बालक पर अधिक बंधन लगाया जाए या कठोर दंड दिया जाए तो उनके अंदर शर्म और संदेह की भावना विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है।

3. पहल बनाम अपराध बोध – ऐरिक्सन के विकास का तीसरा चरण शाला जाने के प्रारंभिक वर्ष के बीच होता है। एक प्रारंभिक शैशव अवस्था की तुलना में और अधिक चुनौतियां झेलनी पड़ती हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए एक सक्रिय और प्रयोजन पूर्ण व्यवहार की आवश्यकता होती है। इस उम्र में बच्चों को उनके शरीर, उनके व्यवहार, उनके खिलौने और पालतू पशुओं के बारे में ध्यान देने को कहा जाता है। अगर बालक गैर जिम्मेदार है और उसे बार–बार व्यग्र किया जाए तो उनके अंदर असहज अपराध बोध की भावना उत्पन्न हो सकती है। ऐरिक्सन का इस चरण के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण है उनका यह मानना है कि अधिकांश अपराध बोध की भावनाओं के प्रति तुरंत पूर्ति ही उपलब्धि की भावना द्वारा की जा सकती है।

4. परिश्रम/उद्यम बनाम हीन भावना – यह ऐरिक्सन का चौथा विकासात्मक चरण है जो कि बाल्यावस्था के मध्य में (प्रारंभिक वर्षों में) परिलक्षित होता है। बालक द्वारा की गई पहल से वह नए अनुभवों के संपर्क में आता है। और जैसे–जैसे वह बचपन के मध्य और अंत तक पहुंचता है, तब तक वह अपनी ऊर्जा को बौद्धिक कौशल और ज्ञान से हासिल करने की दिशा में मोड़ देता है। बाल्यावस्था का अंतिम चरण कल्पनाशीलता से भरा होता है, यह समय बालक के सीखने के प्रति जिज्ञासा का सबसे अच्छा समय होता है। इस आयु में बालक के अन्दर हीनभावना (अपने आपको अयोग्य और असमर्थ समझने की भावना) विकसित होने की संभावना रहती है।

5. पहचान बनाम पहचान भ्रान्ति – यह ऐरिक्सन का पांचवा विकासात्मक चरण है, जिसका अनुभव किशोरावस्था के वर्षों में होता है। इस समय व्यक्ति को इन प्रश्नों का सामना करना पड़ता है कि वो कौन है? किसके संबंधित है? और उनका जीवन कहां जा रहा है? किशोरों को बहुत सारी नई भूमिकाएं और वयस्क स्थितियों का सामना करना पड़ता है जैसे व्यावसायिक और रोमेंटिक। उदाहरण के लिए अभिभावकों को किशोरों की उन विभिन्न भूमिकाओं और एक ही भूमिका के विभिन्न भागों का पता लग सकता है, जिनका वह जीवन में पालन कर सकता है। यदि इसके सकारात्मक रास्ते पता लगाने का मौका न मिले तब, पहचान भ्रान्ति की स्थिति हो जाती है।

6. आत्मीयता बनाम अलगाव – यह ऐरिक्सन का छटवां चरण है। जिसका अनुभव युवावस्था के प्रारंभिक वर्षो में होता है। यह व्यक्ति के पास दूसरों से आत्मीय संबंध स्थापित करने का विकासात्मक मानक है। एरिक्सन ने आत्मीयता को परिभाषित करते हुए कहा है कि आत्मीयता का अर्थ है, स्वयं को खोजना, जिसमें स्वयं को किसी और (व्यक्ति में) खोजना पड़ता है। व्यक्ति की किसी के साथ स्वस्थ मित्रता विकसित हो जाती है और एक आत्मीय संबंध बन जाता है, तब उसके अंदर आत्मीयता की भावना आ जाती है। यदि ऐसा नहीं होता है तो अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है।

7. उत्पादकता बनाम स्थिरता – यह ऐरिक्सन का सातवां चरण है जो कि मध्य वयस्क अवस्था में

अनुभव होता है। उस चरण का मुख्य उद्देश्य नई पीढ़ी को विकास में सहायता से संबंधित होता है। ऐरिक्सन का उत्पादकता से यही अर्थ है कि नई पीढ़ी के लिए कुछ नहीं कर पाने की भावना से स्थिरता की भावना उत्पन्न होती है।

8. संपूर्णता बनाम निराशा — यह ऐरिक्सन का आठवां और अंतिम चरण है। जो कि वृद्धावस्था में अनुभव होता है। इस चरण में व्यक्ति अपने अतीत को टुकड़ों में एक साथ याद करता है और एक सकारात्मक निष्कर्ष निकालता है या फिर बीते हुए जीवन के बारे में असंतुष्टि भरी सोच बना लेता है। अलग–अलग प्रकार के वृद्ध लोगों की अपने बीते हुए जीवन के विभिन्न चरणों के बारे में एक सकारात्मक सोच विकसित होती है। अगर ऐसा होता है तो बीते जीवन का एक अच्छा चित्र (खाका) बन जाता है और व्यक्ति को भी एक तरह के संतोष का अनुभव होता है। संपूर्णता की भावना का अनुभव होता है। अगर बीते हुए जीवन के बारे में सकारात्मक विचार नहीं बन पाते हैं तो उदासी की भावना घर कर जाती है। इसे ऐरिक्सन ने निराशा का नाम दिया है।

ऐरिक्सन का यह मानना है कि विभिन्न चरणों में आने वाली समस्याओं का उचित समाधान हमेशा सकारात्मक नहीं हो सकता है। कभी–कभी समस्या के ऋणात्मक पक्षों से परिचय भी अपरिहार्य (जरूरी) हो जाता है। उदाहरण के लिए– आप जीवन की हर स्थिति में सभी लोगों पर एक जैसा विश्वास नहीं कर सकते। फिर भी चरण में आने वाली विकासात्मक मानक की समस्या के सकारात्मक समाधान से होती है। उसके बारे में सकारात्मक प्रतिबद्धता प्रभावी होता है।

ऐरिक्सन के सिध्दांत के अनुसार पूरे जीवन भर विकास के आठ चरण और उनके विकास की उम्र की सही जोड़ी मिलाइये।

1	विश्वास बनाम अविश्वास	1	बाल्यावस्था के मध्य में (प्रारंभिक वर्षों में) परिलक्षित होता है।
2	स्वायत्तता बनाम शर्म	2	किशोरावस्था के वर्षों में होता है।
3	पहल बनाम अपराध बोध	3	युवावस्था के प्रारंभिक वर्षो में होता है।
4	परिश्रम/उद्यम बनाम हीन भावना	4	मध्य वयस्क अवस्था में अनुभव होता है।
5	पहचान बनाम पहचान भ्रान्ति	5	शैशव अवस्था और बाल्यावस्था (1 से 3 वर्ष) के बीच
6	आत्मीयता बनाम अलगाव	6	वृध्दावस्था में अनुभव होता है।
7	उत्पादकता बनाम स्थिरता	7	जीवन के पहले वर्ष में
8	संपूर्णता बनाम निराशा	8	शाला जाने के प्रारंभिक वर्ष के बीच होता है।

मूल्यांकन — ऐरिक्सन सिद्धांत के परिपेक्ष्य में अपने जीवन में, अपने परिवार के किसी सदस्य के जीवन के विभिन्न विकासात्मक चरणों और विकासात्मक मानकों का विश्लेषण करें।

(iii) नैतिक विकास

हमारी सोच व्यवहार और भावनाओं में सही या गलत का बदलाव नैतिक विकास के अंदर आता है। नैतिक विकास को समझने के लिए हमें इन चार प्रश्नों को समझने की कोशिश करनी चाहिए।

1. एक व्यक्ति नैतिक निर्णय लेते समय कौन से तर्क या वितर्कों को ध्यान में रखता है?

2. व्यक्ति नैतिक परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है?

3. नैतिक मुद्दों के बारे में लोग क्या सोचते हैं?

4. क्या है जो एक व्यक्ति के नैतिक व्यक्तित्व को बनाने के लिए जिम्मेदार होता है।

नैतिक सोच – लोग कैसे सोचते हैं? कि क्या सही है और क्या गलत है? क्या नैतिक सवालों पर बच्चे भी वैसे ही विचार करते हैं जैसे कि वयस्क? पियाजे के पास इन सवालों के लेकर कुछ विचार थे और लॉरेंस कोलबर्ग के पास भी कुछ विचार थे।

पियाजे के सिद्धांत – बच्चे नैतिक मुद्दों के बारे में किस तरह सोचते हैं; इसके बारे में प्याजे (1932) ने रूचि जागृत की थी। उन्होंने बहुत अधिक गहराई से चार से बारह साल के उम्र के बच्चों का अवलोकन और साक्षात्कार किया। पियाजे ने बच्चों को कंचे खेलते हुए देखा ताकि वे यह जान सकें कि बच्चों ने खेल के नियम पर किस तरह से विचार किया। उन्होंने बच्चों से नैतिक मुद्दों के बारे में भी बात की जैसे कि सजा और न्याय। पियाजे ने पाया कि जब बच्चे नैतिकता के बारे में सोचते हैं, तो वे दो अलग–अलग अवस्थाओं से होकर गुजरते है।

• चार से सात साल के बच्चे (बाहरी सत्ता से प्राप्त) नैतिकता दिखाते है जो कि प्याजे के नैतिक विकास के सिद्धांतों की पहली अवस्था है। बच्चे न्याय और नियमों को दुनिया के ना बदलने वाले गुणधर्म मानते हैं। उनके लिए न्याय और नियम ऐसी चीज़ें हैं जो लोगों के बस से बाहर होती हैं।

• सात से दस साल की उम्र में बच्चे नैतिक चिन्तन की पहली से दूसरी अवस्था के बीच एक मिली–जुली स्थिति में होते है।

• दस साल या उससे बड़े बच्चे आटोनोमस (स्वतंत्रता पर आधारित) नैतिकता दिखाते है। वे यह बात जान जाते है कि नियम और कानून लोगों के बनाए हुए है। और किसी के कार्य का मूल्यांकन करने में वे कार्य को करने वाले व्यक्ति के इरादों और कार्य के परिणामों के ऊपर भी विचार करते हैं।

क्योकि छोटे बच्चे बाहरी सत्ता वाली नैतिकता के स्तर पर होते है, वे किसी के व्यवहार के बारे में सही या गलत का निर्णय उस व्यवहार से होने वाले परिणामों को देखकर लेते हैं, न कि व्यवहार कर्त्ता के उद्देश्यों के आधार पर। जैसे कि उनके के लिए जानबूझ कर तोड़े गए एक कप की तुलना में हादसे में 12 कप टूटने की घटना ज्यादा बुरी है। जैसे बच्चे स्वतन्त्र अवस्था पर आने लगते हैं, वैसे–वैसे किसी काम को करने वाले का उद्देश्य/इरादा उनके नैतिक चिन्तन का एक आवश्यक बिन्दु बनने लगता है।

बाहरी सत्ता के आधर पर नैतिक चिन्तन करने वाले बच्चे यह भी मानते हैं कि नियम न बदलने वाली चीज है और यह नियम किसी शक्तिशाली सत्ता के द्वारा बनाए गए हैं। प्याजे ने छोटे बच्चों को सुझाया कि वह कंचे के खेल के नए नियम बनाएं, तो छोटे बच्चों ने मना कर दिया। दूसरी तरफ बड़े बच्चों ने परिवर्तन को स्वीकारा और पहचाना कि नियम सिर्फ हमारी सुविधा के लिए बनाए गए हैं, जिन्हें बदला जा सकता है।

बाहरी सत्ता के आधार पर नैतिक चिन्तन करने वाले बच्चे तुरंत न्याय की धारणा में भी विश्वास रखते हैं। यानि कि अगर एक नियम तोड़ा जाता है तो सजा भी मिलनी चाहिए। छोटे बच्चे मानते हैं कि अगर किसी चीज को खंडित किया या तोड़ा गया है तब यह काम अपने आप सजा से जुड़ जाता है। इसीलिए छोटे बच्चे जब भी कोई गलत काम करते हैं तब चिन्ता से अपने आसपास देखने लगते हैं, यह सोचकर कि उन्हें सजा तो मिलेगी। तुरंत न्याय का सिद्धान्त यह भी कहता है कि अगर किसी के साथ कुछ दुर्भाग्यपूर्ण हुआ हो तो उस व्यक्ति ने जरूर पहले कुछ किया होगा, जिसके परिणास्वरूप ऐसा हुआ। बड़े बच्चे जो नैतिकता की स्वतन्त्रता रखने लगते है, यह पहचानते है कि सजा तभी मिलती है जब किसी ने कुछ गलत होते देख लिया हो और उसके बाद भी जरूरी नहीं कि सजा मिले ही।

नैतिक तर्क को लेकर इस तरह के परिवर्तन कैसे आते हैं? पियाजे मानते हैं कि जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते है उनकी सोच सामाजिक मुद्‌दों के बारे में गहरी होती चली जाती है। प्याजे का मानना है कि सामाजिक समझ साथियों के साथ आपसी लेन–देन से आती है। जिन साथियों के पास एक जैसी शक्ति और ओहदा होता है वहां योजनाओं के बीच समझौता किया जाता है और सहमत न होने पर तर्क दिया जाता है और आखिर में सब कुछ ठीक हो जाता है। अभिभावक और बच्चे के रिश्तों में जहां अभिभावक के पास शक्ति होती है लेकिन बच्चों के पास नहीं, वहां नैतिक तर्क की समझ को विकसित करने की संभावना कम रहती है। क्योंकि अधिकतर नियम आदेशात्मक तरीके से दिए जाते हैं।

कुछ प्रश्न

- बाहरी सत्ता प्राप्त करने की उम्र क्या होती है?

  (1) 4 से 7 वर्ष (2) 7 से 10 वर्ष (3) 10 साल (4) 40 वर्ष से अधिक

नैतिक उपदेश अक्सर असरदार क्यों नहीं हो पाते?

कोलबर्ग के सिद्धांत – पियाजे की तरह कोलबर्ग ने भी पाया कि नैतिक विकास कुछ अवस्थाओं में होता है। कोलबर्ग ने पाया कि यह अवस्थाएं सार्वभौमिक होती है। बीस साल तक बच्चों के साथ एक विशेष प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग करने के बाद कोलबर्ग इन निर्णयों पर पहुंचे।

इन साक्षात्कारों में बच्चों को कुछ ऐसी कहानियां सुनाई गईं जिनमें कहानियों के पात्रों के सामने कई नैतिक उलझने थीं। उसमें से सबसे लोकप्रिय दुविधा यह है– यूरोप में एक महिला मौत के कगार पर थी। डाक्टरों ने कहा कि एक दवाई है जिससे शायद उसकी जान बच जाए। वो एक तरह का रेडियम था जिसकी खोज उस शहर के एक फार्मासिस्ट ने उस दौरान ही की थी। दवाई बनाने का खर्चा बहुत था और दवाई वाला दवाई बनाने के खर्च से दस गुना ज्यादा पैसे मांग रहा था। उस औरत का इलाज करने के लिए उसका पति हाइनज उन सबके पास गया जिन्हें वह जानता था। फिर भी उसे केवल कुछ पैसे ही उधार मिले जो कि दवाई के दाम से आधे ही थे। उसने दवाई वाले से कहा कि उसकी पत्नी मरने वाली है, वो उस दवाई को सस्ते में दे दे। वह उसके बाकी पैसे बाद में देगा। फिर भी दवाई वाले ने मना कर दिया। दवाई वाले ने कहा कि मैंने यह दवाई खोजी है, मैं इसे बेच कर पैसा कमाऊंगा। तब हाइनज ने मजबूर होकर उसकी दुकान तोड़ कर वो दवाई अपनी पत्नी के लिए चुरा ली।

यह कहानी उन ग्यारह कहानियों में से एक है, जो कोलबर्ग ने नैतिक विकास को जानने के लिए इस्तेमाल की थीं। यह कहानी पढ़ने के बाद जिन बच्चों से साक्षात्कार लिया गया उन्हें नैतिक दुविधा पर बनाए गए कुछ प्रश्नों के उत्तर देने होते थे।

क्या हाइनज को वो दवाई चुरा लेनी चाहिए थी? क्या चोरी करना सही है या गलत है! क्यों? क्या यह एक पति का कर्त्तव्य है कि वो अपनी पत्नी के लिए दवाई चोरी करके लाए? क्या दवाई बनाने वाले को हक है कि वो दवाई के इतने पैसे मांगे? क्या ऐसा कोई कानून नहीं है जिससे दवाई की कीमत पर अंकुश लगाया जा सके, क्यों और क्यों नहीं?

कुछ प्रश्न

- आपके साथ भी ऊपर वर्णित उदाहरण की तरह ऐसे अनुभव हुए होंगे। ऐसी नैतिक दुविधा की कहानी या आपका अपना कोई अनुभव बताइए।

  - इस नैतिक दुविधा से संबंधित लिए गए निर्णय के बारे में बच्चों से पूछें।
  - आप अपना स्वयं का निर्णय लिखें।

कोलबर्ग के द्वारा दी गई अवस्थाएं

साक्षात्कार द्वारा दिए गए उत्तरों के आधार पर कोलबर्ग ने नैतिक चिंतन की तीन अवस्थाएं बताई हैं, जिन्हें पुनः दो–दो चरणों में विभाजित किया गया है।

क. रूढ़ि पूर्व अवस्था में चिंतन

यह नैतिक चिंतन का सबसे निचला चरण है। इस चरण में क्या सही और गलत है, पर बाहर से मिलने वाली सजा और उपहार का प्रभाव पड़ता है।

चरण 1 : बाहरी सत्ता पर आधारित – नैतिकता इस रूढ़ि पूर्व अवस्था का पहला चरण है। यहां नैतिक सोच, सजा से बंधी होती है। जैसे बच्चे यह मानते हैं कि उन्हें बड़ों की बातें माननी चाहिए नहीं तो बड़े उन्हें दण्डित करेंगे।

चरण 2 : व्यक्ति केन्द्रित, एक दूसरे का हित साधने पर आधारित नैतिक चिंतन – यह रूढ़ि पूर्व अवस्था का दूसरा चरण है। यहां बच्चा सोचता है कि अपने हितों के अनुसार कार्य करने में कुछ गलत नहीं है, पर हमें साथ में दूसरों को भी उनके हितों के अनुरूप काम करने का मौका देना चाहिए। अतः इस स्तर की नैतिक सोच यह कहती है कि वही बात सही है जिसमें बराबरी का लेन–देन हो रहा हो। अगर हम दूसरे की कोई इच्छा पूरी कर दे ंतो वे भी हमारी इच्छा पूरी कर देंगे।

ख. रूढ़िगत चिन्तन

यह कोलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांतों की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में लोग एक पूर्व आधारित सोच से चीजों को देखते हैं। जैसे देखा गया है कि अक्सर बच्चों का व्यवहार उनके मां–बाप या किसी बड़े व्यक्ति द्वारा बनाए गए नियमों पर आधारित होता है।

चरण 3 : अच्छे आपसी व्यवहार व सम्बन्धों पर आधारित नैतिक चिन्तन – यह कोलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांतों की तीसरी अवस्था है। इस स्थिति में लोग विश्वास, दूसरों का ख्याल रखना, दूसरों के निष्पक्ष व्यवहार को अपने नैतिक व्यवहार का आधार मानते हैं। बच्चे और युवा अपने माता–पिता द्वारा निर्धारित किये गए नैतिक व्यवहार के मापदण्डों को अपनाते है जो उन्हें उनके माता–पिता की नजर में एक ‘‘अच्छा लड़का या अच्छी लड़की’’ बनाते हैं।

चरण 4 : सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने पर आधारित नैतिक चिन्तन – यह कोलबर्ग के सिद्धांतों की चौथी अवस्था है। इस स्थिति में लोगों के नैतिक विकास की अवस्था सामाजिक आदेश, कानून, न्याय और कर्त्तव्यों पर आधारित होती है जैसे किशोर सोचते हैं कि समाज अच्छे से चले इसके लिए कानून के द्वारा बनाए गए दायरे के अन्दर ही रहना चाहिए।

ग. रूढ़ि से ऊपर उठकर नैतिक चिन्तन – यह कोलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांतों की पांचवीं अवस्था है। इस स्थिति में वैकल्पिक रास्ते खोजे जाते हैं और फिर अपना एक व्यक्तिगत नैतिक व्यवहार का रास्ता ढूंढा जाता है।

चरण 5 : सामाजिक अनुबन्ध, उपयोगिता और व्यक्तिगत अधिकारों पर आधारित नैतिक चिन्तन – यह कोलबर्ग के सिद्धांत की पांचवी अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति यह सोचने लगता है कि कुछ मूल्य, सिद्धांत और अधिकार कानून से भी ऊपर हो सकते हैं। व्यक्ति वास्तविक सामाजिक व्यवस्थाओं का मूल्यांकन इस दृष्टि से करने लगता है कि वे किस हद तक मूल अधिकारों व मूल्यों का संरक्षण करते है।
चरण 6 : सार्वभौमिक नीति सम्मत सिद्धांतों पर आधारित नैतिक चिन्तन – यह कोलबर्ग के नैतिक

सिद्धान्तों की सबसे ऊंची और छठी अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति सार्वभौमिक मानवाधिकार पर आधारित नैतिक मापदण्ड बनाता है। जब भी कोई व्यक्ति अन्तर्आत्मा की आवाज के द्वंद के बीच फंसा होता है तो वह व्यक्ति यह तर्क करता है कि अन्तर्आत्मा की आवाज के साथ चलना चाहिए, चाहे वो निर्णय जोखिम से भरा ही क्यों न हो। इसीलिए उसे कुछ भी करने से पहले अपनी भावनाओं के अलावा औरों की जिन्दगी के बारे में भी सोचना चाहिए था।

कोलबर्ग मानते हैं कि यह स्तर एवं अवस्थाएं एक क्रम में चलते हैं और उम्र से जुड़े हुए हैं। 9 साल की उम्र से पहले बच्चे पहले स्तर पर काम करते है। अधिकतर किशोर तीसरी अवस्था में सोचते पाए जाते हैं पर उनमें दूसरी अवस्था और चौथी अवस्था के सोच विचार के कुछ लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। प्रारंभिक वयस्कता में पहुॅचने पर कुछ थोड़े से लोग ही रूढ़िपूर्णता से ऊपर उठकर नैतिक तर्क देते है।

लेकिन वे कौन से सबूत हैं जो इस तरीके के विकास को प्रमाणित करते हैं? 20 साल के लम्बे अध्ययन के परिणामों के अनुसार उम्र के साथ अवस्था 1 और 2 का उपयोग घटा है और अवस्था 4 जो 10 साल की उम्र के बच्चों के नैतिक तर्क में बिलकुल भी नहीं आती, वह 36 साल की उम्र के 62 प्रतिशत लोगों की नैतिक सोच में दिखाई दी। पांचवी अवस्था 20 से 22 साल की उम्र तक बिल्कुल भी नहीं आती और वह कभी भी 10 प्रतिशत से ज्यादा में नहीं दिखाई देती।

इसीलिए नैतिक अवस्थाएं जैसा कि कोलबर्ग ने शुरूआत में सोचा था, उससे थोड़ी देर में आती है और छठी अवस्था में चिन्तन करना तो बहुत ऊंची अवस्थाओं में आता है, जो कि बहुत विलक्षण है। हालांकि अवस्था 6 कोहलबर्ग की नैतिक निर्णायक अंक प्रणाली से हटा दी गई है, लेकिन यह अभी भी सैद्धांतिक रूप से कोलबर्ग की नैतिक विकास की संकल्पना के लिए जरूरी मानी जाती है।

अवस्था वृतांत	**नैतिक तर्क के उदाहरण जो हाइनज नाम के व्यक्ति द्वारा की गई, दवाई की चोरी का समर्थन करते है।**	**नैतिक तर्क के वे उदाहरण जो यह दर्शाते हैं कि हाइनज को दवा नहीं चुरानी चाहिए थी।**
अवस्था 1. बाहरी सत्ता पर आधारित नैतिकता	हाइनज नाम के व्यक्ति को अपनी पत्नी को मरने नहीं देना चाहिए। अगर वह पत्नी के लिए ऐसा नहीं करता है तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा।	हाइनज नाम का व्यक्ति पकड़ा जाता है। उसे जेल भेजा जा सकता है।
अवस्था 2. व्यक्ति केन्द्रित, एक दूसरे का हित साधने पर केन्द्रित नैतिक चिन्तन	अगर हाइनज पकड़ा गया है तो वह दवा वापस कर सकता है और हो सकता है कि उसे लंबे समय के लिए जेल न भेजें।	दवाई बनाने वाला व्यापारी है और उसे पैसे की जरूरत है।
अवस्था 3. अच्छे आपसी व्यवहार व संबंधों पर केन्द्रित नैतिक चिंतन	हाइनज सिर्फ वो ही कर रहा था जो एक अच्छे पति को करना चाहिए। यह दिखाता है कि वह अपनी पत्नी को कितना प्यार करता है।	उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह तो दवाई बनाने वाले की गलती है। दवाई बनाने वाला मतलबी है।

अवस्था 4. सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने पर केन्द्रित नैतिक चिंतन	हाइनज का यहां पर दवा चुराना गलत नहीं है क्योंकि कानून इस तरह नहीं बना हुआ है कि वह हर परिस्थिति का पूर्वानुमान लगा पाए।	हाइनज को कानून की आज्ञा का पालन करना चाहिए क्योंकि कानून समाज की भलाई के लिए और समाज की सुरक्षा के लिए बनाए हैं
अवस्था 5. नियमों का सामाजिक अनुबंध उपयोगिता और व्यक्तिगत अधिकारों पर केन्द्रित नैतिक चिंतन	हाइनज का चोरी करना सही था क्योंकि वो किसी की जान बचाना चाहता था।	यह जरूरी है सभी लोग नियमों का पालन करें क्योंकि नियम समाज में व्यवस्था स्थापित करने के लिए जरूरी हैं।
अवस्था 6. सार्वभौमिक नीति सम्मत सिद्धांतों पर आधारित नैतिक चिंतन	सार्वभौमिक सिद्धांतों के अनुसार मानव की जिन्दगी का आदर करना दूसरे किन्हीं मूल्यों से ज्यादा अहम है।	जिन्हें उस दवाई की उसकी पत्नी से ज्यादा जरूरत है।

कोलबर्ग की अवस्थाओं पर असर – ऐसे कौन से कारक है जो कोलबर्ग की अवस्थाओं से गुजरने पर असर डालते है? हालांकि हर अवस्था में नैतिक तर्क इस बात पर आधारित होता है कि कुछ स्तर का संज्ञानात्मक विकास होगा। कोलबर्ग यह बहस करते हैं कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास उनके नैतिक चिंतन के विकास को सुनिश्चित नहीं करता हैं। बल्कि बच्चों की नैतिक तार्किकता यह दिखाती है कि उन्हें नैतिक सवालों और नैतिक द्वंद्व को हल करने के कैसे अनुभव मिले हैं। कोलबर्ग मानते थे कि बच्चों की आपस में बातचीत ऐसे सामाजिक उद्दीपनों में से अहम् चीज है जो बच्चों की अपनी नैतिक सोच को बदलने की चुनौती प्रदान कर सकती है। जबकि वयस्क नियम और कायदे बच्चों पर थोपते हैं, बच्चों में आपसी लेन–देन उनको दूसरे व्यक्ति का दृष्टिकोण देखने और जनतांत्रिक ढंग से नियम बनाने का अवसर प्रदान करता हैं। कोलबर्ग कहते हैं कि बच्चों में दूसरों का दृष्टिकोण लेने की क्षमता उनके नैतिक तर्क में प्रगति लाती है। कोलबर्ग के नैतिकता के सिद्धांतों की आलोचना निम्नलिखित बिन्दुओं पर की गई हैः–

1. नैतिक सोच और नैतिक व्यवहार – कोलबर्ग के आलोचकों के अनुसार कोलबर्ग के नैतिक सिद्धांतों का सारा ध्यान नैतिक सोच तक सीमित है और उनमें नैतिक व्यवहार के बारे में ज्यादा बात नहीं की गई है। उनका कहना है कि नैतिक व्यवहार पर बात करना उतना ही जरूरी है जितना नैतिक सोच पर बात करना क्योंकि कई बार लोग दिखाते हैं कि उनकी सोच काफी नैतिक है परंतु उनका व्यवहार उसके विपरीत होता है। जरूरी नहीं है कि सोच का दावा करने वाले लोग नैतिक व्यवहार भी करें। इसीलिए नैतिक सोच और नैतिक व्यवहार दोनों का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है। जैसे नेता कई नैतिक दावे करते हैं परन्तु उनका व्यवहार कई बार अनैतिक व उनके दावे के विपरीत होता है। इसके अलावा नैतिकता की समझ होते हुए भी लोग अनैतिक कार्य करते हैं। जैसे चोरों को पता है कि चोरी करना गलत काम है परन्तु इसके बावजूद वह चोरी करते हैं।

दूसरी ओर बैन्दूरा का कहना है कि काफी लोग अपने अनैतिक व्यवहार को नैतिक उद्देश्यों से अपनी और समाज की नजरों में सही सिद्ध करने की कोशिश करते हैं जैसे जेहाद (Jihad) के नाम पर किए जाने वाले हमले और गर्भपात विरोधी कार्यकर्ता जो बच्चे गिराकर गर्भपात करने वाले अस्पताल नष्ट करते हैं और डॉक्टरों का खून करते है।

2. नैतिक तर्कों का मूल्यांकन – आलोचकों का मानना है कि कोलबर्ग के सिद्धांतों में नैतिकता के

मूल्यांकन पर खास ध्यान देना चाहिए। उनका मानना है कि जो कहानी कोलबर्ग नैतिक तर्कों का मूल्यांकन करने के लिए इस्तेमाल करते हैं उनके आधार पर मूल्यांकन करना काफी मुश्किल होता है। इसके अलावा कोलबर्ग जो दुविधाएं प्रस्तुत करते हैं, वे भी नैतिक तर्कों का मूल्यांकन करने के लिए असली जिन्दगी में आने वाली दुविधाओं से काफी अलग हैं।

3. संस्कृति और नैतिक तर्क – कोलबर्ग के अनुसार उसकी नैतिक तर्कों की अवस्थाएं सार्वभौमिक है परंतु कुछ आलोचकों के अनुसार उसके सिद्धांत सांस्कृतिक रूप से पक्षपाती है। परंतु कोलबर्ग और उनके आलोचक दोनों ही कुछ हद तक ठीक हैं। 27 संस्कृतियों में किए गए 45 अध्ययनों में कोलबर्ग के सिद्धांतों की पहली चार अवस्थाएं सार्वभौमिक पाई गईं। परंतु पांचवी और छठवीं अवस्थाएं सारी संस्कृतियों में नहीं पाई गई हैं तथा यह भी पाया गया कि कोलबर्ग की मूल्यांकन व्यवस्था में अन्य संस्कृतियों में पाए जाने वाले उच्च नैतिक तर्क समाहित नहीं है तथा नैतिक चिन्तन, जितना कोलबर्ग ने सोचा था उससे ज्यादा संस्कृति विशेष पर निर्भर करता है। भारत में हर जीव की पवित्रता और जीव संसार की एकता का नैतिक चिन्तन, इजराइल में समुदाय की समता और सामूहिक सुख के चिन्तन पर आधारित नैतिकता और न्यूगिनी में सामूहिक नैतिक दायित्व की सोच जैसे विचारों को कोलबर्ग के नैतिक तर्कों की अवस्थाओं में उच्च स्थान पर नहीं रखा जाएगा क्योंकि उनमें अन्य विचारों की तुलना में न्याय के विचार को ज्यादा तवज्जो दी गई है। बावजूद इसके कि कोलबर्ग के सिद्धांत काफी सारी संस्कृतियों के लिए ठीक बैठते हैं परंतु वह कुछ संस्कृतियों की नैतिक अवधारणाओं को नहीं शामिल करते।

परिवार और नैतिक विकास – कोलबर्ग का मानना है कि पारिवारिक प्रक्रियाएं बच्चों के नैतिक विकास के लिए कुछ खास जरूरी नहीं है। उनका कहना है कि बच्चों और माता–पिता के बीच का संबंध बच्चों को एक दूसरे की राय लेने के बहुत कम अवसर देते हैं। बल्कि बच्चों को नैतिक विकास के ज्यादा अवसर अपने दोस्तों के साथ मिलते हैं। विकासवादी व्यक्तियों का मानना है कि दोस्तों के साथ सक्रिय अनुशासन यानि तर्को को इस्तेमाल करना और बच्चों का ध्यान उनके द्वारा किए गए कार्यो के नतीजे पर ले जाने से भी उनका नैतिक विकास होता है। इसके अलावा माता–पिता के खुद के नैतिक मूल्य भी बच्चों के नैतिक विकास में मद्द करते हैं।

कुछ प्रश्न

- परिवार व शाला से बच्चे के नैतिक विकास में मदद मिलती है इस पर आपके विचार दीजिए।

जेंडर और देखभाल का दृष्टिकोण – कैरोल गिलिगन की आलोचना के अनुसार कोलबर्ग के सिद्धांत लिंग भेद पर आधारित है। गिलिगन का कहना है कि कोहलबर्ग के सिद्धांत पुरूष रिवाजों पर आधारित हैं जो कि सिद्धांतों को आपसी संबंधों से ऊपर रखते हैं। वे मानते है कि व्यक्ति अपने नैतिक निर्णय स्वतंत्र रूप से लेते हैं। कोलबर्ग के दृष्टिकोण में नैतिकता न्याय पर आधारित है परंतु गिलिगन का मानना है कि कोलबर्ग ने अपने नैतिक सिद्धांतों में देखभाल के दृष्टिकोण को शामिल नहीं किया है। उन्होंने आपसी संबंध, एक दूसरों की चिंता की भावना, एक दूसरे की जुड़ाव की भावना को अपनी नैतिकता में कोई स्थान नहीं दिया है। गिलिगन के अनुसार ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कोलबर्ग खुद पुरूष हैं और उनके सिद्धांत पुरूषों पर किए गए शोध व उनके जवाबों पर आधारित है। जबकि गिलिगन ने जब 6 से 18 साल की लड़कियों के जवाबों का अध्ययन किया तो उन्होंने देखा कि लड़कियां मनुष्य के आपसी संबंधों के आधार पर नैतिक दुविधा का निर्णय लेती थी। परंतु कुछ अध्ययन ने नैतिक निर्णय में लिंग भेद के होने पर शंका जताई है। उनके अनुसार नैतिक निर्णय में यह भेद बहुत कम होते हैं और पुरूष और महिला दोनों आपसी संबंधों वाली दुविधाओं को देखभाल के दृष्टिकोण से हल करते हैं और सामाजिक दुविधाओं को न्यायिक दृष्टिकोण से हल करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. एक आठ माह के बच्चे के माता–पिता रात में अच्छी तरह नहीं सो पाते क्योंकि उनका बच्चा आधी रात को रोते हुए उठ जाता है। इस परिस्थिति से संभलने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

2. एक सात वर्ष के बच्चे को राज्य स्तरीय फुटबाल टीम में खेलने हेतु अनुमति देकर प्रोत्साहित करने के फायदे व नुकसान का मापन कीजिए?

3. कक्षा छटवीं के कुछ बच्चों का स्वभाव चिड़चिड़ा और गरम मिजाज हो गया है। वे छोटी–छोटी बातों में अपने दोस्तों से झगड़ने तथा विरोध करने लगे हैं। अपनी बातों को सही ठहराने के लिए तर्क देने लगे हैं। ये बच्चे अभी कौन –सी अवस्था में है। 9 वर्ष की उम्र में इन बच्चों का स्वभाव कैसा रहा होगा। दोनों अवस्थाओं के संवेगों की विवेचना कीजिए?

4. एक आदमी को 10 वर्ष की कैद कोकेन (अल्पमात्रा) में बेचने के लिए सुनाई गई। वह आदमी 6 माह की सजा काटने के बाद जेल से फरार हो गया। 25 वर्ष बाद वह पुनः पकड़ा गया। वह अब करीब 50 वर्ष का है और एक आदर्श नागरिक है। उसको क्या फिर से जेल भेजा जाना चाहिए? अपने उत्तर को तर्क सहित लिखें। कोलबर्ग की किस अवस्था में आपके निष्कर्ष को रखना चाहिए।

5. एक महिला का दुर्घटना में मस्तिष्क मृत हो गया। उसे जीवन रक्षक तंत्र पर रखा गया है। पर उसे होश कभी नहीं आया। क्या उसका जीवन रक्षक तंत्र हटा देना चाहिए? तर्क सहित उत्तर लिखें। कोहलबर्ग की किस अवस्था में आपके निष्कर्ष को रखना चाहिए?

6. क्या 3 साल का बच्चा 8 साल के बच्चे की तरह ही शर्माता है हाँ तो क्यों, नहीं तो क्यों?

7. किस उम्र में बच्चे तुलना करना प्रारम्भ करते हैं उदाहरण सहित लिखिए।

8. क्या बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों का सम्बन्ध उनके संवेगों से होता है? हाँ या नहीं तो क्यों?

9. ऐरिक्सन सिद्धान्त के आधार पर आप अपने आस–पास के किन्हीं दो बच्चों (जो अलग–अलग आयु के हों) का अध्ययन करें।

10. आप अपने आसपास के ऐसे लोगों का अवलोकन करे जिनके नैतिक सोच एवं नैतिक व्यवहार में समानता हो।

अध्याय – 4

सीखना एवं संज्ञान का विकास

पाठ की रूपरेखा

- सीखने के बारे में विभिन्न नज़रिए
  - परिचय
  - उद्देश्य
  - सीखने का मॉडल बनाना
  - सीखना यानी रटना : बैंकिंग मॉडल
  - सीखना यानी प्रोग्रामिंग
  - सीखना यानी समझ का निर्माण
  - सारांश
  - अभ्यासों पर टिप्पणियाँ
- सीखने की विविध धारणाओं की समीक्षा
  - व्यावहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत
- संज्ञानात्मक विकास
  - परिचय
  - उद्देश्य
  - पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
  - संवेदी क्रियात्मक अवस्था के बुनियादी लक्षण
  - पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के बुनियादी लक्षण
  - पूर्व संक्रियात्मक सोच की सीमाएं
  - पूर्व संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोधकार्य
  - मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बुनियादी लक्षण
  - मूर्त संक्रियात्मक सोच की सीमाएं
  - मूर्त संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोध कार्य
  - औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था के बुनियादी लक्षण
  - औपचारिक संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोध कार्य
  - पियाजे और शिक्षा
  - पियाजे के सिद्धान्त का मूल्यांकन एवं आलोचना
  - केन्द्रीय ज्ञान का दृष्टिकोण
  - सारांश
- सीखने का रचनावादी नजरिया
  - परिचय
  - उद्देश्य
  - रचनावाद क्या?
  - स्कीम
  - स्कीमा
  - रचनावाद को समझें
  - शिक्षक की भूमिका
  - सामाजिक पहलू
  - मार्गदर्शन
  - अनौपचारिक सीखने के लक्षण
- सारांश
- अभ्यास के प्रश्न

(i) सीखने के बारे में विभिन्न नज़रिए

● परिचय

मास्टरजी सचमुच 7 वर्षीय सीता से नाराज़ थे। उन्होंने उसे छः का पहाड़ा याद करने को दिया था और हालत यह थी कि वह 'छः तिया' से आगे बता नहीं पा रही थी। तो उन्होंने उससे कहा कि वह पूरे पहाड़े को दस बार पढ़े। जब वह दस बार पढ़ चुकी तो उन्होंने उससे किताब बन्द करके पहाड़ा बोलने को कहा। लेकिन उस बेचारी, ने पहली बार जितना बोला था, उससे आगे न बढ़ सकी। मास्टरजी को तो यकीन था कि बार–बार दोहराने से वह जरूर सीख जाएगी।

सीखने के बारे में मास्टरजी के नज़रिए से कई लोग सहमत हैं और मानते हैं कि बच्चे गणित ऐसे ही सीखते हैं। सीखने के बारे में कई शिक्षकों के कई और सिद्धांत भी हैं। इस इकाई के शुरू में हम 'सीखना क्या है' को लेकर विभिन्न नज़रियों की चर्चा करेंगे। मसलन, अगर मैं कहूं कि मैंने हासिल वाले जोड़ के सवालों को हल करना सीख लिया है, तो इसका मतलब क्या है ? क्या यह होगा कि मैंने संख्याओं का जोड़ करने के ऐल्गोरिद्म को सीख लिया है और मैं हासिल का ठीक–ठीक हिसाब रखना जानती हूँ? या, क्या इसका मतलब यह भी है कि मैं समझ चुकी हूँ कि कक्षा या घर की आम परिस्थितियों में संख्याओं का जोड़ कब किया जाता है?

हमें सीखने के बारे में सोचने की जरूरत क्यों है? बतौर शिक्षक हम अपनी शिक्षण गतिविधियों की योजना इस आधार पर बनाते हैं कि हम क्या सोचते हैं कि बच्चे कैसे सीखते हैं और हम उन्हें क्या सिखाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, हममें से प्रत्येक के दिमाग में सीखने की प्रक्रिया का एक मॉडल हैं। यह मॉडल इस बात को समझाने की कोशिश करता है कि दिमाग में ज्ञान कैसे विकसित होता है। इस इकाई के अगले तीन भागों में हम सीखने के तीन मॉडलों की विस्तृत चर्चा करेंगे। इनका मक़सद यह है कि आप जिस मॉडल के आधार पर कोई भी विषय, खासकर गणित, पढ़ाते हैं तो उसकी जांच करने में ये आपकी मदद करे। इस दौरान हम कई सवाल उठाएंगे जो यह सोचने में आपकी मदद करेंगे कि सीखने में याददाश्त का क्या स्थान है, क्या एक ही तरह के सवाल बारम्बार हल करके सूत्र सीखे जाते हैं, बच्ची को अपनी रफ़्तार से अपनी समझ निर्मित करने देने का कितना महत्व है, तथा इसी तरह के अन्य बुनियादी मुद्दे।

यह इकाई भी उदाहरणों और अभ्यासों के ज़रिए आगे बढ़ेगी। इसको पढ़ते वक़्त आप हर मुद्दे पर अपने खुद के अनुभवों की रोशनी में विचार करें।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप

- 'सीखने' के बारे में अपनी समझ बना पाएंगे।
- सीखने के बैकिंग प्रोग्रामिंग व रचनावाद मॉडलों के प्रमुख लक्षण बता पाएंगे।
- यह समझा पाएंगे कि इनमें से प्रत्येक मॉडल में सीखने की प्रक्रिया की क्या समझ झलकती है। आइए, अब देखें कि 'सीखना' शब्द के बारे में अलग–अलग लोग क्या समझ रखते हैं।

● सीखने का मॉडल बनाना

सीमा एक पब्लिक स्कूल में प्राथमिक शिक्षक है। वह पूरी कक्षा से एक सुर में जोड़ के कथनों को बार–बार दोहराने को कहती है। जब पूछा गया कि वह ऐसा क्यों कहती है, तो उसने बताया कि इससे बच्चे जोड़ जरूर सीख जाएंगे।

आयशा मध्यप्रदेश के एक गांव में कक्षा 3 के बच्चों को स्थानीय मान की अवधारणा पढ़ा रही है। इसके लिए वह उन्हें मोतियों से खेलने का वक्त देती है; वे इन मोतियों से माला बनाते हैं, बचे हुए मोतियों को गिनते हैं, वगैरह। आयशा उनसे अन्य गतिविधियां भी कराती हैं, जैसे छोटी–छोटी तीलियों को गिनना, उनके समूह बनाना, आदि। हर चरण पर वह उनसे बात करती है, उनसे समझना चाहती है वे क्या कर रहे हैं और वे जो बताते हैं उस पर वह अपनी टिप्पणी भी देती है। आयशा को यक़ीन है कि यही सबसे बढ़िया तरीका है जिससे बच्चे स्थानीय मान सीख सकते हैं। सीमा, आयशा और आपके समेत हजारों लोग हैं जो छोटे बच्चों को गणित सिखाने के काम में लगे हैं। आप यह काम कैसे करते हैं, यह कई बातों पर निर्भर है। इनमें से एक बात है, सीखने की प्रक्रिया के बारे में आपकी समझ। ज़ाहिर है इसमें ये सारी बातें शामिल होंगी बच्चे कैसे सीखते हैं, इस पर

आपकी सोच; आप जो विषयवस्तु पढ़ाना चाहते हैं (या चाहते हैं कि बच्चे सीखें) उसकी प्रकृति; तथा इस बारे में आपकी समझ कि सीखने का मतलब क्या है? इन तीन बातों को जोड़कर बनता है सीखने का मॉडल।

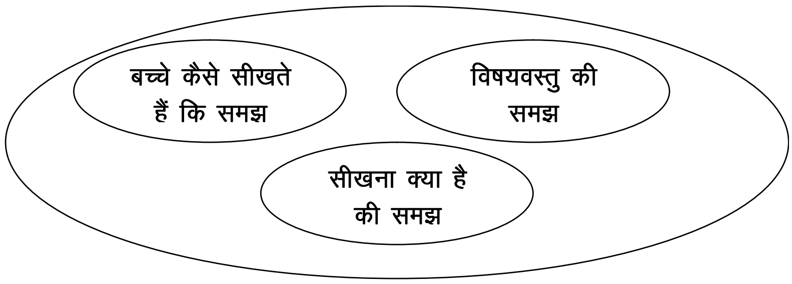

चित्र1. सीखने का मॉडल

जैसा कि आप देख सकते हैं, हममें से कोई भी सीखने के किस मॉडल को अपनाता है, यह काफी हद तक इस बात से तय होता है कि 'सीखना' शब्द से हम क्या समझते हैं। मसलन, क्या निम्नलिखित उदाहरण में आप कहेंगे कि सीखना हुआ?

उदाहरण 1 : नायर अपनी कक्षा 4 के छात्रों को भिन्नों की जोड़ सिखाने में दो सप्ताह लगा चुके थे उसने पाठ्यक्रम तथा पुस्तकों में से कई सवाल बोर्ड पर उनके लिए हल किए थे। उसने बच्चों को गृहकार्य के तौर पर पाठ्यक्रम के सवाल भी दिए थे। गृहकार्य जांचने पर उसने पाया कि ज्यादातर बच्चे सारे सवाल सही कर लेते हैं। इसके आधार पर और कक्षा में प्रदर्शन के आधार पर उसे यकीन था कि बच्चे भिन्नों की जोड़ सीख गए हैं। एक हफ़्ते बाद जब उसने भिन्नों की संक्रियाओं से सम्बंधित वैसे ही कुछ नए सवाल दिए तो अधिकांश छात्र इन्हें कर नहीं पाए। वह अत्यंत निराश हो गया।

क्या आपको लगता है कि नायर की कक्षा भिन्नों को जोड़ना सीख गई थी? आप इसका फैसला कैसे करेंगे? क्या आप इसे सीखने की अपनी परिभाषा के अनुसार नहीं करेंगे ? आइए, देखें कि जिन चन्द शिक्षकों से हमने बातचीत की, वे सीखने को किस रूप में समझते हैं।

- एक दिए गए उत्प्रेरक का अपेक्षित जवाब देना ही सीखना है।
- अभ्यास के कारण व्यवहार में बदलाव ही सीखना है।
- अभ्यास और अनुभव दोनों के कारण व्यवहार में बदलाव ही सीखना है।
- बारम्बार पुष्ट हुए अभ्यास के ज़रिए व्यवहार में स्थायी बदलाव ही सीखना है।

निम्नलिखित कुछ प्रश्न को करते हुए इन नज़रियों पर गौर कीजिए।

कुछ प्रश्न

ऊपर दी गई परिभाषाओं में से आप किनसे सहमत हैं, और क्यों? यदि आपकी परिभाषा कोई और है, तो उसे लिख दीजिए। समझाइए कि आप इसे क्यों मानते हैं और यह ऊपर दी गई परिभाषाओं से कैसे अलग है।

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओं में यह कहा गया है कि सीखना तभी होता है जब वह दूसरे लोगों को नज़र आए अर्थात् दूसरे लोग सीखने वाले के व्यवहार में बदलाव को देख सकें। मसलन, इन परिभाषाओं के मुताबिक यदि कोई बच्ची आपको घटाने के किसी सवाल का सही जवाब दे दे, तो वह घटाना सीख गई है; लेकिन अगर

वह सही जवाब नहीं देती है, तो वह नहीं सीखी है। शिक्षक की इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं होती कि गलत जवाब किस समझ की वजह से है या किस हद तक बच्ची अवधारणा को समझ गई है। अलबत्ता, हो सकता है कि इस बच्ची ने घटाने की कुछ समझ बना ली हो, और शायद यह समझ लिया हो कि घटाने पर आपको पहले से छोटी संख्या मिलती है। यानि, बेवजह आपको अपेक्षित उत्तर नहीं देती है, तब भी हो सकता है कि घटाने के बारे में उसका कुछ एहसास बन गया हो । यह समझ शायद घटाने के सवाल हल करने की क्षमता के रूप में तुरंत नज़र न आए। लेकिन, जब वह अधिक स्थितियों में इस समझ को लागू करती जाएगी तो उसकी समझ आगे विकसित होगी।

कुछ मनोवैज्ञानिक बच्ची द्वारा समझ विकसित करने के इस नज़रिए को मानते हैं। उनका मानना है कि सीखने की प्रक्रिया को समझने के अन्य तरीके भी हैं। वे यह अपेक्षा नहीं करते कि सवाल हल करने का 'पढ़ाया गया' तरीका बच्चे तुरंत प्रदर्शित कर देंगे। वे इस बात का सम्मान करते हैं कि बच्ची को अपने ढंग से सोचने और विश्लेषण करने की ज़रूरत होती है। इसके लिए वे सुझाव देते हैं कि बच्चों को ऐसे अलग–अलग तरह के कार्य दिए जाएं जिनसे उन्हें सीखने का मौका मिले।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए एक बच्ची के सामने वास्तविक जीवन व कक्षा की ऐसी कई स्थितियां प्रस्तुत की जाती हैं जिनमें उसे वस्तुओं को जोड़ना और घटाना है। इनमें बाजार से सामान खरीदना और बेचना भी शामिल हो सकता है। काफी सम्भावना है कि ये अनुभव उसे संख्याओं की एक समझ बनाने में तथा जोड़ने व घटाने का अर्थ समझने में मदद करेंगे। यह हो सकता है कि ऐसी समझ तुरंत अलग–अलग सवालों को हल करने की क्षमता के रूप में न दिखाई दे। लेकिन यह उन स्थितियों में एक विकसित क्षमता के रूप में नजर आए जहां बच्ची को इसकी ज़रूरत हो।

बच्चों को सीखने में मदद के लिए दिए जाने वाले काम कई तरह के हो सकते हैं। कुछ शिक्षक मानते हैं कि सीखना बारम्बार अभ्यास का परिणाम है। उनके लिए इसका अर्थ होता है एक ही काम को बार–बार दोहराना। वे उन बच्चों को शाबाशी देते हैं जो उस काम को सही कर लें और गलती करने वालों को दण्ड मिलता है। मसलन, वे बच्चों को एक विधि बताएंगे और उस विधि का इस्तेमाल करके हल करने को कई सवाल दे देंगे। इसके बाद वे बच्चों के काम को जांचेंगे और सिर्फ गलत या सही का निशान लगाएंगे। इस तरह के 'बारम्बार अभ्यास' और आकलन से कितना सीखना होता होगा? क्या बच्चों को किसी अवधारणा से बार–बार संपर्क करवाने के कोई और तरीके हो सकते हैं ?

अवधारणाओं और प्रक्रियाओं के साथ ऐसे अधिकांश अभ्यास ठोस वस्तुओं तथा कार्यों के इस्तेमाल के जरिए होने चाहिए जिनमें बच्ची खुद शामिल हो। अभ्यास में यह भी शामिल होगा कि सीखने वाली खुद अपने लिए और अपने सहपाठियों के लिए सवाल व कार्य तैयार करे। सीखने के ये कार्य दोहराव या एक ही किस्म के कई सवाल हल करने से बहुत अलग हैं। दरअसल हर कार्य की रचना इस तरह से की जानी चाहिए कि बच्ची के सामने चुनौती पेश हो।

कुछ प्रश्न

• अपने विचार से ऐसे अनुभवों की एक सूची बनाइए जिनसे सीखना विकसित होता है। (मसलन अवलोकन, प्रयोग करना, नकल करना जैसी गतिविधियां।)

अब हम तीन मॉडलों की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि शिक्षण पर उनका क्या असर है। इनके बारे में पढ़ते वक़्त सीखने के बारे में विभिन्न नज़रियों को ध्यान में रखें।

● सीखना यानी रटना : बैंकिंग मॉडल

एक दिन मेरी मुलाकात एक पब्लिक प्राथमिक शाला के हैडमास्टर से हुई। उनके मुताबिक गुणा सिखाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चों को एक पेड़ के नीचे गोले में बैठने को कहा जाए। अब एक बच्ची बीच में आकर खड़ी हो जाए और ज़ोर से बोले '2 एकम 2'। बाकी सारे बच्चे इसे ज़ोर से दोहराएं। इस तरह से बीच में खड़ी बच्ची पूरा पहाड़ा बोले और बाकी बच्चे गुणा के ये तथ्य दोहराएं, बार–बार। जब पूछा गया कि यह विधि सबसे अच्छी क्यों है, तो उनका जवाब था, ''मैंने गुणा इसी तरह सीखा था और मैं पहाड़े कभी न भूलूंगा।''

हैडमास्टर के सीखने के मॉडल के मुताबिक सीखने का मतलब मूलतः तथ्यों को याद करना और पूछे जाने पर फौरन उगल देना है। दूसरे शब्दों में, इस मॉडल में सीखने व रटने को एक ही बात माना जाता है। आइए इस मॉडल के अनुसार शिक्षण का एक और उदाहरण देखें।

उदाहरणः विक्की लड़कों की एक सरकारी प्राथमिक शाला में कक्षा 5 में है। हम दोनों बातचीत कर रहे थे कि वह गणित के सवाल कैसे करता है और क्या वह कुंजी का इस्तेमाल करता है।

विक्की : मैं किताबों में से सवाल करता हूं। उनके जवाब कुंजी में नहीं देखता।

मैं : तो फिर तुम सवाल कैसे करते हो?

विक्की : दिमाग से।

मैं : दिमाग से कैसे करते हो?

विक्की : सोचकर

मैं : सोचना क्या होता है?

विक्की : याद करना।

आप देख सकते हैं कि विक्की के मन में सोचने और याद करने के बीच, सीखने और रटने के बीच कोई फर्क नहीं है।

इस मॉडल में सीखने वाली से उम्मीद यह की जाती है कि वह पढ़ाए गए प्रश्न का उत्तर उगलने की अपनी क्षमता का उपयोग करे। इस मॉडल के तहत् न सिर्फ़ पहाड़े बल्कि यूक्लिडीय ज्यामिति की प्रमेयों के प्रूफ भी रटे जाते हैं। सीखने वाली को प्रमेय और प्रूफ, चरण दर चरण दे दिए जाएंगे। उससे कहा जाएगा कि वह वही प्रूफ (उन्हीं शब्दों में) बार–बार दोहराए। यानी, यहां जिस बदलाव की उम्मीद की जाती है, वह है कि सीखने वाली को जिस ढंग से प्रमेय के प्रूफ पढ़ाए गए थे, उन्हें उसी रूप में दोहरा देने की क्षमता उसमें आ जाएगी।

याद करने को सीखने के बराबर मानना ऐसा है मानो जानकारी के एक ढेर को किताब में से निकालकर दिमाग में रखना और परीक्षा के समय इसे दिमाग से उत्तर पुस्तिका में उतार देना ही सीखना हो। सीखने के इस नज़रिए को बैंकिंग मॉडल कहा जा सकता है क्योंकि इस मॉडल के अनुसार, किसी बैंक की तरह याददाश्त में तथ्य रखे व निकाले जाते हैं। शिक्षक छात्रों के दिमागी–बैंक में ज्ञान जमा कर देते हैं और फिर छात्र जरूरत पड़ने पर इन्हीं तथ्यों को निकाल लेते हैं।

निम्नलिखित अभ्यास करते हुए ऐसे और उदाहरण सोचिए।

कुछ प्रश्न

गणित पढ़ाने के संदर्भ में बैंकिंग मॉडल के तहत् सीखने वाले से तीन अपेक्षाएं बताइए?

और अब देखते हैं कि यदि शिक्षक के रूप में हम बैंकिंग मॉडल को अपनाएं, तो बच्चों के लिए सीखने के मौके बनाने के लिए हम क्या करेंगे। इस मॉडल में बच्ची से एक काम बार–बार करने को कहा–जाएगा। उससे कहा जा सकता है कि वह किसी बात को बार–बार बोले (जैसे गिनती)। या उसे कुछ सवालों के हल देकर कहा जा सकता है कि वह इन्हीं सवालों को या इन जैसे सवालों को बार–बार हल करे। शुरू में उससे यह भी कहा जा सकता है कि वह बोर्ड से या किसी दूसरी कॉपी से इन उत्तरों को कई बार अपनी कॉपी में उतारे। उन्हीं सवालों के जवाबों का अभ्यास बार–बार करने से धीरे–धीरे बच्ची याददाश्त से उन सवालों के जवाब लिख सकेगी।

क्या हमारी ज्यादातर कक्षाएं इसी तरह से नहीं चलतीं ? जब शिक्षक अपना पाठ समाप्त कर देते हैं, तो वह बच्चों से इसे याद करने को कह देते हैं, जब वह कक्षा में सवाल पूछती है, तो वह बच्चों से याद करके बताने को कहते है। इस मॉडल का इस्तेमाल करने वाले मानते हैं कि बच्ची ने तभी कुछ सीखा है जब वह शिक्षक द्वारा उस संबंध में कही गई बातों को दोहरा सके, वरना नहीं।

लिहाज़ा बच्चे अपने शिक्षकों या माँ/बाप/दोस्तों से मदद यह मांगते हैं कि वे जांच करके बता दें कि उन्होंने विषयवस्तु को ठीक से याद कर लिया है या नहीं। वे बड़ों से यह भी मदद चाहते हैं कि वे उन्हें बार–बार दोहराकर याद करने में मदद करें। जब कुछ बच्चों से रटने का कारण पूछा गया, तो उन्होने बताया, ''ताकि हम अपने आप कर सकें, हमें किताब न देखनी पड़े'' और ''याद करके हम किताब और शिक्षक से स्वतंत्र हो जाएंगे क्योंकि तब ज्ञान दिमाग में होगा।'' और ''ज्ञान बढ़ाने के लिए।''

ज़ाहिर है, इस मॉडल में अच्छे छात्र वे होते हैं जिनकी याददाश्त अच्छी है। ये छात्र वाकई कड़ी मेहनत करते हैं क्योंकि याद करना कठिन काम है; आपको एक ही बात को कई बार दोहराना होता है ताकि कहीं भूल न जाएं। इस मॉडल के अनुसार, जो छात्र परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं करते वे मूलतः आलसी होते हैं। आपके कितने शिक्षक इस बात को मानते थे ? इस बारे में सोचिए और अगला अभ्यास कीजिए।

कुछ प्रश्न

कक्षा 9 व 10 में आपको पढ़ाने वाले कितने शिक्षक शिक्षा के बैंकिंग मॉडल को मानते थे? जिन बातों को याद करना होता था, उन्हें याद करने के लिए आप कौन सी तकनीकें व गुर अपनाते थे?

अब आप बैंकिंग मॉडल से परिचित हो गए हैं, तो सोचिए कि क्या यह सीखने की प्रक्रिया को समझने के लिए काफी है । मेरे कुछ मित्र इस बात से सहमत होंगे कि सीखने व दुनिया में काम चलाने के लिहाज़ से याददाश्त की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन क्या इन्सानी दिमाग़ सिर्फ़ जानकारी और अतीत के अनुभवों का भण्डार है जिन पर भविष्य के सारे क्रियाकलाप, विचार और नई बातों का सीखना निर्भर करता है ? यदि यह सही है, तो आप इस बात को कैसे समझ पायेंगे कि हर बच्ची अपनी मातृभाषा जानती है और अपने आसपास बोली जाने वाली कोई भी भाषा सहज रूप से इस्तेमाल कर लेती है?

जब कोई बच्ची एक वाक्य सुनती है, तो वह इस्तेमाल होने वाले शब्दों का अर्थ खोजने की कोशिश करती है। मसलन, जब बच्ची सुनती है कि 'वह कुत्ता बड़ा है', तो वह इसे किसी अपेक्षाकृत छोटी चीज़ से तुलना के संदर्भ में समझने की कोशिश करती है। जब वह कुत्ते से बड़ा कोई जानवर देखती है, जिसे उसने पहले भी देखा हो, तब वह कुत्ते की तुलना इस बड़े जानवर से करके कहती है, 'कुत्ता छोटा है'। इसी प्रकार से अपने रोज़मर्रा के क्रिया–कलापों में बच्ची कई विचार व भावनाएं व्यक्त करती है। वह अपने ढंग से उन स्थितियों का वर्णन करती है जिनसे वह जूझती है। वह नई स्थितियों में भी अपने आपको व्यक्त कर पाती है। वह ऐसे कई वाक्य बनाकर कह पाती है जो शायद उसने पहले कभी नहीं सुने थे। बच्ची ऐसी किताब भी पढ़ पाती है जो उसने

पहले कभी नहीं देखी थी। वह कहानी का कुछ अर्थ बना लेती है और कहानी में आए नए शब्दों के अर्थ सीख लेती है। मसलन, जिराफ़ के बारे में कहानी पढ़ते हुए कोई बच्ची यह समझ जाएगी कि जिराफ की गर्दन लम्बी होती है और वह पत्तियां खाता है यह भी सच है कि बच्ची में यह क्षमता होती है कि यह एक ही शब्द के कई अर्थों को सहेज ले और विशिष्ट संदर्भ में उपयुक्त अर्थ चुन लें।

कुछ प्रश्न

क्या बैंकिंग मॉडल इस बात की पूरी व्याख्या करता है कि बच्चे गणित कैसे सीखते हैं? क्या यह मॉडल दिमाग में जानकारी को व्यवस्थित व पुनर्व्यवस्थित करने की क्षमता की व्याख्या करता है? अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिए?

ऐसी दो कक्षाओं के उदाहरण दीजिए जिनसे पता चले कि शिक्षा बैंकिंग मॉडल पर आधारित है। (आप इनमें शिक्षण प्रक्रिया को किस तरह बदलेंगे कि वह सार्थक बन जाए?)

आइए करें

1. अपनी कक्षा में बच्चों के लिए एक गतिविधि तैयार कीजिए और सोचिए यह याददाश्त पर कितनी निर्भर है?

2. अपने किसी मित्र से यही अभ्यास करने को कहिए। क्या उसकी गतिविधि का उद्देश्य भी तथ्यों को याद करना है?

● सीखना यानी प्रोग्रामिंग

आइए, अब शिक्षण के एक और प्रचलित मॉडल को देखें।

रजनी कक्षा 2 के बच्चों को हासिल वाले जोड़ की विधि समझा रही थीं वह कह रही थी, ''जब भी तुम्हें दो या दो से ज्यादा संख्याएं जोड़ने को दी जाएं तो तीन कालम बना लो। इनमें से एक पर सैकड़ा', एक पर 'दहाई' और एक पर 'इकाई' लिख दो। 'सैकड़ा' सबसे बाईं ओर के कॉलम पर लिखो और 'इकाई' सबसे दाईं ओर के कॉलम पर। संख्याओं को एक के नीचे एक लिख लो। यह ध्यान रखना कि दहाई 'दहाई' के और इकाइयां 'इकाई' के कॉलम में लिखो। सबसे पहले 'इकाई' वाले अंकों को जोड़ो और ज़रूरी हो तो हासिल आगे ले जाओ। इसके बाद दूसरे कॉलम का जोड़ करो। इस तरह से प्रत्येक कॉलम को जोड़ो और हर बार हासिल पता करो।''

रजनी की कक्षा में क्या चल रहा है ? क्या यह रटना है ? या क्या सीखने का कोई दूसरा मॉडल इस्तेमाल हो रहा है ? रजनी की कोशिश है कि बच्चों को एक ऐसा तरीका बता दे, जिसका उपयोग वे आसानी से कर सकें और जिसमें चूक होने की उन्हें कोई फिक्र न हो। मुख्य बात यह है कि बच्चों को इस विशेष तरीके को याद रखना होगा और इसका पालन करना होगा। यदि बच्चों को इन चरणों का पालन करने का भरपूर अभ्यास करवा दिया जाए तो फिर वे इस तरह का कोई सवाल पहचानते ही, बग़ैर सोचे यह तरीक़ा लागू कर सकेंगे।

यदि आप सीखने के इस नज़रिए को मानते हैं तो आप बच्चों को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाएंगे, निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर :

• मुझे इस तरह के सवाल हल करने का सबसे अच्छा तरीका मालूम है और मुझे यह बच्चों को बताना चाहिए।

• बच्चों पर बहुत बोझ न डालकर, उन्हें एक–एक कर सिखाना चाहिए।

• यदि मैं उन्हें यह तरीका सिलसिलेवार पढ़ाऊं और यह सुनिश्चित कर दूं कि वे इन चरणों के अनुसार सवाल कर पाएं, तो उन्हें कोई भी सवाल हल करने में दिक्कत नहीं होगी।

• बच्चों को पहले आसान सवाल करने आ जाएं, तब मैं उन्हें कम आसान सवाल करना सिखा सकती हूँ।

• यदि कोई बच्ची एक ही तरह के कई सवाल सुलझा ले तो वह संबंधित विधि सीख जाएगी। इस मॉडल के मुताबिक सीखने का मतलब है निर्देशों की एक श्रृंखला जिसे याद करके पालन करना होता है। इसमें माना जाता है कि सीखना टुकड़ों में होता है, थोड़ा– थोड़ा करके। इसमें यह भी माना जाता है कि सभी बच्चे एक ही ढंग से सीखते हैं, अलबत्ता हो सकता है कि रफ़्तार अलग–अलग रहे। लिहाज़ा जो बच्चे नहीं सीख पाए हैं, उनके लिए करना सिर्फ इतना है कि उसी प्रोग्राम (निर्देश–श्रृंखला) पर कुछ और उदाहरण लेकर कुछ और समय लगाया जाए।

आप शायद सहमत होंगे कि सीखने के इस नज़रिए को 'प्रोग्रामिंग मॉडल' कहना ठीक है। आप देख सकते हैं कि इस मॉडल और बैंकिंग मॉडल के बीच कई समानताएं हैं।

तो, यदि आप प्रोग्रामिंग मॉडल पर चलते हैं तो आप बच्चों को एक रैखिक ढंग से पढ़ाएंगे और ध्यान से उठाए गए छोटे–छोटे चरणों के ज़रिए उन्हें सरल से कठिन धारणाओं की ओर ले जाएंगे। इसी बात को रजनी इस तरह बताती है,

'जब कक्षा के सारे बच्चे बग़ैर हासिल वाले दो अंकों का जोड़ सीख जाते हैं, तब मैं उन्हें दो अंकों के हासिल वाले जोड़ से परिचित कराती हूं और इसके चरण समझा देती हूं। बच्चों को हासिल वाले जोड़ का काफ़ी अभ्यास करवाने के बाद मैं घटाना सिखाना शुरू करती हूं।''

अगर आप मानते हैं कि बच्ची प्रोग्रामिंग से सीख सकती है, तो रैखिक तरह से सिखाने के अलावा, आप बच्ची को एक वक्त पर एक ही किस्म के सवाल देंगे। आप जो सवाल देंगे वे ऐसे होंगे जिनमें एक विधि को इस्तेमाल करने की ज़रूरत होगी। बच्ची उलझन में न पड़े, इसके लिए, आप उसे मिले–जुले सवाल नहीं देंगे। सिर्फ वही सवाल चुने जाएंगे जिनमें दी गई विधि का इस्तेमाल होता है। आप ऐसे सवाल नहीं देंगे जिनमें विधि का इस्तेमाल न होता हो या विधि का इस्तेमाल थोड़े फ़ेरबदल के साथ होता हो।

मसलन, रजनी दो अंकों की संख्याओं के हासिल वाले जोड़ सिखाने के बाद ढेर सारे इसी तरह के सवाल देगी। इसके बाद वह ऐसे सवाल देगी, जिनके बारे में बच्चे जानते हैं कि उसी विधि का उपयोग करना है। जब वह घटाने पर पहुंच जाएगी, तब भी वह काफी समय तक टेस्ट या होमवर्क में जोड़ के इबारती सवाल शामिल नहीं करेगी।

अगला अभ्यास करते हुए रजनी के शिक्षण के तरीके पर विचार कीजिए।

कुछ प्रश्न

प्रोग्रामिंग मॉडल को मानने वाले एक शिक्षक का तर्क है, ''गुणा जाने बगैर बच्चे क्षेत्रफल के बारे में कैसे सीख सकते हैं? आखिर, क्षेत्रफल पता करने के लिए लम्बाई और चौड़ाई का गुणा तो करना ही होगा। तो गुणा सीखे बिना बच्चे क्षेत्रफल सीखना कैसे शुरू करेंगे?'' आप इस शिक्षक के साथ सहमत या असहमत क्यों हैं?

प्रोग्रामिंग मॉडल में सीखने की प्रक्रिया यह है कि बच्ची को शुरू में उसके द्वारा प्रदर्शित क्षमताओं से अन्तिम अपेक्षित व्यवहार तक ले जाना। इस प्रक्रिया को छोटे–छोटे टुकड़ों में या उप–चरणों में बांटा जाता है। प्रत्येक उपचरण में सीखने के एक कार्य को एक उत्प्रेरक के रूप में बनाया जाता है। इस उत्प्रेरक के उपयुक्त जवाबों को चुनकर अभ्यास के माध्यम से पुष्ट किया जाता है। अनचाहे जवाबों को हटा दिया जाता है। बच्ची ने व्यवहार

के प्रत्येक टुकड़े को सीखना है और उसमें महारत हासिल करनी है। आखिर में जो व्यवहार हम बच्ची से चाहते हैं उसे हासिल करने के लिए जवाबों की इस श्रृंखला के ज़रिए सीखना पूरा हो जाता है। आइए, इसका उदाहरण देखें।

मान लीजिए बच्ची को प्राकृतिक संख्याओं का जोड़ सीखना है। पहला चरण यह पता करने का होगा कि क्या उसे 1 से 50 या 1 से 100 तक की गिनती याद है। (इसे भी छोटे–छोटे टुकड़ों या उप–चरणों में बांटा जा सकता है, मगर फिलहाल हम उसमें नहीं जा रहे हैं। अगला चरण संख्याओं को लिखने का होगा। यह चरण 0 से 9 लिखने से शुरू होकर आगे बढ़ेगा। तीसरा चरण ऐसी संख्याओं के जोड़ का होगा जिनका योग 9 तक हो। इतने सब पर महारत हो जाने के बाद ही अगला चरण शुरू किया जाएगा। इस चरण में बच्ची को 10 से बड़ी संख्याओं को लिखने और एक अंक की संख्याओं का जोड़ करने की ओर ले जाया जाएगा। इस प्रकार से, कतरा–दर–कतरा व्यवहारों की एक श्रृंखला बच्ची का अंग बनती जाएगी। इस प्रक्रिया के दौरान बच्ची को लगातार बताया जाएगा कि क्या सही है और उसकी कौन सी प्रतिक्रिया गलत है।

एक उदाहरण द्वारा इस बात को भी देखते हैं कि इस तरीके में गुणा कैसे सिखाया जाएगा। गुणा को मूलतः '8 गुणा 4 बराबर क्या' जैसे सवालों के जवाब देने की क्षमता के रूप में देखा जाएगा। ऐसा सवाल होने पर उम्मीद होगी कि बच्ची फौरन '32' कहे। बच्ची अगर इस सवाल के कई जवाब दे, और उनमें से अगर हर बार इसे चुना जाए, तो यह सही के रूप में स्थापित हो जाएगा। बाकी जवाबों को गलत कहकर बस हटा दिया जाएगा। ऐसा करते हुए यह नहीं सोचा जाएगा कि बच्ची इस जवाब तक कैसे पहुंची। इस तरीके में इस बात का कोई महत्व नहीं है कि '40' कहा (शायद 10 × 4 के अपने ज्ञान से अंदाजा लगाकर) या 2 कहा, या कोई अन्य संख्या बताई। ऐसे शिक्षक की इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं होती कि बच्ची ने किस किस्म की गलती की है और इस गलती से उसके अवधारणात्मक विकास के बारे में क्या पता चलता है। यह नहीं सोचा जाता है कि क्या यह गलती सिर्फ याद कर पाने की कमी के कारण है या अनुमान के एहसास का अभाव भी इसमें झलकता है।

थोड़ा आगे बढ़ें, इस विधि में यदि हम बच्ची से बड़ी संख्याओं का गुणा करवाना चाहें तो उसे पहाड़े याद होने चाहिए और गुणा विधि के नियम याद होने चाहिए। गुणा विधि के हर चरण, एक अंक की संख्या, दो अंकों की संख्या, हासिल व बकाया, शून्य के साथ क्या करें, वगैरह, को थोड़ा–थोड़ा करके सिलसिलेवार बताया जाएगा। इस प्रशिक्षण के परिणामस्वरूप होगा यह कि यदि बच्ची ने अभी 42 × 5 की गणना की है, तो भी 42 × 6 =? को हल करने के लिए उसे पूरी प्रक्रिया फिर से दोहरानी होगी।

इन उदाहरणों पर गौर करते हुए निम्नलिखित अभ्यास कीजिए।

कुछ प्रश्न

ऊपर बताए गए दो मॉडलों में से किसी का पालन करने वाले शिक्षक बच्चों को बीजगणित या ज्यामिति की कोई प्रमेय सिखाने के लिए क्या तरीका अपनाएंगे?

अब यह देखते हैं कि प्रोग्रामिंग मॉडल में मूल्यांकन कैसे किया जाता है। इस मॉडल को लागू करने वाली शिक्षिका यह जांच कैसे करती है कि बच्ची वास्तव में सीख चुकी है? वह इस बात पर गौर करती है कि जब बच्ची ने प्रोग्राम में कदम रखा था तब और शिक्षण प्रक्रिया के अन्त में उसकी क्षमताओं और व्यवहार में कौन से अन्तर साफ नज़र आते हैं। जो व्यवहार के उन परिवर्तनों पर है जो दूसरों को नज़र आएं। इस नज़रिए के मुताबिक किसी बच्ची ने तैरना तभी सीखा है जब वह पानी में होने पर अपनी इस नई क्षमता का प्रदर्शन कर पाए। जिस बच्ची ने गुणा करना सीख लिया है उससे उम्मीद की जाती है कि वह गुणा की विधि का उपयोग करके इस का प्रदर्शन कर सके। वास्तव में शिक्षिका बच्ची को कुछ परिचित सवाल देकर उसकी समझ का मूल्यांकन करती है। बच्ची को अनजाने सवाल कभी नहीं दिए जाते, चाहे वे उसी तरह के क्यों न हों जो वह

पहले कर चुकी है। यदि बच्ची गलत उत्तर दे तो इस बात को कोई नहीं पहचानता कि शायद उसने थोड़ा सीख लिया है। बच्ची ने सीखा तभी है, जब वह पूछे प्रश्न का शिक्षिका द्वारा सिखाया गया जवाब देकर दूसरों को दिखा दे कि उसने सीखा है।

अब तक हमने जिन दो मॉडलों की चर्चा की है, उनमें सीखने के ज़रिए जो परिवर्तन हम लाना चाहते हैं उसे व्यवहारगत रूप में समझा जा सकता है और सीखने को पुष्टीकृत व्यवहार के रूप में समझा जाता है। इसका मतलब यह है कि यदि आप चाहते हैं कि कोई बच्ची एक क्षमता या व्यवहार का प्रदर्शन करे तो आप उससे बार–बार इसका अभ्यास करवाएं। जब वह आपकी इच्छा के अनुसार कार्य करें, तो आप उसको अच्छा बताते हुए उसका उत्साह बढ़ाइए। जब वह ग़लती करे तो वह एक तरह की संख्याओं को घटा–घटाकर घटाने का अभ्यास करेगी। एक ही तरह के सवालों को हल करने की क्षमता के संदर्भ में उसका मूल्यांकन किया जाएगा। ऐसा करते हुए, सही होने पर उसे शाबाशी मिलेगी और ग़लती करने या किसी और विधि (जो सही भी हो सकती है) का उपयोग करने पर उसे डांट पड़ेगी।

इस रवैये का नतीजा यह होता है कि बच्चे नहीं समझ पाने को छिपाने के तरीके ढूंढते हैं और वे ऐसा दिखाने की कोशिश करते हैं कि वे बात सीख गए हैं। उदाहरण के लिए, इन मॉडलों के ज़रिए सीखने वाले बच्चों के सामने जब संख्याओं से संबंधित इबारती सवाल रखे जाते हैं, तो वे कहते हैं :

''यदि मुझे किसी सवाल में 'ज्यादा' या 'कुल मिलाकर' जैसे शब्द दिखें, तो मैं समझ जाती हूं कि इन संख्याओं को जोड़ना है।'' या ''मैं सवाल में दी गई संख्याओं को देखती हूँ। यदि संख्याएँ 86 और 51 जैसी हैं तो मैं इन्हें जोड़ देती हूँ या गुणा कर देती हूँ, लेकिन अगर संख्याएँ 86 और 5 हैं तो मैं भाग कर देती हूँ।''

कुछ प्रश्न

बैंकिंग मॉडल और प्रोग्रामिंग मॉडल के बीच क्या समानताएं हैं?

सीखने के दो मॉडलों पर विचार कर लेने के बाद, अपने आपसे यह सवाल पूछिए कि क्या ये मॉडल इस बात को समझने के लिए काफी हैं कि बच्ची क्या कर सकती है। उसका जवाब देने के लिए शायद आपको निम्नलिखित दो समस्याओं पर गौर करने की ज़रूरत होगी –

(क) यदि आपसे कहा जाए कि व्हेल हालांकि मछली जैसी दिखती है लेकिन वास्तव में वह एक स्तनधारी है, तो व्हेल के वारे में वे कौन सी बातें होंगी, जो आपको बगैर बताए ही मालूम हो जाएंगी? (जैसे, कि वह स्थिरतापी होगी)

(ख) आपको संख्या 1986110 दी गई है। इस संख्या के बारे में 5 तथ्य लिखिए जो आप जानते हैं कि सत्य हैं, हालांकि आपने इस संख्या के बारे में पहले कभी विचार नहीं किया है।

इन सवालों का जवाब देते हुए आप किन दिमाग़ी प्रक्रियाओं से गुज़रे? क्या आपने अवधारणाओं के बीच नए संबंध जोड़े? क्या आप इनसे संबंधित गुणों का अनुमान लगा पाए?

प्रोग्रामिंग मॉडल और बैंकिंग मॉडल दोनों ही यह नहीं मानते कि बच्ची के दिमाग में विचार बनाने की या अवधारणाओं के बीच नए संबंध बनाने की क्षमता होती है। नई जानकारी को समझने व व्यवस्थित करने की क्षमता को ये दोनों मॉडल नहीं समझा सकते। क्या आपको लगता है कि ये मॉडल परिकल्पना बनाने, अनुमान लगाने, अटकल लगाने, तर्क करने, निष्कर्ष निकालने की क्षमताओं को समझा सकते हैं? इनमें से किसी भी क्षमता को इन दो मॉडलों में कोई स्थान नहीं दिया गया है।

दोनों ही मॉडलों में बच्ची से उम्मीद की जाती है कि वह रूखे ढंग से कुछ तथ्य दोहरा दे और बगैर सोचे

या बदले किसी प्रक्रिया को लागू कर दे। लेकिन बच्चों का व्यवहार और उनकी क्रियाएं कुछ और ही कहानी कहते हैं इस अन्तर को समझने के लिए सीखने का एक और मॉडल है। इस मॉडल में माना जाता है कि यह सीखने की प्रक्रिया का सबसे सचेत हिस्सा है। आइए, इस सवाल पर एक नज़र डालें।

● सीखना यानी समझ का निर्माण

जैसे आपने देखा, सीखने के जिन दो नज़रियों की चर्चा हमने अंत तक की है, वे सीखने के कई पहलुओं को समझाने में असफल हैं। उनमें यह नहीं माना जाता कि दुनिया से परिचित कराने का एहसास बनाने या उसे समझने में बच्ची का दिमाग सक्रिय होता है। इन मॉडलों के अनुसार सीखने की पूरी प्रक्रिया में बच्चों की कोई भूमिका नहीं रहती। शिक्षक द्वारा दी गई जानकारी को ग्रहण करने में बच्ची जो भी गलती करे उसे दण्ड और इनाम की एक व्यवस्था द्वारा दूर किया जाना चाहिए। ये मॉडल नहीं मानते कि बच्ची कि ग़लतियों से हमें उसकी सोच की धारा का पता चलता है। इन मॉडलों में यह नहीं माना जाता कि ग़लतियाँ एक सक्रिय दिमाग का प्रमाण है।

बुद्धि परीक्षण विकसित करते हुए स्विस मनोवैज्ञानिक पियाजे (Piaget) ने 1920 के आसपास ही यह समझ लिया था कि बच्चों की ग़लतियाँ हमें बतातीं हैं कि वे कैसे सोचते हैं। आपने इस बात के कई उदाहरण पढ़े थे कि बच्चों द्वारा की गई गलतियों का उपयोग कैसे उनको सीखने में मदद देने के लिए किया जा सकता है। हमें सिखाने के अपने तौर–तरीकों के आधार एक ऐसे मॉडल पर कार्य करना चाहिए जो बच्चे की बुद्धि व संज्ञान की इस सक्रिय प्रकृति को मान्यता दे।

सीखने का वह नज़रिया जो सीखने वाले को सीखने की प्रक्रिया में एक सक्रिय कर्त्ता (अर्थात् आसपास के भौतिक व सामाजिक परिवेश को जानने की सक्रिय कोशिश में जुटा हुआ) – मानता है, रचनावादी (constructivist) मॉडल कहलाता है। इस मॉडल के मुताबिक बच्ची अपने आसपास की दुनिया और लोगों के साथ संपर्क के आधार पर अपनी समझ बनाती (निर्मित करती) यदि आप इस मॉडल के आधार पर पढ़ाएंगे, तो आप बच्ची को अपने दिमाग पर जोर डालने को तथा विभिन्न पहलुओं के बारे में सोचने को प्रेरित करेंगे। आप कोशिश करेंगे कि वह, आपके सहयोग से स्वयं अवधारणाओं की छानबीन करे। आप बच्ची को ऐसे मौके देंगे जहाँ उसे सवाल हल करने की अपनी विधि खोजने के लिए जूझना पड़े। इसमें आप जरूरत पड़ने पर उसकी मदद करेंगे। आप बच्ची को ऐसे सवाल देंगे जिनके हल एक जैसे नहीं है और उम्मीद करेंगे कि वह हर सवाल से निपटने के तरीके खुद ढूंढें। इस तरीके में जरूरी होगा कि आप, यानी शिक्षक, बच्ची के साथ चर्चा करें कि उसने क्या किया है और उसे अवसर दें कि वह जिस अवधारणा को सीखने की कोशिश कर रही है उससे जुड़े तरह–तरह के सवाल हल कर सके।

आइए, इस मॉडल के इस्तेमाल का एक संक्षिप्त उदाहरण देखें।

उदाहरण 3 : फ़ातिमा कक्षा 2 के बच्चों को त्रिकोण व उनके गुणों से परिचित कराने की योजना बना रही थी। उसने चार्ट पेपर से तिकोन व अन्य आकृतियाँ काट लीं। उसकी योजना बच्चों को इन विभिन्न चीजों से खेलने देने की थी। वह ऐसी गतिविधियाँ देने की सोच रही थी जिनके ज़रिए बच्चे छानबीन करेंगे कि तिकोन क्या होता है, रोजमर्रा के जीवन में उन्हें तिकोन कहां दिखाई पड़ते हैं, तिकोन के गुण क्या है, वह वृत्त से अलग कैसे हैं, वगैरह । अगली कुछ कक्षाओं में उसे उम्मीद थी कि वह अलग–अलग किस्म के तिकोनों के चित्रों के माध्यम से उन्हें मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाएगी।

हर चरण पर वह कोशिश करेगी कि बच्चे अपनी समझ की चर्चा आपस में भी करें और उससे भी करें। उसका मानना है कि इस तरह से बच्चों की तिकोन की अपनी समझ बनने में मदद मिलेगी। वह कुछ गतिविधियों के जरिए ही बच्चों की समझ की जांच करने की योजना भी बनाएगी।

क्या इस उदाहरण से आपको कुछ अन्दाज़ा मिला कि इस मॉडल में बच्चों से सीखने संबंधी अपेक्षाएँ क्या हैं? रचनावादी मानते हैं कि बच्ची ठोस वस्तुओं पर क्रिया करके सीखती है। कोई भी अनुभव बेकार नहीं होता। कोई भी काम हो, उसे करते हुए बच्ची कुछ न कुछ सीखती है। कोई भी प्रमेय हो, बच्ची उसके उपप्रमेयों को सुलझाने का प्रयास कर सकती है। वह नये प्रमेय का प्रूफ ढूंढने की कोशिश कर सकती है, और अपने साथियों के साथ इस प्रमेय व इसके प्रूफ की चर्चा तार्किक ढंग से कर सकती है। इस मॉडल को मानने वाले यह उम्मीद करेंगे कि कोई बच्ची संख्याओं की श्रेणियों में पैटर्न खोजने का प्रयास करने की क्षमता रखती है। वह यह भी उम्मीद करते हैं कि बच्ची आंकड़ों में से व्यापक पैटर्न खोज सकती है, उस पैटर्न को खोजने की प्रक्रिया को व्यक्त कर सकती है और यह भी बता सकती है कि प्रक्रिया का इस्तेमाल क्यों किया गया।

इस तरह की समझ से यह अर्थ निकलता है कि बच्ची सवालों के जवाब देने की क्षमता हासिल करे और अवधारणाओं के बीच नई–नई कड़ियां जोड़ने में अपना दिमाग लगाए। सीखने का यह नज़रिया निश्चित तौर पर उस नज़रिए से अलग है जहां सिर्फ जाने–पहचाने सवाल हल करने होते हैं (बैकिंग मॉडल) यह नज़रिया इस बात पर ज़ोर देता है कि नए सवालों और नई समस्याओं के जवाब खोजने के लिए बच्ची अपनी क्षमताओं का उपयोग सोचकर करे।

और अब कुछ अभ्यास क्यों न हो जाए?

कुछ प्रश्न

1. गणित सीखने के संदर्भ में रचनावादी मॉडल के तहत् सीखने की अपेक्षाओं के कुछ और उदाहरण दीजिए?

2. निम्नलिखित में से प्रत्येक के बीच, उदाहरण सहित, तीन अन्तर बताइएः

(क) बैकिंग मॉडल और रचनावादी मॉडल;

(ख) प्रोग्रामिंग मॉडल और रचनावादी मॉडल।

3. यदि आपने शिक्षण किया है, तो आपने अपने पाठों के संदर्भ में 'व्यवहारगत उद्देश्य' निरूपित करने का अभ्यास किया होगा। अपने किसी एक पाठ के उद्देश्यों पर विचार करके देखिए कि वे उद्देश्य किस मॉडल के सबसे निकट हैं।

4. निर्माणवादी मॉडल के तीन लक्षण लिखिए।

अब तक हमने सीखने के विभिन्न नज़रिए प्रस्तुत किए। सीखने के बारे में अपनी समझ के अनुसार हम अपने दिमाग में सीखने के अलग–अलग मॉडल बनाते हैं। हममें से कुछ लोगों का विश्वास होता है कि बच्चे सीखना नहीं चाहते। इस मामले में सीखने का सिद्धांत और शिक्षण का तरीका इस बात पर ज़ोर देगा कि बच्चों में सीखने की इच्छा कैसे जगाई जाए, या उन्हें उनकी मर्जी के खिलाफ कैसे सिखाया जाए।

दूसरी ओर हम में से कुछ लोग मानते हैं कि बच्चे हमेशा सीखने के लिए उत्सुक रहते हैं, बशर्ते कि उन्हें सीखने के मक़सद नज़र आए। इस मामले में सीखने का सिद्धांत बिल्कुल अलग होगा।

शिक्षक व बच्ची के बीच के हर क्रिया–कलाप पर इस बात की छाप होती है कि शिक्षक सीखने के किस मॉडल को मानते है। हम सभी अपनी कक्षा में या सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में इन मॉडलों, या उनके मिले–जुले रूप का इस्तेमाल करते हैं, हालांकि हो सकता है कि हम अनजाने में ऐसा करते हों।

इस भाग में हमने आपको सीखने के रचनावादी नज़रिए का एक संक्षिप्त परिचय ही दिया हैं आगे आप इसके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। फिलहाल, इस इकाई में जितनी चर्चा की है उसे सार रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।

सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित बातें प्रस्तुत की हैं।

1) सीखने का मॉडल सीखने की पूरी प्रक्रिया का नज़रिया होता है – सीखना क्या है, क्या सीखा जाना है? सीखने वाले के गुण, सिखाने के उपयुक्त तरीके का चयन।

2) बैंकिंग मॉडल के लक्षण, जिसमें सीखने को तथ्य याद करने व वापिस उगलने के तुल्य माना जाता है।

3) प्रोग्रामिंग मॉडल के लक्षण, जिसमें सीखने का अर्थ होता है ऐसे प्रोग्रामों की एक श्रृंखला का पालन करना जो किसी दिए गए सवाल को सुलझाने के लिए शिक्षक बताते हैं।

4) सीखने के रचनावादी नज़रिए की संक्षिप्त चर्चा। इसकी विस्तृत चर्चा आगे होगी।

अगली इकाई में हम बच्चों की क्षमताओं के बारे में विभिन्न लोगों के मत देखेंगे। लेकिन उससे पहले कृपया इस इकाई के अभ्यासों पर यहां दी गई टिप्पणियों को पढ़ लें। अभ्यास आपने कर ही लिए होंगे। आगे इकाई के शुरू में दिए गए उद्देश्यों को भी एक बार फिर देखकर जांच कर लें कि क्या आपने उन्हें हासिल कर लिया है।

कुछ प्रश्न पर टिप्पणियाँ

1. इनमें से प्रत्येक परिभाषा पर गौर कीजिए। मसलन, क्या हम कह सकते हैं कि दिए गए उत्प्रेरक पर अपेक्षित जवाब सीखना है? आप 'सीखने' और प्रतिवर्ती क्रिया' में फ़र्क कैसे करेंगे? (प्रतिवर्ती क्रिया का मतलब है किसी चीज के प्रति तुरंत (बगैर सोचे) होने वाली शारीरिक क्रिया। मसलन, जब आपके पैर पर कांटा चुभ जाता है, तो आप बगैर सोचे पैर हटा लेते हैं। दर असल प्रतिवर्ती क्रिया का संचालन केन्द्र दिमाग में नहीं रीढ़ की नसों में होता है।)

बाकी सभी परिभाषाओं का विश्लेषण उसी तरह करके देखिए कि क्या आप उनसे सहमत हैं या नहीं।

2. बच्चों की रूचि बनाए रखने के लिए सम्भव गतिविधियाँ सोचिए–उन्हें कुछ अवलोकन करने को, प्रयोग करने को, किसी की नकल उतारने को, खुद से पढ़ने को, कुछ बातें पता करने को, अपनी देखी किसी चीज के बारे में लिखने को, वगैरह, कह सकते हैं। आपको क्या लगता है, इनमें से कौन सी गतिविधि सीखने में मदद करती है ? आप कह सकते हैं कि किसी चीज़ के बारे में खुद लिखना सीखने के लिये स्वयं को सोचना पड़ता है, और इस तरह से वह सीखेगी।

3. मसलन, पहाड़े या यहां तक कि प्रमेयों को भी याद करना। बच्चे से उम्मीद होती है कि वह पहाड़े या अन्य'महत्त्वपूर्ण' तथ्य दोहरा सकें। इकाई में दी गई अपेक्षाओं के अलावा तीन अपेक्षाएं सोचिए।

4. आपने जितनी अवधारणाओं/प्रक्रियाओं को रटा था, उनमें से कितनी आपको आज भी याद हैं? आपको क्या लगता है कि जो याद रहीं वे क्यों रहीं, और बाक़ी क्यों भूल गए?

5. सीखने के बैंकिंग मॉडल के अनुसार जानकारी को किसी जगह से लेकर बच्चे के दिमाग में उठाकर डालना है। सारे टुकड़े दिमाग़ में अलग–अलग रखे होते हैं तथा इन्हें बार–बार रटके पुख़्ता बनाया जाता है। यह सोचिए कि क्या ऐसा मॉडल यह समझा सकता है कि बच्चे संख्याओं के बीच नई–नई कड़ियां जोड़ते रहते हैं, नई–नई आकृतियां बनाते हैं और ऐसी कई चीजें करते हैं जो उनके लिए नई होती हैं। यदि सीखने की समझ बैंकिंग मॉडल के आधार पर की जाए, तो इन्सानी दिमाग की इस क्षमता की व्याख्या नहीं की जा सकती।

ऐसी कुछ और बातों के उदाहरण दीजिए जो इन्सानी दिमाग़ कर सकता है लेकिन जो बैंकिंग मॉडल नहीं समझा सकता।

6. बैंकिंग मॉडल से संचालित कक्षा में शिक्षक सीखने वालों को एक ही बात को कई बार दोहराने को कहेगी। आप पाएंगे कि कक्षा में शिक्षक जानकारी दे रहे हैं और छात्र उसे अपने दिमाग़ में 'जमा' करने के लिए ग्रहण कर रहे हैं। यह सोचिए कि ऐसी कक्षा की व्यवस्था कैसी होगी। यह भी सोचिए कि कौन–कौन से बदलाव लाने होंगे ताकि पूरी प्रक्रिया बच्ची के दिमाग़ में जानकारी भरने पर केन्द्रित न रहकर, ज्यादा सार्थक बने। मसलन, यदि अभी ज़ोर याद करने पर है, तो इसे बदलने के लिए सिखाने के तरीके में क्या बदलना होगा?

7. यदि आप शिक्षक हैं, तो यह देखिए कि अगले दो दिनों में आप क्या करने जा रहे हैं। आपकी कक्षा में बच्चे क्या कर रहे हैं और उनसे आपकी अपेक्षाएं क्या हैं ? क्या आप उनसे तथ्य याद करने की अपेक्षा रखते हैं, या आप उन्हें उन तथ्यों को अलग–अलग ढंग से बार–बार इस्तेमाल करने का असवर दे रहे हैं, या क्या आप और बच्चे कुछ और कर रहे हैं ?

यदि आप शिक्षक नहीं हैं, तो कल्पना कीजिए कि आप कक्षा में क्या करना चाहेंगे और फिर इसी तरह उसका विश्लेषण कीजिए।

जब आप स्वयं अपनी गतिविधि का विश्लेशण कर चुके होंगे तो किसी मित्र को ढूंढिए जो आपके साथ अपनी कक्षा की कोई गतिविधि की चर्चा करने को तैयार हो। इस गतिविधि का विश्लेषण भी ऊपर की तरह कीजिए।

8. इस कथन से एक बात यह निकलती है कि जो व्यक्ति क्षेत्रफल की गणना न कर सके उसे क्षेत्रफल की कोई समझ नहीं है। इसका मतलब यह भी निकलता है कि जिन लोगों ने गुणा नहीं सीखा वे बड़ी सतह और छोटी सतह के बीच फर्क नहीं कर सकते। जब हम सतहों के क्षेत्रफल का अनुमान लगाते हैं, तो क्या हम हमेशा लम्बाई और चौड़ाई का गुणा करते हैं ? क्या आप शिक्षक के मत से सहमत हैं, या आप मानते हैं कि गुणा सीखने से काफी पहले ही बच्चों को क्षेत्रफल का अन्दाजा हो सकता है।

9. कक्षा 8 की एक शिक्षिका बच्चों को त्रिकोणों की सर्वांगसमता से संबंधित एक प्रमेय पढ़ा रही थीं। उसने उन्हें किताब में से इसकी एक सिलसिलेवार उपपत्ति बताई और उन्हें दोहराने को कहा। इसके बाद उसने उन्हें किताब में से ही इससे संबंधित दो अभ्यास दिए। परीक्षा में उसके प्रश्न इन्हीं उपपत्तियों को प्रस्तुत करने से संबंधित थे।

10. इन दो मॉडलों में इस बात की समझ हूबहू समान है कि बच्चे कैसे सीखते हैं और हमें कक्षा में क्या करना चाहिए। इनके बीच अन्तर सिर्फ उपचरणों की परिभाषा का है। एक मॉडल में उपचरणों को इस रूप में निरूपित किया जाता है कि उस समय तक कौन से तथ्य याद कर लिए गए हैं। दूसरे मॉडल में जोर इस बात पर होता है कि उस समय तक कौन से तरीके या विधियों पर महारत हासिल हो गई है। दोनों में ही स्पष्ट तौर पर परिभाषित व्यवहारगत लक्ष्य हैं। दोनों में ही सीखने को विशिष्ट उपचरणों में बांटा जाता है जिन्हें बारम्बार के अभ्यास द्वारा हासिल किया जाता है।

प्रोग्रामिंग मॉडल में भी बैंकिंग मॉडल की तरह छात्रों का दिमाग निष्क्रिय ही रहता है। बुनियादी तौर पर इसको आकार देती है। शिक्षिका, जो वांछित व्यवहारों को चुन–चुनकर पुष्ट करती है। इस मॉडल के अनुसार जो कुछ सीखना है और जिस ढंग से उसे व्यवस्थित करना है, यह सब सीखने वाले को बताना पड़ता है। एक बार यह बता दिया जाए और दिमाग को 'प्रोग्राम' कर दिया जाए, तो वह इस ज्ञान का उपयोग नई परिस्थिति में कर सकता है।

सीखने को रटना मानने में जैसा कि बताया गया था, परिकल्पना बनाने, अटकल लगाने, अनुमान करने, निष्कर्ष निकालने, तर्क करने और खासकर, समझने की प्रोग्रामिंग से सीखने की प्रक्रिया में कोई वास्तविक भूमिका नहीं है।

11. हम जानते हैं कि रचनावादी मॉडल कहता है कि बच्ची सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होती है। वह समझ का अपना ढांचा विकसित करके सीखती है। रचनावादी मॉडल के मद्देनज़र गणित में सीखने से संबंधित कुछ अपेक्षाएं होंगी नए किस्म के सवालों पर हाथ आजमाने, दिए गए सवालों की छानबीन तथा संख्याओं व आकृतियों में पैटर्न खोज पाने की क्षमता, बगैरह। उसे अपने सीखने के तरीके खुद विकसित कर पाना चाहिए।

ऐसी अन्य अपेक्षाएं सोचिए।

12. हमने कक्षा की परिस्थिति के ऐसे कई उदाहरण बताए थे जिनमें बच्चे सार्थक रूप से शामिल थे। हमने उन परिस्थितियों का भी जिक्र किया है जिनमें बच्चों से सिर्फ यह अपेक्षा थी कि वे जानकारी को अपने दिमाग में रख लें या एक–एक करके ऐल्गोरिद्म का बारम्बार अभ्यास करें और उनके इस्तेमाल में निपुण हो जाएं। ऊपर के अभ्यासों में तीन मॉडलों के प्रमुख लक्ष्यों को आप पहचान ही चुके हैं।

बैकिंग मॉडल और रचनावादी मॉडल के बीच एक प्रमुख अन्तर यह है कि जहां एक में शिक्षक बच्ची के दिमाग में जानकारी भरती है वहीं दूसरे में बच्ची की अपनी समझ का विकास होता है। इस अन्तर का एक उदाहरण हमें पहाड़े रटने बनाम पहाड़े बनाने के रूप में दिखता है।

13. आपने उस समय जो उद्देश्य लिखे थे या अब जो सारे उद्देश्य आप सोच सकते हैं, उन्हें देखिए। ये उद्देश्य सीखने के किस मॉडल के सबसे निकट हैं ?

(II) सीखने की विविध धारणाओं की समीक्षा –

व्यावहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत

इवॉन पॉवलोव और जॉन वी वॉटसन ने प्रयोगशाला में नियंत्रित परिस्थितियों में व्यवहार का वृहद अवलोकन किया। उनके इन कार्यों ने इस विचार की नींव डाली कि व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए इसका अवलोकन और मापन आवश्यक है।

यहाँ पर हम व्यवहार के जिन तीन सिद्धांतों का अध्ययन करने जा रहे हैं क्रमशः (1) पॉवलोव का क्लासिकल कन्डीशनिंग (2) स्किनर का ऑपरेटर कन्डीशनिंग (3) सामाजिक संज्ञात्मक सिद्धांत हैं।

(1) पॉवलोव का क्लासिकल कन्डीशनिंग – मनोवैज्ञानिक इवान पॉवलोव (1927) ने कुत्तों पर प्रयोग किया तथा देखा कि यदि खाना देने के पहले प्रतिदिन घंटी बजायी जाए, फिर कुत्ते को खाना दिया जाए तो घंटी बजते ही कुत्ते के मुँह में लार आ जाती है। पॉवलोव के अनुसार सामान्य/तटस्थ उद्दीपक (natural stimulus) (घंटी बजाना) को एक–दूसरे उद्दीपक (भोजन) के साथ जोड़ा जाए तो एक प्रतिक्रिया होती है जो कि पहले सामान्य उद्दीपक द्वारा व्यवहार में परिलक्षित होती है।

जॉन वॉटसन ने इस क्लासिकल अनुकूलन के सिद्धांत को मानव पर आजमाकर देखा। उन्होंने एक छोटे लड़के जिसका नाम एलबर्ट को एक सफेद चूहा दिखाया। उन्होंने देखा कि वह उससे डरता है या नहीं। एलबर्ट चूहे से नहीं डरा। खेलने लगा। अब वॉटसन ने एलबर्ट के सिर के पीछे एक तेज आवाज की। अब आप कल्पना कर सकते हैं कि क्या, हुआ होगा इस आवाज से नन्हा एलबर्ट रोने लगा। जब वॉटसन ने सफेद चूहे और तेज आवाज को एक साथ संयोजित करके एलबर्ट के ऊपर आजमाया। डर इसी क्लासिकल कन्डीशनिंग द्वारा संचालित होता है। उदाहरण के लिए दांत की एक कष्टदायक चिकित्सा हमारे मन में दंत चिकित्सक के प्रति मन में भय उत्पन्न कर सकती है, एक वाहन दुर्घटना के बाद हम गाड़ी चलाने में डरने लगते हैं। छोटी आयु में ऊँची कुर्सी पर से गिरने के कारण हमें ऊँचाई का भय और कुत्ते द्वारा काटे जाने पर जानवरों से भय हो जाता है।

क्लासिकल कन्डीशनिंग हमारे कई प्रकार की अनैच्छिक प्रतिक्रियाओं की भी व्याख्या करती है। उदाहरण के लिए ऊपर वर्णित किए गए डर। लेकिन वी.एफ. स्किनर ने देखा कि हमारी कुछ क्रियाओं की व्याख्या एक–दूसरे प्रकार के अधिगम जिसे हम ऑपरेटर कन्डीशनिंग कहते हैं के द्वारा की जा सकती है।

> व्यवहारवादियों के अनुसार विकास एक प्रदर्शित होने वाला व्यवहार है जो कि वातावरण के अनुभवों द्वारा सीखा जाता है।

(2) स्किनर का ऑपरेटर कन्डीशनिंग सिद्धांत – स्किनर (1938) के ऑपरेटर कन्डीशनिंग सिद्धांत के अनुसार व्यवहार के परिणाम, क्रिया के होने की संभावना को प्रभावित करते हैं। एक व्यवहार जिसके पश्चात् एक प्रसन्नता दायक उद्दीपक जुड़ा हुआ हो, उसके बार–बार होने की संभावना ज्यादा होती है, लेकिन यदि दूसरा व्यवहार किसी दंडात्मक उद्दीपक से जुड़ा हो तो उसके होने की संभावना कम हो जाती है। उदाहरण के लिए – एक बालक के किसी व्यवहार को अगर एक मुस्कराहट द्वारा प्रतिक्रिया दी जाए तो उस बालक द्वारा वह व्यवहार पुनः करने की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन अगर ऐसे व्यवहार के लिए गुस्से की प्रतिक्रिया दी जाए तो उस व्यवहार के दुबारा प्रदर्शित करने की संभावना कम हो जाती है।

उदाहरण के लिए स्किनर के अनुसार एक बच्चे के अंदर उसके वातावरण में उपस्थित अनुभवों के आधार पर शर्माने का व्यवहार विकसित हो सकता है अगर वातावरण को पुनः स्थापित कर दिया जाए तो बच्चा सामाजिक तौर पर कुशल हो सकता है।

> स्किनर के अनुसार पुरस्कार और दंड एक व्यक्ति के विकास को स्वरूप प्रदान करते हैं।

(3) सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत – कुछ मनोवैज्ञानिकों ने देखा कि यद्यपि कन्डीशनिंग के सिद्धांत व्यवहार के कुछ पहलुओं की व्याख्या कर देते हैं। फिर भी यह अपने आप में संपूर्ण नहीं हैं क्योंकि ये यह व्याख्या नहीं कर पाते कि लोग कैसे सोचते हैं।

सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत एक तरह का व्यवहारात्मक सिद्धांत है जो कि सोचने की प्रक्रिया की उपरोक्त संदर्भ में व्याख्या करते हैं। इसके अनुसार एक व्यक्ति के विकास के लिए व्यवहारात्मक पर्यावरण और संज्ञानात्मक कारक महत्वपूर्ण होते हैं। यहाँ संज्ञानात्मक कारकों से तात्पर्य है – व्यक्ति के विशेष लक्षण (उदाहरण के लिए–अंतर्मुखी या बर्हिमुखी होना और विश्वास करना कि अपने अनुभवों/भावनाओं पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है) और संज्ञानात्मक क्रियाएँ (उदाहरण के लिए– तर्क और योजना आदि) वातावरण और व्यवहार में संबंध स्थापित करती हैं।

आधुनिक सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत – इस सिद्धांत के निर्माणकर्त्ता अमेरिकी मनोवैज्ञानिक एलबर्ट बेन्डुरा और वॉल्टन मिशेल थे। इस सिद्धांत के आधुनिक रूप को 1973 के आरंभ में संज्ञानात्मक सामाजिक अधिगम सिद्धांत का नाम दिया गया। बेन्डुरा का प्रारंभिक शोध मुख्यतः अवलोकन अधिगम (अधिगम जो कि दूसरों को देखकर सीखा जाता है) पर आधारित था। उदाहरण के लिए – एक छोटा बच्चा जो कि नियमित रूप से अपने पिता के आक्रमक व्यवहार और दूसरे लोगों के साथ उनकी क्रोधी बातचीत का अवलोकन करता है तो उसके अंदर अपने संगी साथियों से आक्रमक व्यवहार का गुण विकसित होने की संभावना होती है।

> अवलोकन अधिगम को नकल एवं मॉडलिंग भी कहते हैं। अवलोकन अधिगम में लोग दूसरों के व्यवहार को संज्ञानात्मक रूप से निरूपित करते हैं और बाद में उनमें से कुछ व्यवहारों को स्वयं ग्रहण कर लेते हैं।

बेन्डुरा (2000, 2001, 2004) ने अपनी नई खोजों में व्यवहार, व्यक्ति/संज्ञान और पर्यावरण के बीच की अंतःक्रिया को महत्व दिया है।

व्यवहार

व्यक्ति/संज्ञान पर्यावरण

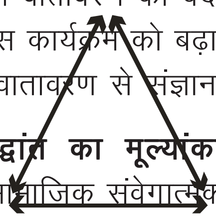

(इस चित्र में दिखाए गए तीर व्यवहार, व्यक्ति/संज्ञान और पर्यावरण के बीच उभय संबंध को दिखाते हैं।)

व्यवहार व्यक्ति के संज्ञानात्मक कारकों को प्रभावित कर सकता है और संज्ञानात्मक कारक व्यवहार को प्रभावित कर सकते हैं । एक व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताएँ पर्यावरण को प्रभावित कर सकती है और इसी प्रकार पर्यावरण व्यक्ति के संज्ञान को बदल सकता है। हम देखते हैं कि बेन्डूरा का मॉडल एक विद्यालय के विद्यार्थी की उपलब्धि, व्यवहार के संदर्भ में कैसे काम करता है और अगर छात्र ठीक से पढ़ाई करता है और अच्छे नंबर लाता है तो उसका व्यवहार उसकी योग्यता के बारे में धनात्मक विचार उत्पन्न करता है। अपने अच्छे नंबर लाने के प्रयासों में वह अपनी पढाई की क्षमता बढ़ाने के लिए योजना और नीतियाँ बनाता है। इस प्रकार उसका व्यवहार उसके विचारों से प्रभावित होता है और उसके विचार उसके व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। सत्र के आरंभ में उसके विद्यालय की ओर से छात्रों में पठन कौशल विकसित करने के एक कार्यक्रम में छात्रों को शामिल करने का विशेष प्रयास किया गया। उसने एक कार्यक्रम में भाग लेने का निश्चय किया। उसकी सफलता की वजह से विद्यालय में यह कार्यक्रम और भी दूसरे विद्यार्थियों के लिये अगले सत्र से लागू किया गया। इस प्रकार यहाँ वातावरण ने व्यवहार को प्रभावित किया और व्यवहार ने वातावरण को बदल दिया। अतः विद्यालय के प्रशासक के पठन कौशल कार्यक्रम के प्रति रूचि की वजह से इस कार्यक्रम को बढ़ावा मिला। इस कार्यक्रम की सफलता से दूसरे संज्ञान ने वातावरण को प्रभावित किया और वातावरण से संज्ञान में बदलाव आया।

व्यवहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत का मूल्यांकन – व्यवहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांतों द्वारा अभी विकास के संदर्भों में सामाजिक संवेगात्मक क्रियाओं के बारे में बहुत कुछ कहा जाना बाकी है। यद्यपि सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत, संज्ञानात्मक क्रियाओं की व्याख्या करते हैं, लेकिन सिद्धांतों से इनकी जैविक क्रियाओं के बारे में अधिक कुछ नहीं पता चल पाता है।

व्यवहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांतों के मुख्य योगदान निम्नलिखित हैं :–

- वैज्ञानिक शोधों के महत्व पर ज़ोर।
- व्यवहार को निर्धारित करने वाले वातावरण कारकों पर केन्द्रित
- बेन्डूरा के सिद्धांत में अवलोकन अधिगम की व्याख्या।
- सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत में व्यक्ति/संज्ञान कारकों पर ज़ोर।

व्यवहारिक और सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांतों की आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :–

- स्किनर के सिद्धांत में संज्ञान पर ज्यादा कुछ नहीं कहा गया है।
- इन सिद्धांतों में वातावरणीय कारकों पर कुछ ज्यादा ज़ोर दिया गया है।
- इन सिद्धांतों में विकासात्मक परिवर्तनों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है।

• मानव की सृजनशीलता और स्वभाविकता पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है।

कुछ प्रश्न

• नीचे दिए गए विकल्पों में चुनकर खाली स्थान भरिए –

(ऑपरेटर कण्डीशनिंग, संभावना अवलोकन, व्यवहार, परिणाम, क्लासिकल कंडीशनिंग, बार–बार जोड़कर, एल्बर्ट बेण्डुरा, सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त)

अ. किसी सामान्य उद्दीपन (जैसे सफेद चूहा) को दूसरे उद्दीपन (जैसे – तेज आवाज़ से डर) के साथ .... व्यवहार को अनुकूलित कर दिया जाता है, यह शोध इवान पावलोव ने किया था। यह .... कहलाता है।

ब. किसी व्यवहार को अच्छे या बुरे .... से जोड़कर अपेक्षित व्यवहार के होने की .... को बढ़ाया जा सकता है। यह शोध स्किनर ने किया था। यह .... कहलाता है।

स. किसी व्यवहार का ....करते हुए उसको एक मॉडल की तरह लेते हैं और अपने .... में ग्रहण कर लेते है। यह शोध ....और वाल्टन मिशेल ने किया था। इसे .... कहा जाता है।

• कण्डीशनिंग (अनुकूलन) और मॉडलिंग में क्या अन्तर है समझाइए।

• वातावरण में मिलने वाले उद्दीपनों, परिणामों, मॉडलों से मनुष्य का व्यवहार निश्चित रूप से प्रभावित होता है। पर क्या इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्य का व्यवहार और विचार उद्दीपनों, परिणामों और मॉडलों से पूरी तरह निर्धारित हो जाता है? उम्र और अनुभव से जुड़ा विकास व मनुष्य की स्वयं की रचनात्मकता उसके व्यवहार व विचार में क्या कोई भूमिका निभाती है? अपने विचार लिखिए।

(iii) संज्ञानात्मक विकास

• प्रस्तावना

इकाई 4 के कुछ प्रारंभिक हिस्सों में हमने सीखने के भिन्न–भिन्न नज़रियों को समझा। इनमें हमने देखा कि सिखाने वाला ज्यादा सक्रिय है, सीखने वाला स्वयं सक्रिय नहीं है।

बच्चों का अवलोकन करते समय बच्चों के द्वारा की जा रही गलतियों पर विशेष ध्यान देकर हम यह भी क्यों नहीं सोच पाते हैं कि गलतियां एक सक्रिय दिमाग का प्रमाण हैं।

इसी तथ्य पर मनोवैज्ञानिक ज्यां पियाजे ने बच्चों की सोच के विकास का विस्तार से अध्ययन किया। उन्होंने अपने ही बच्चों का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को उदाहरण सहित तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया। जिसे हम इसी इकाई में संज्ञानात्मक विकास के अंतर्गत पढ़ेंगे।

• उद्देश्य

1. संज्ञान का अर्थ जान पाएंगे।

2. मनुष्य में संज्ञान का विकास किन चरणों में होता है तथा यह सिद्धान्त पियाजे ने किन प्रयोगों से स्थापित किया, यह जान पाएंगे।

3. आयु आधारित चरणों में संज्ञान का विकास सभी समुदायों या संस्कृतियों या स्थितियों में समान रूप से नहीं होता, यह उदाहरणों के साथ समझ पाएंगे।

4. केन्द्रीय ज्ञान की सोच को जान पाएंगे जो जन्म से ही मनुष्य में कुछ बातों के संज्ञान के होने की धारणा पेश करती है।

5. पियाजे के अवलोकनों व तर्कों के शिक्षा जगत पर पड़े प्रभाव से परिचित हो पाएंगे।

संज्ञान से तात्पर्य मन की उन अंदरूनी प्रक्रियाओं और उत्पादों से है, जो जानने की ओर ले जाती हैं। इसमें सभी मानसिक गतिविधियाँ शामिल रहती हैं– ध्यान देना, याद करना, सांकेतीकरण, वर्गीकरण, योजना बनाना, विवेचना, समस्या हल करना, सृजन करना और कल्पना करना। निश्चित ही हम इस सूची को आसानी से बढ़ा सकते हैं क्योंकि मनुष्यों के द्वारा किये जाने वाले लगभग किसी भी कार्य में मानसिक प्रक्रियाएँ शामिल हो जाती हैं। जीवन निर्वाह के लिए हमारी संज्ञानात्मक शक्तियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण की बदलती दशाओं के अनुरूप अपने को ढालने में दूसरी प्रजातियों को छद्मावरण, पंखों, फरों और विलक्षण रफ़्तार का लाभ मिलता है। इसके विपरीत, मनुष्य सोचने पर निर्भर करते हैं जिसके द्वारा वे न सिर्फ अपने पर्यावरण के अनुरूप खुद को ढाल लेते हैं बल्कि उसे रूपांतरित भी कर देते हैं। अपनी असाधारण मानसिक क्षमताओं के चलते हम पृथ्वी के समस्त प्राणियों के बीच श्रेष्ठ हो जाते हैं।

• पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

स्विस मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक ज्यां पियाजे (1896–1960) ने बच्चों में सोच के विकास का विस्तार से अध्ययन किया, खुद अपने बच्चों का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया। बच्चों के लिए बहुत ध्यान से रचे गये परीक्षण आयोजित किये और उनके साथ साक्षात्कार किये। इस तरह वह बच्चों में संज्ञान के विकास के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतकारों में से एक हैं। पियाजे के अनुसार मानव शिशु शुरूआत में संज्ञानी जीव नहीं होते। इसके बजाय अपनी बोधात्मक और गत्यात्मक गतिविधियों के द्वारा मनोवैज्ञानिक ढांचे, अनुभवों से सीखने के संगठित तरीके, जिनके द्वारा बच्चे ज्यादा प्रभावशाली ढंग से खुद को अपने पर्यावरण के अनुकूल ढाल पाते हैं बनाते और निखारते हैं। इन ढांचों को विकसित करते समय बच्चे बहुत गहन रूप से सक्रिय रहते हैं। वे अनुभवों के मौजूदा ढांचों का उपयोग करते हुए उनका चुनाव करते हैं और अर्थ निकालते हैं तथा वास्तविकता के और बारीक पक्षों को ग्रहण करने के लिए उन ढांचों में बदलाव करते हैं। चूंकि पियाजे का मानना था कि बच्चे उनकी दुनिया के लगभग समस्त ज्ञान को उनकी अपनी गतिविधियों के द्वारा खोजते या निर्मित करते हैं अतः पियाजे के सिद्धांत को संज्ञानात्मक विकास तक ले जाने वाला रचनात्मक मार्ग कहा जाता है।

संज्ञान यानी ....
- जानना
- ध्यान देना
- याद करना
- संकेत बनाना
- वर्ग बनाना
- योजना बनाना
- विवेचना करना
- समस्या हल करना
- सृजन करना
- कल्पना करना

• पियाजे की अवस्थाओं के बुनियादी लक्षण

पियाजे का मानना था कि बच्चे चार चरणों से होकर गुजरते हैं–संवेदी क्रियात्मक, पूर्व संक्रियात्मक, स्थूल संक्रियात्मक और औपचारिक संक्रियात्मक। इन्हीं चरणों से होकर शिशुओं की स्थिति तब आती हैं जब वे संरचनाओं के उस विस्तृत संज्ञान का अंग बन जाती हैं जिन्हें समग्र रूप से आसपास के संसार पर लागू किया जा सकता है।

आगे के खंडों में हम पियाजे की दृष्टि से उसकी पुष्टि करने वाले शोध उदाहरणों सहित विकास की विवेचना करेंगे। बाद में हम ताजा प्रमाणों की चर्चा करेंगे, जिनमें कुछ पियाजे के सिद्धांतों से प्रेरित हैं और कुछ उसके विचारों को चुनौती देते हैं।

पियाजे का मानना था कि बच्चे चार चरणों से होकर गुजरते हैं–

संवेदी क्रियात्मक– 0 से 2 वर्ष
पूर्व संक्रियात्मक– 2 से 7 वर्ष
स्थूल संक्रियात्मक– 7 से 11 वर्ष
औपचारिक संक्रियात्मक– 11 से ऊपर

● संवेदी–क्रियात्मक अवस्था (sensorimotor stage) जन्म से दो वर्ष तक

जीवन के पहले दो वर्षों तक संवेदी–क्रियात्मक अवस्था रहती है। इसका नाम पियाजे की इस धारणा का द्योतक है कि शिशु और चलना शुरू करने वाले बच्चे अपनी आंखों, कानों, हाथों और अन्य संवेदी–क्रियात्मक उपकरणों से सोचते हैं। वे अभी अपने दिमाग में बहुत सी मानसिक क्रियाएं नहीं कर पाते। फिर भी संवेदी–क्रियात्मक अवस्था में इतना अधिक विकास होता है कि उसे पियाजे ने छः उपअवस्थाओं में बांट दिया। पियाजे के उसके खुद के तीन बच्चों के प्रेक्षण विकास की इस श्रृंखला का आधार बने। यद्यपि, अध्ययन का यह नमूना बहुत छोटा था, पर पियाजे अपने बेटे और दो बेटियों का बहुत सावधानीपूर्वक निरीक्षण करते थे और उनके सामने रोजमर्रा की सामान्य मुश्किलें भी खड़ी करते थे (जैसे कि छिपायी गयी वस्तुएं) जो संसार की उनकी समझ को प्रकट करने में सहायक होती थीं।

पियाजे के अनुसार, जन्म के समय शिशु अपने संसार के बारे में इतना कम जानते हैं कि वे सार्थक रूप से उसकी जांच–पड़ताल नहीं कर सकते। वृत्ताकार प्रतिक्रिया (Cirular reaction) उन्हें उनकी पहली योजनाओं की अनुकूलन करने का साधन प्रदान करती है। इसमें शिशु की स्वयं की अंग संचालन क्रिया से अनायास होने वाला नया अनुभव शामिल होता है। यह प्रतिक्रिया ''वृत्ताकार'' इसलिए है क्योंकि शिशु किसी गतिविधि को बार–बार दोहराने की कोशिश करता है। इसलिए कोई संवेदी–क्रियात्मक प्रतिक्रिया जो पहले संयोग से हुई हो, बाद में मजबूत होकर एक नयी योजना में बदल जाती है। उदाहरण के लिए किसी दो माह की बच्ची की कल्पना करें जिसके होठों से कभी दूध पीने के बाद अनायास ''चप्प'' की आवाज निकल जाती है। बच्ची को वह आवाज़ अजीब लगती है, इसलिये वह उसे दोहराने की कोशिश करती है जब तक कि वह होठों से वह आवाज़ निकालने में निपुण नहीं हो जाती।

पहले दो वर्षों में वृत्ताकार प्रतिक्रिया कई तरीके से बदलती है। प्रारंभ में यह शिशु के स्वयं के शरीर पर केन्द्रित होती है। बाद में यह बहिर्मुखी होकर वस्तुओं को इधर–उधर करने की ओर मुड़ जाती है। अंत में यह प्रयोगात्मक और सृजनात्मक हो जाती है जिसका लक्ष्य अपने परिवेश में अनूठे प्रभाव पैदा करना होता है। नये और रोचक व्यवहारों के प्रति हिचकिचाहट की आंतरिक प्रवृत्ति के कारण शिशुओं की कठिनाई वृत्ताकार प्रतिक्रिया का आधार हो सकती है। पर आंतरिक प्रतिरोध की यह अपरिपक्वता अनुकूलन में सहायक प्रतीत होती है और यह सुनिश्चित करती है कि इन नये कौशलों के पक्के होने के पहले उनमें व्यवधान नहीं आये। पियाजे के लिये नवजात शिशु की स्वतः होने वाली क्रियाएं ही संवेदी–क्रियात्मक बुद्धि की रचना करने वाली ईकाइयाँ होती हैं।

कुछ प्रश्न

- खाली स्थान भरें –

1. दो वर्ष तक के बच्चे नए व्यवहारों के प्रति .... महसूस करते हैं।

2. वृत्ताकार प्रतिक्रिया यानी कोई ऐसी गतिविधि जो पहली बार .... हो गई हो, उसको .... करने की कोशिश करना।

3. .... प्रभाव पैदा करने वाली क्रियाओं को बार –बार करके शिशु नए .... हासिल करता हैं।

2. संवेदी – क्रियात्मक उपकरणों का शैशवावस्था में विशेष महत्व क्यों हैं?

● पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational stage) 2 से 7 वर्ष

बच्चों के संवेदी–क्रियात्मक (Sensorimotor) अवस्था से पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था (अर्थात् 2 वर्ष की आयु पार करके 7 वर्ष की आयु तक होने वाले विकास के दौर) में जाने पर उनकी मानसिक प्रतीक निर्माण प्रक्रिया में असाधारण परिवर्तन होता है, जो स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि शिशुओं में अपने संसार को प्रतीकात्मक ढंग से देख पाने की कुछ क्षमता तो होती है। किन्तु प्रारंभिक बचपन में आकर यह क्षमता एकदम विकसित होती है।

पियाजे के सिद्धांतानुसार, संवेदी–क्रियात्मक योजना से प्रतीकात्मक योजना में हुआ परिवर्तन और आगे चलकर प्रतीकात्मक योजना में बचपन से वयस्क आयु तक होने वाले परिवर्तन दो प्रक्रियाओं के कारण होते हैं–अनुकूलन (adaptation) तथा व्यवस्थापन (organization)।

संवेदी क्रियात्मक उपकरण

- आँखें
- कान
- नाक
- त्वचा
- जीभ
- हाथ–पैर

- अनूकूलन (Adaptation) – जब अगली बार आपको मौका मिले तो गौर करें कि कैसे शिशु और बच्चे बिना थके उन कामों को दोहराते रहते हैं जिनके रोचक परिणाम निकलते हैं। यह गतिविधि पियाजे की एक प्रमुख अवधारणा अनुकूलन का उदाहरण पेश करती है। परिवेश के साथ सीधे पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया के द्वारा योजनाएं बनाने को अनुकूलन कहते हैं। इसमें दो परस्पर पूरक गतिविधियां शामिल रहती हैं समावेशीकरण (assimilation) तथा समायोजन (accomodation)। समावेशीकरण के दौरान हम बाहरी संसार को समझने के लिये अपनी बनी हुई योजनाओं का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिये जब कोई शिशु बार–बार चीजों को गिराता है तब वह उनका अपनी संवेदी–क्रियात्मक योजना में समावेश कर रहा होता है और स्कूल–पूर्व आयु की कोई बच्ची जब चिड़ियाघर में पहली बार ऊंट देखकर घोड़ा चिल्लाती है तो वह अपनी अवधारणात्मक योजनाओं को खंगालकर उस योजना को ढूंढ निकालती है जो इस अजीब दिखने वाले जानवर से मिलती–जुलती है। समायोजन में, यह देखने के बाद कि हमारे वर्तमान सोचने के तरीके परिवेश को पूरी तरह नहीं पकड़ पाते, हम नयी योजनाएं बनाते हैं या पुरानी योजनाओं को संशोधित करते हैं। वह बच्चा जो वस्तुओं को भिन्न–भिन्न तरीकों से गिराता है, वह उनके अलग–अलग गुणों के अनुसार अपनी गिराने की योजना को संशोधित करता है और स्कूल–पूर्व आयु की वह बच्ची जब ऊंट को ''कूबड़ वाला घोड़ा'' कहती है तो उसने अपनी योजना को संशोधित कर लिया है।

चित्र 1

चित्र 2

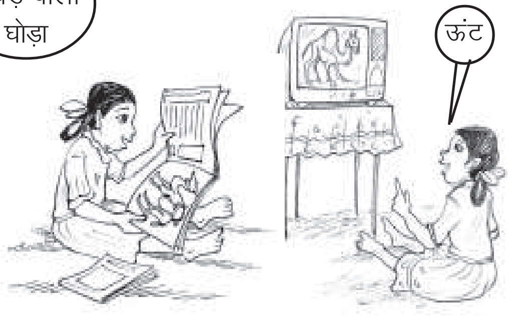

चित्र 3

कुछ प्रश्न

• चित्र 1 – चिड़ियाघर में ऊंट देखकर एक बच्ची कहती है........ घोड़ा .... उपरोक्त उदाहरण में बच्ची संज्ञान की कौन सी प्रक्रिया दर्शा रही है – समावेशीकरण या समायोजन

• चित्र 2 – कुछ दिनों बाद बच्ची ने सड़क पर ऊंटगाड़ी को देखा और बोली कूबड़ वाला घोड़ा... उपरोक्त उदाहरण में बच्ची संज्ञान की कौन सी प्रक्रिया दर्शा रही है. समावेशीकरण या समायोजन ...

• चित्र 3 – कुछ समय बीतने पर बच्ची ने एक किताब में ऊंट का चित्र देखा और कहा ऊंट... टी.वी. में ऊंटों को देखकर भी उसने कहा... ऊंट अब वह कई सालों से इस जीव के लिए ऊंट शब्द का ही उपयोग करती है। उपरोक्त उदाहरण में बच्ची संज्ञान की कौन सी प्रक्रिया दर्शा रही है .... समावेशीकरण या समायोजन.

• आपको बच्ची में संज्ञानात्मक संतुलन की स्थित किस चित्र में दिखाई दे रही है पहले, दूसरे या तीसरे

• आपके अनुसार किस चित्र में संज्ञानात्मक उथल–पुथल (संतुलनीकरण) की स्थिति दर्शाई गई है...

पियाजे के अनुसार समय बीतने के साथ–साथ समावेशीकरण और संयोजन के बीच का संतुलन बदलता रहता है। जब बच्चों में अधिक बदलाव नहीं हो रहा होता है तब वे समायोजन की तुलना में समावेश अधिक करते हैं। पियाजे इसे संज्ञानात्मक संतुलन की स्थिति कहते हैं जो उसकी दृष्टि में एक स्थिर सहज दशा है परंतु जब बच्चे तेज़ी से होते हुए संज्ञानात्मक परिवर्तनों से गुज़र रहे होते हैं तब वे असंतुलन की स्थिति में होते हैं और एक तरह की संज्ञानात्मक उथल–पुथल का अनुभव करते हैं। उन्हें एहसास होता है कि नयी जानकारी उनकी वर्तमान योजनाओं से मेल नहीं खाती, इसलिये वे समावेशीकरण से हटकर समायोजन की ओर उन्मुख हो जाते हैं पर जब वे अपनी योजनाओं को संशोधित कर लेते हैं तब वे फिर से समावेशीकरण की ओर लौटते हैं और अपनी बदली हुई संरचनाओं का उपयोग करते हैं जब तक कि उन्हें फिर से संशोधित करने की जरूरत नहीं पड़ती।

पियाजे ने संतुलन और असंतुलन के बीच इस प्रकार डोलने को दर्शाने के लिये संतुलनीकरण (Equilibration) शब्द का उपयोग किया है। हर बार जब भी संतुलनीकरण होता है तो उससे अधिक कारगर योजनाएं उपजती हैं। चूंकि प्रारंभिक दौरों में ही सबसे अधिक समायोजन होता है इसलिये संवेदी–क्रियात्मक अवस्था पियाजे के लिये विकास का सबसे जटिल दौर है।

• **व्यवस्थापन (Organization)–** व्यवस्थापन के द्वारा भी योजनाएं बदलती हैं। यह प्रक्रिया परिवेश के साथ सीधे संपर्क से अलग हटकर, आंतरिक रूप से घटती हैं। एक बारगी जब बच्चे नयी योजनाएं बना लेते हैं तो वे उन्हें पुरानी योजनाओं से जोड़कर पुनर्व्यवस्थित करते हैं और इस तरह एक मजबूत अंतर्संबंधित संज्ञानात्मक तंत्र (Cognitive System) की रचना करते हैं। उदाहरण के लिये ''गिराने'' की गतिविधि में संलग्न बच्चा अंततः

समझता है कि इसका संबंध ''फेंकने'' से और फिर इसे वह अपनी ''पास'' और ''दूर'' की विकसित होती समझ से जोड़ लेगा।

संज्ञानात्मक तंत्र –

विचारों में नई और पुरानी योजनाओं को जोड़ कर बनाई गई नई मानसिक व्यवस्था।

चित्र–4

मानसिक प्रतीक निर्माण में प्रगति के विभिन्न पहलू – किसी प्री स्कूल (एकदम छोटे बच्चों के शुरू आती क्रीड़ास्कूल) की कक्षा में जाकर देखने पर मानसिक प्रतीक निर्माण प्रक्रिया के संकेत हर तरफ दिखाई देते हैं। बच्चों के द्वारा उनको हुए अनुभवों को हाव–भाव और अभिनय सहित फिर से जीवन्त करने में, दीवारों पर बनाए गए रेखाचित्रों और रंगीन तस्वीरों में और कहानी के समय उनके छलकते उल्लास में, उनके द्वारा भाषा में की गई प्रगति विशेष रूप से प्रभावित करती है।

भाषा और विचार – पियाजे मानते थे कि मानसिक प्रतीकों में संसार को निरूपित करने का हमारा सबसे लचीला साधन भाषा है। इसके माध्यम से विचार को क्रिया से अलग करने के द्वारा सोचने की प्रक्रिया पहले से काफी अधिक सक्षम हो जाती है। शब्दों में सोचने से हम अपने तात्कालिक अनुभवों की सीमाओं के पार जा सकते हैं। हम एक साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य के बारे में सोच सकते हैं और अपनी अवधारणाओं को अनोखे तरीकों से जोड़ सकते हैं। जैसे कि हम किसी भूखी इल्ली के केले खाने की या जंगल में रात को दैत्यों के उड़ने की कल्पना कर सकते हैं।

भाषा की शक्ति के बावजूद, पियाजे नहीं मानते थे कि यह बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कोई प्रमुख भूमिका निभाती है। इसके बजाय उसका दावा था कि ऐन्द्रिक एवं चालन गतिविधियों के फलस्वरूप अनुभव की आंतरिक छवियाँ निर्मित हो जाती हैं, जिन्हें फिर बच्चे शब्दों से नामांकित कर देते हैं। अर्थात् उन पर शब्दों के लेबिल लगा देते हैं। यह तथ्य पियाजे की धारणा के पक्ष में जाता है कि बच्चों के पहले पहल के शब्दों का आधार प्रभावशाली ऐंद्रिक एवं चालन अनुभव होते हैं। वे ऐसी चीजों के लिए होते हैं, जो गति कर सकती हैं, या जिनके साथ कुछ जा सकता है या फिर वे जाने–पहचाने कृत्यों के लिये होते हैं। इसके अलावा कुछ प्रारंभिक शब्द ऐसे भी हैं जो शब्दरहित संज्ञानात्मक उपलब्धियों पर निर्भर प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए जब छोटे बच्चे वस्तुओं के स्थायित्व संबंधी समस्याओं को समझने लगते हैं तब वे उनके न दिखने पर गायब होना बताने वाले शब्दों, जैसे कि सब गए/गई'' का प्रयोग करते हैं जब वे अचानक समस्या को हल कर लेते हैं, तो वे सफलता या विफलता व्यक्त करने वाले शब्द इस्तेमाल करते हैं –''अहा'' और ''अरे''। इसके अलावा हम पहले देख चुके हैं कि शिशुओं को विभिन्न प्रकार की श्रेणियों का बोध काफी पहले हो जाता है, जबकि उनको व्यक्त करनेवाले शब्द वे बाद में सीखते हैं।

फिर भी पियाजे ने बच्चों के संज्ञान या बोध को तेज़ी से विकसित करने में भाषा की ताकत को कम करके आंका है। उदाहरण के लिए इस पर ध्यान दें कि बच्चों की बढ़ती हुई शब्दावली उनके अवधारणात्मक कौशल

को भी बढ़ाती है। अन्य शोधों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि भाषा संज्ञानात्मक विकास की मात्र सूचक न होकर उसका एक शक्तिशाली स्रोत है।

कुछ प्रश्न

1. बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में भाषा की भूमिका पर निम्न मतों को ध्यान से पढ़कर आप अपने अनुभव के आधार पर अपने विचार लिखिए।

2. भाषा संज्ञानात्मक विकास का मात्र सूचक न हो कर उसका एक शक्तिशाली स्त्रोत भी है।

3. पियाजे के अनुसार बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में भाषा कोई प्रमुख भूमिका नहीं निभाती।

खेल में स्वांग करना – (Make Believe Play) बच्चों का कुछ कल्पना करके उसका स्वांग करना अर्थात् उसे हाव–भाव सहित दर्शाना भी प्रारंभिक बचपन में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के विकास का एक और बढ़िया उदाहरण है। पियाजे का विश्वास था कि नाटक करके नकलें उतारकर बच्चे नई सीखी प्रतीकात्मक युक्तियों को पक्का करते हैं। पियाजे के विचारों के आधार पर कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने स्कूल पूर्व के वर्षो में बच्चों के नकल खेलों/स्वांगों में होने वाले परिवर्तनों की पहचान की है।

खेल के स्वांग का विकास – किसी 18 महीने के बच्चे के खेल नाटक की किसी 2 या 3 साल के बच्चे के खेल नाटक से तुलना करो। स्कूल से पहले के बच्चे की प्रतीकों पर बढ़ती हुई पकड़ तीन तरह की प्रगति में दिखाई देती है।

समय के साथ खेल–नाटक उससे जुड़ी वास्तविक जीवन की स्थितियों से धीरे–धीरे अलग होने लगता है। शुरूआती नाटक में छोटे बच्चे यथार्थ जैसी चीजें ही इस्तेमाल करते हैं– जैसे कि बात करने के लिए खिलौने का टेलीफोन, या कि कुछ पीने के लिए कप, ऐसे अधिकांश शुरूआती खेल–नाटक बड़ों के कामों की नकल होते हैं और तब तक उनमें कोई लचीलापन नहीं होता, अर्थात् वे जैसा देखते हैं एकदम वैसी ही नकल करते हैं। उदाहरण के लिए, 2 साल से कम उम्र के बच्चे, कप से चाय पीने की नकल तो करेंगे, पर कप को हैट मानने का नाटक करने से इनकार कर देंगे। उन्हें एक वस्तु (कप) को दूसरी वस्तु (हैट) के प्रतीक की तरह उपयोग करने में अड़चन होती है। खासकर जब पहली वस्तु (कप) का पहले से ही एक स्पष्ट उपयोग हो।

दो वर्ष की उम्र के बाद बच्चे यथार्थ से समानता ना रखने वाले खिलौनों से भी खेल–नाटक करने लगते हैं, जैसे कि एक गुटटे को टेलीफोन रिसीवर मानकर खेलना। धीरे–धीरे वे वस्तुओं और घटनाओं की काफी लचीले ढंग से कल्पना कर सकते हैं, जिसको वास्तविक संसार से कोई सहारा नहीं मिलता।

खेल–नाटक कम आत्मकेन्द्रित हो जाता है। प्रारंभ में नाटक अपनी ही ओर उन्मुख होता है उदाहरण के लिए बच्चे खुद को ही खिलाने का नाटक करते हैं। थोड़े समय बाद बच्चे झूठमूठ के इन कामों का रूख दूसरी वस्तुओं की ओर मोड़ देते हैं, जैसे कि कोई बच्ची नाटक में गुड़िया को खिलाने लगती है। और तीसरे साल की शुरूआत में ही वे खुद को अलग करके खेलनाटक करने लगते हैं, जैसे कि एक गुड़िया को खुद से खाना खिलवाना या माता गुड़िया से शिशु गुड़िया को खाना खिलवाना। जब बच्चे यह समझ जाते हैं कि उनके नाटक में कामों को करने वाले पात्र और उन कामों के लक्ष्य पात्र उनसे अलग हो सकते हैं, तो उनके नाटक कम आत्म केंद्रित हो जाते हैं।

मानसिक प्रतीक निर्माण के संकेत

– हाव–भाव से अभिनय
– रेखाचित्र व रंगीन तस्वीरें
– कहानी व गीत सुनने का उल्लास

खेल–नाटक में धीरे–धीरे योजनाओं के अधिक जटिल संयोजन शामिल होते जाते हैं। एक 18 महीने का बच्चा कप से पीने का नाटक कर सकता है, पर उसे अभी उड़ेलने और पीने की योजनाओं को जोड़ना नहीं आता। बाद में बच्चे नाटक की अपनी योजनाओं को अपने साथियों की योजना से जोड़कर सामाजिक–नाटकीय खेल (Sociodramatic play) बनाने लगते हैं। दूसरों के साथ ऐसे खेल–नाटक ढाई वर्ष की उम्र तक शुरू हो चुकते हैं, और अगले कुछ वर्षों में इनमें तेज़ी से वृद्धि होती है। चार,पांच साल की उम्र तक बच्चे एक दूसरे के खेल–नाटक संबंधी विचारों का रचनात्मक उपयोग करने लगते हैं, कई भूमिकाओं का सृजन करना और संयोजन करना सीख जाते हैं, और उन्हें कहानियों की रूपरेखाओं की अच्छी समझ आ जाती है।

सामाजिक–नाटकीय खेल के आगमन के साथ, बच्चे ना केवल अपने संसार को निरूपित करते हैं , बल्कि यह भी दर्शाते हैं कि उन्हें खेल–नाटक के एक प्रतीकात्मक गतिविधि होने का बोध है। दो या तीन साल की उम्र में बच्चे नाटक और वास्तविक अनुभवों में भेद करने लगते हैं और उन्हें यह समझ में आने लगता है कि खेल–नाटक जानबूझकर काल्पनिक विचारों का अभिनय करने का प्रयास हैं– यह समझ प्रारंभिक बचपन के बाद सतत् रूप से बेहतर होती जाती है। यदि आप स्कूल पूर्व आयु के बच्चों को सामूहिक रूप से किसी काल्पनिक दृश्य की रचना करते हुए ध्यान से उनकी बातें सुनें तो आप उन्हें आपस में भूमिकाएं बांटते हुए और नाटक की योजना बनाते हुए पायेंगे–''तुम अंतरिक्ष यात्री बन जाओ, और मैं ऐसे दिखाऊँगा जैसे मैं नियंत्रण–कक्ष (Control tower) का संचालन कर रहा हूँ।'' ''रूको, अभी मुझे अंतरिक्ष यान तैयार करना हैं।'' नाटक के बारे में संवाद करते हुए, बच्चे अपनी खुद की और दूसरों की काल्पनिक भूमिकाओं के बारे में सोचते हैं–यह इस बात का सबूत है कि उन्होंने लोगों की मानसिक गतिविधियों के बारे में सोचना शुरू कर दिया है।

खेल–नाटक के लाभ

पियाजे ने खेल–नाटक के एक महत्वपूर्ण पक्ष को पहचाना जब उन्होंने प्रतीकात्मक योजनाओं का अभ्यास करने में इसकी भूमिका को रेखांकित किया। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया कि खेल–नाटक भावनात्मक रूप से सब कुछ जोड़ देने (समेकित कर देने) का काम भी करता है। छोटे बच्चे प्रायः दुश्चिंता पैदा करने वाली घटनाओं को बार–बार याद करते हैं। जैसे कि डाक्टर के पास जाना, या माता–पिता की डांट–डपट। पर अब बच्चे भूमिकायें बदल देते हैं और अब वे आधिकारिक भूमिका में होते हैं, और इस तरह वे उस अप्रिय अनुभव पर नियंत्रण कर लेते हैं।

पियाजे का यह दृष्टिकोण कि खेल–नाटक प्रतीकात्मक योजनाओं का अभ्यास मात्र है, आज बहुत सीमित माना जाता है। खेल–नाटक बच्चों के संज्ञानात्मक और सामाजिक कौशलों को केवल प्रतिबिम्बित ही नहीं करता वह उनका संवर्धन भी करता है। सामाजिक खेल–नाटक (Sociodramatic play) का समग्र रूप से अध्ययन किया गया है। गैर–बनावटी (nonpretend) गतिविधियों (जैसे कि चित्र बनाना या चित्र पहेलियों को जोड़ना) की अपेक्षा सामाजिक खेल–नाटक में स्कूल–पूर्व आयु के बच्चों की पारस्परिक गतिविधियां ज्यादा देर चलती हैं, इन्हें बच्चे ज्यादा तन्मयता से करते हैं, इनमें बड़ी संख्या में बच्चे भाग लेते हैं, और ये अधिक मिलजुलकर करने वाली होती हैं।

शोध के इन नतीजों को ध्यान में रखने पर इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि शिक्षक ऐसे बच्चों को सामाजिक रूप से अधिक सक्षम पाते हैं जो सामाजिक खेल–नाटकों में बहुत समय बिताते हैं और अनेक अध्ययनों से यह भी प्रकट हुआ कि खेल–नाटक से अनेक प्रकार की मानसिक क्षमतायें मजबूत होती हैं जैसे कि किसी चीज पर देर तक ध्यान केन्द्रित रखना,याददाश्त, तार्किक ढंग से विचार करना, भाषा और साक्षरता, कल्पना शीलता, सृजनात्मकता, भावों को समझना, और अपनी खुद की विचार प्रक्रिया के बारे में सोचना, आवेशों को रोकना, अपने व्यवहार पर नियंत्रण रखना, और दूसरों के दृष्टिकोण को समझना।

स्कूल पूर्व आयु के 25 से 45 प्रतिशत बच्चे मानवीय गुणों वाले काल्पनिक साथियों की रचना करके अकेले ही खेल–नाटक में काफी समय बिताते हैं। एक स्कूल पूर्व आयु की बच्ची ने अपने कमरे की खिड़की के बाहर रहनेवाली उधमी चिड़ियों की कल्पना की। एक दूसरे बच्चे ने एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना कर ली जिसका लिंग बदलता रहता था और जिसे घर के दरवाजे से बाहर आवाज लगाकर बुलाया जा सकता था। अतीत में मनगढ़न्त साथी बनाने को बच्चे के अपने वास्तविक वातावरण से सामंजस्य न बिठा पाने का लक्षण माना जाता था पर हाल के शोध ने इस धारणा को चुनौती दी है। बच्चे आमतौर पर अपने इन काल्पनिक साथियों के साथ बड़ी फ़िक्र और स्नेह से पेश आते हैं। साथ ही वे अधिक जटिल खेल–नाटक करते हुए दूसरों के दृष्टिकोण की अधिक विकसित समझ और अपने हम उम्र बच्चों के साथ बेहतर मेलजोल दर्शाते हैं।

कुछ प्रश्न

1. अलग–अलग उम्र के बच्चों के खेल नाटकों में क्या अन्तर होता है? कल्पना शक्ति के साथ–साथ और किस तरह के कौशलों और क्षमताओं का विकास खेल–नाटकों द्वारा होता है?

चित्रकारी – यदि शिशुओं को रंगीन पेंसिल और कागज दे दिया जाये, तो वे भी दूसरों की नकल करते हुए गूदागादी करने लगते हैं। स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की संसार को मानसिक प्रतीकों के रूप में देखने की योग्यता बढ़ती है, तो पेज पर बनाए गए चिह्न अर्थपूर्ण होने लगते हैं।

संज्ञानात्मक विकास के परिवर्तन– जैसे योजना बनाने में सुधार और त्रिआयामी विस्तार की बढ़ती समझ के साथ–साथ यह एहसास होना कि चित्र प्रतीकों की तरह काम कर सकते हैं, बच्चों की चित्रकारी के विकास को प्रभावित करता है। बच्चे की संस्कृति में कलात्मक अभिव्यक्ति पर दिया जाने वाला ज़ोर भी इस विकास में सहायक होता है।

गूदागादी से तस्वीरों तक – सामान्यतया बच्चों की चित्रकारी निम्न क्रम से विकसित होती है।

1. गूदागादी – शुरू में इच्छित प्रतीक/निरूपण (Representation) बच्चों की गिचपिच गूदागादी से ना होकर उनके हावभाव से होता है। उदाहरण के लिए, एक 18 माह की बच्ची ने अपनी रंगीन पेंसिल को कागज पर गुदवाते हुए बिंदुओं की श्रृंखला बनाई और समझाया कि वह ''कूद–कूद कर जाता हुआ खरगोश है।''

2. निरूपित करने वाली पहली आकृतियॉ – तीन वर्ष की आयु के आस–पास बच्चों की गूदागादी तस्वीरों में बदलने लगती है। अक्सर ऐसा होता हैं कि बच्चे रंगीन पेंसिल चलाते हैं और बाद में देखते हैं कि उन्होंने कोई पहचानी जा सकने वाली आकृति बना दी है, और फिर वे उसे नाम दे देते हैं–जैसे कि एक बच्चे ने ऐसे ही कागज पर कुछ बेतरतीब निशान बनाए फिर उन निशानों और नूडल्स में समानता देखकर अपनी कलाकृति को ''चिकन पाइ और नूडल्स'' का नाम दिया।

शायद ही कोई तीन साल का बच्चा सहज रूप से ऐसा कुछ बनाता हो जिसे देखकर दूसरे समझ जायें कि किसका चित्र है। परंतु बड़ों और बच्चों के साथ खेले गए एक ऐसे खेल के अध्ययन में जिसमें वस्तुओं को चित्रों से दर्शाया गया था, देखा गया कि तीन साल के ज्यादा बच्चों ने पहचानी जा सकने वाली आकृतियां बनाई। जब बड़े बच्चों के साथ चित्र बनाते हैं और उन्हें चित्रों और वस्तुओं की समानताएं दिखाते हैं, तो ऐसे स्कूल पूर्व आयु के बच्चों के चित्र ज्यादा समझ में आनेवाले और ज्यादा विवरण देने वाले बन जाते हैं। चित्रकारी में एक महत्वपूर्ण पड़ाव तब पार होता हैं जब बच्चे रेखाओं को वस्तुओं की सीमाएं दिखाने के लिए इस्तेमाल करने लगते हैं। इससे तीन–चार साल के बच्चे व्यक्ति की अपनी पहली तस्वीर बनाने में सक्षम हो जाते हैं। तस्वीर में मेंढक के बच्चे (tadpole) जैसी आकृति को देखें–यह एक सार्वभौमिक चित्र है, जो लगभग सभी जगह के बच्चे बनाते हैं, क्योकि स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की सीमित संज्ञानात्मक और क्रियात्मक क्षमताओं के कारण वे मनुष्य की

आकृति को एकदम सरलीकरण कर देते हैं जो फिर भी मनुष्य जैसी दिखती हैं। चार साल के बच्चे कुछ और चिन्ह जोड़ देते हैं जैसे आंखें, नाक, मुंह, बाल, उंगलियां और पैर जैसा कि इन टैडपोल जैसी आकृतियों में देखा जा सकता है।

3. अधिक वास्तविक चित्रकारी – जब बच्चों की दृष्यगत समझ व भाषा (दिखाई दे रहे अवयवों/अंगों का वर्णन करने की क्षमता), याददाश्त तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों में सुधार होता है तो धीरे–धीरे उनके चित्रों में अधिक वास्तविकता आने लगती है। पांच–छह साल के बच्चे अधिक जटिल चित्र बनाते हैं जिनमें मनुष्यों और पशुओं की ज्यादा सामान्य जैसी आकृतियाँ होती हैं। इनमें सिर और धड़ में भेद किया गया होता हैं और बाहें तथा पैर दिखने लगते हैं पर स्कूल पूर्व आयु के थोड़े बड़े बच्चों के चित्रों में फिर भी दृष्टिकोण विकृतियाँ होती हैं क्योंकि उनमें गहराई को दर्शाने की बस शुरूआत ही होती हैं। गहराई के संकेतों जैसे आगे पीछे की एक दूसरे को ढांकती हुई सी चीजें, पास की चीजों की तुलना में दूर की चीजों का आकार, कर्ण की दिशा में चीजें, दूर मिलती हुई रेखाओं का उपयोग मध्य बचपन में बढ़ता हैं और वस्तुओं को अलग–अलग चित्रित करने के बजाय बड़े स्कूल आयु के बच्चे उन्हें व्यवस्थित स्थानिक जमाव की तरह चित्रित करते हैं ।

चित्रकारी के विकास में सांस्कृतिक कारणों से होने वाले भेद– समृद्ध कलात्मक विरासत वाली संस्कृतियों के बच्चों के चित्रों में उनकी संस्कृति की परंपराएं प्रतिबिम्बित होती हैं और वे अधिक विवरणात्मक होते हैं लेकिन जिन संस्कृतियों में कला के प्रति कोई रुझान नहीं होता, उनमें बड़े बच्चे और किशोर भी सरल आकृतियाँ ही बनाते हैं। पापुआ न्युगिनी के एक सुदूर भीतरी क्षेत्र, जिमी वैली में स्थानीय चित्रकला जैसी कोई चीज़ नहीं हैं। वहाँ अनेक बच्चे स्कूल नहीं जाते और इसलिए उन्हें अपने चित्रकारी कौशल को विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिलता। जब पश्चिम के एक शोधकर्ता ने जिमी के 10–15 साल के ऐसे लड़कों से जो कभी स्कूल नहीं गए थे, पहली बार मनुष्य की आकृति बनाने को कहा तो अधिकांश ने कुछ भी व्यक्त ना करने वाले आकार और गूदागादी या फिर सरल ''डंडी'' नुमा या रूपरेखा दर्शाने वाली आकृतियाँ बनाई। ऐसा लगता हैं, कि सभी जगह इन्हीं आकृतियों से जो स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की बनाई आकृतियों से मिलती जुलती हैं, चित्रकारी की शुरूआत होती है जब बच्चे एक बार यह जान जाते हैं कि रेखाओं से मनुष्य के चेहरे नाक–नक्शे व्यक्त होना चाहिए, तब वे आकृतियों का चित्रण करने की तरकीबें निकाल लेते हैं, जो एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में थोड़ी बहुत भिन्न हो सकती हैं, पर कुल मिलाकर पीछे बताये गए क्रम के अनुसार विकसित होती हैं।

चित्र क्रमांक. 5 शाला पूर्व आयु के बच्चों ने किसी भी चीज को निरूपित न करने वाली गूदागादी और आकृतियां, डंडी वाली आकृतियां या रूपरेखा वाली आकृतियां बनाईं। पश्चात् टैडपोल आकृतियों की तुलना में, जिमी की डंडी या रूपरेखा वाली आकृतियों में हाथों और पैरों पर जोर दिया गया है। इसे छोड़कर, इन ज्यादा बड़े बच्चों के चित्र पश्चिम के स्कूलपूर्व आयु के बच्चों के चित्रों जैसे ही हैं।

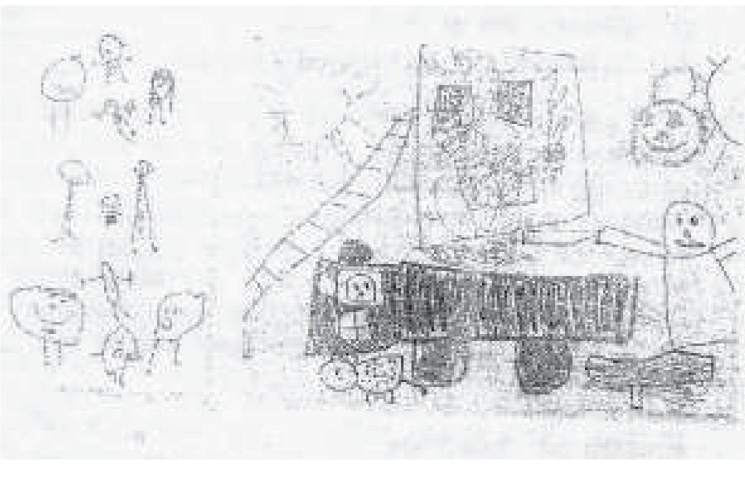

चित्र–5

प्रतीकों तथा वास्तविक संसार में संबंध– चित्रों को यथार्थ की प्रतिछवि मानकर उन्हें बनाने के लिए और संसार को निरूपित करने वाले अन्य माध्यमों, जैसे कि फोटोग्रॉफ, मॉडल और नक्शे आदि, को समझने के लिए स्कूल पूर्व आयु के बच्चों को यह समझ में आना जरूरी है कि हर प्रतीक रोज़मर्रा के जीवन की किसी विशेष परिस्थिति से संबंधित होता है । बच्चे कब प्रतीकों और संसार के संबंधों को समझने लगते हैं? एक अध्ययन में ढाई–तीन साल के बच्चों ने देखा कि कैसे एक वयस्क व्यक्ति ने एक छोटे से खिलौने (लिटिल स्नूपी कुत्ता) को कमरे के एक मॉडल में छिपाया, फिर बच्चों से उसे ढूंढ निकालने के लिए कहा गया। इसके बाद उन्हें वैसे ही वास्तविक कमरे में, जैसा मॉडल था, छिपाये गए एक बड़े खिलौने (बिग स्नूपी) को ढूंढना था ।

शाला पूर्व आयु के अंतिम चरण (5 वर्ष) तक बच्चों में अधिक जटिल और वर्गीकृत चित्र बनाने की क्षमता में वृद्धि होती है। चित्र क्र.–1 इसका एक उदाहरण है।

अधिकांश बच्चे वास्तविक कमरे में बड़े स्नूपी को ढूंढने के लिए तब तक कमरे के मॉडल और उसमें छोटे स्नूपी को संकेत की तरह इस्तेमाल नहीं कर सके जब तक वे 3 साल के नहीं हो गए। उससे छोटे बच्चों को दोहरे प्रतिनिधित्व को समझने में प्रतीकरूपी वस्तु को दो तरह से देखना अपने आप में स्वतंत्र वस्तु की तरह और एक प्रतीक की तरह कठिनाई होती है। जिस अध्ययन का अभी वर्णन किया गया है, उसमें ढाई साल के बच्चों को यह समझ नहीं थी कि मॉडल एक साथ दो चीजें खिलौने का कमरा और दूसरे कमरे का प्रतीक हो सकता था। इस निष्कर्ष को इस बात से समर्थन मिला कि जब शोधकर्ताओं ने मॉडल कमरे को एक खिड़की के पीछे रखकर और बच्चों को उसे छूने से रोककर वस्तु की तरह उसका महत्व घटा दिया, तब ढाई साल के ज्यादा बच्चे स्नूपी को ढूंढने में सफल हो गए। जरा खेल–नाटक के प्रारंभिक दौर में इसी तरह की एक असमर्थता को याद करें कि डेढ़ या दो साल के बच्चे एक स्पष्ट उपयोग में आने वाली किसी वस्तु कप को झूठमूठ में किसी दूसरी वस्तु हैट के प्रतीक की तरह इस्तेमाल नहीं कर सकते।

बच्चे कैसे मॉडलों, चित्रों और दूसरे चिह्न की दोहरी प्रतीक क्षमता को पकड़ना सीखते हैं? इसमें वयस्कों के मार्गदर्शन से मदद मिलती है। जब वयस्क लोग इशारा करके मॉडलों और वास्तविक संसार की स्थानों की समानता दिखा देते हैं तो ढाई साल के बच्चे स्नूपी को ढूंढने के काम में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। इसके अलावा एक तरह के प्रतीक और वास्तविक संसार से उसके संबंध को समझने की अंतर्दृष्टि मिल जाने पर इससे स्कूल पूर्व आयु के बच्चों को ऐसे दूसरे संबंधों पर अधिकार करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए बच्चे फोटो और चित्रों को जल्दी ही डेढ़ दो साल के लगभग, प्रतीकों की तरह समझने लगते हैं, क्योंकि किसी तस्वीर का प्राथमिक उद्देश्य ही किसी चीज़ को निरूपित करना होता है।

पियाजे के अनुसार योजनाओं में सच्चे संतुलन की अपने आप में वह तस्वीर कोई रोचक वस्तु नहीं होती और तीन साल के बच्चे जो स्नूपी को तलाशने में कमरे के मॉडल का उपयोग कर सकते हैं वे आसानी से इस समझ का इस्तेमाल किसी सरल नक्शे को समझने में भी कर सकते हैं।

सारांश यह है कि छोटे बच्चों को विभिन्न प्रकार के चिन्हों और प्रतीकों जैसे चित्र पुस्तकें, फोटो, चित्र, खेल–नाटक और नक्शे से परिचित कराने से उन्हें यह बात समझने में मदद मिलती है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु को निरूपित कर सकती है। उम्र बढ़ने के साथ बच्चे विविध प्रकार के अनेकों प्रतीकों को समझने लगते हैं, जिनमें उन चीज़ों से कोई स्पष्ट भौतिक समानता नहीं होती जिन्हें वे निरूपित करते हैं और इससे फिर ज्ञान के विराट क्षेत्रों के द्वार उनके लिए खुल जाते हैं।

कुछ प्रश्न

1. एक वस्तु को दूसरी वस्तु का प्रतीक मानने में किस उम्र तक बच्चों को कठिनाई होती है। इसके दो उदाहरण दीजिए

2. बच्चे कब प्रतीकों और संसार के संबंधों को समझने लगते हैं, तथा इसके लिए बड़ों की तरफ से क्या सहायता की जा सकती है।

3. एक शोध के अनुसार 10–15 साल के ऐसे लड़के जो कभी स्कूल नहीं गए थे, उन्होंने मनुष्य की जो आकृतियां बनाई वो किस की बनाई आकृतियों के समान दिखती थीं इस समानता का क्या कारण था।

4. सभी जगह चित्रकारी की शुरूआत कैसी आकृतियों से होती जान पड़ती है?

5. किस उम्र से बच्चे वास्तविकता के करीब दिखने वाले चित्र बनाने लगते हैं?

6. प्रतीकों तथा वास्तविक संसार के संबंध को समझने के लिए किए गए एक प्रयोग में पहली बार की अपेक्षा दूसरी बार अधिक बच्चे कमरे में छुपे खिलौने के कुत्ते को ढूंढ़ने में सफल क्यों हुए?

पूर्व– संक्रियात्मक सोच की सीमायें (Limitations of Preoperational Thought)

प्रतीकों से निरूपण करने मे हुई प्रगति को छोड़कर पियाजे स्कूल पूर्व आयु के बच्चों का वर्णन इस दृष्टि से करता है कि वे क्या नहीं कर सकते बजाय इसके कि वे क्या कर सकते हैं । पियाजे के अनुसार छोटे बच्चों में संक्रियायें (Operations) करने की क्षमता नहीं होती –संक्रियायें ऐसी वास्तविक क्रियाओं का मानसिक निरूपण (Mental representation) होती हैं जो तार्किक नियमों से चलती हैं। इसके बजाय, उनकी सोच बंधी हुई/लोचरहित (Rigid) तथा एक समय में परिस्थिति के एक ही पक्ष तक सीमित होती हैं, साथ ही यह इससे बहुत प्रभावित होती हैं कि किसी क्षण पर चीजें कैसी प्रतीत होती हैं। जैसे कि शब्द पूर्व–संक्रियात्मक (preoperational) से जाहिर है, पियाजे स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की तुलना बड़े और अधिक सक्षम बच्चों से करते है, जो मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (concrete operational stage) में होते हैं।

> **संक्रिया**
>
> मन में तर्क करते हुए किसी स्थिति के आगे पीछे के क्रम को जोड़ कर सोचना

आत्मकेंद्रित तथा जीववादी सोच (Egocentric and Animistic Thought)

पियाजे के लिए, पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था की सबसे बड़ी कमी, जो शेष सभी दोषों का आधार है, आत्मकेंद्रीयपन है– अपने अलावा दूसरों के प्रतीकात्मक दृष्टिकोणों को समझने में असमर्थ होना। उसका मानना था कि जब बच्चे पहले–पहल संसार को मानसिक रूप से निरूपित करते हैं, तो उनकी प्रवृत्ति अपने ही दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करने की होती है। इसलिए वे अक्सर मान लेते हैं कि दूसरे भी वैसा ही देखते, सोचते और अनुभव करते हैं, जैसा वे स्वयं करते हैं।

पियाजे द्वारा आत्मकेंद्रीयपन (Egocentrism) के चरण की पुष्टि करने वाला सबसे भरोसेमंद प्रदर्शन उसकी प्रसिद्ध तीन पर्वतों की समस्या (Three-mountains problem) के रूप में किया गया, जो चित्र–6 में दर्शाई गयी है। उसके विचार में आत्मकेंद्रीयपन ही पूर्व–संक्रियात्मक बच्चों की जीववादी सोच (Animistic thinking) के लिए जिम्मेदार होता है– यह विश्वास कि निर्जीव वस्तुओं में जीवन जैसे कुछ गुण होते हैं, जैसे विचार, इच्छाएं, भावनाएं और इरादे। तीन साल का वह बच्चा, जो मोहक ढंग से यह समझाता है कि सूर्य बादलों पर नाराज है और इसलिए उसने उन्हें दूर भगा दिया है, इस प्रकार के तर्क और सोच का ही प्रदर्शन कर रहा है। पियाजे के

अनुसार, चूंकि छोटे बच्चे आत्मकेंद्रीयपन के कारण भौतिक घटनाओं को मानवीय अभिप्रायों से युक्त कर देते हैं, इसीलिए स्कूल पूर्व के वर्षों में जादुई सोच आम होती है।

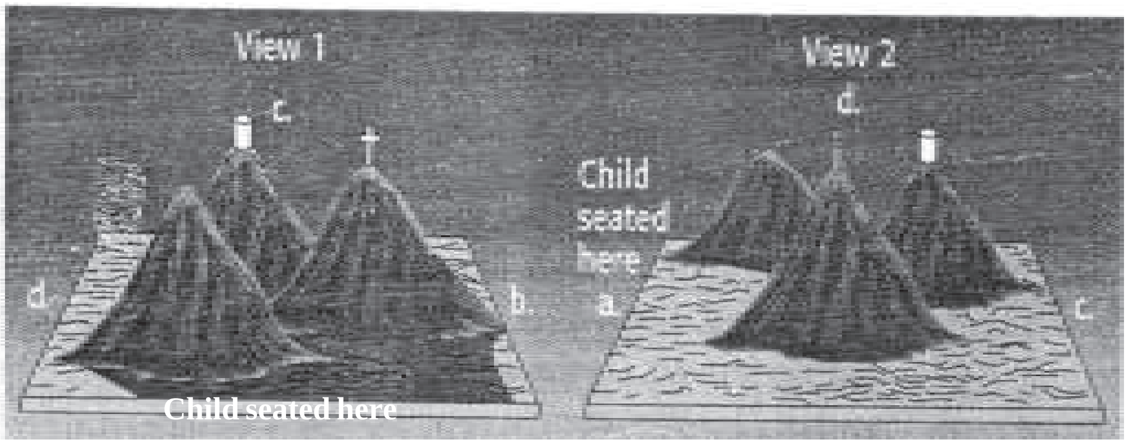

चित्र–6 पियाजे की तीन–पर्वतों की समस्या

इसमें हर पर्वत अपने रंग और चोटी के कारण अलग दिखाई देता है। एक के ऊपर लाल क्रांस बना हुआ है, दूसरे के ऊपर एक छोटा सा मकान है, और तीसरे की चोटी बर्फ से ढंकी हुई है। एक गुड़िया को पहाड़ों के बीच रखा गया है। बच्ची जहाँ खड़ी है, वहाँ से कुछ और दृश्य दिखता है, और गुड़िया जहाँ है, वहाँ से कुछ और। बच्ची को वह चित्र चुनना है जो गुड़िया की नजर से सही है। पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational stage) के बच्चे इस समस्या का उत्तर आत्मकेंद्रीकरण करते हुए देते हैं। वे इस समस्या से संबधित दिखाई गई विभिन्न तस्वीरों में से उसी तस्वीर का चुनाव नहीं कर पाते जो समस्या के चित्र में दिखाई गई गुड़िया के दृष्टिकोण से इन पर्वतों का दृश्य दिखाती है, इसके बजाय वे सीधे–सीधे वह चित्र चुन लेते हैं जो उनकी खुद की स्थिति से दिखाई देता है।

पियाजे का तर्क था कि छोटे बच्चों का आत्मकेंद्रित पूर्वाग्रह उन्हें समायोजन (Accomodation) –भौतिक और सामाजिक संसार के वास्तविक तथ्यों के अनुसार अपनी गलत सोच को संशोधित करना– नहीं करने देता। इस अक्षमता को पूरी तरह से समझने के लिए, हम पियाजे द्वारा बच्चों को दिये गये कुछ अन्य कामों पर विचार करें।

कुछ प्रश्न

1. पियाजे के अनुसार छोटे बच्चों में संक्रियाएं करने की क्षमता क्यों नहीं होती....?

2. बच्चों के कई गुणों – मासूमियत, भोलापन, जिद्दीपन, नासमझी – को आत्मकेंन्द्रीयपन के आधार पर कैसे समझा जा सकता है .... चर्चा करें?

संरक्षण को समझने की असमर्थता

पियाजे के संरक्षण से संबंधित विभिन्न प्रसिद्ध कार्यो से पूर्व संक्रियात्मक सोचने के ढंग में कई प्रकार के दोष प्रकट होते हैं। यहाँ संरक्षण से तात्पर्य इस विचार से है कि **वस्तुओं के कुछ भौतिक गुण, उनके बाहरी रूप बदलने पर भी, वैसे ही बने रहते हैं, बदलते नहीं हैं।** इसकी एक मिसाल द्रव के संरक्षण की दी गई समस्या है। इसमें बच्चे को पानी से भरे दो एक जैसे लंबे गिलास दिखाये जाते हैं, और उससे पूछा जाता है कि क्या दोनों में पानी की मात्रा बराबर है। जब बच्चा इस बात से सहमत हो जाता है कि दोनों में बराबर पानी है, तब एक गिलास का पानी एक उथले चौड़े बर्तन में उंड़ेल दिया जाता है, जिससे पानी के आकार का रूप बदल जाता है, परंतु उसकी

मात्रा नहीं बदलती। अब बच्चे से पूछा जाता है कि पानी की मात्रा वही है या बदल गई है। पूर्व–संक्रियात्मक बच्चे सोचते हैं कि मात्रा बदल गई है। वे समझते हैं कि, ''अब पानी कम है क्योंकि वह इतना नीचे चला गया है'' अर्थात् पानी का तल इतना नीचा है या ''अब पानी ज्यादा है क्योंकि वह सब दूर फेल गया है।'' चित्र–7 में संरक्षण के ऐसे अन्य काम दिखाये गये हैं जिन्हें आप बच्चों के साथ आज़मा सकते हैं।

पूर्व–संक्रियात्मक बच्चों की संरक्षण संबंधी असमर्थता उनकी सोच से उससे जुड़े कई अन्य पहलुओं को रेखांकित करती है। पहला यह कि उनकी समझ केंद्रीकरण दर्शाती हैं। वे परिस्थिति के किसी एक पक्ष पर ध्यान केंद्रित करते हैं और अन्य महत्वपूर्ण बातों की उपेक्षा कर देते हैं जैसे कि द्रव के संरक्षण की समस्या में बच्चे का ध्यान पानी की ऊँचाई पर केंद्रित हो जाता है और वह यह नहीं समझ पाता कि पानी की ऊंचाई में हुए पूरे परिवर्तन की भरपाई चौड़ाई में हुए परिवर्तन से हो जाती है। दूसरा यह कि, बच्चे वस्तुओं के दिखाई देने वाले रूप से आसानी से भ्रमित हो जाते हैं। तीसरा यह कि, बच्चे पानी की प्रारंभिक और अंतिम अवस्थाओं को असंबद्ध घटनाओं की तरह देखते हैं, क्योंकि वे अवस्थाओं के बीच घटने वाले गत्यात्मक रूपान्तरण (dynamic transformation) (पानी का उंड़ेला जाना) को अनदेखा कर देते हैं।

पूर्व–संक्रियात्मक सोच का सबसे महत्वपूर्ण अतार्किक लक्षण है उसमें विपरीत–प्रक्रिया का अभाव (Irreversibility)

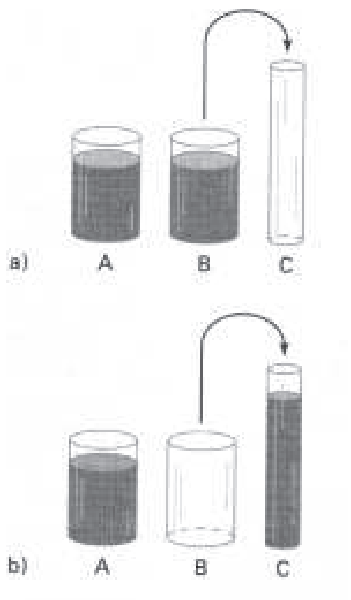

चित्र–7

विपरीत प्रक्रिया (Reversibility)

यह किसी समस्या के विभिन्न चरणों की क्रमिक श्रृंखला को क्रमबद्ध रूप से कर लेना और फिर मन में पूरी प्रक्रिया की दिशा उलटकर वापिस प्रारंभिक बिंदु पर लौट आने की क्षमता हर तार्किक संक्रिया का हिस्सा होती है। द्रव के संरक्षण के मामले में, पूर्व–संक्रियात्मक बच्चा उल्टा सोचकर पानी के वापस अपने मूल बर्तन गिलास में उड़ेले जाने की कल्पना नहीं कर पाता, इसलिए वह यह नहीं समझ पाता कि पानी की मात्रा का समान रहना जरूरी है।

पदानुक्रम में/ऊपर–नीचे के क्रम में वर्गीकरण का अभाव (Lack of Hierarchical Classification) तार्किक संक्रियाओं (Logical operations) की क्षमता ना होने के कारण, स्कूल पूर्व आयु के बच्चों को ऐसे वर्गीकरण करने मे कठिनाई होती है जिनमें वस्तुओं को उनकी समानताओं और असमानताओं के आधार पर वर्गों और उपवर्गो में बांटकर व्यवस्थित करना है। पियाजे की वर्ग में शामिल करने की प्रसिद्ध समस्या (Class inclusion problem) इस तथ्य को स्पष्ट करता है। नीचे दिया गया उदाहरण बताता है कि पूर्व–संक्रियात्मक बच्चे तस्वीर के प्रमुख पहलू , रंग पीला या नीला, पर ध्यान देते हैं।

वर्ग में शामिल करने की समस्या– बच्चों को 16 फूल दिखाए जाते हैं, 12 पीले और 4 नीले और पूछा जाता है ''फूलों की संख्या ज्यादा है या पीले फूलों की संख्या ज्यादा है?'' आम तौर पर पूर्व–संक्रियात्मक बच्चे कहते हैं कि पीले फूल ज्यादा हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि पीले और नीले दोनों फूल ही हैं। वे सोचने में विपरीत प्रक्रिया का उपयोग नहीं करते, कि मन में पहले पूरे वर्ग 'सभी फूल' से अंशों; पीला और नीले पर जायें और फिर लौटकर पूरे वर्ग पर आयें।

चित्र–7 विवरण–पियाजे के कुछ संरक्षण के कार्य–पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे संरक्षण नहीं कर पाते। इन कामों में दक्षता धीरे–धीरे मूर्त क्रियात्मक अवस्था में हासिल होती हैं । पश्चिमी देशों में बच्चे 6 से 7 वर्ष की उम्र में संख्या, लम्बाई, मात्रा और द्रव का संरक्षण समझने लगते हैं, और 8 से 10 वर्ष के बीच भार के संरक्षण की समझ हासिल करते हैं।

संरक्षण का कार्य संख्या	मूल प्रस्तुति	रूपांतरण
	क्या दोनों कतारों में सिक्कों की संख्या समान है।	क्या अभी भी हर कतार में सिक्कों की संख्या समान है? या एक कतार में ज्यादा सिक्के हैं?
लंबाई	क्या दोनों डंडियाँ बराबर लंबाई की हैं?	क्या अब दोनों डंडियां बराबर हैं या एक ज्यादा लंबी है?
मात्रा	क्या दोनों गोलों में बराबर मिट्टी है?	क्या अब दोनों नमूनों/टुकड़ों में मिट्टी की मात्रा बराबर है या एक में ज़्यादा है?
धारिता	क्या दोनों गिलासों में बराबर पानी है।	क्या अब दोनों बर्तनों में पानी की मात्रा बराबर है या एक में ज्यादा है।
भार	क्या दोनों मिट्टी के गोले बराबर वजन/भार के हैं?	क्या अब मिट्टी के दोनों नमूनों का भार समान है या एक का भार ज्यादा है। उन्हें तराजू पर रखे बगैर ताकि बच्चे की दृष्टि में क्या सही है यह पता चल सके।

कुछ प्रश्न

- बच्चों की पूर्व–संक्रियात्मक सोच में कौन–कौन से अतार्किक लक्षण दिखाई देते हैं
- आपके आसपास के 2 से 7 वर्ष तक के बच्चों के व्यवहार में आपको उनकी कौन–कौन सी संज्ञानात्मक उपलब्धियां दिखाई देती हैं?

पूर्व–संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोधकार्य

पिछले तीन दशकों में शोधकर्ताओं ने स्कूल पूर्व आयु के बच्चों में संज्ञानात्मक कमियों के पियाजे के ब्यौरे को चुनौती दी है। पियाजे द्वारा प्रस्तुत अनेक समस्याओं में छोटे बच्चों के लिए या तो कई अपरिचित चीज़ें/तत्व होते हैं, जरूरत से ज्यादा जानकारियाँ होती हैं जिन्हें वे एक साथ नहीं संभाल सकते। इसके परिणामस्वरूप स्कूल पूर्व आयु के बच्चों के इन समस्याओं के उत्तर उनकी वास्तविक योग्यता नहीं दर्शा पाते। इसके अलावा स्कूल पूर्व के बच्चों द्वारा कारगर ढंग से सोचने के कई सहज घटने वाले उदाहरणों पर भी पियाजे ने गौर नहीं किया। अब हम इस तरह के कुछ उदाहरणों को देखें।

आत्म केंद्रीयपन

क्या छोटे बच्चे सचमुच में यह मानते हैं कि कमरे में और किसी जगह पर खड़ा व्यक्ति भी वही देखता है, जो वे खुद अपने स्थान से देखते हैं? जब शोधकर्ताओं ने पियाजे की तीन–पर्वत वाली समस्या का स्वरूप बदलकर उसमें परिचित वस्तुएं पेश की, और उत्तर देने के लिए तस्वीर का चुनाव करने के बजाय जो 10 साल के बच्चों के लिए भी कठिन है अन्य तरीकों का उपयोग किया, तो 4 साल के बच्चों में भी दूसरों की स्थिति के भेद का स्पष्ट बोध पाया गया।

छोटे बच्चों की बातचीत में गैर–आत्म केंद्रित प्रतिक्रियाएं भी प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए स्कूल पूर्व आयु के बच्चे अपनी बात को अपने श्रोताओं की जरूरतों के अनुसार ढाल लेते हैं। चार साल के बच्चे जब दो साल के बच्चों से बात करते हैं तो वे हमउम्र बच्चों या बड़ों से बात करने में इस्तेमाल किये शब्दों की तुलना में उससे ज्यादा छोटे और सरल शब्दों का प्रयोग करते हैं। साथ ही, वस्तुओं का वर्णन करने में, बच्चे ऐसे शब्द जैसे कि ''बड़ा'' या ''छोटा'' सख़्त, गैर–लचीले और आत्म केंद्रित ढंग से इस्तेमाल नहीं करते। इसके बजाय वे अपने वर्णन में प्रसंग के अनुसार संशोधन कर लेते हैं। तीन साल की उम्र वाले बच्चे 2 इंच के एक जूते को अपने आप में छोटा आंकते हैं क्योंकि वह अधिकांश जूतों से काफी छोटा है, लेकिन उसी को वे एक नन्ही सी 5 इंच की गुड़िया के लिए बड़ा मानते हैं ।

चलने की शुरूआत करने वाले बच्चों को भी दूसरों के दृष्टिकोण की कुछ समझ होती है। ऐसे बच्चे दूसरों के इरादों का अनुमान लगाने लगते हैं। इस बात के सबूत हैं कि छोटे बच्चों को दूसरे लोगों के मनोभावों की उससे कहीं ज्यादा समझ होती है जितनी कि पियाजे की आत्मकेंद्रीयपन की धारणा में संभव/निहित है। हालाँकि पियाजे के साथ न्याय करते हुए यह कहना होगा कि अपने बाद के लेखन में उसने स्कूलपूर्व के बच्चों में आत्मकेंद्रीयपन (Egocentrism) का वर्णन उसे असमर्थता के बजाय प्रवृत्ति मानकर किया है। जब हम फिर से दृष्टिकोण–निर्माण को समझने के विषय पर लौटेंगे, तो हम देखेंगे कि यह क्षमता पूरे बचपन और किशोरावस्था के दौरान धीरे–धीरे विकसित होती है।

जीववादी और जादुई सोच (Animistic and magical thinking)

पियाजे ने स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की जीववादी (Animistic) धारणाओं को वास्तविक से कुछ ज्यादा ही आंक लिया, क्योंकि उसने बच्चों से ऐसी वस्तुओं के बारे में पूछा, जिनका प्रत्यक्ष अनुभव ना के बराबर होता है, जैसे कि बादल, सूरज, और चंद्रमा इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए था कि उन्हें सजीव और निर्जीव के अंतर का बोध नहीं होता। शिशु भी सजीव और निर्जीव में भेद करने लगते हैं, जैसा कि उनके द्वारा सजीव और निर्जीव चीजों में किये गये उल्लेखनीय अंतरों से संकेत मिलता है ढाई वर्ष की उम्र तक बच्चे मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करने लगते हैं ''उसे कुछ करना अच्छा लगता है ''या'' वह कुछ करना चाहती है।'' और ऐसा वे लोगों और कभी–कभी जानवरों के लिए कहते हैं, पर वस्तुओं के लिए बहुत ही कम ऐसा कहते हैं। हां जब उनसे कुछ वाहनों, जैसे रेलगाड़ियों और हवाई जहाजों के बारे में पूछा जाता है, तो वे जरूर भूल करते हैं। लेकिन ये अपने आप चलती हुई प्रतीत होती हैं, जो सजीव प्राणियों का एक बुनियादी लक्षण होता है, और उनकी आकृति में जीवन जैसी कुछ विशेषतायें होती हैं–उदाहरण के लिए, हैडलाइटें जो आंखों जैसी दिखाई देती हैं। अतः स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की प्रतिक्रियाएं वस्तुओं के बारे में अधूरे ज्ञान का परिणाम होती हैं, ना कि इस विश्वास का कि निर्जीव चीजें जीवित हैं।

स्कूल पूर्व आयु के बच्चों के अन्य चमत्कार संबंधी विश्वासों के बारे में भी यही बात सत्य है–

अधिकांश 3–4 साल के बच्चे, परियों, भूतों तथा अन्य चमत्कारी प्राणियों की असाधारण जादुई शक्तियों में यकीन करते हैं। लेकिन वे यह नहीं मानते कि जादू से उनके दैनिक अनुभवों को बदला जा सकता है –उदाहरण के लिए, किसी चित्र को सचमुच की वस्तु में बदलना। इसके बजाय, वे सोचते हैं कि जादू उन घटनाओं के लिए जिम्मेदार है जिन्हें वे समझा नहीं सकते, जैसा कि इस अध्याय के शुरूआत में 3 साल के एक बच्चे द्वारा की गई बादल गरजने की जादुई व्याख्या में होता है। इसके अलावा, 3 साल से थोड़े बड़े और 4 साल के बच्चे मानते

हैं कि सामाजिक रिवाजों का उल्लंघन करने जूते पहने हुए नहाना, की अपेक्षा भौतिक नियमों का उल्लंघन करने जैसे सिर्फ मन में सोचकर टी. वी. को चालू कर देने के लिए जादू की ज्यादा जरूरत होती है। इन प्रतिक्रियाओं से पता चलता है स्कूल पूर्व आयु के बच्चों की जादू संबंधी धारणाएं, लचीली और प्रसंग के लिए उपयुक्त होती हैं। 4 से 8 साल के बीच, जैसे–जैसे भौतिक घटनाओं और सिद्धांतों से परिचय बढ़ता है, बच्चों के करामाती विश्वास क्षीण होते जाते हैं। बच्चे अनुमान लगा लेते हैं कि सैंटा क्लॉज के उपहार लाने वाले दौरों और टूटा दांत ले जाने वाली परी ..उत्तर भारत में चूहा .. के पीछे असल में कौन होता है। वे यह भी समझ जाते हैं कि जादूगरों के करतब उनकी चालबाजी से किये जाते हैं, ना कि किन्हीं चमत्कारी शक्तियों से। ऐसा होते हुए भी बच्चे इस संभावना को खारिज नहीं करते अभी भी मानते हैं कि उनके द्वारा कल्पित कोई चीज हकीकत में बदल कर सामने आ सकती है, इसलिए डरावनी कहानियों और दुःस्वप्नों पर उनकी प्रतिक्रिया आशंका और घबराहट भरी होती है। एक अध्ययन में शोधकर्ताओं ने 4 से 6 साल के बच्चों को कल्पना करने को कहा ''एक खाली डिब्बे में एक राक्षस था और एक अन्य खाली डिब्बे में एक पिल्ला'' था। जहां लगभग सभी बच्चे ''पपी'' वाले डिब्बे के पास गये, वहीं अनेक बच्चे ''दैत्य'' वाले डिब्बे में उंगली डालने से बचते रहे, हालांकि उन्हें मालूम था कि कल्पना से असली वस्तु नहीं रची जा सकती ।

कितनी जल्दी बच्चे किन्हीं चमत्कारी धारणाओं को त्याग देते हैं, यह धर्म और संस्कृति के अनुसार बदलता रहता है। उदाहारण के लिए, यहूदी बच्चों के अपने हमउम्र क्रिश्चियन बच्चों की अपेक्षा, सैंटा क्लाज और दांतवाली परी में अविश्वास व्यक्त करने की संभावना अधिक है। घर पर यह समझाये जाने के कारण कि सैंटा–क्लाज असलियत में नहीं हैं, वे इस दृष्टिकोण को दूसरे जादुई पात्रों पर भी लागू करते हुए प्रतीत होते हैं और शायद कामना करने के बारे में सांस्कृतिक मिथक–उदाहरण के लिए, फूंक मारकर जन्मदिन के केक की मोमबत्तियाँ बुझाने से पहले कोई कामना करने का–रिवाज 3 से 4 साल के अधिकांश बच्चों के इस विश्वास का आधार बन जाते हैं, कि सिर्फ कामना करने से आप की इच्छा सचमुच में पूरी हो सकती है।

बच्चों के विकास में मील के पत्थर, संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ

2 से 4 वर्ष तक बच्चा प्रतीकात्मक गतिविधि (Representational activity) में उल्लेखनीय वृद्धि दर्शाता है, जैसा कि भाषा के विकास, खेल–नाटक (Make believe play) चित्रकारी, और दोहरे प्रतीकों की समझ से प्रकट होता है। सरल, परिचित स्थितियों में और रोज़मर्रा के आमने–सामने वाले संवादों में बच्चा दूसरों के दृष्टिकोण को पकड़ता / ग्रहण करता है। सजीव प्राणियों और निर्जीव वस्तुओं में भेद करता है, इस बात को नहीं मानता कि जादू रोज़मर्रा के अनुभवों को बदल सकता है। संरक्षण की धारणा को समझता है, रूपान्तरण की प्रक्रियायों को देखता है, सोचने को उलट लेता है, और परिचित प्रसंगों में अनेक कार्य कारण संबंधों (cause and effect relationship) को समझता है।

वस्तुओं के सहज रूप से समान प्रकार, काम और व्यवहार के आधार पर उनका वर्गीकरण करता है और किसी वर्ग के सदस्यों के समान लक्षणों के बारे में धारणायें बनाता है।

परिचित वस्तुओं को ऊपर–नीचे के क्रम वाले व्यवस्थित वर्गों में बांटता है जो प्रतीत होता है उसमें और वास्तविकता (यथार्थ) में भेद करता है।

4 से 7 वर्ष तक इस बात को उत्तरोत्तर अधिक समझने लगता है कि खेल नाटक (और दूसरी वैचारिक प्रक्रियाएं) प्रतीकात्मक गतिविधियां हैं।

परियों, भूतों, और सामान्य अपेक्षाओं का उल्लंघन करने वाली घटनाओं के बारे में जादुई विश्वासों को त्यागकर विश्वसनीय व्याख्याओं को अपना लेता है। शाब्दिक रूप से प्रतीत–वास्तविकता की समस्यायों को हल करता है जिससे अधिक सुदृढ़ समझ प्रकट होती है।

नोट – ये मील के पत्थर मोटे तौर पर पूरे आयु वर्ग की प्रवृत्तियाँ दर्शाते हैं। पर एक बच्चे से दूसरे बच्चे में ठीक–ठीक उस उम्र में फ़र्क होता जिसमें हर उपलब्धि हासिल होती है।

कुछ प्रश्न

- 2 से 7 साल के बच्चों की सोच के बारे में पियाजे के निष्कर्षों को किन प्रमाणों के कारण चुनौती दी गई है – इनके बारे में आपके विचार क्या हैं?
- सांस्कृतिक विश्वासों का बच्चों की जादुई सोच पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- नीचे दिए कौन से कथन सही हैं?
  - सात साल के बच्चे यह विश्वास करते हैं कि उनकी तरह सभी चीजे जीवित हैं।
  - 7 साल तक के बच्चों से यदि परिचित वस्तुओं और सरल निर्देशों के द्वारा प्रश्न पूछे जाएं तो कई बच्चे संख्या, लंबाई मात्रा, द्रव के कम–ज्यादा होने के बारे में सही निष्कर्ष निकाल सकते हैं।
  - पियाजे ने अपने बाद के लेखन में 7 साल तक के बच्चों की आत्मकेंद्रित, अतार्किक व जादुई सोच को उनकी प्रवृत्ति के रूप में माना है उनकी असमर्थता के रूप में नहीं।
  - 7 साल तक के बच्चे कुछ स्थितियों में दूसरे व्यक्ति की नज़र से सोचने में असमर्थ होते हैं।
- दो बराबर लंबाई की डंडियों में से एक को खिसकाने पर भी जब आप यह जवाब देते हैं कि दोनों बराबर लंबाई की ही हैं, तो आप अपने मन में किस तरह की विपरीत प्रक्रिया करते हैं .....

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (The concrete operational stage) 7 से 11 वर्ष

पियाजे के अनुसार बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में एक बड़ा मोड़ मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में आता है, जो लगभग 7 से 11 वर्ष तक रहती है। इसमें विचार पहले की अपेक्षा अधिक तर्क संगत, लचीला और व्यवस्थित होता है व छोटे बच्चों के बजाय बड़ों की विचार प्रक्रिया से अधिक मिलता–जुलता है।

मूर्त संक्रियात्मक विचार (Concrete operational thought)

पियाजे द्वारा रचे गये विभिन्न प्रकार के कामों को हल करने में स्कूल आयु के बच्चों के प्रदर्शन में मूर्त संक्रियाएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। चलिए, हम उनकी विविध उपलब्धियों को नज़दीक से देखें –

संरक्षण

संक्रियाओं का स्पष्ट प्रमाण संरक्षण के कामों को सफलतापूर्वक करने की क्षमता से मिलता है। उदाहरण के लिए, द्रव के संरक्षण के संदर्भ में बच्चे कहते हैं कि द्रव की मात्रा नहीं बदली है और संभावना है कि वे कुछ इस तरह का स्पष्टीकरण दें : ''पानी कम ऊँचा है, लेकिन यह ज्यादा चौड़ा भी है। इसे गिलास मे वापिस उड़ेलिए, आप देखेंगी की मात्रा अभी भी वही है। ''ज़रा गौर करें कि बच्चा कैसे इस उत्तर में काम के एक पहलू पर केंद्रित रहने के बजाय उसके कई पहलुओं को समन्वित करता है। **बड़ा बच्चा विकेंद्रीकरण करने लगता है, वह**

यह समझता है कि पानी के एक पहलू –उसकी ऊँचाई में हुए परिवर्तन की भरपाई उसके एक अन्य पहलू –उसकी चौड़ाई में हुए परिवर्तन से हो जाती है और इस उत्तर में विपरीतकरण की प्रक्रिया भी दिखाई देती है– संरक्षण के प्रमाण की तरह पानी के वापिस मूल बर्तन में उड़ेलने की कल्पना कर सकने की क्षमता इस उत्तर से स्पष्ट है।

पियाजे की मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में स्कूल आयु के बच्चे मूर्त वस्तुओं के बारे में व्यवस्थित और तार्किक ढंग से सोचते हैं। 8 साल का बच्चा यह समझता है कि तुला के एक पलड़े पर रखा हैम्सटर (एक प्रकार का बड़ा चूहा) उतना ही भारी है, जितना कि दूसरे पलड़े पर रखे धातु के बांट, यद्यपि दोनों अलग प्रकार की चीजें हैं, और एक दूसरे से दिखने में और महसूस करने में बहुत भिन्न हैं।

वर्गीकरण

किसी भी एक अभिलक्षण रंग, आकार और माप के आधार पर वर्गीकरण करने की योग्यता।

7 से 10 वर्ष की उम्र के दौरान, बच्चे पियाजे की वर्ग में शामिल करने की समस्या (class inclusion problem) हल कर लेते हैं। इससे पता चलता है कि उन्हें वर्गीकरण के ऊपर नीचे के क्रमों (classification hierarchies) का अब अधिक बोध है और वे एक व्यापक वर्ग और दो विशिष्ट वर्गो (उपवर्गों) पर एक साथ अर्थात् एक ही समय में तीन संबंधों पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। चीजों का संग्रह करना, डाक टिकटें, सिक्के, शीशियों के ढक्कन, और अन्य चीजें, मध्य बचपन का सामान्य लक्षण है। मेरा परिचित एक 10 साल का बच्चा घंटों तक अपने बेसबाल कार्डों के संग्रह को छांटकर अलग–अलग तरह से जमाता रहता था। कभी वह उन्हें लोग और टीम के सदस्यों के आधार पर समूहों में बांटता था, और कभी खिलाड़ियों के खेलने के स्थान और बैटिंग के औसत के आधार पर जमाता था। वह खिलाड़ियों को विभिन्न प्रकार के वर्गों में बांट सकता था और फिर आसानी से दूसरे ढंग से जमा सकता था।

क्रमिकता (seriation)

चीजों का उनके किसी गुण के परिमाण के हिसाब से (किसी परिमाणात्मक आयाम में) जैसे कि लम्बाई या वजन, क्रम निर्धारित करने की क्षमता क्रमिकता (seriation) कहलाती है।

इसकी परीक्षा के लिए, पियाजे ने बच्चों से अलग–अलग लंबाइयों वाली कुछ डंडियों को सबसे छोटी से सबसे बड़ी तक के क्रम में जमाने को कहा। स्कूल पूर्व आयु के थोड़े बड़े बच्चे डंडियों की श्रृंखला तो बना देते हैं, पर वे यह काम बेतरतीब ढंग से करते हैं। वे डंडियों को एक कतार में तो रख देते हैं, पर क्रम में कई गलतियाँ करते हैं और उन्हें सुधारने में बहुत समय लगाते हैं। इसके विपरीत 6 से 7 साल के बच्चे एक क्रमबद्ध योजना से यह काम करते हैं। वे सबसे छोटी डंडी से शुरू करके, फिर उससे बड़ी, फिर उससे बड़ी इस प्रकार क्रम पूरा करके दक्षतापूर्वक श्रृंखला तैयार कर देते हैं।

मूर्त संक्रियात्मक बच्चा क्रम को मन में भी निर्धारित कर सकता है, यह क्षमता 'संक्रमित निष्कर्ष कहलाती है। संक्रमित निष्कर्ष की एक सुपरिचित समस्या में पियाजे ने बच्चों को अलग–अलग रंगों की डंडियों के जोड़े दिखाये। यह देखकर कि A डंडी B डंडी से ज्यादा लंबी है, और डंडी B डंडी C से लंबी है, बच्चों को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि डंडी A डंडी C से लंबी है। इस बात पर गौर करें कि, पियाजे के वर्ग में शामिल करने के काम के समान, इस काम में बच्चों के लिए तीन संबधों को एक साथ समेकित करना जरूरी है – A-B, B-C, A-C. जब शोधकर्ता प्रयास करके यह सुनिश्चित कर लेते हैं कि बच्चे आधार मान्यताओं (premises A-B तथा B-C) को याद रख सकें तो 7–8 साल के बच्चे संक्रमित निष्कर्ष की बात समझ सकते हैं।

स्थानिक सोच (Spatial Reasoning)

पियाजे ने पाया कि स्कूल आयु के बच्चों की स्थान विस्तार की समझ स्कूल पूर्व आयु के बच्चों से अधिक सही होती है। यहां हम इसके दो उदाहरण लेते हैं– दिशाओं की तथा नक्शों की समझ।

दिशायें

जब 5–6 साल के बच्चों से किसी व्यक्ति की बाईं या दायीं ओर स्थित कोई वस्तु बताने को कहा जाता है, तो वे गलत उत्तर देते हैं क्योंकि स्वयं के हिसाब से बाईं या दाईं तय करते हैं। पर 7 से 8 साल के बीच, बच्चे दृश्य को मानसिक रूप से घुमाना शुरू कर देते हैं, और ऐसा करके वे अपने दिशा संदर्भ को मन में किसी और दिशा में घूमे हुए व्यक्ति के जैसा बना सकते हैं। इसके फलस्वरूप वे अपनी स्थिति से भिन्न किसी स्थिति के लिए बायें और दायें की पहचान कर सकते हैं। लगभग 8 से 10 साल के बच्चे किसी व्यक्ति को एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए मार्ग के स्पष्ट दिशा निर्देश दे सकते हैं, इसके लिए वे उस व्यक्ति की ओर से मार्ग की ''मानसिक यात्रा'' करने की युक्ति अपनाते हैं। छह साल के बच्चे मार्ग को स्वयं चलकर तय करने के बाद ही अधिक व्यवस्थित दिशा निर्देश दे पाते हैं, या फिर तब, जब उन्हें बीच–बीच में खासतौर पर दिशाओं की याद दिलाई जाये, अन्यथा उनका ध्यान केवल मार्ग के अंतिम बिन्दु पर ही रहता है, बिना इस बात का ठीक–ठीक विवरण दिये कि वहां तक कैसे पहुँचा जा सकता है।

इस अवस्था में बच्चों में एक अन्य उपलब्धि यह होती हैं कि वह स्वकेंन्द्रित चिन्तन से ऊपर उठता हैं अर्थात् वह समझने लगता है कि उसका सोचने का तरीका ही एक मात्र तरीका नहीं हैं क्योंकि सोचने के और भी तरीके हो सकते हैं दूसरों के दृष्टिकोण को स्वीकार करने से बालक को अपने ज्ञान में विस्तार करने और एक ही वस्तु को विभिन्न पहलुओं को सीखने में सहायता मिलती है।

संज्ञानात्मक नक्शे

बच्चों द्वारा अपने परिचित बड़े स्थान–विस्तारों, जैसे कि अपने मोहल्लों या स्कूलों के मानसिक निरूपणों को संज्ञानात्मक नक्शे कहा जाता है। किसी बड़े स्थान के विस्तार का नक्शा बनाने के लिए दृश्य को मानसिक रूप से ग्रहण करने के लिए काफी अधिक कौशल की ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि समूचे स्थान विस्तार को एक साथ नहीं देखा जा सकता। इसके बजाय, बच्चे उसके हिस्सों का आपस में संबंध जोड़कर पूरे स्थान–विस्तार की कल्पना ही कर सकते हैं।

स्कूल पूर्व आयु के बच्चे और स्कूल जाने वाले छोटे बच्चे अपने बनाये हुए नक्शे में विशेष पहचान वाले स्थान (landmark) तो शामिल करते हैं परंतु नक्शे पर उन्हें सही जगह दिखाने के काम में बिखराव और त्रुटियां होती हैं। यदि उन्हें उनकी कक्षा के नक्शे पर लोगों और डेस्कों की स्थिति दर्शाने के लिए चिपकने वाले चिन्ह (stickers) लगाने के लिए कहा जाता है, तो उनका प्रदर्शन बेहतर रहता है। लेकिन यदि नक्शे को वास्तविक कक्षा की दिशाओं के अनुरूप न रखते हुए, घुमाकर किसी और स्थिति में रख दिया जाता है, तो उन्हें सही जगह स्टिकर्स, लगाने में दिक्कत होती है। किसी कमरे के घुमाये गये नक्शे का उपयोग करके उस कमरे में छिपाई गई चीजें ढूंढने के काम में तब सुधार होता है जब नक्शे के विभिन्न बिन्दुओं को मिलाने से कोई अर्थपूर्ण आकृति बनती है, जैसे कि एक कुत्ते की रेखाकृति दिखाकर किया जा सकता है। बच्चों को नक्शे की पारस्परिक संरचना दिखाने से उन्हें घुमाये गये नक्शे की स्थितियों का वास्तविक कमरे की स्थितियों से, सादृश्यता की तर्क पद्धति (reason by analogy) के द्वारा संबंध बिठाने में मदद मिलती है।

स्कूल की प्रारंभिक कक्षाओं मे बच्चों के नक्शे अधिक सुसंगत हो जाते हैं। वे एक व्यवस्थित यात्रा पथ की कल्पना करके, उसके अनुसार विशेष पहचान वाली जगहें (landmark) दर्शाते हैं–यह उपलब्धि उनकी दिशा

निर्देश देने की क्षमता में हुए सुधार से मिलती जुलती है। मध्य बचपन के अंत तक एक बड़े स्थान विस्तार की पूरी संरचना मन में बना लेते हैं, जिसमें विशेष स्थान चिन्ह और विभिन्न मार्ग परस्पर जुड़े रहते हैं और वे आसानी से नक्शे बना लेते हैं, और उन्हें पढ़ लेते हैं, तब भी जब नक्शे का घुमाव उस वास्तविक स्थान से भिन्न हो जिसे वह निरूपित करता है।

बच्चों के नक्शे बनाने पर, संज्ञानात्मक विकास के अलावा सांस्कृतिक ढांचों का भी प्रभाव पड़ता है। अनेक गैर–पश्चिमी समुदायों में लोग रास्ता खोजने के लिए नक्शों का प्रयोग बहुत ही कम करते हैं। इसके बजाय जानकारी (मार्गदर्शन) के प्रमुख स्रोत, पड़ोसी, सड़कों पर सामान बेचने वाले ठेले वाले और दुकानदार होते हैं। इसके अलावा, पश्चिम के अपने हम उम्र बच्चों की तुलना में गैर पश्चिमी बच्चे कारों में कम यात्रा करते हैं और ज्यादा करके पैदल चलते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप वे अपने मोहल्ले और इलाके को निकट से जानते हैं। जब एक शोधकर्ता ने भारत और अमेरिका के छोटे शहरों में रहने वाले 12 साल के बच्चों से उनके मोहल्लों के नक्शे बनवाये, तो भारतीय बच्चों ने पहचाने जाने वाले चिन्हों और सामाजिक जीवन के पहलुओं जैसे वाहनों और लोगों, से भरे हुए अपने घर के आस–पास के छोटे से इलाकों के नक्शे बनाये। इसके विपरीत अमेरिकन बच्चों ने ज्यादा विस्तृत क्षेत्रों के, मुख्य सड़कों और दिशाओं (उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम) को दिखाते हुए अधिक औपचारिक नक्शे बनाये, पर उनमें पहचाने जाने वाले चिन्ह (landmark) और अन्य चीजें नहीं के बराबर थीं। यद्यपि अमेरिकन बच्चों के नक्शे संज्ञानात्मक परिपक्वता में ज्यादा उच्च स्तर के थे, नक्शों में अंतर का प्रमुख कारण था कि बच्चों ने दिये गये इस कार्य के अलग–अलग सांस्कृतिक अर्थ निकाले। जब भारतीय बच्चों से ''लोगों को किसी जगह पहुँचने का रास्ता खोजने में मदद करने वाले नक्शे बनाने के लिए कहा गया तो भारतीय बच्चों ने भी अमेरिकन बच्चों जैसे ही व्यवस्थित और विस्तृत क्षेत्र दिखाने वाले नक्शे बनाये।

कुछ प्रश्न

- पियाजे के प्रयोगो के अनुसार 7 से 11 साल में बच्चे मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे किन तार्किक कामों को कर पाते हैं?
- एक गतिविधि– अपनी दोनों मुठ्ठियां बांध कर आप अपने सामने खड़े कुछ बच्चों से जिन्हें अपने दाएं–बाएं हाथ का ज्ञान है, कहें कि मेरे दाएं हाथ मुटठी में एक टॉफी है, मुट्ठी खोल कर ले लो ...... देखें कि क्या वे बच्चे यह काम कर पाते हैं अपने परिणामों के आधार पर आप इन बच्चों के संज्ञान के बारे में क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?
- एक अध्ययन में अमेरिकी छा्त्रों और भारतीय छात्रों के बनाए बए नक्शों में क्या भिन्नता पाई गई और उसका क्या कारण था?
- अपने मोहल्ले का नक्शा बनाओ लोगों को आपके मोहल्ले में आपके घर तक पहुँचने का रास्ता बताने के लिए नक्शा बनाओ।

  इन दो निर्देशों से भारतीय व अमेरिकी छात्रों ने कौन से अलग–अलग अर्थ निकाले और क्यों ...
- संरक्षण, वर्गीकरण और क्रमिकता की समझ जानने के लिए पियाजे द्वारा किए गए प्रयोगों का विवरण दें।

मूर्त संक्रियात्मक सोच की सीमायें / कमियाँ (Limitations of Concrete Operational Thought)

जैसा कि इस अवस्था के नाम से संकेत मिलता है, मूर्त संक्रियात्मक सोच में एक महत्वपूर्ण खामी है : बच्चे तभी व्यवस्थित तथा तार्किक ढंग से सोचते हैं जब उनके सामने मूर्त जानकारी हो जिसका वे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकें। परंतु अमूर्त विचारों जो वास्तविक संसार में दिखाई नहीं देते के संबंध में उनकी मानसिक संक्रियायें

(Mental Operations) ठीक से काम नहीं करतीं। इसका एक अच्छा उदाहरण संक्रमित निष्कर्ष की समस्याओं (Transitive Inference) में मिलता है। जब 8 साल के बच्चों को असमान लंबाइयों की डंडियों के जोड़े दिखाये जाते हैं तो वे जल्दी ही यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि यदि डंडी A, डंडी B से लम्बी है और डंडी B डंडी C से लम्बी है, तो डंडी A डंडी C से लम्बी है। परंतु इसी समस्या का यदि काल्पनिक रूपान्तर करके पेश किया जाये, जैसे कि ''शीला, विमला से लम्बी है और विमला, कुसुम से लम्बी है। उनमें सबसे लम्बी कौन है'' तो उन्हें इसमें बड़ी कठिनाई होती है। 11 या 12 वर्ष की उम्र तक बच्चे यह समस्या हल नहीं कर पाते।

तार्किक सोच प्रारंभ में प्रत्यक्ष परिस्थितियों से बंधी रहती है। इस तथ्य से मूर्त संक्रियात्मक तर्क प्रक्रिया की एक अन्य विशेषता का कारण समझने में मदद मिलती है। आपने देखा होगा कि कैसे स्कूल आयु के बच्चे पियाजे के मूर्त संक्रियात्मक कार्यो को हल करने की क्षमता क्रमशः धीरे–धीरे हासिल करते हैं, सभी कार्यों को एक साथ हल नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए वे आमतौर पर संख्या का संरक्षण सीखते हैं, उसके बाद लम्बाई, द्रव और मात्रा का, फिर उसके बाद भार का संरक्षण समझते हैं। तार्किक अवधारणाओं पर इस क्रमिक अधिकार का वर्णन करने के लिए पियाजे ने क्षैतिज विकास (horizontal decalage) जिसका अर्थ है एक अवस्था के भीतर विकास पद का उपयोग किया। मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों को अमूर्त अवधारणाओं से होने वाली कठिनाई भी क्षैतिज विकास के विचार का उदाहरण है। ऐसा नहीं होता कि स्कूल आयु के बच्चे पहले व्यापक तार्किक सिद्धांतों को समझ लेते हों और फिर उन्हें उनसे संबंधित सभी परिस्थितियों पर लागू करते हों। बल्कि, ऐसा लगता है कि वे हर समस्या की तर्क प्रक्रिया को अलग–अलग हल करते हैं।

कुछ प्रश्न

• पियाजे के अनुसार मूर्त–संक्रियात्मक अवस्था में बच्चों में कौन–सी क्षमताएं दिखायी पड़ती है। इन उपलब्धियों/क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए कुछ प्रवृत्तियाँ तैयार कीजिए। (गणित, विज्ञान और पर्यावरण अध्ययन की विषय सामग्री के संदर्भ में)

मूर्त संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोध (Follow-up Research on concrete operational thought)

पियाजे के अनुसार मस्तिष्क के विकास और बाहरी संसार के समृद्ध और विविध अनुभवों को मिलकर सभी जगहों के बच्चों को मूर्त संक्रियात्मक अवस्था तक पहुंचा देना चाहिए लेकिन हम पहले ही देख चुके हैं कि दिये गये कार्यो में बच्चों का प्रदर्शन उनकी संस्कृति से गहरे रूप से प्रभावित होता है, और उस पर स्कूल शिक्षा का भी प्रभाव पड़ता है।

जनजातीय (tribal) और ग्रामीण समाजों में संरक्षण की धारणा थोड़ी देर से आती है। उदाहरण के लिए नाइजीरिया की एक जनजाति के लोग जो छोटी–छोटी खेतिहर बस्तियों में रहते हैं और जो अपने बच्चों को बहुत ही कम स्कूल भेजते हैं, को संरक्षण के एकदम बुनियादी काम–संख्या, लम्बाई और द्रव संबंधी भी 11 वर्ष या उससे बाद की आयु तक नहीं समझ में नहीं आते। इससे यह संकेत मिलता है कि रोजमर्रा की (इस प्रकार की अवधारणाओं से) संबंधित गतिविधियों में भाग लेने से बच्चों को संरक्षण और पियाजे की अन्य समस्यायों को सहजता से हल करने में मदद मिलती है। एक और उदाहरण के तौर पर, पश्चिम के देशों में अनेक बच्चों ने न्यायोचितता/न्याय (Fairness) की धारणा को समान वितरण (Equal distribution) –ऐसा मूल्य जिस पर उनकी संस्कृति में जोर दिया जाता है–के अर्थ में सोचना सीखा है। उन्हें अपने मित्रों में विभिन्न चीजों, जैसे रंगीन पेंसिलें, हॉलोवान की मिठाइयाँ, और नीबू का शरबत आदि को बराबर मात्रा में बांटने के अनेक अवसर मिलते हैं। चूंकि वे उसी बराबर परिमाण/मात्रा को अलग–अलग ढंग से पेश किया/व्यवस्थित किया जाता देखते हैं, इसलिए वे जल्दी ही संरक्षण समझने लगते हैं।

ऐसा लगता है कि स्कूल जाने का अनुभव अपने आप में ही पियाजे के कार्यों को अधिकार पूर्वक करने में सहायक होता है। यदि समान उम्र के बच्चों की परीक्षा ली जाती है तो जिन बच्चों को स्कूल जाते हुए ज्यादा समय हो गया होता है, वे संक्रमित निष्कर्ष की समस्याओं में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। शायद इसका कारण स्कूल में चीजों को क्रमबद्ध करने (seriate), क्रम संबंधों के बारे में जानने, और किसी जटिल समस्या के अंशों का ध्यान रखने के अवसर होते हैं। परंतु कुछ गैरस्कूली, अनौपचारिक अनुभव भी संक्रियात्मक सोच का पोषण कर सकते हैं। ब्राजील में सड़कों पर फेरी लगाकर सामान बेचने वाले 8–9 साल के बच्चे, जो शायद ही कभी स्कूल जाते हों, पियाजे के वर्ग में शामिल करने वाले काम कतई अच्छे से नहीं कर पाते। लेकिन सामान बेचने से संबंधित समस्यायें हल करने में वे स्कूल जाने वाले बच्चों से काफी बेहतर प्रदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए ''यदि तुम्हारे पास 4 पिपरमिंट की गोलियाँ और 2 संतरे की गोलियाँ हैं, तो मुझे पिपरमिंट की गोलियाँ बेच देना (तुम्हारे लिए) ज्यादा फायदेमंद है, या सभी गोलियाँ बेच देना?'' इसी प्रकार, दक्षिणी मैक्सिको के जीनाकैन्टेको इंडियन समुदाय की 7–8 साल की लड़कियाँ करघों पर जटिल डिजाइनों के कपड़े बुनना सीख जाती हैं, करघे पर लपेटे गये तानों को बुनने के बाद कपड़े की तरह कैसा रूप होगा, मानसिक रूपान्तरण की प्रक्रिया करके यह जान लेती हैं। यह ऐसा तार्किक सोचना है जिसकी उम्मीद मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में की जाती है। उत्तरी अमेरिका के हमउम्र बच्चों को जो पियाजे के काम अच्छे से करते हैं, बुनाई की इन समस्यायों में बहुत कठिनाई होती है।

इस प्रकार के नतीजों के आधार पर कुछ खोजकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पियाजे के कामों के लिए आवश्यक तार्किक स्वरूप सहज ही, अपने आप विकसित नहीं हो जाते, बल्कि उन पर प्रशिक्षण, प्रसंग और सांस्कृतिक स्थितियों का भारी प्रभाव पड़ता है। अगले पेज पर दी गई उपलब्धियों की तालिका में पिछले खंड़ों में चर्चित मध्य बचपन की संज्ञानात्मक उपलब्धियों और आगे किशोरावस्था में होने वाली उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

कुछ प्रश्न

1. शीला विमला से लम्बी है और विमला कुसुम से लम्बी है उनमें– सबसे लंबी कौन है – इस सवाल पर जवाब देना थोड़ा मुश्किल क्यों है– जबकि पियाजे के सामने खड़े लोगों को देख कर ज्यादा आसानी से जवाब दिया जा सकता है – पियाजे के अनुसार बच्चों में विकास की किस तरह की अवस्था है?

2. पश्चिमी संस्कृति स्कूली बच्चों को संरक्षण की अवधारणा सीखने में किस तरह मदद करती है?

मील के पत्थर–मध्य बचपन और किशोरावस्था की कुछ संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ (Some Cognitive Attainments of Middle Childhood and Adolescence)

क्र.	लगभग आयु	संज्ञानात्मक उपलब्धि
1.	मध्य बचपन 7–11 वर्ष	मूर्त/स्थूल जानकारी के संबंध में बच्चा अधिक व्यवस्थित, और तार्किक ढंग से सोचता है, जैसा कि पियाजे की संरक्षण, वर्ग में शामिल करने, और सक्रंमित निष्कर्ष सहित क्रमबद्ध करने की समस्यायों पर उसके अधिकार से प्रकट होता है। वह अधिक कारगर ढंग से स्थान विस्तारों के बारे में सोच पाता है, जैसा कि मार्ग के स्पष्ट दिशा निर्देश देने और सुव्यवस्थित संज्ञानात्मक नक्शे बनाने की क्षमता से प्रकट होता है।
2.	किशोरावस्था 11–18 वर्ष	ऐसी परिस्थितियों में जो परिकल्पना तथा निगमन पर आधारित तर्क और प्रस्थापनापूर्ण विचार (hypothetico deductive reasoning and propositional thought) के लिए अवसर देती हैं, वह अमूर्त ढंग से सोच

	पाता है। वह प्रस्थापनात्मक विचार (propositional thought) की तार्किक आवश्यकता को समझता है, जिससे उसे वास्तविकता के विपरीत मान्यताओं (Premises) के बारे में सोचने की सुविधा मिलती है। काल्पनिक श्रोताओं और व्यक्तिगत किस्सों का प्रदर्शन करता है जो धीरे–धीरे क्षीण हो जाता है। इसकी निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सुधार होता है।

औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal operational stage) : 11 वर्ष तथा ऊपर

पियाजे के अनुसार, लगभग 11 वर्ष की उम्र में लोग औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था में प्रवेश करते हैं। इस अवस्था में वे अमूर्त, वैज्ञानिक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित करते हैं। जहाँ मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे ''वास्तविक संसार के साथ संक्रियाएं करते हैं (Operate on reality) वहीं औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था के किशोर ''संक्रियाओं के साथ संक्रिया (operate on operations) कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में विचार करने के लिए उन्हें अब बाहर की मूर्त वस्तुओं और घटनाओं की जरूरत नहीं रह जाती, बल्कि वे आंतरिक चिन्तन करके नये, और अधिक तार्किक नियम गढ़ने में समर्थ हो जाते हैं।

परिकाल्पनिक–निगमित तर्क (Hypothetico-Deductive Reasoning)

किशोरावस्था में लोग परिकाल्पनिक –निगमित ढंग से विचार करने में समर्थ हो जाते हैं। जब उनके सामने कोई समस्या आती है, वे परिणाम दे सकने वाले सभी संभव कारकों के एक सामान्य सिद्धान्त (General theory) से प्रारंभ करते हैं, और उससे संभावित घटनाओं के बारे में विशेष परिकल्पनाएं निकालते हैं। फिर वे उन परिकल्पनाओं का यह देखने के लिए व्यवस्थित परीक्षण करते हैं कि उनमें से कौन सी वास्तविक संसार में काम करती हैं। इस बात पर गौर करें कि इस तरह समस्या को हल करने का काम संभावना से शुरू होता है और फिर वास्तविकता की ओर बढ़ता है। इसके विपरीत मूर्त संक्रियात्मक बच्चे वास्तविकता से प्रारंभ करते हैं और किसी परिस्थिति के बारे में साफ दिखाई देने वाले अनुमान लगाते हैं। यदि इन अनुमानों की पुष्टि नहीं हो, तो उन्हें कोई और विकल्प नहीं सूझता और वे समस्या को हल करने में विफल रहते हैं। इस नये दृष्टिकोण का उदाहरण पियाजे की प्रसिद्ध पेंडुलम (दोलक) की समस्या को हल करने में किशोरों के प्रदर्शन से मिलता है। मान लीजिए कि हम कई स्कूल आयु के बच्चों और किशोरों को अलग–अलग लंबाइयों के धागे, उनमें बांधने के लिए अलग–अलग वजनों की वस्तुयें, और धागों को लटकाने के लिए एक–एक छड़ देते हैं और फिर उनमें से हरेक को इन चीज़ों से विभिन्न दोलक बनाकर यह पता लगाने को कहते हैं कि पेंडुलम के अपने वक्र में डोलने की गति किस चीज से कैसे प्रभावित होती है।

औपचारिक संक्रियात्मक किशोर चार परिकल्पनाएं पेश करते हैं –

1. धागे की लंबाई,

2. उससे लटक रही वस्तु का वजन,

3. वह ऊँचाई जिस तक दोलक को खींचकर छोड़ा जाता है,

4. उस धक्के का बल जिससे वस्तु को छोड़ा जाता है। फिर वे एक बार में एक कारक को बदलकर, तथा बाकी कारकों को स्थिर रखकर, हर संभावना को आजमाते हैं। अंततः वे खोज लेते हैं कि केवल धागे की लंबाई से ही फर्क पड़ता है।

इसके विपरीत, मूर्त संक्रियात्मक बच्चे बेतरतीब ढंग से प्रयोग करते हैं। वे हर कारक के प्रभाव को अलग–अलग नहीं कर पाते। हो सकता है कि वे धागे की लंबाई के प्रभाव का, वजन को स्थिर रखे बिना, परीक्षण

करें, जैसे कि एक छोटे, हल्के दोलक की एक लंबे, भारी दोलक से तुलना करें। इसके अलावा स्कूल आयु के बच्चे उन कारकों को देखने में असफल रहते हैं, जो कार्य की मूर्त/स्थूल सामग्री को देखकर तत्काल उन्हें नहीं सूझते–वह ऊंचाई और उस धक्के का बल जिससे पेंडुलम को छोड़ा जाता हैं।

प्रस्थापनात्मक सोच (Propositional thought)

औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण प्रस्थापनात्मक सोच है। किशोर वास्तविक संसार की परिस्थितियों का सहारा लिए बिना शाब्दिक वक्तव्यों – (Verbal propositions) के तर्क का मूल्यांकन कर सकते हैं। इसके विपरीत बच्चे वक्तव्यों पर वास्तविक संसार में मिलने वाले प्रमाणों के संदर्भ में विचार करके ही उनके तर्क का मूल्यांकन कर सकते हैं।

प्रस्थापनात्मक सोच के एक अध्ययन में, शोधकर्त्ता ने बच्चों और किशोरों को प्लास्टिक के रंगीन टुकड़ों को दिखाकर उनके बारे में कुछ वक्तव्यों के सच, झूठ या अनिश्चित होने के प्रश्न पूछे। एक उदाहरण में, जांचकर्ता ने एक टुकड़े को अपनी मुठ्ठी में छिपाकर, फिर निम्नलिखित वक्तव्य दिये ''मेरे हाथ में रखा टुकड़ा या तो हरा है, या हरा नहीं है।'' एक दूसरी स्थिति में शोधकर्ता ने एक लाल या हरे टुकड़े को सबको दिखाते हुए हाथ में पकड़े रखा और फिर वही वक्तव्य दिये। स्कूल आयु के बच्चों ने टुकड़ों के मूर्त गुणों पर ही ध्यान दिया। जब टुकड़ा नजर से छिपा हुआ था तो उनका उत्तर था कि वे दोनों वक्तव्यों के बारे में अनिश्चित थे। पर जब वह दिख रहा था, और हरा था तो उन्होंने दोनों वक्तव्यों को सच माना और यदि वह लाल था तो दोनों को झूठ माना। इसके विपरीत, किशोरों ने दोनों वक्तव्यों के तर्क का विश्लेषण किया। उन्होंने इस बात को समझा कि ''या (यह) या (यह) नहीं '' वाला वक्तव्य हमेशा सत्य होता है, जबकि (यह है) और (यह नहीं है) वाला वक्तव्य हमेशा झूठ होता है, चाहे टुकड़े का रंग जो भी हो।

यद्यपि पियाजे की दृष्टि में भाषा बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कोई केंद्रीय भूमिका नहीं निभाती, परंतु किशोरावस्था में इसके महत्व को उसने स्वीकार किया। अमूर्त विचार के लिए भाषा पर आधारित, तथा अन्य प्रतिकों वाले ऐसे ढांचे जरूरी थे जो किन्हीं वास्तविक चीज़ों को निरूपित नहीं करते। उदाहरण के लिए उच्चतर गणित के ढांचे। उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के बच्चे ऐसे प्रतीकात्मक ढांचों का उपयोग बीजगणित और रेखागणित में करते हैं। औपचारिक संक्रियात्मक सोच में भी अमूर्त अवधारणाओं के बारे में शाब्दिक तर्कों का प्रयोग करना निहित है। किशोरों में यह दिखाई देता है कि वे इस प्रकार से सोच सकते हैं जब उन्हें समय, स्थान विस्तार (space) और पदार्थ के संबंधों पर विचार करना हो, या दर्शनशास्त्र और सामाजिक अध्ययन में न्याय तथा स्वतंत्रता के बारे में सोचना हो।

कुछ प्रश्न

- वास्तविक संसार के साथ संक्रिया की तुलना में संक्रियाओं के साथ संक्रिया करते समय बच्चे की समझ में क्या अन्तर आ जाता है?

अमूर्त विचार की निष्पत्तियाँ (Consequences of abstract thought)

अमूर्त संक्रियाओं के विकास के परिणामस्वरूप उन तरीकों में नाटकीय संशोधन होते हैं जिनसे किशोर स्वयं अपने को, दूसरों को, और व्यापक रूप से संसार को देखते हैं। लेकिन जिस तरह किशोर अपने बड़े हो गये, रूपान्तरित शरीरों का कभी–कभी अटपटे/बेढंगे तरीकों से उपयोग करते हैं, उसी तरह अपने अमूर्त सोच में भी वे शुरू–शुरू में लड़खड़ाते हैं। यद्यपि किशोरों की आत्म–चिंता, आदर्शवाद और निर्णय लेने की अक्षमता से, बड़ों को अक्सर उलझन और चिन्ता होती है, पर इनसे आगे चलकर आमतौर पर लाभ होता है।

किशोरों की अमूर्त सोच की नई क्षमता से संबंध बिठाना

अमूर्त विचार की अभिव्यक्ति का स्वरूप...	**सुझाव**
सार्वजनिक आलोचना के प्रति संवेदनशीलता	दूसरों के सामने किशोरों में कमियाँ निकालने से बचें। यदि बात महत्वपूर्ण हो तो तब तक प्रतीक्षा करें जब तक आप किशोर से अकेले बात नहीं कर पाते।
अपनी व्यक्तिगत अद्वितीयता को बढ़ा–चढ़ाकर देखना	किशोर के अनोखे लक्षणों/गुणों को स्वीकार करें। उचित समय पर बतायें कि कैसे किशोरावस्था में आपको भी ऐसा ही लगता था। एक अधिक संतुलित दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करें।
आदर्शवाद और आलोचना	किशोरों की भव्य उम्मीदों और आलोचनात्मक टिप्पणियों पर धैर्यपूर्वक प्रतिक्रिया करें। लक्ष्यों के सकारात्मक पहलू, दिखायें और यह देखने में मदद करें कि पूरी दुनिया और लोग गुणों और दोषों से मिलकर बने हैं।
रोज़मर्रा के निर्णय लेने में कठिनाई	किशोरों के लिए निर्णय लेने से बचे। स्वयं कारगर ढंग से निर्णय लेने का नमूना पेश करें और व्यवहारकुशल ढंग से विकल्पों के अच्छे और बुरे पहलुओं, संभावित परिणामों और खराब निर्णयों से सीखने के बारे में सुझाव दें।

कुछ प्रश्न

- क्या आपके साथ और आपके आसपास के किशोरावस्था के बच्चों के साथ व्यावहारिक रूप में इन सुझावों के अनुरूप बर्ताव किया जाता है? लिखिए।

आत्म–चेतना और आत्म ध्यान (Self consciousness and self focusing)

किशोरों की अपने खुद के विचारों पर सोचने की क्षमता का मतलब है कि वे स्वयं के बारे में अधिक सोचते हैं। पियाजे की धारणा थी कि इस अवस्था के साथ आत्म–केंद्रीकरण का एक नया रूप आता है, जो स्वयं के तथा दूसरों के अमूर्त दृष्टिकोणों में फ़र्क नहीं कर पाता। पियाजे के अनुयायियों ने सुझाया कि इसके परिणाम स्वरूप अपने और दूसरों के बीच के संबंधों की दो विकृत छवियां प्रकट होती हैं।

पहली है काल्पनिक श्रोता समूह (Imaginary audience) - किशोरों को विश्वास होता है कि वे सभी लोगों के ध्यान और फ़िक्र का केंद्र हैं। इसके फलस्वरूप वे अत्यंत आत्म–चिंतित (self conscious) और लज्जित होने से बचने की भरसक कोशिश करते हैं। काल्पनिक श्रोतासमूह की अवधारणा से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि किशोर क्यों अपनी शक्ल सूरत/बाहरी स्वरूप (appearance) की हर बारीकी का निरीक्षण करने में घंटों व्यतीत करते हैं। किशोरों को लगता है कि सब लोग उनके प्रदर्शन का निरीक्षण करते रहते हैं, इसलिए माता–पिता या शिक्षक की किसी भी आलोचनात्मक टिप्पणी उन्हें बेहद अपमानजनक लग सकती है।

दूसरी संज्ञानात्मक विकृति है व्यक्तिगत/निजी गाथा/महाछवि (personal fable)। चूंकि किशोरों को यकीन होता है कि दूसरे उनका निरीक्षण कर रहे हैं, और उनके बारे में सोच रहे हैं, इसलिए वे खुद के महत्व को बढ़ा–चढ़ाकर देखने लगते हैं। उन्हें लगता है कि वे विशिष्ट और अनोखे हैं। अनेक किशोर/किशोरियां कभी अपने को कीर्ति के शिखरों पर पहुंचता हुआ देखते हैं, तो कभी अपने को हताशा की अनंत गहराइयों में पाते

हैं– ऐसे अनुभव जिनकी तीव्रता को दूसरों के लिए देखना संभव नहीं है। जैसा कि एक किशोरी ने अपनी डायरी में लिखा,''मेरे माता–पिता का जीवन कितना साधारण है, एक ही लीक से बंधा हुआ। मेरा बिलकुल भिन्न होगा। मैं अपनी आशाओं और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करूंगी।'' ऐसा लगता है कि जब व्यक्तिगत गाथा/निजी महाछवि (personal fable), ऐंद्रिक अनुभव–खोजते/ध्यानाकर्षण खोजते व्यक्तित्व (sensation-seeking personality) से जुड़ जाती है, तो वह किशोर–किशोरियों को, यह भरोसा दिलाकर कि वे अपराजेय हैं (उन्हें कुछ नहीं हो सकता), जोखिम उठाने के लिए उकसाती है। एक अध्ययन में पता चला कि ऊंची निजी महाछवि और अति ध्यानाकर्षण व्यक्तित्व वाले युवा लोगों ने, अपने हमउम्र अन्य लोगों की तुलना में अधिक शारीरिक संबंधों के जोखिम लिए, प्रायः नशीले पदार्थों का सेवन किया और ज्यादा आपराधिक काम किये।

काल्पनिक श्रोता समूह और निजी महाछवि, मूर्त संक्रियाओं से औपचारिक संक्रियाओं तक के परिवर्तन के दौर में सबसे बलवती होती हैं, और इसके बाद वे धीरे–धीरे कमजोर पड़ जाती हैं। पर निजी स्वरूप की ये कल्पनायें शायद आत्मकेंद्रण का परिणाम नहीं होतीं, जैसा पियाजे ने सुझाया, बल्कि वे आंशिक रूप से दृष्टिकोण निर्माण में हुई प्रगति से उत्पन्न होती हैं, जिसके कारण युवा लोगों को इसकी ज्यादा फ़िक्र होती है कि दूसरे क्या सोचते हैं। इसके अतिरिक्त, जब किशोरों से पूछा गया कि वे दूसरों की राय की चिन्ता क्यों करते हैं, तो उनका उत्तर था कि वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि दूसरों के मूल्यांकनों के महत्वपूर्ण वास्तविक परिणाम होते हैं–निज की गरिमा के लिए, साथियों द्वारा स्वीकारे जाने और सामाजिक समर्थन के लिए। अंत में, किशोरों की इस धारणा से चिपके रहने के, कि दूसरों को उनके व्यक्तित्व और व्यवहार की फिक्र है, भावनात्मक कारण भी होते हैं। ऐसा करने से उन्हें उस दौर में महत्वपूर्ण संबंध बनाये रखने में मदद मिलती है, जब वे माता–पिता से अलग होने और निज के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने की जद्दोजहद में लगे होते हैं।

आदर्शवाद और आलोचना (Idealism and Criticism)

चूंकि अमूर्त विचार किशोरों को यथार्थ (real जो है) से आगे जाकर जो संभव हो सकता है उसके बारे में सोचने की सुविधा देता है, इसलिए आदर्श और परिपूर्णता (ideal and perfection) के जगत के द्वार उनके लिए खुल जाते हैं। फिर किशोर, वैकल्पिक परिवार, धार्मिक, राजनैतिक और नैतिक व्यवस्थाओं की कल्पना कर सकते हैं और उन्हें परखना चाहते हैं। परिणामस्वरूप, वे एक ऐसे आदर्श संसार की भव्य कल्पनायें करते हैं, जिसमें कोई अन्याय, भेदभाव या अशोभन व्यवहार नहीं होगा। किशोरों के आदर्शवादी दृष्टिकोण और वयस्कों के अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण का अंतर माता–पिता और बच्चे के बीच तनाव पैदा करता है। किशोरों की एक आदर्श परिवार की कल्पना, जिसकी तुलना में उनके माता–पिता और भाई, बहिन दोषपूर्ण लगते हैं, उनको मीनमेख निकालने वाला आलोचक बना देती है।

पर कुल मिलाकर किशोरों का आदर्शवाद और आलोचना लाभकारी है। एक बार जब किशोर यह देखने लगते हैं कि दूसरे व्यक्तियों में क्षमताएं और कमजोरियाँ दोनों होती हैं, तो उनमें सामाजिक परिवर्तन के लिए रचनात्मक ढंग से काम करने और स्वस्थ तथा टिकाऊ संबंध बनाने की ज्यादा काबिलियत आ जाती है।

निर्णय करना (Decision making)

यद्यपि अपने बचपन की तुलना में किशोर अनेक संज्ञानात्मक कार्य अधिक प्रभावी ढंग से करते हैं, परंतु जब रोज़मर्रा के जीवन में निर्णय लेने की बात आती है तो वे अक्सर ऐसी तार्किक प्रक्रिया का उपयोग नहीं करते, जैसे कि (1) हर विकल्प के अच्छे और बुरे पहलुओं की पहचान करना, (2) विभिन्न संभावित परिणामों के होने की संभावना को आंकना, (3) अपने चुने हुए विकल्प का इस दृष्टि से मूल्यांकन करना कि क्या उससे उनके लक्ष्यों की पूर्ति हुई, यदि नहीं हुई तो, (4) गलती से सबक लेना और भविष्य में बेहतर निर्णय करना। निर्णय करने का अध्ययन करने के लिए, शोधकर्ताओं ने किशोरों के सामने काल्पनिक दुविधापूर्ण समस्यायें रखीं–जैसे कि वह रूप

शल्य चिकित्सा (cosmetic surgery) करवाता या नहीं या कि तलाक के बाद माता के साथ रहता या पिता के साथ और उनसे यह समझाने को कहा कि वे कैसे निर्णय करेंगे। वयस्कों ने निर्णय करने के विभिन्न पहलुओं पर किशोरों से, खासकर कम उम्र के किशोरों से ऐसी समस्याओं में बेहतर प्रदर्शन किया। वयस्कों ने ज्यादा करके विकल्पों पर विचार करके उनके फायदों और जोखिमों को तौला तथा किसी से परामर्श लेने का सुझाव दिया। दूसरे प्रमाण दर्शाते हैं कि वयस्कों की तुलना में किशोरों में परिणामों से सबक लेने और अपनी निर्णय प्रक्रिया में संशोधन करने की संभावना कम होती है। किशोरों को निर्णय करने में कठिनाई क्यों होती है? ''शुरूआती'' निर्णयकर्त्ता होने के कारण उनके पास अनेक अनुभवों के पक्ष–विपक्ष पर विचार करने और इसका अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। इसके साथ ही, उनका सामना अनेक ऐसी जटिल परिस्थितियों से होता है जिनमें परस्पर विरोधी लक्ष्य होते हैं जैसे कि किसी पार्टी में मदहोश होने से बचना और साथ ही हम उम्र साथियों की नज़रों में अपनी स्थिति बनाये रखना। इसके अलावा, किशोर/किशोरियां अक्सर अपने विकल्पों के फैलते हुए दायरे से–स्कूल के नाना प्रकार के पाठ्यक्रम, पढ़ाई के अतिरिक्त गतिविधियां, सामाजिक, आयोजन और चुनाव करने के लिए विविध प्रकार की भौतिक वस्तुएं–दिग्भ्रमित सा अनुभव करते हैं। इसके फलस्वरूप चुनाव करने के उनके प्रयास अक्सर विफल हो जाते हैं और वे इसके लिए या तो आदत का सहारा लेते हैं या क्षणिक आवेग में कोई कदम उठाते हैं, या फिर निर्णय करना स्थगित कर देते हैं। मस्तिष्क में उत्तेजित करने वाले तंत्रिका संप्रेषणकों (excitable neuro transmitters) के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया किशोरों की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का कारण बनती है। भावनाओं का प्रबल आवेग अच्छे से निर्णय लेने में बाधक होता है। समय के साथ युवा लोग अपनी सफलताओं और विफलताओं से सीखते हैं, दूसरों से उन कारकों के बारे में जानकारी इकट्ठी करते हैं जो निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं और निर्णय लेने की प्रक्रिया पर मनन करते हैं। परिणामस्वरूप उनके आत्म विश्वास में और निर्णय लेने के उनके प्रदर्शन में सुधार हो जाता है।

कुछ प्रश्न

- किशोरों के अपने खुद के विचारों के बारे में सोचने की क्षमता के बढ़ने के कारण उनके व्यवहार में कौन सी विशेषताएं प्रकट होने लगती हैं?
- अपराधिक प्रवृत्तियां या कुछ अलग कर दिखाने की मानसिक स्थिति किस उम्र में अधिक दिखाई देती है और क्यों?

औपचारिक संक्रियात्मक सोच पर आगे का शोध (follow up research on formal operational thought)

औपचारिक संक्रियात्मक सोच पर हुआ शोध भी वैसे ही प्रश्न उठाता है, जैसे वे प्रश्न जिन पर हमने पियाजे की पहले की अवस्थाओं के संबंध में चर्चा की थी। क्या अमूर्त विचार पियाजे के अनुमान से पहले प्रगट हो जाता है और क्या सभी व्यक्ति अपनी किशोरावस्था में औपचारिक संक्रियाओं पर पहुँच जाते हैं?

क्या बच्चों में अमूर्त विचार की क्षमता होती है? स्कूल आयु के बच्चों में परिकाल्पनिक–निगमित तर्क की झलकें दिखाई देती हैं, पर वे उसमें किशोरों या वयस्कों जितने कुशल नहीं होते। उदाहरण के लिए, सहज सरल परिस्थितियों में 6 साल के बच्चे भी यह समझते हैं कि किसी भी परिकल्पना की उपयुक्त प्रमाण से पुष्टि किया जाना जरूरी है। वे यह भी जानते हैं कि एक बार किसी परिकल्पना का समर्थन मिल जाने के बाद वह, भविष्य में क्या हो सकता है, इसके अनुमान लगाने में काम आती हैं। परन्तु स्कूल आयु के बच्चे ऐसे सबूतों का निहित अर्थ नहीं निकाल पाते जिनका संबंध एक साथ तीन या अधिक चर राशियों (variable) से होता है और आगे जब हम वैज्ञानिक विचार प्रक्रिया में जानकारी का उपयोग करने पर हो रहे शोध की चर्चा करेंगे, तब हम देखेंगे कि प्रेक्षणों की किसी श्रृंखला और किसी परिकल्पना के पारस्परिक संबंध को पहचान लेने के बाद भी बच्चे यह समझाने में कठिनाई महसूस करते हैं कि क्यों वे प्रेक्षण उस परिकल्पना का समर्थन करते हैं।

स्कूल आयु के बच्चों की प्रस्थापनात्मक सोच की क्षमता भी सीमित होती हैं। उदाहरण के लिए, उन्हें ऐसी मान्यताओं (premises) के आधार पर तर्क करने में कठिनाई होती है, जो यथार्थ का या उनके विश्वासों का खंडन करती हैं। निम्न वक्तव्यों पर विचार करेंः ''यदि कुत्ते हाथियों से बड़े हैं और हाथी चूहों से बड़े हैं, तो कुत्ते चूहों से बड़े हैं।'' 10 वर्ष से कम आयु के बच्चे इस तर्क को झूठ मानते हैं, क्योंकि इसके कुछ संबंध वास्तविक जीवन में नहीं पाये जाते। इस समस्या पर विचार करते समय, वे अपने आप अपनी दीर्घ स्मृति में से भली–भांति सीखे गये ज्ञान को निकाल लाते हैं– उदाहरण के लिए, ''हाथी कुत्तों से बड़े होते हैं'' जो तर्क की मान्यताओं की सच्चाई के बारे में संदेह पैदा करता है। वयस्कों की तुलना में बच्चों को ऐसे पक्के ज्ञान को नजर अंदाज करना कठिन लगता है। आंशिक रूप से यही कारण है कि वे प्रस्थापनात्मक विचार की इस तार्किक अनिवार्यता को समझने में अक्सर विफल रहते हैं, कि आधार–मान्यताओं से निकाली गई निष्पत्तियों की सत्यता तर्कशास्त्र के नियमों पर निर्भर करती है, ना कि वास्तविक संसार में उनकी पुष्टि पर।

इसके अलावा प्रस्थापनाओं के साथ विचार करने में, स्कूल आयु के बच्चे प्रमुख मान्यता के बारे में सावधानीपूर्वक नहीं सोचते इसलिए वे तर्क शास्त्र के सबसे आधारभूत नियमों का उल्लंघन कर देते हैं। उदाहरण के लिए जब उन्हें निम्नलिखित समस्या दी जाती है, तो वे लगभग हमेशा ही गलत निष्कर्ष निकालते हैं...

प्रमुख मान्यता : यदि शीला तम्बूरे पर चोट करती है, तो वह (शीला) आवाज करती है।

दूसरी मान्यता : मान लो कि शीला तम्बूरे पर चोट नहीं करती।

प्रश्न : क्या शीला ने आवाज की?

गलत निष्कर्ष : नहीं, शीला ने आवाज नहीं की।

इस पर ध्यान दें कि प्रमुख मान्यता ने यह नहीं कहा कि शीला केवल तभी आवाज कर सकती है, जब वह तम्बूरे पर चोट करती है। किशोर सामान्यतया यह बात पकड़ लेते हैं कि शीला दूसरे तरीकों से भी आवाज कर सकती हैं। इसका आंशिक कारण यह है कि वे अपनी जानकारी में ऐसे उदाहरणों को खोज पाने में ज्यादा कुशल होते हैं जो गलत निष्कर्षों का खण्डन करते हैं। जैसा पियाजे का सिद्धांत दर्शाता है, 11 वर्ष की उम्र के आसपास, बच्चे प्रस्थापनाओं के तर्क का विश्लेषण कर सकते हैं, चाहे उनमें जो भी कहा गया हो। जैसे–जैसे वे बड़े होते हैं, वे और अधिक जटिल निष्पत्तियों वाली समस्याओं से निपटते हैं। अपनी तर्क प्रक्रिया को वैध दिखाने के लिए, वे एक स्थूल उदाहरण (''वह तम्बूरे के बजाय तबले पर भी चोट कर सकती थी'') से आगे बढ़कर तार्किक नियम का उल्लेख करने लगते हैं (''हम इस बारे में निश्चित हैं कि शीला ने तम्बूरे पर चोट नहीं की पर हम पक्के तौर पर यह नहीं कह सकते कि शीला ने कोई आवाज नहीं की, वह और भी कई तरीकों से आवाज कर सकती थी'')।

क्या सभी व्यक्ति औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था तक पहुंचते हैं?

अपने मित्रों को पीछे बताये गये एक या दो औपचारिक संक्रियात्मक कार्य देकर देखें कि वे कैसा करते हैं। संभावना यह है कि आप पायेंगे कि खासे पढ़े–लिखे वयस्कों को भी इनमें कठिनाई होती हैं। लगभग 40 से 60 प्रतिशत कालेज के विद्यार्थी पियाजे की औपचारिक संक्रियात्मक समस्याओं को हल करने में विफल रहते हैं।

इतने अधिक कालेज के विद्यार्थी और आमतौर पर वयस्क, क्यों पूरी तरह औपचारिक संक्रियाओं में सक्षम नहीं होते? एक कारण यह है कि लोगों के उन्हीं परिस्थितियों में अमूर्त ढंग से विचार करने की सबसे ज्यादा संभावना है, जिनका उन्हें खूब अनुभव हो चुका है। इस निष्कर्ष के समर्थन में यह प्रमाण मिलता है कि कालेज की पढ़ाई से पाठ्य–सामग्री से संबंधित औपचारिक विचार करने में सुधार होता है। उदाहरण के लिए, गणित और विज्ञान से प्रस्थापनात्मक सोच में लाभ होता है और सामाजिक अध्ययन से प्रक्रियात्मक तथा सांख्यिकी संबंधी विचार करने में सुधार होता है। इन प्राप्त जानकारियों पर विचार करने पर आप पायेंगे कि पहले आये

मूर्त विचार की ही तरह, औपचारिक संक्रियायें भी अक्सर परिस्थिति और दिए गये कार्य के अनुसार होती हैं। किशोरों और वयस्कों के औपचारिक संक्रियात्मक ढंग से विचार ना करने का एक कारण है, उनका दिमागी मेहनत से बचते हुए अन्तःप्रेरणा से फैसले करना। एक अध्ययन में शोधकर्ताओं ने किशोरों को एक काल्पनिक समस्या दी जिसमें उन्हें दो तर्कों के आधार पर दो विकल्पों—पारंपरिक व्याख्यान आधारित कक्षा या कम्प्यूटर आधारित कक्षा में से चुनाव करना था। एक तर्क एक बड़े नमूने पर आधारित जानकारी के रूप में था। 150 विद्यार्थियों द्वारा किया गया पाठ्यक्रम—मूल्यांकन, जिसमें 85 विद्यार्थियों ने कम्प्यूटर आधारित कक्षा को पसन्द किया था। दूसरा तर्क एक छोटे नमूने की व्यक्तिगत गवाही के रूप में था, जिसमें प्रतिभा के लिए सम्मानित दो विद्यार्थियों की शिकायतें थीं, जिन्हें कम्प्यूटर कक्षा से चिढ़ थी और पारंपरिक कक्षा में मजा आता था। अनेक किशोरों ने यह स्वीकार किया कि बड़े नमूने वाले तर्क पर भरोसा करना ''अधिक बुद्धिमानी'' का काम था। लेकिन इस तार्किक समझ के बावजूद, अधिकांश ने अपना चुनाव छोटे नमूने वाले तर्क के आधार पर किया, यह सोचते हुए कि ''देखने का अनुभव ही विश्वास का आधार हो सकता है'' जैसा कि वे रोजमर्रा के जीवन में करते हैं। बहुत से जनजातीय और ग्रामीण समाजों में, औपचारिक संक्रियाओं वाले कार्यों में दक्षता हासिल करने पर कतई ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए जब अनपढ़ समाजों के लोगों से प्रस्थापनात्मक विचार करने के लिए कहा जाता है तो वे मना कर देते हैं। जरा इस काल्पनिक प्रस्थापना को लें : ''उत्तर में, जहाँ बर्फ है, सभी भालू सफेद हैं। नो वाया जेम्लया उत्तर में है, और वहाँ हमेशा बर्फ रहती है। वहां के भालू किस रंग के हैं ?'' इसके उत्तर में मध्य एशिया के एक कृषक ने समझाते हुए कहा कि इसके तार्किक अभिप्राय को समझने के लिए पहले उसे घटना को देखना होगा। कृषक का आग्रह खुद के अनुभव पर है, जबकि साक्षात्कार लेने वाले का कहना है कि सत्य केवल विचारों पर ही आधारित हो सकता है। लेकिन फिर भी कृषक अपने दृष्टिकोण के बचाव में प्रस्थापनाओं का इस्तेमाल करता है : ''यदि किसी आदमी ने सफेद भालू देखा होता और उसके बारे में बताया होता, तो उसका विश्वास किया जा सकता था, लेकिन मैंने कभी कोई (सफेद भालू) नहीं देखा इसलिए मैं कुछ नहीं कह सकता।'' स्पष्ट है कि कृषक में औपचारिक संक्रियात्मक विचार करने की क्षमता तो है, यद्यपि वह उसे रोज़मर्रा के जीवन में शायद ही कभी प्रदर्शित करता हो।

पियाजे यह स्वीकार करता था कि काल्पनिक समस्याओं को हल करने के अवसर के बिना, कुछ समाजों के लोग शायद औपचारिक संक्रियायें ना दर्शायें। फिर भी, शोधकर्ता पूछते हैं कि क्या औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था अधिकांश रूप से बच्चों और किशोरों के अपने संसार का अर्थ समझने के स्वतंत्र प्रयासों का परिणाम होती है? या कि यह सांस्कृतिक रूप से सम्प्रेषित सोचने का तरीका होती है जो पढ़े लिखे समाजों की विशेषता है और जिसे स्कूल में सिखाया जाता है? यह प्रश्न अभी सुलझा नहीं हैं।

पियाजे और शिक्षा (Piaget and education)

पियाजे का शिक्षा पर, विशेष रूप से प्रारंभिक और मध्य बचपन के दौरान शिक्षा पर, बहुत प्रभाव पड़ा है। उसकी मीमांसा (theory) से निकले तीन सिद्धांतों का आज भी शिक्षकों के प्रशिक्षण पर और कक्षा के भीतर अपनाये जाने वाले तौर तरीकों पर व्यापक असर होता है। खोज पद्धति से सीखना (discovery learning) पियाजे का अनुसरण करने वाली कक्षा में बच्चों को परिवेश के साथ स्वतः स्फूर्त/सहज रूप से क्रिया करते हुए चीज़ों को खुद से खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। पहले से तैयार ज्ञान को शाब्दिक रूप से प्रस्तुत करने के बजाय, शिक्षक ऐसी विविध गतिविधियों की सुविधा प्रदान करते हैं जो खोजने को बढ़ावा देती हैं— जैसे कला, पहेलियाँ, मेज वाले खेल, विभिन्न परिधान, चीजें बनाने वाले गुट्टे (building blocks) किताबें, नापने के औजार, संगीत, वाद्य तथा और भी बहुत कुछ।

बच्चों की सीखने की तत्परता के प्रति संवेदनशीलता (sensitivity to children's readiness to learn) पियाजे वाली कक्षा विकास की गति को बढ़ाने की कोशिश नहीं करती। पियाजे मानता था कि बच्चों के सीखने के

उपयुक्त अनुभव उनकी तात्कालिक सोच से ही विकसित होते हैं। शिक्षक बच्चों को ध्यानपूर्वक देखते हैं, उनकी बातें सुनते हैं, और उन्हें ऐसे अनुभव सुलभ कराते हैं, जिनमें वे नई खोजी गई योजनाओं का अभ्यास कर सकें और जो उनके संसार को देखने के गलत तरीकों को चुनौती दे सकें। लेकिन शिक्षक बच्चों पर कोई नये कौशल नहीं थोपते जब तक वे उनमें रूचि और उनके लिए तैयारी नहीं दिखाते, क्योंकि ऐसा करने से वे वयस्कों के सूत्रों (formulas) को सतही ढंग से स्वीकार कर लेते हैं, पर उससे सच्ची समझ पैदा नहीं होती।

व्यक्तिगत भेदों को स्वीकारना (Acceptance of individual differences)

पियाजे का सिद्धांत यह मानकर चलता है कि सभी बच्चे विकास के समान अनुक्रम से गुजरते हैं, लेकिन उनकी गति/रफ्तार अलग–अलग होती है। इसलिए शिक्षकों को अलग–अलग विद्यार्थियों के लिए और छोटे–छोटे समूहों के लिए गतिविधियों की योजना बनाना चाहिए, ना कि एक साथ पूरी कक्षा के लिए। इसके अतिरिक्त शिक्षक शैक्षणिक प्रगति का मूल्यांकन करते समय हर बच्चे की तुलना उसी की पिछली स्थिति से करते हैं। उनकी रूचि इस बात में कम होती है कि बच्चे किन्हीं मानक स्तरों के सापेक्ष या कि हमउम्र बच्चों के औसत प्रदर्शन के सापेक्ष कैसा प्रदर्शन करते हैं।

कुछ प्रश्न

5. आपके स्कूल और पियाजे के सिद्धांतों पर संचालित स्कूल में क्या अन्तर या समानताएं है, तालिका में दिखाइए–

पियाजे के अनुरूप कक्षा	आपकी कक्षा
1. पहले से तैयार शाब्दिक ज्ञान को पेश नहीं करती।	
2. कला, पहेलियां, गुट्टे, ताप के औजार, वाद्य यंत्र, रंग आदि से खोज करने की सुविधा देती है।	
3. शिक्षक बच्चों पर तब तक कोई नए कौशल नहीं थोपते जब तक बच्चा उनमे रूचि व तैयारी न दिखाए।	
4. अलग–अलग विद्यार्थियों के लिए और छोटे समूहों के लिए योजनाएं, बना कर काम होता है।	
5. यह बच्चे की प्रगति की तुलना उसी की पिछली स्थिति से की जाती है।	
6. छात्रों की उपलब्धि की एक दूसरे से तुलना नहीं की जाती।	
7. राज्य, देश, विश्व जैसे मानक स्तरों से बच्चों की उपलब्धि की तुलना नहीं की जाती।	
8. शिक्षक, बच्चों को काम करते हुए व खेलते हुए ध्यान से देखते हैं और समझते हैं।	
9. शिक्षक बच्चों की बातों को ध्यान से सुनते और समझते हैं।	

औपचारिक संक्रियात्मक विचारकों के साथ काम करने के लिए शिक्षकों को सुझाव/शिक्षण की रणनीतियाँ (Teaching strategies for working with formal operation thinkers) class 6 to 12

1. इस बात को समझें कि अनेक किशोर पूर्ण रूप से विकसित औपचारिक संक्रियात्मक विचारक नहीं होते। यद्यपि पियाजे का विश्वास था कि औपचारिक संक्रियात्मक विचार 11 से 15 साल की उम्र के दौरान प्रकट होता है, परन्तु इस आयु वर्ग के कई छात्र वास्तव में मूर्त संक्रियात्मक विचारक होते हैं या औपचारिक संक्रियात्मक विचार की शुरूआत भर कर रहे होते हैं। इसलिए पहले मूर्त संक्रियात्मक विचारकों की शिक्षा के संबंध में, जिन शिक्षण रणनीतियों की चर्चा की गई, उनमें से कई अभी भी अनेक शुरूआती किशोरों पर लागू होती हैं। ऐसा पाठ्यक्रम जो जरूरत से ज्यादा औपचारिक और अमूर्त है, उनके सिर के ऊपर से निकल जायेगा।

2. कोई समस्या सामने रखें और विद्यार्थिओं को उसे हल करने को परिकल्पनाएं गढ़ने के लिए प्रेरित करें। उदाहरण के लिए, शिक्षक कह सकता है, ''कल्पना करो कि किसी लड़की का कोई मित्र नहीं है। उसे क्या करना चाहिए?''

3. कोई समस्या पेश करें, और उसे देखने के/उसका समाधान खोजने के कई तरीके सुझायें। फिर ऐसे प्रश्न पूछें जो विद्यार्थियों को उन तरीकों का मूल्यांकन करने को प्रेरित करें। उदाहरण के लिए किसी लूट की वारदात की जांच पड़ताल करने के कई तरीकों का वर्णन करें, और फिर विद्यार्थियों से मूल्यांकन करने को कहें कि कौन सा तरीका सबसे अच्छा है।

4. कोई खास समस्या चुनें, जिससे कक्षा परिचित हो और उससे संबंधित सवाल पूछें। उदाहरण के लिए शिक्षक पूछ सकता है,'' यदि हमें अर्थव्यवस्था को वापस पटरी पर लाने में समर्थ होना है, तो इसके लिए कौन से कारकों/पहलुओं पर विचार करना चाहिए?''

5. विद्यार्थियों से उनके निष्कर्षों की पूर्व प्रक्रिया की चर्चा करने को कहें। उदाहरण के लिए, पूछें,''इस समस्या को हल करने में तुम किन चरणों से गुजरे?''

6. विद्यार्थियों के द्वारा कार्यान्वित करने के लिए प्रायोजनाएं और खोजकार्य विकसित करें। उनसे समय–समय पर पूछें कि वे आंकड़े इकट्ठे करने और उनकी व्याख्या करने के काम किस तरह कर रहे हैं।

7. जब आप विद्यार्थियों से लेख आदि लिखने को कहें तो उन्हें ऊपर–नीचे के क्रमवाली रूप रेखाएं बनाने के लिए प्रोत्साहित करें। यह सुनिश्चित करें कि उन्हें इसकी समझ हो कि कैसे वे व्यापक विषय–बिन्दुओं और विशेष विषय–बिन्दुओं को बांटकर अपने लेखन को व्यवस्थित कर सकते हैं। औपचारिक संक्रियात्मक सोच की (अमूर्तता)/सूक्ष्मता का यह अर्थ भी है कि शिक्षक इस स्तर के विद्यार्थियों को रूपकों (metaphors) का प्रयोग करने को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

8. इस तथ्य को पहचानें कि किशोरों/किशोरियों के द्वारा औपचारिक संक्रियात्मक सोच का उपयोग उन्हीं क्षेत्रों में किये जाने की संभावना अधिक है जिनका उन्हें सबसे अधिक अनुभव और विशेष ज्ञान है। उदाहरण के लिए, कोई विद्यार्थी जिसे अंग्रेजी प्रिय है और जो बहुत पढ़ता–लिखता है, उस क्षेत्र में औपचारिक संक्रियात्मक सोच का प्रयोग कर सकता है। हो सकता है कि उसी विद्यार्थी को गणित पसन्द नहीं हो और हो सकता है कि उस क्षेत्र में वह मूर्त संक्रियात्मक सोच दर्शाए।

कुछ प्रश्न

• आपके आस पास की 6वीं से 10वीं कक्षाओं में क्या उपरोक्त सुझावों के अनुरूप काम होना चाहिए, अथवा होता है ..... समीक्षा करें।

पियाजे की अवस्थाओं की ही तरह, उसके सिद्धान्त के शिक्षा में उपयोगों की भी आलोचना हुई। शायद सबसे बड़ी चुनौती उसके इस आग्रह को, कि बच्चे मुख्य रूप से परिवेश के साथ क्रिया करके सीखते हैं, और सीखने के दूसरे रास्तों, जैसे कि शाब्दिक शिक्षण और सुधारात्मक प्रतिक्रियाओं के प्रति उसकी उपेक्षा मिली है। पर इस सबके बावजूद शिक्षा पर पियाजे का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। उसने शिक्षकों को निरीक्षण करने, समझने, और छोटे बच्चों के विकास को समृद्ध बनाने के नये तरीके दिये और सिखाने तथा सीखने के बच्चों के प्रति बाल–उन्मुख दृष्टिकोणों के लिए मजबूत सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत किये।

पियाजे के सिद्धांत का समग्र मूल्यांकन (Overall evaluation of Piaget's theory)

बच्चों के विकास के क्षेत्र में पियाजे का योगदान किसी भी दूसरे सिद्धान्तकार से अधिक है। उसने मनोवैज्ञानिकों और शिक्षा प्रदान करने वालों में यह बोध जगाया कि वे बच्चों को ज्ञान के ऐसे जिज्ञासु खोजियों की तरह देखें, जो अपने विकास में खुद सक्रिय योगदान देते हैं। विकास का वर्णन करने और व्याख्या करने वालों में वह पहले लोगों में से था। उसके पथ–प्रवर्तनकारी प्रयासों से प्रेरित होकर ही संज्ञानात्मक परिवर्तन की प्रक्रियाओं (mechanisms of cognitive change). शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और परिवेश संबंधी उन कारकों का ठीक–ठीक विवरण जिनके फलस्वरूप बच्चे अपनी सोच को संशोधित करते हैं– को आजकल प्रमुख महत्व दिया जाता है और अंत में, पियाजे की मीमांसा संज्ञानात्मक विकास के मार्ग का एक उपयोगी नक्शा (road-map) पेश करती है–ऐसा नक्शा जो कई दृष्टियों से सही है, पर अन्य से गलत है। पूर्वसंक्रियात्मक, मूर्त संक्रियात्मक, तथा औपचारिक संक्रियात्मक विचार के रूप में स्थापित किये गये उसके मील के पत्थर आज भी भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास को समझने में बहुत सहायक हैं। पर फिर भी, पियाजे की मीमांसा से प्रेरित होकर शोध का जो भण्डार बना उसने उसके सिद्धान्त की कमियाँ उजागर की हैं। यहां हम उसके आलोचकों द्वारा पेश दो प्रमुख चुनौतियों पर विचार करेंगे।

क्या संज्ञानात्मक परिवर्तन का पियाजे का विवरण स्पष्ट और सही है ? (Is Piaget's account of cognitive change clear and accurate)

एक क्षण के लिए संज्ञानात्मक परिवर्तन की पियाजे की व्याख्या के बारे में सोचें– खास कर समसंतुलनीकरण (equilibration) और उसके साथ चलने वाली प्रक्रियाओं, अनुकूलन (adaptation) तथा व्यवस्थापन (organization) के बारे में सोचें। चूंकि पियाजे ने विचार के स्तर पर हो रहे समग्र/व्यापक रूपान्तरण पर ध्यान केंद्रित रखा, इसलिये यह साफ नहीं होता कि बच्चा सम संतुलनीकरण करने के लिए ठीक–ठीक क्या करता है। उदाहरण के तौर पर, व्यवस्थापन के हमारे विवरण को स्मरण करें कि हर अवस्था की संरचनाएं जुड़कर एक सुसंबद्ध इकाई बनाती हैं। पर पियाजे ने यह बहुत साफ नहीं किया कि किसी अवस्था की विविध उपलब्धियाँ किस प्रकार अंतर्निहित विचार के एक ही सूत्र से बंधी हुई हैं। सच तो यह है, कि इस सुसंबद्धता (coherence) की पुष्टि करने के प्रयास सफल नहीं हुए हैं। विभिन्न प्रकार के कुछ कामों में, शिशु और छोटे बच्चे उससे अधिक सक्षम दिखाई देते हैं, और किशोर तथा वयस्क उससे कम सक्षम दिखते हैं, जितना पियाजे उन्हें मानता था। आज शोधकर्ता यह मानते हैं कि समावेशीकरण (assimilate), समायोजन (accomodate) और संरचनाओं के पुनर्गठन करने के बच्चों के प्रयास पूरी तरह से इन परिवर्तनों को नहीं समझा सकते।

इसके अलावा पियाजे का यह विश्वास कि शिशुओं और छोटे बच्चों को अपनी सोच में संशोधन करने के लिए परिवेश पर क्रिया करना चाहिए, यह समझाने की बहुत संकरी धारणा है कि वास्तव में सीखने की प्रक्रिया कैसे होती है। संज्ञानात्मक विकास हमेशा स्व उत्पादक/ खुद को पैदा करने वाला (self generating) नहीं होता। यदि बच्चों को मुक्त, उन्हीं की तरकीबों के भरोसे छोड़ दिया जाये, तो हो सकता है कि वे परिस्थिति के उन पहलुओं पर ध्यान नहीं दें, जो बेहतर समझ के लिए जरूरी हैं। चूंकि पियाजे का सिद्धान्त बच्चों के खुद के प्रयासों

पर इतना अधिक ज़ोर देता है, इसलिए बच्चों के समुचित विकास को बढ़ावा देने वाले शैक्षणिक उपाय खोजने में उसकी व्यावहारिक उपयोगिता सीमित ही रही है।

क्या संज्ञानात्मक विकास चरणों में/अवस्थाओं में होता है? (Does cognitive development take place in stages)

हमने देखा है कि अनेक संज्ञानात्मक परिवर्तन धीमी गति से सतत् रूप से थोड़ा–थोड़ा करके होते रहते हैं। शायद ही कोई क्षमताएं ऐसी हों जो एक अवस्था में बिलकुल नदारद हों और अचानक दूसरी अवस्था में प्रकट हो जायें। साथ ही संज्ञानात्मक संतुलन के कोई अंतराल भी लगभग नहीं होते। इसके बजाय बच्चे निरंतर संरचनाओं को संशोधित करते रहते हैं और नए कौशल हासिल करते रहते हैं। आज प्रायः सभी विशेषज्ञ मानते हैं कि बच्चों की संज्ञान क्षमता मोटे तौर पर वैसी अवस्थाओं वाली नहीं होती जैसी कि पियाजे मानता था। पर इसके साथ ही, आजकल के शोधकर्ता इस बात पर एकमत नहीं हैं कि संज्ञानात्मक विकास वास्तव में कितना व्यापक या कितना विशिष्ट होता है।

कुछ सिद्धान्तकार पियाजे के साथ सहमत हैं कि विकास एक सामान्य/व्यापक प्रक्रिया है और कि यह संज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों, भौतिक, संख्यात्मक और सामाजिक ज्ञान में समान ढंग से चलती है। लेकिन वे अवस्थाओं के अस्तित्व से इनकार करते हैं। इसके बजाय वे मानते हैं कि सभी उम्रों में विचार प्रक्रियाएं एक जैसी होती हैं–बस वे कम या ज्यादा अंशों में उपस्थित होती हैं और विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों के असमान प्रदर्शन का बड़ा कारण उनके ज्ञान और अनुभव में विविधता और अंतर होते हैं। ये मान्यताएं जानकारी के संपादन के दृष्टिकोणों की आगे आनेवाली चर्चा का आधार हैं।

अन्य शोधकर्ताओं का विचार है कि अवस्थाओं की धारणा उचित है पर उसे संशोधित किया जाना चाहिए। वे अवस्थाओं जैसे कुछ परिवर्तनों के पक्ष में मजबूत प्रमाणों की ओर ध्यान दिलाते हैं, जैसे कि 2 साल की उम्र के आस–पास संकेतीकरण (representation) का विकसित होना और किशोरावस्था में अमूर्त विचार की ओर गति होना। पर वे यह स्वीकार करते हैं कि विकास के अनेक छोटे चरण इन रूपान्तरणों तक ले जाते हैं। आगे हम नव पियाजेवाद के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे जो पियाजे के अवस्था वाले दृष्टिकोण को जानकारी संपादन करने (information-processing) के विचारों से जोड़ता है। अतः पियाजे की अवस्थाओं की सख्त परिभाषाओं को संशोधित करके एक ऐसी लचीली अवधारणा बनाने की जरूरत हैं जिसमें एक दूसरे से संबद्ध क्षमताएं, मस्तिष्क के विकास और व्यक्ति के विशिष्ट अनुभवों के आधार पर, एक फैले हुए लंबे अंतराल में विकसित होती हैं।

कुछ अन्य चिन्तक ना केवल पियाजे की अवस्थाओं को, बल्कि उसकी इस धारणा को भी नकारते हैं कि मनुष्य का दिमाग व्यापक तार्किक क्षमताओं से बनता है जो किसी भी संज्ञानात्मक कार्य के लिए उपयोग की जा सकती हैं। उनका तर्क है कि शिशुओं और छोटे बच्चों की प्रभावशाली योग्यताएं यह संकेत करती हैं कि संज्ञानात्मक विकास की शुरूआत सिर्फ संवेदीक्रियात्मक प्रतिक्रियाओं से कहीं ज्यादा चीज़ों से होती है। बल्कि बच्चे कई प्रकार के बुनियादी अन्तर्निहित ज्ञान के साथ ही संसार में आते हैं, जिनमें से हरेक संज्ञान के महत्वपूर्ण पहलुओं को सक्रिय कर देता है। केंद्रीय ज्ञान के इस दृष्टिकोण की हम अगले खण्ड में चर्चा करेंगे ।

कुछ सिद्धान्तकार और शोधकर्त्ता पियाजे से किन–किन बातों में अलग मत रखते हैं ....

पियाजे की विरासत (Piaget's legacy)

यद्यपि, पियाजे का विकास का विवरण अब पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जाता, परन्तु उसे कैसे संशोधित किया जाये या बदला जाये इस पर शोधकर्ता एकमत होने से बहुत दूर हैं। कुछ ने पीछे चर्चित वैकल्पिक दृष्टिकोणों में सहमति के बिन्दु तलाशना शुरू कर दिया है। अन्य शोधकर्ता बच्चे के विकास के सक्रिय कारक

होने की धारणा पर पियाजे द्वारा दिये गये ज़ोर के साथ–साथ संदर्भ, बच्चों के जीवन में आने वाली वस्तुओं, घटनाओं और लोगों की भूमिका को भी अधिक महत्व देते हैं। उदाहरण के लिए वायगोत्सकी के सिद्धान्त को माननेवाले अब बच्चों की सोच पर पड़ने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों का जिनकी पियाजे ने ज्यादातर उपेक्षा की, गहन अध्ययन कर रहे हैं।

बच्चों के सोचने पर हो रहा शोध आज विभिन्न सिद्धान्तों और अनुसंधान की दिशाओं के कारण कई दशक पहले की तुलना में, जब पियाजे के सिद्धान्त की तूती बोलती थी, ज्यादा बँटा हुआ है। पर फिर भी, पियाजे की जीवनभर चली इस तलाश से कि बच्चे नई क्षमतायें कैसे हासिल करते हैं, आज भी शोधकर्ता प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं। उसकी खोजों ने संज्ञानात्मक विकास पर हो रहे शोध की हर प्रमुख वर्तमान धारा के लिए प्रारंभिक बिन्दु का काम किया है।

केन्द्रीय ज्ञान का दृष्टिकोण (The Core Knowledge Perspective)

केन्द्रीय ज्ञान के दृष्टिकोण के अनुसार, शिशु अपने जीवन की शुरूआत विशेष उद्देश्यों के लिए बनी जन्मजात ज्ञान व्यवस्थाओं से करते हैं, जिन्हें विचार के केन्द्रीय क्षेत्र (core domains of thought) कहा जाता है। ऐसी पहले से बनी बनाई प्रत्येक प्रकार की समझ उससे संबंधित नई जानकारी को ग्रहण करने की तैयारी व क्षमता प्रदान करती है और इस प्रकार संज्ञान के कुछ पहलुओं के प्रारंभिक, तेज विकास को सहारा देती है। केन्द्रीय ज्ञान के सिद्धान्तकारों का दावा है कि यदि शिशुओं की जीन संरचनाओं में उनके चारों ओर मौजूद बहु आयामी उत्प्रेरण (multifaceted stimulus) के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझने की बनी बनायी क्षमता नहीं होती तो वे उसे नहीं समझ पाते। हर केन्द्रीय क्षेत्र के विकास का लम्बा इतिहास है, और जीवनरक्षा के लिए हरेक क्षेत्र नितान्त आवश्यक होता है।

दो क्षेत्रों का शैशव के दौरान विस्तृत अध्ययन किया गया है। पहला है भौतिक ज्ञान–विशेष रूप से वस्तुओं और उनके एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों की समझ। दूसरा है संख्यात्मक ज्ञान एक से ज्यादा वस्तुओं का ध्यान रखने और छोटी–छोटी मात्राओं को जोड़ने–घटाने की क्षमता। भौतिक और संख्यात्मक ज्ञान ने ही हमारे पूर्वजों को पर्यावरण/परिवेश से भोजन और दूसरे संसाधन जुटाने के काबिल बनाया। केन्द्रीय ज्ञान का दृष्टिकोण अधिकारपूर्वक कहता है कि प्रकृति से मिली इस नींव के आधार पर ही प्रारंभिक बचपन की खासी विकसित ज्ञान व्यवस्थाएं संभव हो पाती हैं। आगे हम स्कूलपूर्व आयु के बच्चों की चकित करने वाली प्रतिभा को समझने के देशज (या जन्मजात) दृष्टिकोण की चर्चा करेंगे जो मानता है कि भाषायी ज्ञान (linguistic knowledge) (nativist or inborn) मनुष्य के मस्तिष्क की संरचना में ही अंकित है। इसके अलावा, लोगों की ओर शिशुओं का शुरूआती उन्मुख होना उनके मनोवैज्ञानिक ज्ञान (psychological knowledge) विशेषकर मानसिक स्थितियों को समझना जैसे कि भावनाएं, इच्छाएं, विश्वास और दृष्टिकोण, जो मानवीय समुदायों में जीवित रहने के लिए जरूरी हैं के शीघ्र विकास के लिए आधार प्रदान करता है।

कुछ प्रश्न

- केन्द्रीय ज्ञान के दृष्टिकोण में मनुष्य किन चीज़ों को समझने का केंद्रीय ज्ञान ले कर जन्म लेता है?
- पियाजे के मुख्य योगदान क्या थे?

क्या उसका सिद्धान्त समय की कसौटी पर खरा उतरा है?

सारांश –

विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental psychology) के क्षेत्र में पियाजे एक बड़ी हस्ती है। अनेक पांडित्यपूर्ण अवधारणाओं, जिनमें आज भी टिके रहने की ताकत और आकर्षण है–जैसे समायोजन/आत्मसातकरण (Assimilation), अनुकूलन वस्तु स्थायित्व (object permanence), आत्मकेंन्द्रीकरण (Egocentrism), संरक्षण (conservation), तथा परिकाल्पनिक–निगमित सोच (Hypothetico-deductive reasoning) के लिए हम पियाजे के ऋणी हैं। बच्चों के सक्रिय, रचनात्मक विचारक होने की वर्तमान दृष्टि के लिए भी हम, विलियम जेम्स तथा जॉन डुई के साथ–साथ, पियाजे के ऋणी हैं।

बच्चों का निरीक्षण करने की पियाजे में विलक्षण प्रतिभा थी। उसके सावधानीपूर्वक किये गये प्रेक्षणों ने हमें यह खोजने के सूझबूझ भरे तरीके दिखाये कि बच्चे कैसे अपने संसार के साथ क्रिया करते हैं और तालमेल बिठाते हैं। पियाजे ने हमें संज्ञानात्मक विकास में कुछ खास चीज़ें खोजना सिखाया, जैसे कि पूर्वसंक्रियात्मक सोच से मूर्त संक्रियात्मक सोच में होने वाला बदलाव। उसने हमें यह भी दिखाया कि कैसे बच्चों को अपने अनुभवों की संगत अपनी योजनाओं, (schemas/congnitive frameworks) संज्ञानात्मक ढांचों और साथ ही साथ अपनी योजनाओं की संगत अपने अनुभवों से बिठाने की जरूरत होती है। पियाजे ने यह भी दिखलाया कि कैसे, यदि परिवेश की संरचना ऐसी हो जिसमें एक स्तर से धीरे–धीरे दूसरे स्तर तक बढ़ने की सुविधा हो तो, संज्ञानात्मक विकास होने की संभावना रहती है और हम अब इस प्रचलित मान्यता के लिए भी उसके ऋणी हैं कि अवधारणाएं अचानक अपने पूरे स्वरूप में प्रकट नहीं हो जातीं, बल्कि वे ऐसी छोटी–छोटी आंशिक उपलब्धियों की श्रृंखला से होती हुई विकसित होती हैं जिनके परिणाम स्वरूप क्रमशः अधिक परिपूर्ण समझ पैदा होती है।

आलोचनायें

पियाजे का सिद्धान्त चुनौतियों से मुक्त नहीं रह पाया। उसके इन क्षेत्रों पर प्रश्न उठाये गये हैं :

- विभिन्न विकास स्तरों पर बच्चों की क्षमताओं के अनुमान
- अवस्थाएं
- उच्च स्तरों पर तर्क करने के लिए बच्चों का प्रशिक्षण
- संस्कृति एवं शिक्षा।

बच्चों की क्षमता के अनुमान (Estimates of children's competence)

कुछ संज्ञानात्मक क्षमताएं, पियाजे जैसा सोचता था, उससे जल्दी प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए, वस्तुओं के स्थायित्व (object permanence) के कुछ पहलू उसकी धारणा की अपेक्षा जल्दी दिखाई देने लगते हैं। दो साल के बच्चे भी कुछ संदर्भो में गैर– आत्मकेन्द्रित हो सकते हैं। जब उन्हें यह पता चलता है कि किसी दूसरे व्यक्ति को कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, तो वे इसकी जांच पड़ताल करते हैं कि क्या उस व्यक्ति की आंखों पर पट्टी बंधी है या वह दूसरी दिशा में देख रहा है। संख्याओं का संरक्षण भी काफी जल्दी, 3 साल की उम्र में भी, देखा गया है, हालांकि पियाजे को लगता था कि वह 7 साल की आयु तक प्रकट नहीं होता। सभी छोटे बच्चे समान रूप से ऐसे ''पूर्व'' यह या ''पूर्व'' वह पूर्वकारण (pre causal), पूर्व संक्रियात्मक (pre operational) नहीं होते जैसे कि पियाजे सोचता था। अन्य संज्ञानात्मक क्षमताएं, उससे देर में प्रकट हो सकती हैं, जितनी पियाजे की धारणा थी। अनेक किशोरों का या तो मूर्त संक्रियात्मक तरीकों से सोचना जारी रहता है, या वे औपचारिक संक्रियाओं पर अधिकार करने की शुरूआती अवस्था में होते हैं। यहाँ तक कि कई वयस्क व्यक्ति भी औपचारिक संक्रियात्मक विचारक नहीं होते। सारांश में, अनेक सैद्धान्तिक पुनर्निरीक्षणों ने शिशुओं और छोटे बच्चों की (पियाजे की सोच

से) अधिक संज्ञानात्मक क्षमताओं को तथा किशोरों और वयस्कों की अधिक संज्ञानात्मक कमियों को रेखाकिंत किया है।

• **अवस्थाएं (stages)** पियाजे ने अवस्थाओं की कल्पना विचार की एकल संरचनाओं (unitary structures of thought) की तरह की थी। अतः उसका सिद्धान्त विकास की समसामयिकता/विकास का एक साथ घटित होना (developmental synchrony) को मानकर चलता है– अर्थात् यह मानना कि किसी अवस्था के विभिन्न पहलू एक साथ प्रकट होना चाहिए। लेकिन कुछ मूर्त संक्रियात्मक अवधारणाएं समसामयिक ढंग से (एक साथ) प्रकट नहीं होतीं। उदाहरण के लिए बच्चे उसी समय संरक्षण करना नहीं सीखते जब वे वर्गीकरण करना सीखते हैं। अतः अधिकांश वर्तमान विकासवादी इस बात पर सहमत हैं कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास उस प्रकार से अवस्था नहीं होता जैसा पियाजे सोचता था।

• **उच्च स्तर पर तर्क/विचार करने के लिए बच्चों का प्रशिक्षण (training of children to reason at a higher level)** कुछ बच्चों को, जो एक संज्ञानात्मक अवस्था में हैं (जैसे कि पूर्व संक्रियात्मक) किसी दूसरी उससे ऊंची अवस्था (जैसे कि मूर्त संक्रियात्मक) के अनुरूप विचार/तर्क करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। पियाजे के लिए यह समस्या खड़ी करता है। उसने तर्क दिया कि यदि बच्चा परिपक्वता की दृष्टि से अवस्थाओं के बीच संक्रमण बिन्दु पर नहीं हो तो ऐसा प्रशिक्षण सिर्फ सतही और प्रभावहीन होता है।

• **संस्कृति एवं शिक्षा** बच्चों के विकास पर संस्कृति और शिक्षा के उससे अधिक शक्तिशाली प्रभाव पड़ते हैं जितने पियाजे मानता था। किस उम्र में बच्चे संरक्षण के कौशल हासिल करते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि उनकी संस्कृति किस सीमा तक उन कौशलों के अभ्यास का अवसर प्रदान करती है। गणित और विज्ञान की तर्क पद्धति की शिक्षा देने में समर्थ कोई असाधारण शिक्षक मूर्त और औपचारिक संक्रियात्मक विचार को बढ़ावा दे सकता है। फिर भी कुछ विकासात्मक मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि हमें पियाजे को एक सिरे से पूरा नहीं नकार देना चाहिए। ये नव–पियाजे वादी मानते है कि पियाजे की कुछ बातें ठीक थीं, परन्तु उसके सिद्धान्त की काफी पुनर्विवेचना किये जाने की आवश्यकता है। पियाजे के उनके द्वारा किये गये पुनर्विवेचन में इस पर ज्यादा जोर दिया जाता है कि बच्चे कैसे ध्यान, स्मृति और रणनीतियों के द्वारा जानकारी को संपादित करते हैं। व खासतौर पर मानते हैं कि बच्चों के विचार करने के बारे में ज्यादा सटीक दृष्टि के लिए रणनीतियों का अधिक ज्ञान होना जरूरी है, साथ ही यह कि वे कितनी तेज़ी से और किस हद तक बिना सोच विचार के अपने आप जानकारी को संपादित करते हैं, संबंधित विशेष संज्ञानात्मक कार्य की जानकारी और संज्ञानात्मक समस्याओं को छोटे नपे–तुले चरणों में बांटना–इन सबका भी अधिक ज्ञान होना चाहिए।

(iv) सीखने का रचनावादी नज़रिया

परिचय

मान लीजिए कि आपको अचानक अजनबियों के बीच रहने को भेज दिया जाता है। आप उनकी भाषा नहीं जानते। उनका पहनावा और आपसी व्यवहार आपको अटपटा लगता है। आप इस परिस्थिति से कैसे निपटेंगे? क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को खोजेंगे जो आपको बता दे कि आप क्या करें ? या, क्या आप इस दुनिया को ज्यादा नज़दीक से देखकर यह जानने की कोशिश करेंगे कि लोग एक–दूसरे से क्या इशारे करते हैं? शायद आप अलग–अलग व्यवहारों को, अलग–अलग वस्तुओं से अपना ही कुछ अर्थ जोड़ने की कोशिश करेंगे और इस दुनिया के बारे में, इसकी भाषा के बारे में, इसके तौर–तरीकों के बारे में एक समझ बनाने की कोशिश करेंगे। इस दुनिया और इसके लोगों के बारे में आप अपनी समझ का निर्माण करेंगे; सिर्फ एक बार नहीं, बल्कि निरन्तर ही। ज़ाहिर है, इस परिवेश के साथ आपके सम्पर्क के अनुसार यह समझ बदलती जाएगी। आपने सीखने के जिस तीसरे मॉडल के बारे में पढ़ा उसे मानने वालों के मुताबिक पैदाइश से बच्चे, ठीक इसी ढंग से सीखते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप

• सीखने–सिखाने के अपने अनुभवों से स्कीम, स्कीमा, सम्मिलन, समायोजन, विस्तार और स्कैफोल्डिंग (Scaffolding) के उदाहरण दे सकेंगे;

• यह समझा पाएंगे कि व्यवहार में रचनावाद का अर्थ क्या होता है;

• उदाहरण सहित यह बता पाएंगे कि परिवेश का इस बात पर क्या असर होता है कि बच्ची कैसे/क्या सीखेगी;

• बच्ची को सीखने में मदद देने के संदर्भ में एक निर्माणवादी शिक्षक की भूमिका स्पष्ट कर पाएंगे;

• उदाहरणों द्वारा बता सकेंगे कि कक्षा में किस तरह ऐसा माहौल बनाया जा सकता है जिसमें अनौपचारिक सीखना होता है।

रचनावाद क्या है?

पिछली इकाइयों में हमने एक झलक देखी थी कि बच्चे कैसे सीखते हैं। कई उदाहरणों के जरिए आपने जाना कि बच्ची को विभिन्न किस्म की कई गतिविधियों के माध्यम से किसी अवधारणा के अलग–अलग पहलू टटोलने की जरूरत होती है। ये गतिविधियां बच्ची के लिए दिलचस्प जरूर होनी चाहिए। इन गतिविधियों को करके तथा जो कुछ उसने सीखा उसके बारे में बातचीत करके वह किसी अवधारणा के बारे में अपनी समझ बनाती है। मोटे तौर पर, यही सीखने का रचनावादी नज़रिया है।

बच्चों के सीखने के तरीकों पर सबसे पहले अध्ययन करने वाले दो प्रमुख व्यक्ति थे स्विट्जरलैण्ड के ज्यां पियाजे (Jean Piaget) और रूस के एल. एस. वायगोत्स्की (L.S. Vygotsky)। उन्होंने बच्चों का अवलोकन करके परिकल्पना बनाई कि बच्चे कैसे सीखते हैं और परिकल्पना की जांच की । इस प्रक्रिया में उन्होंने रचनावाद के समूचे सिद्धांन्त की रचना की। यहां हम इसकी बारीकियों में तो नहीं जाएंगे ; हम तो सिर्फ यह देखना चाहते हैं कि एक शिक्षक होने के नाते हमारे लिए व्यवहार में रचनावाद का क्या अर्थ है। इसके लिए, आइए, पहले यह समझें कि कोई बच्ची अपने मन में किसी अवधारणा की तस्वीर कैसे बनाती है।

स्कीम (Scheme)

आपने जो कुछ पढ़ा और अपने अनुभवों से भी आप जानते हैं कि बच्ची ठोस अनुभवों से बारम्बार सम्पर्क के जरिए सीखती है। इसके अलावा, हर बच्ची का सीखने का अपना ही तरीका होता है – वह अपने अनुभवों को अपनी तरह से समझती है और इस समझ के आधार पर वह अपने मन में किसी अवधारणा की तस्वीर बनाती है। मसलन, मान लीजिए कि वह जोड़ना सीख रही है। अब हम उसके सामने कुछ चीजों की छोटी–छोटी ढेरियां रख देते हैं और उससे पूछते हैं कि इन सभी ढेरियों में कुल कितनी चीजें हैं तो वह सभी ढेरियों की चीजों को गिनकर जोड़ेगी। इसी–गतिविधि को हम अलग–अलग चीजों की ढेरियों के साथ दोहरा सकते हैं। इस तरह वह अपनी जोड़ की समझ बनाती है, और साथ–साथ उसकी गिनने की क्षमता का भी विकास होता जाता है। दरअसल वह कर क्या रही है? वह बार–बार, अलग–अलग स्थितियों में जोड़ लागू करके जोड़ने की अपनी क्षमता का विकास कर रही है। पियाजे की शब्दावली में, वह जोड़ने की अपनी स्कीम विकसित कर रही है।

पियाजे ने स्कीम की निम्न परिभाषा दी :

अलग–अलग संदर्भों में, लेकिन एक सी स्थितियों पर बार–बार लागू करके जो क्रिया व्यापकीकृत और बेहतर होती जाती है, उसे स्कीम कहते हैं। यह व्यापकीकृत क्रिया स्वयं भी कई अन्य क्रियाओं का समन्वित (Coordinated) रूप होती है। मसलन, जैसा कि आपने अभी देखा कि बच्ची की जोड़ने की स्कीम में गिनने की स्कीम का उपयोग होता है, और इस अन्तर्क्रिया के जरिए ये दोनों स्कीमें साथ–साथ और विकसित होती जाती है।

अब मान लीजिए मैं दूसरी कक्षा की एक बच्ची से 5 और 3 जोड़ने को कहूं और वह 8 बता दे। फिर मैं उससे यह समझाने को कहती हूं कि वह 8 तक कैसे पहुंची, जो वह समझा देती है। इस वार्तालाप का कौन सा हिस्सा जोड़ने की उसकी स्कीम दर्शाता है–उसका जवाब 8 या उसकी व्याख्या कि वह इस उत्तर तक कैसी पहुंची? बच्ची के उत्तर का महत्व नहीं है। सवाल को हल करने के लिए वह जिस विचार प्रक्रिया से गुजरती है, वह उसकी जोड़ने की स्कीम है। यदि वह कह देती कि 5 + 3 बराबर 7 होता है, तो भी उसने जोड़ने की अपनी स्कीम का इस्तेमाल किया होता। अर्थात् बच्ची की स्कीम उसका क्रिया करने का तरीका है, उसकी क्रियाओं का परिणाम नहीं।

स्कीम के बारे में एक गौरतलब बात यह है कि एक ही क्रिया के लिए समान उम्र व एक ही पृष्ठ भूमि के दो व्यक्तियों की स्कीम अलग–अलग हो सकती हैं। मसलन, पांच वर्षीय मेरिएल 'आगे गिनकर' जोड़ती है जबकि उसकी सहपाठी चारू 'सभी गिनकर' जोड़ती है। जोड़ करने की उनकी प्रक्रियाएं अर्थात् जोड़ने की स्कीम, अलग–अलग हैं।

स्कीमों के और उदाहरण जुटाने के लिए अगले **कुछ प्रश्न** कीजिए।

कुछ प्रश्न

- एक शिशु द्वारा चूसने की क्रिया का विश्लेषण करके बताइए कि क्यों इसे एक स्कीम माना जा सकता है।
- कक्षा 3 की किसी बच्ची द्वारा गणित सीखते हुए उपयोग की जाने वाली एक स्कीम का उदाहरण व्याख्या सहित दीजिए।

जैसा कि आप जानते हैं, सीखने की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। जन्म लेने के दिन से ही बच्ची सीखना शुरू कर देती है। वह चूसना, पकड़ना, खींचना सीखती है और इस तरह की कई स्कीमें विकसित करती है। जब वह किसी स्कीम को नई स्थितियों में लागू करती है, तो वह स्कीम उन स्थितियों के मुताबिक बदलती जाती है। मसलन, क्या आपने यह देखा है कि जब किसी बच्ची को पहली बार गेंद मिलती है तो क्या होता है? हम मान लेते हैं कि उसने अपनी बोतल या खिलौने के जानवर जैसी कुछ चीजों को धकेलने की स्कीम विकसित कर ली है। इसे वह गेंद पर आज़माती है। वह देखती है कि अन्य चीजों को धकेलने की बजाय गेंद को धक्का देने का अनुभव अलग है। शायद वह यह देखे कि एक सा धक्का देने पर अन्य चीजों की अपेक्षा गेंद ज्यादा दूर तक जाती है। यदि गेंद पर वज़न रख दिया जाए, तो गेंद उसके नीचे से खिसक जाती है। वह पाती है कि गेंद का आकार गोल होने की वजह से उसे पकड़ने में भी अलग तकनीक की जरूरत होती है। इस अनुभव से गुजरते हुए उसकी विचार प्रक्रिया के ज़रिए वह गेंद को अपनी पकड़ में सम्मिलित (assimilate) कर रही है। इस प्रक्रिया के दौरान उसकी पहली वाली धकेलने की स्कीम बदलकर एक नई धकेलने की स्कीम बनाती है जिसमें ये नए लक्षण शामिल हो जाते हैं। बदलाव की इस प्रक्रिया को समायोजन (accommodation) कहते हैं। समायोजन की इस प्रक्रिया के ज़रिए धकेलने की उसकी स्कीम का विस्तार (elaboration) हो जाता है, यानि नए गुण जुड़ जाने की वजह से वह ज्यादा व्यापक हो जाती है। अगली बार जब वह गेंद से खेलेगी तब वह

गेंद के साथ हुए अपने अनुभवों से विकसित समझ का इस्तेमाल करेगी। बच्ची की उस दुनिया में जिसमें धक्का दिए जा सकने वाली चीजें आती है अब नए गुण शामिल हो गए हैं।

तो हमने निम्नलिखित प्रक्रियाओं के उदाहरण देखे :

सम्मिलन : वह विचार प्रक्रियाएं जिनसे एक स्कीम को नई चीज़ों पर लागू किया जाता है।

समायोजन : वे विचार प्रक्रियाएं जिनके जरिए नई चीज़ों पर किसी स्कीम को लागू करने के फलस्वरूप स्कीम में परिवर्तन होता है ; और

विस्तार : समायोजन के परिणामस्वरूप स्कीम का विस्तार।

सम्मिलन व समायोजन हमेशा साथ–साथ चलते हैं। जब हम सम्मिलित करते हैं, तब हम जो कुछ पहले से जानते हैं उसके आधार पर दुनिया पर क्रिया करते हैं। समायोजन करते समय हम अपनी क्रिया के परिणामस्वरूप दुनिया पर प्रतिक्रिया करते हैं और जो कुछ जानते हैं उसे बदल रहे होते हैं। इस पूरी प्रक्रिया से हम सीखते हैं।

मसलन, एक ऐसी बच्ची पर गौर करते हैं। जिसके पास गिनती की स्कीम है और उसे एक ऐसी स्थिति में डाल दिया गया जहां उसे चीजों के दो समूहों को जोड़ना है। वह उन दोनों समूहों को साथ–साथ रखकर गिन लेगी। धीरे–धीरे 'कुल कितने?' पता करने की उसकी स्कीम का विस्तार होने लगता है। वह 'आगे गिनना' शुरू करके अपनी स्कीम को समायोजित करने लगती है। अब जब एक–अंक वाली दो संख्याओं को जोड़ना हो, तो शायद वह दोनों संख्याओं के बराबर छोटी रेखाएँ खींचकर उन सबको गिनने की स्कीम अपनाए या एक संख्या के बराबर रेखाएं खीचकर आगे गिन सकती है। जैसे–जैसे उसे और–और संख्याएं जोड़ने का काम दिया जाता है, वैसे–वैसे वह एक ज्यादा बेहतर स्कीम विकसित करती जाती है। इस स्कीम में दो अंकों की संख्याओं का जोड़ भी हो सकता है। इसमें हासिल वाले जोड़ भी शामिल करके और समायोजित किया जा सकता है। हमने ऊपर जो कुछ कहा, उसे आप कितना समझ पाए हैं, इसकी अब आप जांच कर सकते हैं।

कुछ प्रश्न 3 : मान लीजिए एक बच्ची ने दो अंकों की संख्याओं के हासिल व उधार वाले जोड़–बाकी सीख लिए हैं। यह भी मान लीजिए कि वह तीन अंकों की संख्या पढ़ सकती है। अब उसे 306–156 हल करने के लिए दिया गया। इस सवाल को करने से पहले बच्ची की स्कीम क्या होगी? क्या इसे हल करते हुए किसी तरह का सम्मिलन व समायोजन चल रहा है ? यदि हां, तो इन प्रक्रियाओं का वर्णन कीजिए।

अब तक आपने जो पढ़ा, उससे आप समझ ही गए होंगे कि बच्ची की किसी क्रिया की स्कीम निम्नलिखित चरणों में विकसित होती है :

- सम्मिलन – लम्बे समय तक उसी क्रिया को बार–बार दोहराना।
- समायोजन – उसी क्रिया को अलग–अलग चीजों पर आज़माना और इन चीजों को अपनी स्कीम में सम्मिलित करना।
- विस्तार – क्रियाओं को मिला–जुला कर नई क्रियाओं की रचना करना अर्थात् अपनी स्कीम का विस्तार करना।

शुरू में नई क्रियाएं कभी–कभी हो सकती हैं, मानो वे संयोग से हो रही हों। बच्ची क्रियाएं इसलिए करती है क्योंकि वह इन्हें करना चाहती है और वह विभिन्न स्थितियों में इन्हें दोहराती है। पुरानी स्कीमों को इतनी ज्यादा बार नहीं दोहराया जाता; किन्तु जब भी इनका इस्तेमाल किया जाता है, तो आत्मविश्वास के साथ।

पियाजे ने नोट किया कि अधिकांश बच्चों की क्रियाओं में ये लक्षण पाए जाते हैं। उन्होंने इन बातों की अपनी समझ भी प्रस्तुत की। उनके मुताबिक किसी स्कीम के विकास के दौरान बच्ची उसे अलग–अलग चीजों पर बार–बार आज़माती है। बच्ची के लिए यह स्वाभाविक है कि वह स्कीम को अन्य चीजों पर आज़माएं तथा कई और चीज़ों को उसमें सम्मिलित करे। वह अपनी नई क्षमता को, नए–नए संदर्भों में या पुराने संदर्भों में भी, बार–बार, दोहराना चाहती है। यह दोहराना मशीनी तौर पर नहीं किया जाता और यह स्कीम का विकास होने तक जारी रहता है। जब इसमें कोई चुनौती नहीं रह जाती और बच्ची की इसमें कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती, तब वह इस क्षमता को आज़माना छोड़ देती है।

मसलन, क्या आपने ध्यान दिया है कि जब बच्चे गिनती सीख रहे होते हैं तब उन्हें आसपास की अलग–अलग चीज़ों को गिनते हुए संख्याओं को क्रम में बोलने में बहुत मज़ा आता है ? वे अपने कदम गिनेंगे, गुजरने वाली कारें गिनेंगे। किसी को उन्हें यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती कि वे गिनें। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि मानो उनके अंदर गिनती की स्कीम को विकसित करने की कोई गहरी इच्छा है जिसे वे पूरा करना चाहते हैं । चाहे आग्रह गिनती की स्कीम के विकास से जुड़ा है । (ध्यान दें कि यह तोतारटन्त तरीके से गिनती सीखने से बिल्कुल अलग है।) गिनती की स्कीम जब कुछ हद तक विकसित हो जाती है और बच्ची इससे ऊबने लगती है, तब इस तरह के अभ्यास की जरूरत भी नहीं रहती। हां, यह किसी नई स्कीम, मसलन, जोड़ने की स्कीम का हिस्सा बन जाएगा।

बच्ची द्वारा किसी स्कीम को बार–बार उपयोग किए जाने की इस कवायद का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस स्कीम के साथ उलझते हुए वह इसके अभ्यास के नए–नए तरीके ढूंढ रही है। अलग–अलग स्थितियों में दोहराने की यह प्रक्रिया के विस्तार का ही एक भाग है। एक स्कीम विकसित करते हुए, वह उससे आगे जाकर साथ–साथ कई स्कीमों का अभ्यास करती है। यह प्रक्रिया भी विस्तार का ही एक हिस्सा है। आप देख सकते हैं कि विस्तार ही हमें दुनिया के बारे में सीखने में मदद करता है । यदि यह उसके लिए स्वाभाविक नहीं होता, तो हमारी स्कीमें निहायत सीमित बनी रहतीं ।

कुछ प्रश्न

• मेरे दोस्त का एक 6 वर्षीय बेटा है। जब भी उसके पिता चपाती बनाते हैं, तो वह भी बनाना चाहता है। शुरू–शुरू में जब उसने कोशिश की और कर नहीं पाता, तो तंग आकर छोड़ देता। उसे बहुत बताया कि ऐसे करो या वैसे करो, मगर कोई लाभ न हुआ। परन्तु वह फिर भी खुद कोशिश करता रहा। उसने इसके लिए कई तकनीकों का इस्तेमाल किया: कभी वह लोई को फैला लेता, कभी बेलन उसके ऊपर चलाता, कभी आटे को फैला लेता और उसे चकले से चिपकने से बचाने की कोशिश करता। उसने कई बार कोशिश की किन्तु होता यह था कि दस–पन्द्रह मिनट की कड़ी मेहनत के बाद वह एक अजीबोग़रीब आकृति बना डालता था। कुछ महीनों बाद मैंने देखा कि वह चपाती बनाना सीख चुका है और, अब पराठे बनाने की कोशिश कर रहा है।

क) इस स्कीम के विकास चरण पहचानिए। यह सोचिए कि इसके विकास के दौरान कौन सी नई–नई बातें इसमें जुड़ती जा रही हैं।

ख) यह बताइए कि सीखने का यह तरीका प्रोग्रामन या बैंकिंग मॉडल से कैसे अलग हैं।

• उस समय के बारे में सोचिए जब आपने लम्बे भाग करने का एल्गोरिद्म सीखा था। आपको किस तरह के अभ्यास से सीखने में मदद मिली थी? सम्मिलन व समायोजन की कौन–कौन सी प्रक्रियाएं आप पहचान सकते हैं? क्या किसी ने आपको अभ्यास करने पर विवश किया था या आपने स्वयं ही अभ्यास किया था? यदि आप किसी वक्त असफल रहे थे तो आपने क्या किया था–क्या आप अड़े रहे थे और अपने प्रयास को दोहराया था? या क्या आप रूक गए थे? क्या आपने इसे नई परिस्थितियों में फिर से आजमाया था ? क्यों? क्या आपको लगा कि आपने 'महारत' हासिल कर लिया था ?किस चरण पर आपको यह अनुभव हुआ? सीखने की प्रक्रिया तथा सीखने के दौरान आपने जो भावनाएं और एहसास महसूस किए उनके बीच के संबंधों को लिखिए।

आइए, अब देखें कि किसी गणितीय या ग़ैर–गणितीय अवधारणा की हमारी समझ कैसे बनती है।

स्कीमा (Schema)

कल्पना कीजिए कि कोई बच्ची पहली बार एक बिल्ली देखती है और उसे बताया जाता है कि यह बिल्ली है। उसके दिमाग़ में बिल्ली के कौन से गुण दर्ज़ होंगे ? शुरू में शायद यह दर्ज हो कि बिल्ली का शरीर बालदार होता है। आगे चलकर, शायद और बिल्लियों के बारे में पढ़कर या सुनकर, 'बिल्ली' की उसकी दिमागी छवि अन्य गुण, जैसे चार टांगें, दूध पीना, चूहे का पीछा करना, दूसरी बिल्लियों से झगड़ना, लम्बी मूंछें, वगैरह, जुड़ते जाएंगे और यह छवि किसी एक खास बिल्ली पर नहीं बल्कि सभी बिल्लियों पर लागू होगी। 'बिल्ली' की उसकी दिमागी छवि धीरे–धीरे विस्तृत होती गई है जैसे–जैसे उसमें ज्यादा कड़ियां व संबंध जुड़ते जा रहे हैं। इस तरह की संज्ञान संरचना को स्कीमा कहते हैं।

परिभाषा : किसी अवधारणा का स्कीमा उस अवधारणा व उसके गुणों और अन्य अवधारणाओं के साथ उसके संबंधों को लेकर किसी व्यक्ति की समझ की रेखाचित्र प्रस्तुति को कहते हैं। स्कीम की ही तरह स्कीमा भी व्यक्ति–व्यक्ति में बदलता है। एक ही व्यक्ति के लिए भी यह वही का वही नहीं बना रहता। उस अवधारणा के बारे में व्यक्ति की समझ बदलने पर स्कीमा भी बदल जाता हैं मसलन बच्चा पहले कुत्ते की एक दिमाग में तस्वीर बनाता है। धीरे–धीरे यह तस्वीर बदलती है और ज्यादा विशिष्ट होती जाती है; लेकिन इसमें ज्यादा विस्तृत संबंध बनते जाते हैं। जब वह अवधारणा को और व्यापक करता है, तो वह अपने नए–नए अनुभवों को इसमें सम्मिलित करके कुत्ते के स्कीमा को बदल देता है।

एक और उदाहरण देखें। संख्या के बारे में किसी बच्ची के विचार पर गौर करें। शुरू में शायद उसके लिए संख्या का मतलब सिर्फ 'कितने?' के संदर्भ में हो। शायद उसने यह समझ ऐसी स्थितियों से निर्मित की होगी जहां उसे, उदाहरण के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को एक–एक लड्डू बांटना रहा होगा। लड्डू बांटते हुए वह हिचकती है कि उसके पास लड्डू ज्यादा हैं या कम और देखने की कोशिश करती है कि क्या सबको एक–एक लड्डू देने के बाद उसके अपने लिए कुछ बचेगा या नहीं। समय के साथ अपने अन्य अनुभवों के ज़रिए धीरे–धीरे वह संख्या की अवधारणा का अपना एक स्कीमा बनाती है।

चित्र 8 में हमने दो बच्चों के 7 के स्कीमों के कुछ हिस्से प्रस्तुत किए हैं।

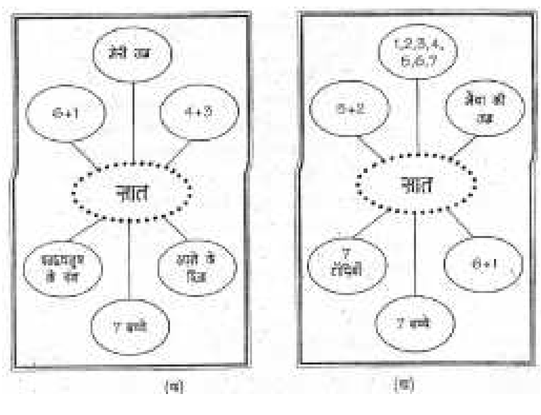

चित्र 8 (क) 7वर्षीय अहमद का 7 का स्कीमा,(ख) 5 वर्षीय मंजू का 7 का स्कीमा

स्कीम की ही तरह स्कीमा में भी समायोजन व परिवर्तन के ज़रिए विस्तार होता है। मसलन, एक–एक की संगति और 'एक और' की धारणाओं से संख्या के बारे में जो प्रारम्भिक समझ बनती है वह विकसित होकर संख्याओं की एक विस्तृत प्रणाली की समझ में तब्दील हो सकती है। इनमें न सिर्फ पूर्णांक संख्याएं बल्कि भिन्न, ऋणात्मक संख्याएं, अपरिमेय संख्याएं तथा सम्मिश्र संख्याएं भी शामिल हो सकती हैं।

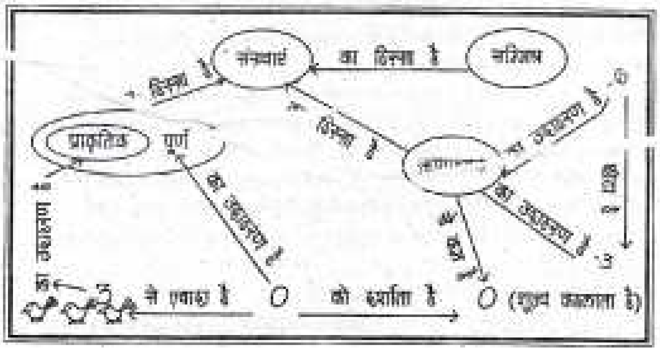

चित्र 9 : कक्षा 11 के एक विद्यार्थी के संख्या की स्कीमा का हिस्सा

अब स्कीमा के विस्तार की प्रक्रिया का एक उदाहरण देखिए।

उदाहरण 1 : जब गुड्डी दो साल की थी तब वह सारी पतंगों को चिड़िया कहती थी। चिड़िया का उसका स्कीमा यह था कि 'कोई छोटी चीज़ जो हवा में उड़ती है'। तो वह पतंग को इसमें सम्मिलित कर रही थी। इस सम्मिलन के साथ उसके स्कीमा में समायोजन भी हुआ। पतंग का आकार चिड़िया की अपेक्षा ज्यादा नियमित होता है। पतंग चिड़िया से अलग तरह से उड़ती है पतंग उड़ती है तो कभी–कभी आप एक सरसराहट सुन सकते हैं और एक डोर भी देख सकते हैं जो उसे नियंत्रित करती हुई लगती है। उसके जिस स्कीमा में अब तक सिर्फ 'उड़ने वाली छोटी चीज़ें' थी, उसमें ये नए–नए गुण जुड़ते गए। इनके आधार पर उसे पतंग और चिड़िया के बीच भेद करने में मदद मिली। स्कीमा में इस परिवर्तन के बाद उसके पास दो किस्म की उड़ने वाली छोटी चीज़ें हो गई : 'चिड़िया' और पतंगें'।

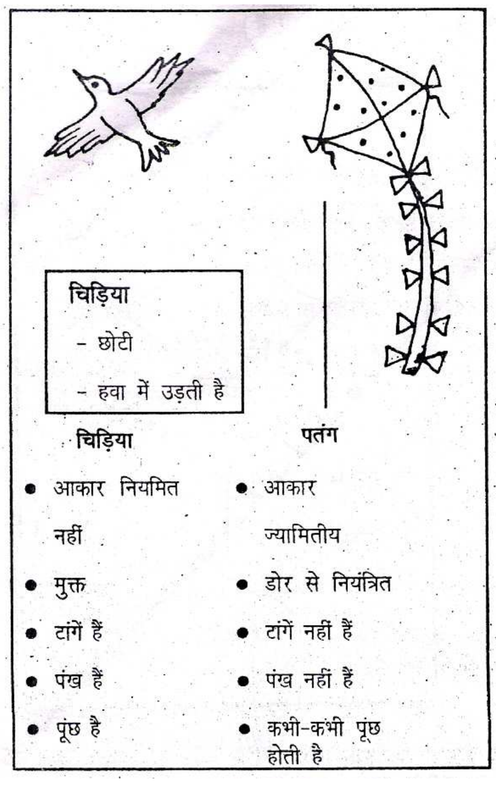

चित्र 10 : एक बच्ची का उड़ती चीजों का स्कीमा का विस्तार

आज गुड्डी करीब आठ साल की है और आप कल्पना कर सकते हैं कि उड़ने वाली चीज़ों का उसका स्कीमा कितना पेचीदा हो चुका होगा। वह तमाम किस्म के हवाई जहाजों , पैराशूट, रॉकेट, उपग्रहों, उड़न छिपकली और चमगादड़ों के बारे में जानती है वह यह भी जानती है कि कई पक्षी उड़ते नहीं। इस सबको एक स्कीमा में चित्रित करके देखिए आपको एक बहुत बड़े यदि आप एक रचनावादी शिक्षक हैं, तो प्रत्येक विद्यार्थी के स्कीम व स्कीमाओं का इस्तेमाल करते हुए, शायद अनौपचारिक तौर पर, यह पता कर सकते हैं कि उसने अपनी समझ किस हद तक विकसित की है।

मसलन, स्कूल के बाहर रोज़मर्रा की कई स्थितियों में एक चार वर्षीय बच्ची का वास्ता संख्याओं से पड़ता रहता है। एक शिक्षक के नाते आपको चाहिए कि इस जानकारी का उपयोग करें, इस पर आगे निर्माण करें। जरूरत इस बात की है कि आप ऐसी गतिविधियाँ रचें जो बच्ची को संख्या की समझ का संबंध संख्या–पूर्व अवधारणाओं से जोड़ने में मदद करे और फिर उसे संख्या की अवधारणा विकसित करने में मदद करे। जैसे–जैसे उसकी समझ बढ़ेगी, संख्या का उसका स्कीमा विस्तृत होता जाएगा। वह सीखेगी कि प्रत्येक संख्या अपने से पहले वाली तथा बाद वाली संख्याओं से एक संबंध भी रखती है। मसलन, तीन दो से एक अधिक है तथा चार से एक कम है। आगे चलकर वह अन्य गुण व संबंध भी सीखेगी। वह अन्य संबंधित अवधारणाओं के बारे में भी सीखेगी। मसलन, रोज़मर्रा की स्थितियों में बराबर बाँटने या अनुपात निकालने जैसी क्रियाओं से वह 'भाग' की अवधारणा समझेगी। अब तक आपने जो पढ़ा है उससे आप जानते ही हैं कि जो बच्ची मूर्त–संक्रियात्मक अवस्था में है वह तब सफलतापूर्वक क्रिया कर सकती है और समझ बना सकती है जब उसे सचमुच की वस्तुओं को उलटने–पलटने व उनके बारे में सोच–विचार और बात करने का अवसर मिले। लिहाज़ा उसे अपने स्कीमाओं का विस्तार करने के लिए उपयुक्त गतिविधियों के जरिए ऐसे अवसरों की ज़रूरत होती है जहाँ वह ठोस वस्तुओं का इस्तेमाल कर सके। एक रचनावादी शिक्षक ऐसे ही अवसर प्रदान करेगी– ध्यान से चुने हुए सीखने के ऐसे अनुभव जो काग़ज और रंग–बिरंगी पेंसिलों की जरूरत होगी।

ऊपर के उदाहरण में क्या आपने इस बात पर ध्यान दिया कि जब बच्ची नए–नए गुण शामिल करती जाती है, तो एक स्कीम की ही तरह स्कीमा भी समायोजित होता चलता है ? अगला अभ्यास करते हुए आप इसी तरह की एक प्रक्रिया का अवलोकन करेंगे।

आपने देखा कि बच्ची के स्कीम व स्कीमा सम्मिलित व समायोजन के ज़रिए विकसित होते हैं। तो, इन दोनों के बीच अन्तर क्या है? मसलन, संख्याओं के भाग की स्कीम और भाग के स्कीमा के बीच क्या अन्तर है? एक संख्या को दूसरी से भाग देते वक्त विचार प्रक्रियाओं की जिस श्रृंखला से कोई व्यक्ति गुजरता है वह उसके भाग की स्कीम है। दूसरी ओर उस व्यक्ति का भाग का स्कीमा इस बात का आरेख निरूपण है कि वह भाग की अवधारणा से क्या समझती है , उसे किन अन्य अवधारणाओं से जोड़ती है, वगैरह। कहने का मतलब यह है कि स्कीम व स्कीमा में मूल अन्तर यह है कि स्कीम दुनिया पर क्रिया करने का तरीक़ा है जबकि स्कीमा दुनिया का निरूपण है।

किसी स्कीमा के निर्माण के लिए हम विभिन्न किस्म की स्कीमों का सहारा लेते हैं। मसलन, यह देखिए कि कोई बच्ची पूर्णांक संख्या की समझ कैसे विकसित करती है। हम देख चुके हैं कि वह गिनने की स्कीम का उपयोग करके शून्य का अपना स्कीमा भी बनाएगी।

अर्थात्, बच्ची की स्कीम पहले विकसित होती है। इन स्कीमों के ज़रिए दुनिया पर क्रिया करके वह नई–नई स्कीमें भी बनाती है और स्कीमा भी। दुनिया पर क्रिया करके उसे जो अनुभव मिलता है उससे उसे अपने स्कीमा का धीरे–धीरे विस्तार करने में मदद मिलती है। इस अनुभव के आधार पर वह ज़्यादा तादाद में स्कीमा भी बनाती है। वह ज्यादा अन्तर्सम्बंध खोजती है, धीरे–धीरे अपनी समझ व्यापक करती जाती है और ज्यादा पेचीदा क्रियाएँ करने की क्षमता हासिल करती जाती हैं।

अभी हमने जो चर्चा की, उसे लेकर दो अभ्यास आपके लिए दिए जा रहे हैं—

कुछ प्रश्न

• एक पूरे हिस्से पर काम करते समय बच्चों के पास 'आधा' का स्कीमा होता है। कोई पाँच वर्षीय बच्ची इस शब्द का उपयोग बातचीत में कर सकती है। इस बच्ची का 'आधा' का स्कीमा क्या होगा ? आपको क्या लगता है कि कक्षा 4 में आने तक उसका 'आधा' का स्कीमा क्या होगा ? यह स्कीमा नए अनुभवों को कैसे सम्मिलित करेगा और व्यापक भिन्न के स्कीमा में कैसे तब्दील होगा?

• परिमेय संख्याओं का अपना स्कीमा विकसित करने के लिए कोई बच्ची किन स्कीमाओं का विकास करेगी?

• क्या ऐसी स्थितियां भी होती हैं जब हम एक स्कीम बनाने के लिए विभिन्न स्कीमाओं का उपयोग करते हैं? अपने उत्तर का कारण दीजिए।

अब आप स्कीम व स्कीमा के बारे में काफी कुछ पढ़ चुके हैं। आइए, देखें कि ये रचनावाद से कैसे जुड़ते हैं।

रचनावाद को समझें

आप जानते हैं कि सीखने के रचनावादी मॉडल के मुताबिक प्रत्येक बच्ची अपने परिवेश से संपर्क के ज़रिए सीखती है। वह अपने अनुभवों के आधार पर अपनी स्कीम व स्कीमा विकसित करते हुए अपनी समझ को आगे बढ़ाती है। शिक्षक के बस ज़रा से मार्गदर्शन के साथ, बच्चों को अपने आप खोजबीन करने व सीखने में मदद करें। आइए, अगले अभ्यास पर हाथ आज़माएं।

अब तक हमने सीखने का ऐसा वर्णन देखा जहां बच्ची दुनिया के साथ संपर्क करती है उसके साथ जूझती है और उसे महसूस करती है हमने सीखने की प्रक्रिया में शिक्षकों (या अन्य बड़ों) की भूमिका के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कहा है। शायद आप सोचें कि ऐसा इसलिए है कि रचनावादियों की राय में बच्चों को सीखने के लिए बड़ों की मदद की कोई जरूरत नहीं है। ऐसा नहीं है। बड़ों का महत्त्व तो है, मगर किस भूमिका में ? आइए उसे समझने की कोशिश करें।

शिक्षक की भूमिका

बड़ों और बच्चों, दोनों को ही चुनौतियों और सवाल हल करने में मज़ा आता है। क्या आपको नए—नए विचारों को टटोलने में, नए—नए तजुर्बे और नई—नई क्षमताएं हासिल करने में मज़ा नहीं आता? कितनी बार जब हम किसी सवाल से जूझते हैं तो आसानी से हार नहीं मानते। हम जूझते रहते हैं, नई चुनौती का आनंद उठाते हैं। हमें कोई जरूरत नहीं होती कि कोई कहे कि हमने सही किया या हमें शाबाशी दे (हालांकि वह भी अच्छा लगेगा) हमें तो यही अच्छा लगता है कि हमने दुनिया के बारे में कोई नई बात सीखी या किसी काम को करने का नया ढंग सीखा। यह एहसास अपने आप में ईनाम है। इस मामले में बच्चे और बड़े समान होते हैं यदि ऐसा है, तो हम इस एहसास का फ़ायदा उठाकर बच्चों की सीखने में मदद कैसे कर सकते हैं?

अगले इस दो उपभागों में हम इस सवाल का कुछ हद तक जवाब देने की कोशिश करेंगे।

सामाजिक पहलू

क्या आपने कभी सोचा कि यदि आप अपने गाँव या शहर की बजाए ऑस्ट्रेलिया में बड़े हुए होते, तो आप कितने अलग होते ? ज़रा सोचिए इसके बारे में । यह भी सोचिए कि यदि आपके शिक्षक, दोस्त और रिश्तेदार कोई और होते, तो क्या अन्तर पड़ता? हो सकता है कि ऐसा होने पर आपकी ज्यादा दिलचस्पी समाजशास्त्र या जीव विज्ञान में पैदा हो जाती अर्थात् सामाजिक माहौल काफी हद तक सीखने को प्रभावित करता है।

सामाजिक माहौल के महत्त्व पर सबसे पहले बाल मनोवैज्ञानिक वायगोत्स्की ने ज़ोर दिया था। उनके तर्क से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बच्ची अपने अनुभवों के संदर्भ में सीखती है और उन्हीं पर आगे अपनी समझ बढ़ाती है। जन्म से ही वह इन सामाजिक प्रभावों में डूबी होती है। वह अपने कपड़ों से, अपनी खानपान की आदतों से, नहाने के तरीके से और सामाजिक सांस्कृतिक माहौल के अन्य पहलुओं से सीखती है। उसकी भाषा एक औजार होती है जिसके ज़रिए वह अपने विचारों को व्यवस्थित करती है और उन्हें दूसरों तक पहुंचाती है। शिक्षकों के नाते हमें चाहिए कि हम हर बच्ची के उस अनुभव का उपयोग करें जो वह अपने माहौल से साथ लाती है। हमें अपने विद्यार्थियों के अलग–अलग अनुभवों को इस्तेमाल करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। हाँ, यह जरूर है कि कुछ ऐसी बुनियादी अवधारणाएं हैं जो हर बच्ची स्कूल आने से पहले जानती है। मसलन, सारे बच्चे छोटी संख्या में और बड़ी संख्या में चीज़ों के बीच अन्तर जानते हैं, वे कुछ संख्याओं के नाम जानते हैं, वे कुछ चीजों के आकार व मापों की तुलना कर सकते हैं (आप इस सूची में कई बातें जोड़ सकते हैं) परंतु अपने सामाजिक माहौल की बदौलत हो सकता है कि कुछ बच्चों का किताबों से भरपूर सम्पर्क रहा हो और वे कुछ संख्यांक भी जानते हों। अलग माहौल वाले कुछ अन्य बच्चे, मसलन सब्जी बेचने वालों के बच्चे, शायद संख्याकों को न पहचानते हों, मगर उन्हें संख्याओं की पेचीदा संक्रियाओं से निपटने का अनुभव हो।

सिर्फ अलग–अलग परिवेशों की बात को समझना काफी नहीं है। बच्चे सीख सकें, इसके लिए जरूरी होगा कि हम शिक्षक कक्षा में उनके लिए एक सुविधाजनक व दोस्ताना माहौल बनाएं जहां वे सुरक्षित महसूस करें। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। तब वे उतने ही खुलेपन से काम करेंगे और अपने ही बस में रह सकेंगे जैसे कि अपने घर या खेल के मैदान में करने, रहने के आदी हैं। इससे उनकी बुद्धि के विकास को बढ़ावा मिलेगा और तब सीखना एक जंग न रहकर रोचक बन जाएगा। ऐसी कक्षा में आपका काम यह नहीं होगा कि बच्चों को बताएं कि वे क्या करें, उनसे अभ्यास करवाएं और उनकी परीक्षा लें, बल्कि आपका काम उन्हें मार्गदर्शन व सहारा देने का हो जाएगा। स्कूल एक ऐसी जगह नहीं रह जाएगी जहां बच्चों को लगता है कि लगातार उनकी जांच हो रही है,उन पर नज़र रखी जा रही है, जिसकी वजह से उन्हें गलती कर बैठने का डर लगा रहता है। तब आप स्कूल को एक ऐसी जगह बनाने में मदद करेंगे जहां बच्चे आत्मविश्वास से खोजबीन कर सकते हैं, सीख सकते हैं।

कुछ प्रश्न

- रोज़मर्रा के जीवन में बच्ची किन क्रियाओं के जरिए जोड़, बाकी व गुणा की अवधारणाओं को निर्मित करती है?

- पहली कक्षा तथा कभी–कभी दूसरी कक्षा में भी बच्चे गणित, के सवाल हल करने के लिए उंगलियों की मदद लेते हैं या लाइनें खींचते हैं। आपके अनुसार इस दौरान ये बच्चे सम्भवतः जिस अवस्था में होंगे, उसके आधार पर यह समझाइए कि बच्चे ऐसा क्यों करते हैं और क्या यह उचित है। एक शिक्षक के नाते इस पर आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी?

- एक ऐसी कक्षा के बारे में सोचिए जहां आपने पढ़ाया हो या जहां स्वयं पढ़े हों, और निम्नलिखित सवालों के जवाब दीजिए।
    - ऊपर (क) में बताई गई घरेलू गतिविधियों को कक्षा में कैसे लाया जा सकता है ?
    - घर व स्कूल की गतिविधियों में यदि कोई समानता थी, तो क्या ?

शिक्षक के तौर पर हमारी भूमिका का दूसरा महत्त्वपूर्ण हिस्सा मार्गदर्शक का है। आइए अब इस पर विचार करते हैं।

मार्गदर्शन

फर्ज़ कीजिए कि आपने अपनी विद्यार्थी को जोड़ से संबंधित एक नए तरह का सवाल दिया है। हो सकता है कि वह इसे हल करना चाहती है मगर उसे पता नहीं कि शुरू कहां से करें। अपने पहले के अनुभवों से शायद वह इस सवाल को समझने के लिए कोई स्कीम न खोज पाए। ऐसे में आपकी उपस्थिति कई तरह से मददगार हो सकती है मसलन, यदि आप यही सवाल उसे धीमी रफ़्तार से पढ़कर सुनाएं, तो शायद उसे इसका मतलब समझने में मदद मिले। आप कुछ शब्दों को रेखांकित कर सकते हैं या उसका ध्यान सवाल के कुछ हिस्सों की ओर खींच सकते हैं। इससे उसे सवाल के पीछे छुपा अर्थ समझने में मदद मिल सकती है या आप बच्ची से ऐसे कुछ संबंधित सवाल पूछ सकते हैं जिसकी मदद से वह सवाल को समझने की दिशा में कदम बढ़ाए। आप देख सकते हैं कि इस स्थिति में आपके बिना जितना कर सकती थी उससे कहीं ज्यादा आपकी मौजूदगी में वह कर रही है। आपका मार्गदर्शन उसे सीखने में मदद कर रहा है।

अलबत्ता, मार्गदर्शन से सीखने की प्रक्रिया और सिर्फ जानकारी देना इनके बीच फ़र्क करना जरूरी है। यदि आप बोर्ड पर एक सवाल हल कर दें और आपकी विद्यार्थी उसकी नकल उतार ले, तो क्या आप इसे मार्गदर्शन से सीखना कहेंगे? ऐसा करने से बच्ची ने उस सवाल को कितना समझा है और उसे हल करने के बारे में क्या सीखा? दूसरी ओर, यदि आप उसे वह सवाल समझाएं और उससे कहें कि वह बताए कि उसने क्या समझा है तो सम्भावना है कि वह इसे एक सार्थक ढंग से अपनी पहले की समझ में जोड़ पाएगी। इसके लिए जरूरी होगा कि आपको बच्ची की समझ का स्तर मालूम हो और यह सुनिश्चित करें कि उसे जो कुछ पहले से पता है उसमें कैसे यह नया ज्ञान फिट हो सकता है।

यदि आप एक रचनावादी शिक्षक हैं, तो आप हर बच्ची को सवाल को अपने ढंग से सुलझाने को प्रेरित करेंगे। सुझाव व संकेत देकर आप उसे प्रोत्साहित करेंगे कि वह उस अवधारणात्मक संरचना को आगे बढ़ाएं जो उसने अपने दिमाग में विकसित की है। आप तैयार शुदा हल बताकर उसकी आत्मनिर्भरता को कम नहीं करेंगे। हमने अभी जो कुछ कहा है, अब इसका एक उदाहरण देखिए।

उदाहरण 3 : मैंने कक्षा 2 के कुछ बच्चों को यह पता लगाने को कहा कि यदि एक बेंच पर 4 विद्यार्थी बैठें तो कक्षा की 10 बैंचों पर कितने विद्यार्थी बैठ सकते हैं। बच्चों ने इस सवाल को कई अलग–अलग तरीकों से छुड़ाया। कुछ बच्चों ने 10 में 4 का गुणा किया, कुछ ने 4 को 10 बार जोड़ा और कुछ ने 10 को 4 बार। कुछ ने 4 को 5 से गुणा किया या 4 को 5 बार जोड़ा और फिर उसे दुगना कर दिया। तरीकों की विविधता को देखते हुए मैंने कोशिश की कि प्रत्येक बच्ची को उस तरीके से आगे बढ़ाने में मदद दूं जो उसके सीखने के ढंग से मेल खाता हो।

कुछ बच्चे सवाल ही नहीं कर पाए। मुझे पता था कि ये बच्चे 40 (व उससे भी आगे) तक गिनती जानते थे। तो, मैंने 10 बैंचों का चित्र बनाया और प्रत्येक पर चार–चार बच्चे बैठा दिए। इन 10 बैचों पर बैठे विद्यार्थियों की गिनती करके वे यह देख पाए कि कुल 40 बच्चे बैठ सकेंगे। इनमें से कुछ बच्चों के साथ मैंने उस सवाल को पढ़ा प्रत्येक वाक्य का विश्लेषण किया, और फिर धीरे–धीरे उन्हें पूरा सवाल समझने में मदद की। मैंने हल करने में उनकी मदद के लिए इस तरह के सवाल पूछे कि 'कुल कितनी बेंचें हैं?' 'एक बेंच पर कितने बच्चे हैं' 'अब हम गिनकर कैसे बता सकते हैं कि कुल कितने बच्चे हैं?' वगैरह। हर बार आगे बढ़ने से पहले मैंने इन्तजार किया कि वे सवाल के हर हिस्से का विश्लेषण करके समझ लें।

इसी तरह, विद्यार्थियों की पहले की क्षमताओं को आगे बढ़ाने में मदद देते हुए, मैं धीरे–धीरे उन्हें पहाड़ों को इस्तेमाल करने की ओर प्रेरित कर पाई। जैसे–जैसे व क्षमता अर्जित करते गए, उन्होंने इस प्रक्रिया को आत्मसात् कर लिया और 'मन में' सवाल करने लगे।

यदि हम सिर्फ बच्ची को सवाल का हल करने का तरीका दिखाकर उससे इसी तरह करने को कहते हैं, तो दरअसल हम उसे अपाहिज बना रहे हैं। मसलन, उदाहरण 3 में मैं यह भी कर सकती थी कि बस पहाड़ों का उपयोग करके सही उत्तर निकालकर दिखा देती । फिर मैं उन्हें उसी तरह के और सवाल देकर उनसे कहती कि पहाड़ों का उपयोग करके उन्हें हल कर लें। हो सकता है कि कुछ बच्चे शायद समझ भी जाते कि ऐसा क्यों करते हैं, किन्तु शेष बच्चे न समझ पाते। हां, वे सही उत्तर निकालना तो सीख जाते मगर उनकी समझ अधूरी रहती और यदि उसी सवाल को थोड़ा अलग तरीके से दिया जाए तो शायद वे इसे न कर पाते। वे नियमों को जरूर आत्मसात् कर लेते, परन्तु उन्हें यह समझ में नहीं आता कि इन नियमों का इस्तेमाल किन परिस्थितियों में किया जाता है। सवाल का विश्लेषण करके और उन्हें उस पर चरणों में विचार करवाने से मैं उनकी मदद कर रही हूं कि वे खुद किसी सवाल को टुकड़ों में बाँटकर हल कर सकें और अब आप एक अभ्यास कीजिए।

कुछ प्रश्न

• उदाहरणों की मदद से दर्शाइए कि अलग–अलग सामाजिक माहौल के बच्चों में द्रव्यमान के संरक्षण (conservation of mass) की समझ के अलग–अलग स्तर हो सकते हैं।

आपने देखा कि रटकर सीखने और निष्क्रिय रूप से सीखते जाने की अपेक्षा, रचनावादी ढंग से सीखने का मतलब है समझना व आत्मसात् करना । मार्गदर्शित रचनावादी ढंग से सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई चरणों से गुजरती है। आइए इन चरणों पर एक–एक करके विचार करें।

चरण 1 (कार्य करने में किसी और ज्यादा जानकार व्यक्ति से मदद मिलती है) : पहला चरण वह होता है जब सीखने वाले को किसी ज्यादा जानकर बड़े या हम उम्र से सीधे मदद मिलती है। इस चरण में बच्ची के साथ काम करते हुए यह व्यक्ति उसे यह खोज करने में मदद देता है कि वह पहले से क्या जानती है और इसका उस सवाल से क्या संबंध है जो वह हल करने की कोशिश कर रही है। ज़ाहिर है कि मदद का मतलब यह नहीं होता कि बच्ची को बता दिया जाए कि क्या करना है बल्कि उसे मदद सिर्फ सवाल का विश्लेषण करने में देनी चाहिए। सवाल का हल तो वह अपनी क्षमताओं के आधार पर खुद ही खोजेगी।

इसके लिए अक्सर समय व सब्र की जरूरत होती है। इस चरण में हल्का सा इशारा और छोटे–छोटे प्रश्न बच्ची को सवाल समझने में तथा उसका हल खोजने में बहुत मददगार होते हैं।

चरण 2 (कार्य करने में खुद की मदद) : दूसरे चरण में बच्ची स्वयं अपनी वह मदद करने लगती है जो पहले किसी बड़े द्वारा की जाती थी। जो सवाल वह पहले किसी बड़े मी मदद से कर चुकी है, यदि वैसा ही सवाल उसे दिया जाए तो वह खुद कोशिश करके इसे कर लेगी। बड़े की मदद सिर्फ इतनी चाहिए कि वह पहले के सवाल और इस नए सवाल के बीच समानताएं इंगित कर दे। सम्भवतः वह मोटे तौर पर उन्हीं कदमों से इसे भी हल करेगी, हालांकि हो सकता है कि वह इन कदमों को अलग ढंग से व्यक्त करे। इस चरण में शायद वह खुद से वही प्रश्न पूछती जाए जो चरण 1 में किसी बड़े ने पूछे थे और खुद ही उनके उत्तर देती जाए। इस चरण में सवालों के हल खोजने में बच्चे खुद की मदद करते हैं।

चरण 3 (कार्य सहज हो जाता है) : यह चरण तब आता है जब बच्ची को कोई कार्य करने के लिए न तो बाहरी मदद चाहिए और न ही उसे बार–बार सोचना पड़ता है कि अगला कदम क्या होगा। हम कह सकते हैं कि बच्ची जान गई है कि सवाल कैसे हल करना है। अब वह वैसे सारे सवाल हल कर सकती है जिनसे चरण 2 में उसका सम्पर्क हो चुका है।

चरण 4 (इस प्रक्रिया का उपयोग बार–बार, अन्य गतिविधियों के लिए भी किया जाता है) : जब बच्ची एक तरह के सोचने के ढंग और किसी दक्षता पर महारत हासिल कर लेती है और किसी क्षेत्र में उस वक्त तक बच्ची का जितना विकास सम्भव है, वह हो चुका होता है, तो अन्य क्षेत्र खुलने लगते हैं। मसलन, उसकी यह

समझने की क्षमता कि गुणा दरअसल बारम्बार योग ही है और उसकी पहाड़ों को उपयोग करने की क्षमता के आधार पर वह संख्याओं के बीच नए पैटर्न खोज सकती है। अब वह संख्या के गुणनखंड की अवधारणा से जूझना शुरू कर सकती है।

चरण 4 को ऐसा इस चरण में सोचा जा सकता है जिसे सीखना बच्ची के लिए एक कदम व एक सहारा बन जाता है जिसके आधार पर वह ज्यादा पेचीदा सवालों को हल कर सकती है।

इस पूरी प्रक्रिया को जिसमें बड़े बच्चों को सवाल हल करने तथा अपनी समझ बनाने में सहारा देते हैं, 'स्कैफोल्डिंग' (scaffolding) कहलाती है। जैसे–जैसे बच्ची ज्यादा आत्म निर्भर होती है और सवालों को लेकर उसका आत्मविश्वास बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे बड़ों का सहायता देने का तरीका व उसकी प्रकृति बदलते जाते हैं। (स्कैफोल्डिंग भवन निर्माण के लिए बनाई गई मचान को कहते है)

पहले दो चरणों में काफी समय लग सकता है। यह बच्ची पर तथा अपने आसपास की दुनिया व लोगों के साथ उसके संपर्क पर निर्भर करता है। यह भी ध्यान दें कि बच्ची के सीखने की प्रक्रिया को बहुत स्पष्ट वर्गों में नहीं बांटा जा सकता। जरूरी नहीं है कि ऊपर बताए गए चरण बिल्कुल अलग–अलग हों। इनमें से कई बातें एक वक्त पर हो सकती हैं।

सार रूप में चरणों को व्यक्त करें, तो मार्गदर्शित सीखने के लक्षण निम्नानुसार हैं :

1. इसमें शामिल हैं बच्ची के साथ एक और इंसान या (बड़ी बच्ची) जो सीखने के कार्य के बारे में ज्यादा जानकार हो।

2. बच्ची की समझ व दक्षता के आधार पर बड़े उसके लिए गतिविधि या कार्य बुनेंगे।

3. बच्ची आंख मूंदकर वह नहीं करती जाती जो बड़े उससे कहें, बल्कि समझने व खोज की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदार होती है। मार्गदर्शक बच्ची को यह नहीं बताते कि उसे कदम–कदम पर क्या करना है। कार्य को समझने और करने के चरणों की योजना बच्ची व बड़ा व्यक्ति मिलकर बनाते हैं, बच्ची की समझ और बड़े की जानकारी के आधार पर।

4. बड़े का उद्देश्य है कि बच्ची स्थिति को खुद संभाल सके और अन्ततः दिए गए कार्य को स्वतंत्र रूप से कर सके।

आपने ध्यान दिया होगा कि मार्गदर्शन संबंधी पूरी चर्चा में हमने ज्यादातर मार्गदर्शक की एक बड़े के रूप में बात की है। ऐसा जरूरी नहीं है। दरअसल, यह व्यक्ति ऐसी कोई भी बड़ी या बच्ची हो सकती है, जिसके पास चर्चित अवधारणाओं की ज्यादा समझ हो। इस बात को समझना बहुत जरूरी है क्योंकि बच्चे एक–दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं।

सीखने के लिए मार्गदर्शकों का एक और अच्छा वर्ग है उम्दा तरीके से लिखी गई पुस्तकें। उदाहरण के लिए, ऐसा एक मार्गदर्शक है आपकी पाठ्य सामग्री। यह आपका सम्पर्क कुछ विचारों से करवाती है, आपके सामने कुछ अभ्यास प्रस्तुत करती है और इन विचारों से जूझने में आपकी सहायता करती है बड़ों के लिए तो ऐसी किताबें भी कई तरह से मार्गदर्शक का काम कर सकती हैं। जिन्हें स्व–शिक्षण सामग्री के रूप में नहीं बनाया गया है। हो सकता है कि आप एकाध विचार पढ़ें और उनके प्रति जिज्ञासु हो जाएं या हो सकता है कि आप कुछ देखें और उसे समझने को उत्सुक हो जाएं । इन दोनों ही स्थितियों में आप कोशिश करके ऐसी किताबें ढूंढ सकते हैं और अपने सवालों का जवाब पाने के लिए इनका इस्तेमाल कर सकते हैं। आपको ऐसी किताब ढूंढनी होंगी जो वहां से शुरू करे जो आप जानते हैं और फिर धीरे–धीरे आपको वह समझने में मदद करे जो आप जानना चाहते हैं।

कुछ प्रश्न

• अपनी कक्षा या पड़ोस की किसी बच्ची को लीजिए। उसकी पाठ्यपुस्तक के कुछ सवालों को देखकर उसकी दक्षता के स्तर का आकलन कीजिए। अब तक ऐसा सवाल लीजिए जिसे वह हल नहीं कर सकती किन्तु उसके लिए उसके पूर्व ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है। अब मार्गदर्शन के ऊपर दिए गए सिद्धांतों के आध ाार पर उसके साथ चरण—दर—चरण आगे बढ़िए। उसके साथ आप जिन चरणों से गुजरें उनको देखिए और नोट कीजिए। सीखने की उन अवस्थाओं का वर्णन कीजिए जिनसे होकर वह गुजरती है।

• गणित की किसी कक्षा की प्रक्रिया को देखिए। यह वर्णन कीजिए कि कौन सा विषय पढ़ाया जा रहा था और शिक्षण कैसे चल रहा था। वहां चल रहे शिक्षण और यहां जिस ढंग के मार्ग—दर्शित व सहयोगी सीखने की बात की गई, उनके बीच क्या—क्या अन्तर दिखे?

आइए, अब इस बात पर विचार करते हैं कि कुछ बच्चे जो स्कूल से बाहर हिसाब करने में दक्ष होते हैं, क्यों वे स्कूल आकर गणित में बुरी तरह नाकाम रहते हैं।

अनौपचारिक सीखने के लक्षण

आपने ऐसे कई उदाहरण देखे जिनमें दिखता है कि स्कूल आने से पहले ही बच्चे कितना सीखते हैं और जानते हैं। आपने देखा कि स्कूल से बाहर सीखने का एक महत्वपूर्ण पहलू यह होता है कि सीखने की स्थिति में सार्थकता होती है। इस पहलू के असर के बारे में कई वर्षों पहले एक रूसी मनोवैज्ञानिक ने बच्चों की याददाश्त को लेकर कुछ आसान प्रयोग किए थे। बच्चों को कुछ चीजों की सूची याद करने को दी गई और फिर यह जांच की गई कि उन्हें कितनी चीजें याद रहीं। इसके बाद प्रयोगकर्त्ता ने बच्चों के लिए एक खेल की रचना की जिसमें एक बच्ची दुकानदार बन गई और शेष बच्चे ग्राहक। 'ग्राहकों' को अब वही सूची दे दी गई मगर इस रूप में कि उन्हें दुकान से इन चीज़ों की जरूरत है। जब बच्चों को सूची इस रूप में दी गई, तो देखा गया कि बच्चे पहले की अपेक्षा इसे बेहतर याद रख पाए। अब उनके पास एक सार्थक संदर्भ था, याद रखने का एक उद्देश्य था। चूंकि उनके लिए अब इसका कुछ अर्थ था, इसलिए वे सूची को ज्यादा आसानी से याद रख पाए। यही बात अगले उदाहरण से भी निकालती है।

उदाहरण 4 : 10 वर्षीय शकील दिल्ली की सड़कों पर अख़बार बेचता है। यह काम वह अपने दो बड़े भाइयों के साथ मिलकर करता है ताकि अपने पिता की कम आमदनी को बढ़ा सके। उसके पिता शहर में मजदूरी करते हैं। खरीदने बेचने की उसकी क्षमता के बारे में मैने उससे कुछ बातचीत की, जो यहां प्रस्तुत है।

मैं : आज तुम्हें कितने अखबार मिले थे ?

शकील : 20

मैं : इन्हें कितने में बेचोगे ?

शकील : 30 रूपए में क्योंकि हर अखबार डेढ़ रूपए में बिकता है।

मैं : तो तुम कितना कमा लेते हो ?

शकील : 5 रुपए क्योंकि हम 24 रुपए कल का अखबार खरीदने के लिए रख लेते हैं।

मैं : और यदि तुम 10 अखबार ही बेचो, तो ?

शकील : तो मुझे उससे आधी कमाई होगी।

मैं : यानी कितनी ?

शकील : ढाई रूपए ।

मैं : लेकिन, अगर तुमने अखबार 25 रूपए में खरीदे हैं, तो क्या तुम्हें इसमें नुकसान नहीं होगा ?

शकील : नहीं, मुझे कम मुनाफा मिलेगा क्योंकि मैं बाकी बचे अखबार एजेन्ट को लौटा सकता हूं और वह कल के अखबार दे देगा। अगर मैं सारे अखबार बेच दूं तो अच्छा रहता है – हमें 5 रूपए मिल जाते हैं।

मैं : 30 रूपए का तुम क्या करोगे ?

शकील : अपने भाई को दे देता हूं। वह कल के अखबार के पैसे बचाकर बाकी घर पर दे देता है। लेकिन वह कभी–कभी कुछ पैसे मुझे दे देता है। उससे मैं कुछ अपने लिए खरीद लेता हूं।

जब मैंने यह जानने की कोशिश की ये बच्चे इतना सब कुछ कैसे सीखते हैं, तो मैंने पाया कि जब बच्चे अखबार बेचना शुरू करते हैं, तो शुरू में वे यह काम अपने बड़े भाई–बहन या मां–बाप की निगरानी में करते हैं। पहले प्रत्येक बच्चे को थोड़े से अखबार दिए जाते हैं और फिर धीरे–धीरे संख्या बढ़ाई जाती है। शुरू–शुरू में बच्ची अखबार खरीदने का काम खुद नहीं करती। जब तक वह पैसा संभालना और कीमतों की आदी नहीं जाती, तब तक उसे अखबार खरीदकर दे दिए जाते हैं।

शकील के परिवार के बड़ों और बच्चों से बात करते हुए मैंने पाया कि इस सारी प्रक्रिया में न तो शकील को कम करके आंका जाता है और न ही उससे किसी बड़े की नकल करने की उम्मीद की जाती है। कुछ बातों पर बातचीत होती है, लेकिन इसके बाद उसे अपने ढंग से काम करने और पहल करने तथा ग्राहकों से सम्पर्क के नए तरीके खोजने की छूट होती है। बड़े भाई–बहनों को बच्ची की सीखने की क्षमता में भरोसा होता है। कई बार उसके काम के बारे में कठोर टिप्पणी की जाती है, किन्तु वे सीखने वाली का अपमान करने या उसे जलील करने के मक़सद से नहीं होती।

ऊपर दिया गया उदाहरण यह दर्शाता है कि जब बच्ची को किसी गतिविधि का मकसद समझ में आ जाए और वह उसमें सक्रिय रूप से भाग ले, तब उस गतिविधि के नियम और तर्क उसकी समझ में आने लगते हैं। इससे उसे संबंधित अवधारणा सीखने में मदद मिलती है। अखबारों को खरीदने बेचने में नफा–नुकसान का हिसाब या अखबारों की कीमत की गणना शकील के लिए सिर्फ पाठ्यपुस्तकीय दिमागी कवायद नहीं है। वह तो सड़कों पर है, एजेन्ट से अखबारों को खरीदने में भिड़ता है। अखबार खरीदने के बाद उसे अधिक अखबार बेचने की जी–तोड़ कोशिश करनी होती है क्योंकि परिवार को पैसे की सख़्त जरूरत है।

शकील की स्थिति की तुलना 12 वर्षीय नीतू की स्थिति से कीजिए जो कक्षा 5 में पढ़ती है। मैंने स्कूल की पाठ्यपुस्तक में से उसे निम्नलिखित सवाल हल करने को कहा : ''एक दुकानदार 1 रूपए 50 पैसे प्रति पेंसिल की दर से 10 पेंसिलें खरीदता है। यदि वह इन्हें 2–2 रूपए में बेचे, तो उसे कितना मुनाफा होगा ?'' काफी सोचने के बाद नीतू का जवाब था, ''मैं जोडूं या गुणा करूं ?'' आप बता दीजिए, तो मैं कर दूंगी ?

नीतू के लिए यह एक अमूर्त सवाल है। उसे पता है कि इसमें कुछ नियम लागू करने होते हैं। परन्तु इन नियमों के तर्क का उसके लिए कोई वास्तविक अर्थ नहीं है। लिहाजा उसे पता नहीं कि आगे कैसे बढ़ें। हमारी कक्षाओं में बच्चे की रोज़मर्रा की जिन्दगी से जुड़ी स्थितियां और सामग्री को इस्तेमाल करने की जरूरत है। पाठ्यपुस्तकों की सामग्री को बच्चों की विचार प्रक्रिया से जोड़ने के तरीकों को भी ढूंढना चाहिए। तब हम देखेंगे कि बच्चों को स्कूल के काम में कम परेशानी होगी।

स्कूल के बाहर सीखने का दूसरा लक्षण है कि यह एक ऐसे माहौल में होता है जहां आस–पड़ोस के लोगों का सहारा है। सीखने की प्रक्रिया का मार्गदर्शन ऐसे लोग करते हैं जो ज्यादा जानकार हैं और जो बच्चे को कम करके नहीं आंकते। उदाहरण 4 में हमने देखा कि शकील को बस अखबार की लागत व बिक्री दर का एक पाठ नहीं पढ़ा डाला। उसे सावधानीपूर्वक पैसे संभालने और अखबार बेचने के काम में नए–नए तरीके ढूंढने की अनुमति दी। वे उसका अपमान कभी नहीं करते, उसका हौसला नहीं तोड़ते।

गणितीय हुनर सीखने का एक और अनौपचारिक तरीका वे तमाम खेल हैं जो बच्चे खेलते हैं। खेलते वक्त बच्चे प्रायः स्कोर का ध्यान रखते हैं, और इस दौरान अपनी गिनने की स्कीम का विकास करते हैं। इस प्रक्रिया में अन्य बच्चों की मदद मिलती है क्योंकि वे भी इस गिनती पर नज़र रखते हैं। यदि कोई बच्ची गलत गिन दे तो बाकी बच्चे फट से उसकी गलती पकड़ के ठीक कर देते हैं। इस तरह से बच्ची के हुनर में सुधार होता है। खेलों में भाग लेने से बच्चों को अन्य बच्चों की निगरानी में कई हुनर हासिल करने का मौका मिलता है। अखबार बेचना सीखने के ही समान, यहां भी कुशल मार्गदर्शक एक अहम सहारा व जानकारी का ज़रिया होता है, जिसे बच्ची चाहे तो इस्तेमाल कर सकती है।

जो उदाहरण हमने प्रस्तुत किए, उनसे आप स्कूल से बाहर सीखने का तीसरा लक्षण समझ ही गए होंगे। यह लक्षण है 'करते–करते सीखना'। स्कूल में बहुत ज्यादा ज़ोर इस बात पर होता है कि बच्चों को लिखित या उच्चारित शब्दों द्वारा हुनर व ज्ञान देना। कक्षा का शिक्षण प्रायः बच्ची के अपने अनुभवों को स्कूल की पढ़ाई में सम्मिलित नहीं करता। दरअसल और इस पाठ्यक्रम में हमारी कोशिश है कि आप बच्चों के साथ अभ्यास व गतिविधियां करके उनके बारे में जान पाएं।

आइए, अब अनौपचारिक सीखने के प्रमुख लक्षणों को संक्षेप में लिख लें। हमने देखा कि सीखने की अनौपचारिक परिस्थिति में –

1) संदर्भ बच्ची के नज़दीक व उससे जुड़ा होता है।

2) बच्ची को अवधारणा/प्रक्रिया /हुनर सीखने का मकसद दिखता है।

3) वह इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से हिस्सा लेती है और इस पर कुछ हद तक उसका नियंत्रण भी होता है।

4) जो भी बच्ची को मार्गदर्शन देती है, वह बच्ची को और उसकी गलतियों को सहानुभूतिपूर्ण नज़रिए से देखें तथा उसकी क्षमताओं का आदर करती है।

आप शायद इस सूची में और बिन्दु जोड़ना चाहें। अगले दो अभ्यास इसमें आपकी मदद करेंगे।

कुछ प्रश्न

• यदि बच्चों के लिए स्कूल से बाहर सीखना इतना आसान है, तो क्या स्कूली शिक्षण का कोई उपयोग नहीं? ध्यानपूर्वक विचार कीजिए कि स्कूल में हम जो कुछ सीखते हैं, उसका क्या लाभ है।

अनौपचारिक सीखने के जिन मॉडलों और उदाहरणों पर हमने चर्चा की, वे हमें बेहतर शिक्षक बनने में मदद कर सकते हैं। इनसे एक ऐसा तरीका मिलता है जो बच्चों को सीखने के लिये प्रेरित कर सकता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे सिर्फ अनौपचारिक स्थितियों में ही सीख सकते हैं। वास्तव में, यदि आपने कुछ प्रश्न किये हैं तो आप देख पाएंगे कि स्कूल से बाहर सीखना व्यक्ति के अनुभव तक सीमित रह जाता है। मसलन, उदाहरण 4 के शकील को शायद ऐसी संख्याओं को जोड़ने व गुणा करने में भी दिक्कत हो, जिनके साथ उसका अनुभव नहीं है। यही औपचारिक सीखने की भूमिका सामने आती है– सीखने वाली को उन अवधारणाओं का व्यापकीकरण करने में मदद देना जिनसे वह कुछ हद तक वाकिफ़ है।

हम शिक्षकों को यह कोशिश करनी चाहिए कि औपचारिक तंत्र को जहां तक हो सके अनौपचारिक बनाएं। हमें अनौपचारिक सीखने के गुणों को कक्षा में लाने की कोशिश करनी चाहिए। अनौपचारिक तरीके का इस्तेमाल करते हुए हमें सीखने वाली में औपचारिक गणित के हुनर विकसित करना चाहिए। हमें सीखनेवाली को अमूर्त गणितीय अवधारणाओं के परस्पर संबंधों की समझ बनाने में मदद देने के लिए शुरू–शुरू में उसको परिचित ठोस चीजों और स्थितियों का इस्तेमाल करना चाहिए। जब बच्ची बड़ी होगी और उसकी गणितीय क्षमताएं विकसित हो जाएंगी, तब वह बगैर ठोस संदर्भ के भी गणित सीख पाएगी। इसी तरह से वह उच्चतर स्तर के गणित को आराम से समझ पाएगी।

सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित बिन्दुओं पर चर्चा की–

1) एक रचनावादी का मत होता है कि बच्चे दुनिया पर क्रिया करके सीखते हैं और अपने अनुभवों के आधार पर अपनी समझ को विकसित करते हैं।

2) स्कीमा व आरेखीय निरूपण वे दो अवधारणाएं हैं जो हमें यह समझने में मदद देती हैं कि बच्चे अपनी समझ कैसे विकसित करते हैं।

3) स्कीमा दुनिया पर क्रिया करने के व्यापकीकृत तरीके को कहते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में बार–बार लागू करने से इसमें विस्तार आता है।

4) आरेखीय निरूपण किसी अवधारणा की समझ का प्रस्तुतीकरण होता है।

5) सम्मिलन व समायोजन की समानान्तर प्रक्रियाओं के ज़रिए स्कीमा व आरेखीय निरूपण का विस्तार होता है। अर्थात् अपने स्कीमा व आरेखीय निरूपण के सम्मिलन व समायोजन के परिणामस्वरूप ही सीखना सम्पन्न होता है।

6) शिक्षक को बच्ची का मददगार ही होना चाहिए और उसे खुद अपनी समझ विकसित करने में मदद देनी चाहिए। उसे कदम–कदम पर बच्ची को हर बात नहीं बतानी चाहिए।

7) बच्चे कक्षा से बाहर काफी कुछ सीखते हैं। इस अनौपचारिक सीखने के गुणों को शिक्षकों को समझना चाहिए। इस समझ का उपयोग कक्षा में बच्चों को सीखने में मदद देने के लिए किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. पियाजे के सिद्वांत को संज्ञानात्मक विकास तक ले जाने वाला रचनात्मक मार्ग क्यों कहा गया हैं?
2. संवेदी – क्रियात्मक अवस्था (sensorimotor stage) के कोई पाँच महत्वपूर्ण लक्षण लिखिये?
3. किसी एक उदाहरण से प्रतीक व वास्तविक चीज़ का संबंध समझ लेने की दृष्टि मिलने पर बच्चे के लिए कौन सी संभावनाएं खुल जाती है?
4. यदि एक सी आकृतियों से चित्रकारी की शुरूआत होती है तो अलग–अलग जगह के लोग अलग–अलग शैलियों के चित्र कैसे बनाने लगते हैं........
5. पूर्व संक्रियात्मक सोच में विपरीत–प्रक्रिया का अभाव होता है – इस कथन से आप क्या समझते है?
6. विपरीत प्रक्रिया के अभाव से बच्चों के संज्ञान का स्वरूप कैसा होता है?

7. यदि एक बच्चा संख्या का संरक्षण कर लेता है तो क्या यह जरूरी है कि वह उसी समय वह द्रव, लंबाई, मात्रा और भार का संरक्षण भी समझाकर कर पाएगा

8. संरक्षण, वर्गीकरण, क्रमिकता समझ आदि को समझने में प्रशिक्षण, प्रसंग और सांस्कृतिक स्थितियों का भारी प्रभाव पड़ता है– क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं उदाहरण से स्पष्ट कीजिए।

9. औपचारिक संक्रियात्मक सोच की क्षमता का अलग–अलग लोगों के जीवन में क्या महत्व हो सकता है।

10. दृष्टिकोण निर्माण किस उम्र में होता है और इसके क्या प्रभाव होते हैं ?

11. अमूर्त विचारों पर आधारित प्रतीकों वाले ढांचे का उपयोग छात्र स्कूली शिक्षा में किस स्तर पर किन विषयों के लिए कर पाते हैं?

12. क्या आप अपने आपको फार्मल ऑपरेशनल सोच रखने वाला समझते हैं? क्या आपको लगता है कि आप भी कभी कॉंक्रीट ऑपरेशनल सोच रखते हैं? उदाहरण दीजिए?

13. वायगोत्सकी द्वारा दिए हुए सिद्धांत की पियाजे के सिद्धांत से तुलना कीजिए?

14. वायगोत्सकी के स्क्रेपफोल्डिंग व निकट विकास क्षेत्र Z (PD) सिद्धांत की समझ वर्ग कार्य में शिक्षक को किस प्रकार मदद करती है, समझाइए?

15. बैंकिंग और प्रोग्रामिंग मॉडल से आपने क्या–क्या और किस तरह के सिद्धांत सीखे हैं? दोनों मॉडल से जुड़ा हुआ एक उदाहरण दीजिए और समझाइए?

अध्याय – 5

खेल तथा विकास में खेल का महत्व

पाठ की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- उद्देश्य
- खेल क्या है?
- विकास में खेल का महत्व
  - खेल संज्ञानात्मक विकास को आगे बढ़ाता है
  - खेल कल्पनाशीलता और सृजनात्मक को बढ़ावा देता है
  - खेल शारीरिक और क्रियात्मक विकास को बढ़ावा देता है
  - खेल भाषायी विकास में सहायक होता है
  - खेल द्वारा बच्चे सामाजिक होना सीखते हैं
  - खेल भावात्मक विकास में सहायक होता है
- खेलों के प्रकार
  - मुक्त और संरचनात्मक खेल
  - बाहरी और भीतरी खेल
  - वैयक्तिक और सामूहिक खेल
  - ओजस्वी एवं शान्त खेल
  - संवेदी–क्रियात्मक (Sensori motor) और प्रतीकात्मक खेल
- खेल को प्रभावित करने वाले कारक
- प्रमुख गतिविधि : खेल
  - खेल की परिभाषा
  - खेल का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण
  - सामाजिक विकास का एक रूपः खेल
  - संरचनावादी सिद्धान्त और खेल
  - वाइगोत्स्की ढाँचे में खेल का स्थान
  - विकास पर खेल का प्रभाव
  - क्या सभी खेल एक प्रमुख गतिविधि है?
  - खेल की समृद्धि
- सारांश
- अभ्यास प्रश्न

सामान्य परिचय

खेल यकीनन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके ज़रिये हम और जानवर भी, तरह–तरह के अनुभवों को जांचते हैं, परखते हैं और ये देखते हैं कि उन अनुभवों को प्रयोग हम दूसरी परिस्थितियों में विभिन्न उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करते हैं। अपना ही उदाहरण लीजिये, जब हमारे हाथ में एक नया मोबाईल आता है तो हममें से कितने लोग उसके साथ दी गई नियम–पुस्तिका को पढ़ते हैं और कितने ही लोग खुद ही कुछ बटन को दबा के ये खोजना शुरू कर देते हैं कि भला ये मोबाईल काम कैसे करता है। ऐसे ही हैं कुछ बच्चों के खेल।

बार–बार ये कहा जाता है कि बच्चों के कार्यक्रम खेल पर आधारित होने चाहिए, क्योंकि खेल ही बच्चों के सीखने का माध्यम है। हम ऐसा क्यों कहते हैं? खेल क्या है? क्या बच्चे सचमुच खेल से कुछ सीख सकते है? अगर ऐसा है तो वह खेल से क्या सीखते हैं? ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर इस इकाई में मिलेंगे। आप उन सभी कारकों का भी अध्ययन करेंगे जो कि बच्चों के खेल की प्रकृति को प्रभावित करते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई से हम सीख सकेंगे–

- खेल की विशेषताएँ पहचानना।
- संज्ञान के विकास में खेल के महत्व को पहचानना।
- यह समझेंगे कि पालनकर्ता बच्चों को कैसे सहयोग कर सकते हैं।
- बच्चों के शारीरिक ,भाषायी, सामाजिक और भावात्मक एवम् नैतिक विकास में खेल के महत्व को पहचानेंगे।
- बच्चों के खेल पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को समझ सकेंगे।

(i) खेल क्या है?

बच्चा खेल क्यों खेलता है?

सभी बच्चे खेलते हैं। यदि बच्चे मिलकर चुपचाप बैठे रहें और कुछ भी न करें, तो क्या आपको आश्चर्य नहीं होगा। अगर कोई बालिका अकेली भी हो तब भी वह कुछ न कुछ खेलने के लिए ढूँढ ही लेती है। केवल बच्चे ही नहीं अपितु वयस्क भी खेलते हैं। खेल से हमारा क्या तात्पर्य है? चलिए, खेल का अर्थ समझने के लिए हम बच्चों की गतिविधियों/खेलों की ओर ध्यान दें।

तीन वर्षीय अभिनव बगीचे में टहलते हुए पौधों में पानी देने वाली पाइप उठाता है। वह पाइप को जमीन से थोड़ा ऊपर उठा कर घास पर गिरते हुए पानी को ध्यान से देखता है। फिर वह पाइप के अंतिम छोर को एकाग्र होकर देखता है और उसमें अपनी अंगुली डाल देता है। इससे पानी चारों ओर फव्वारे की तरह गिरने लगता है। पाइप से निकलकर कुछ पानी उसके ऊपर और कुछ पौधों पर गिरता है। कुछ देर बाद अभिनव अपनी अंगुली बाहर निकालता है और फिर वापिस पाइप के मुँह में डाल देता है। अगले दस मिनट तक वह इसी क्रिया में तल्लीन रहता है।

पांच महीने की शशि जमीन पर बिछी चादर पर लेटी हुई है और अपनी टांगों और बाहों को मिला रही है। ऐसा करते हुए चादर का एक कोना उसके हाथ में आ जाता है। शशि उसे मुँह में डालने की कोशिश करती है। तभी माँ आकर उसके मुँह से चादर निकाल देती है और उसे खिलौना दे देती है। शशि उसे भी मुँह में डाल लेती है। फिर वह खिलौना हाथ से दबाती है। और पुनः मुँह में डालने की कोशिश करती है।

अगर किसी दर्शक से यह पूछा जाए कि उपर्युक्त भिन्न–भिन्न स्थितियों में बच्चे क्या कर रहे हैं तो शायद यही उत्तर मिलेगा कि, ''वे खेल रहे हैं''। दर्शकों में इस बात पर आम सहमति होती है कि कौन–सा कार्यकलाप खेल है और कौन–सा नहीं है। परंतु जब खेल को परिभाषित करने के लिए कहा जाता है तो कोई भी विशेषज्ञ खेल की किसी एक परिभाषा पर सहमत नहीं होते। इस मतभेद के बावजूद भी खेल की कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनके आधार पर खेल माने जाने वाले गतिविधियों को पहचानने में मदद मिलती है।

> खेल की सबसे पहली विशेषता है कि खेल आमोद–प्रमोद है। खेल में मजा आता है। कोई भी ऐसा कार्यकलाप जिससे बच्चों को आनंद मिलता है खेल है।

एक ही कार्यकलाप किसी के लिए खेल हो सकता है और वही दूसरे के लिए कार्य। उदाहरणतः जब बच्चे कक्षा में सिक्कों को पहचानना सीख रहे हैं तो वह कार्य कर रहे हैं। परन्तु जब वे सब्जी खरीदने और बेचने का खेल खेलते हैं और इस प्रक्रिया से स्वयं ही सिक्कों की पहचान करना सीख जाते हैं तब यह गतिविधि खेल बन जाती है।

दूसरा, खेल अपने आप में ही आनंददायक है। खेलने से बच्चों को बहुत संतोष मिलता है। जब बच्ची बार–बार सीढ़ी पर चढ़ती है और उससे कूदती है तो ऐसा वह इसलिए करती है क्योंकि उसे मजा आता है। न तो यह क्रिया वह अपना कौशल दिखाने के लिए कर रही है, न ही ईनाम पाने के लिए। आनंद के साथ–साथ ऐसा करते समय बालिका के शारीरिक और क्रियात्मक कौशलों का अनायास ही विकास हो रहा है जबकि यह उसका उद्देश्य नहीं है।

अंतिम बात, खेल ऐसी क्रिया है जिसमें बालिका स्वेच्छा और खुशी से हिस्सा लेती है अर्थात् खेलने के लिए उस पर दबाव नहीं डाला जाता है। खेल में उसका योगदान सक्रिय होता है।

वयस्क प्रायः ऐसा मानते हैं कि जब बच्चे खेल रहे हैं तो उस क्रिया के बारे में गंभीर नहीं होते। यह धारणा बिल्कुल गलत है। बच्चे अपने खेल को बहुत संजीदगी से लेते हैं। अगर उनके खेल में कोई व्यक्ति हस्तक्षेप करे या उसमें बदलाव करे, तो बच्चे इसे पसंद नहीं करते। बच्चों के अपनी खेल क्रियाओं के अलग नियम होते हैं।

कुछ प्रश्न

• आप अपने आस–पास के बच्चों के द्वारा खेले जाने वाले खेलों की सूची बनाइए?

• आप अपने आस–पास के बच्चों को खेल खेलते समय अवलोकन करें और खेल के माध्यम से बच्चों में हो रहे सामाजिक विकास पर एक लेख लिखें?

शोधकर्ताओं ने यह जानने की कोशिश की है कि बच्चे और वयस्क अपना काफी समय खेल में क्यों व्यतीत करते हैं। इस बारे में अलग–अलग विचार हैं। कुछ शोधकर्ताओं के मतानुसार खेल और जीवन की समस्याओं और वास्तविकताओं से पलायन है और दुखों को भुलाने का एक माध्यम है। कुछ व्यक्ति खेल को एक विश्रामदायक क्रिया के रूप में भी देखते हैं। अन्य लोगों का दृष्टिकोण यह है कि खेल द्वारा हमारे शरीर की अतिरिक्त ऊर्जा खर्च होती है। बच्चों के खेल के बारे में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण यह है कि इसके द्वारा बच्चे वयस्कों की भूमिका निभाने के लिए तैयार होते हैं।

सभी शोधकर्ता इस बात से सहमत हैं कि बच्चे खेल द्वारा बहुत कुछ सीखते हैं और खेल से विकास को गति मिलती है। अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि जिन बच्चों को खेलने के अवसर और प्रेरणा नहीं मिलते वे विकास के हर क्षेत्र में पिछ़ड जाते हैं। अनाथालय और इसी प्रकार की संस्थाओं में रहने वाले बच्चों के अवलोकन द्वारा कुछ प्रमाण मिले हैं। इस प्रकार की सभी संस्थाएँ बच्चों को भोजन, आश्रय, शारीरिक देखभाल, कपड़ा और शिक्षा प्रदान करती हैं। परन्तु शोध से यह पता चलता है कि अधिकतर मामलों में यह संस्थाएँ अनुकूलतम विकास के लिए उचित वातावरण प्रदान नहीं कर पाती। प्रायः एक ही पालनकर्ता बहुत सारे बच्चों की देखभाल करती है और इस कारण हर बच्चे को पर्याप्त समय नहीं दे पाती। वहाँ न तो शिशुओं से कोई अतिरिक्त बात करता है, न उन्हें दुलारता है और न ही कोई उनसे खेलता है। ऐसे मौकों पर कम से कम अंतःक्रिया होती है। ऐसी स्थिति में पालनकर्ता और बालिका में परस्पर स्नेह का अभाव रहता है और बालिका अपने आप को भावात्मक रूप से सुरक्षित महसूस नहीं कर पाती। ऐसी कई संस्थाओं में यह भी देखा गया कि शिशुओं को जिन पालनों में लिटाया गया था वे चारों ओर से कपड़े से ढका गया था जिसके कारण शिशु पालने के बाहर कुछ नहीं देख पाते थे। बच्चों के पास पालने से लटके खिलौनों के अतिरिक्त कोई खिलौने नहीं थे और यह खिलौने भी इतनी दूर लटके हुए थे कि बच्चे इन तक पहुँच नहीं पाते थे। बच्चों का सारा दिन पालने में पड़े–पड़े बीतता था और उन्हें कुछ नया देखने, सुनने या छूने को नहीं मिलता था। अवलोकन में यह पाया गया कि इन बच्चों की संज्ञानात्मक, भाषा संबंधी और शारीरिक विकास की गति अन्य बच्चों की तुलना में धीमी थी।

कुछ प्रश्न

- खेल से कौन–कौन से उद्देश्य पूरे होते हैं? उदाहरण द्वारा समझाइए।
- खेल की क्या–क्या विशेषतायें होती हैं? उदाहरण द्वारा समझाइए।
- आपके विचार में क्या सही है और क्यों–
  - (i) बच्चे कुछ सीखने के लिए खेलते हैं।
  - (ii) बच्चे खेलने के लिए कुछ सीखते हैं।

(ii) विकास में खेल का महत्व

आइए, अब हम विस्तृत रूप से यह पढ़ें कि खेल का विकास में क्या महत्व है।

खेल संज्ञानात्मक विकास को आगे बढ़ाता है

आप जानते हैं कि बच्चे जिज्ञासु प्रकृति के होते हैं। खेलते हुए बच्चों को वस्तुएँ छूने, उन्हें ध्यान से देखने और आसपास के वातावरण की छानबीन करने का मौका मिलता है और इससे उन्हें अपने मन में उठते हुए अनेक प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। खेल क्रियाओं के माध्यम से वे आम घटनाओं के घटित होने के कारण भी समझने लगते हैं। बच्चों को इच्छानुसार खेलने के अवसर देने से हम उनकी सीखने में मदद करते हैं। खेल बच्चों को खोज करने और उसके द्वारा स्वयं सीखने का अवसर प्राप्त होता है। खोज का अर्थ है घटनाओं और वस्तुओं के बारे में स्वयं पता लगाना। आइए, इस तथ्य को हम राधा का उदाहरण लेकर समझें। निम्नलिखित घटना यह दर्शाती है कि किस प्रकार चार वर्षीय राधा ने खेल ही खेल में मिट्टी के बर्तन की विशेषताओं के बारे में जाना।

राधा दीवार के सहारे खड़ी सीढ़ी पर खेल रही थी। खेलते हुए उसने पास पड़ा एक मिट्टी का बर्तन देखा और उससे खेलने लगी। राधा उसमें मिट्टी भरती और फिर खाली कर देती। कुछ समय बाद उसने बर्तन को सीढ़ी के आखिरी कदम पर रखने की कोशिश की। बर्तन गिर कर टूट गया। उसने टूटे हुए टुकड़ों की ओर थोड़ी देर तक देखा। फिर उसने एक टुकड़ा उठाया और दोबारा सीढ़ी पर रख दिया। वह टुकड़ा भी गिर गया और उसके कई छोटे–छोटे टुकड़े हो गए। राधा ने इनमें से एक छोटे टुकड़े पर पुनः वह प्रयोग किया। इस बार जब टुकड़ा गिरा तो टूटा नहीं। राधा ने यह टुकड़ा उठाया, उसे थोड़ी देर ध्यान से देखा और फिर उसे फेंक कर वह घर के अंदर चली गई।

राधा ने कई बार टुकड़े को संतुलित करने की कोशिश की और उसे गिरते हुए देखा–इससे यह स्पष्ट होता है कि उसकी जिज्ञासा जागृत हो गई थी। शायद उसके मस्तिष्क में यह सवाल उठे हों,' ''क्या वह टुकड़ा भी गिरेगा?'' ''अगर गिरा तो क्या यह भी टूट जाएगा?'' और इसलिए उसने उस टुकड़े को बार–बार सीढ़ी पर स्थिर रखने की कोशिश की। जब तीसरी बार टुकड़ा नहीं टूटा तब वह उतनी ही उत्सुक थी। शायद अपने ही ढंग से वह यह समझ गई कि बहुत छोटा टुकड़ा नहीं टूटता है पर निश्चय ही वह यह जानने के लिए उत्सुक होगी। संभव है वह किसी से पूछे कि हर बार टुकड़े नीचे क्यों गिरे और टूट गए और आखिरी टुकड़ा क्यों नहीं टूटा? यह तो निश्चित है कि खेलों के दौरान उसे ऐसे ही कई अनुभव होंगे जो उसे यह समझाने में सहायक होंगे कि वस्तुओं के गिरने पर क्या होता है।

यह सत्य है कि अगर उस छोटे टुकड़े को जोर से फेंका जाए तो वह भी टूट जाएगा और हो सकता है एक बड़ा बच्चा यह कोशिश करके देखता। परन्तु राधा में अभी इस बात को समझने की क्षमता नहीं है और इस कारण उसने वह टुकड़ा ज़ोर से नहीं फेंका। इससे यह स्पष्ट होता है कि बालिका वही सीखती है जिसके लिए वह ज्ञानात्मक रूप से तैयार है। जैसा कि यह बात इस तथ्य से भी संबंधित है कि बालिका को जो प्रेरक लगता है वह उसके ज्ञानात्मक कौशलों पर निर्भर करता है।

खेल किस प्रकार विकास में सहायक होता है, आइए, अब इसके दूसरे मुद्दे पर विचार करें। खेल में बालिका को अपनी रूचि के अनुसार क्रियाएँ चुनने की स्वतंत्रता होती है इस कारण वह ऐसे खेल चुनती है जो उसके

लिए न तो बहुत सरल हों न ही बहुत कठिन परन्तु चुनौतीपूर्ण हों। इस प्रकार वह उन चीजों को सीखती है जिन्हें सीखने के लिए वह तैयार होती हैं। इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया बोझ न बनकर आनंददायक हो जाती है। साथ ही साथ बच्चे खेल में क्रियाकलाप द्वारा सीखते हैं। ऐसा करने से संकल्पनाओं को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। यदि बच्चों को किसी संकल्पना के बारे में केवल मौखिक रूप में बताया जाए और स्वयं करने को मौका नहीं दिया जाए तो वह उसे इतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाएंगे। यह बात आपने स्वयं अनुभव भी की होगी। उदाहरण के लिए अपने किसी मित्र के मुख से पकवान बनाने की विधि सुनकर उतना नहीं सीखा जा सकता जितना कि स्वयं पकवान बनाकर। उसी प्रकार अगर आपने राधा को केवल बताया ही होता कि मिट्टी से बना एक छोटा सा टुकड़ा गिरने पर नहीं टूटेगा तो यह लगभग निश्चित है कि राधा को यह बात समझ नहीं आती और वह इस जानकारी में रूचि भी नहीं लेती

पालनकर्ता की भूमिका – यह तथ्य कि 'बच्चे कुछ करने से ही सीखते है' का अर्थ यह नहीं है कि पालनकर्ता की उसमें कोई भूमिका ही नहीं है। सबसे पहले पालनकर्ता की आवश्यकता इसलिए है कि वह बच्चों को उनकी खोज समझाने में मदद कर सके। शायद राधा यह समझ गई हो कि छोटे–टुकड़े नहीं टूटते हैं पर यह हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते। यह तो है ही कि ऐसे अन्य अवसर मिलने पर वह यह बात समझ जाएगी। परन्तु पालनकर्ता यह सीखने में उसकी मदद कर सकती है। उदाहरणतः अगर पालनकर्ता राधा के साथ होती तो वह राधा का ध्यान उन संभावनाओं की ओर केन्द्रित कर सकती थी जिसके बारे में राधा ने सोचा नहीं था। वह यह कह सकती थी कि, ''राधा, क्या तुमने यह देखा कि बरतन तो टूट गया पर छोटे टुकड़े नहीं टूटे?''

द्वितीय पालनकर्ता बच्चे की खोज को विस्तृत कर सकती है। वह राधा से नए प्रयोग करने को कह सकती थी जैसे कि, ''राधा, अब इस छोटे टुकड़े को मुलायम सतह पर फेंको जैसे घास, रेत या पानी और देखो कि क्या होता है।'' इससे यह प्रयोग अन्य खोज का कारण बनता, जैसे घास में मिट्टी का टुकड़ा नहीं टूटता इत्यादि। इसके साथ–साथ पालनकर्ता को चाहिए कि बच्चों को खोज के लिए अवसर प्रदान करे। बच्चे नया सीखते हैं जब उन्हें खेल सामग्री से खेलने दिया जाता है और स्वयं कुछ करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

अंत में, पालनकर्ता को सदैव इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि बच्चे स्वयं कुछ भी करें। उसे बच्चों के लिए ऐसी परिस्थितियों का आयोजन करना चाहिए जिनके द्वारा बच्चे नया सीख सकें। जब पालनकर्ता ऐसा कर रही हो तो उसे बच्चों की रूचि और संज्ञानात्मक विकास के स्तर को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरणतः पानी से खेले जाने वाले खेलों को लीजिए। बच्चों को पानी से भरा बर्तन और कुछ अलग–अलग तरह की वस्तुएँ –जिसमें से कुछ पानी में तैरेंगे और कुछ डूबने वाली हों, दीजिए। जब बच्चे इन चीजों को पानी में डालेंगे तो वे देखेंगे कि कुछ जैसे–पत्ते, टहनियाँ और कागज के टुकड़े तो पानी के ऊपर तैरते हैं जबकि चम्मच, पत्थर आदि पानी में डूब जाते हैं। तत्पश्चात् आप बच्चों से इस विषय पर चर्चा कर सकते हैं कि क्यों कुछ वस्तुएँ डूब जाती हैं और कुछ क्यों तैरती रहती हैं।

इस प्रकार पालनकर्ता बच्चों को खेल के माध्यम से रंग, आकार, अंक, मौसम, विभिन्न प्रकार की चिड़ियों और पौधों इत्यादि के बारे में जानने में मदद कर सकती है। खेल द्वारा बच्चे छोटी, लंबी और ठिगनी, हलकी और भारी जैसी संकल्पनाओं से भी परिचित होते हैं। जिस प्रकार ज्ञानात्मक विकास के लिए पालनकर्ता को क्रियाकलाप आयोजित करना है उसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में विकास प्रोत्साहित करने के लिए भी पालनकर्ता को विकास अनुसार क्रियाकलाप आयोजित करने चाहिए।

कुछ प्रश्न

- खेल द्वारा बच्चों के विकास में पालनकर्ता की भूमिका को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए?
- नीचे दिए विकल्पों में से चुनकर खाली स्थान भरिये–

  बच्चे,,,,,,,,,,,,,,,,,, हैं कि वे क्या सीखने के लिए ,,,,,,,,,,,,,,,, हैं इसलिए वे ऐसे ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,चुनते हैं जो उनके लिए न ज्यादा,,,,,,,,,,,,,,हों, न ज्यादा,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, हो। खेल में ही उन्हें अपनी ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, के अनुसार भाग लेने दिया जाता हैं और सारे फैसले ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, दिये जाते हैं तो खेल के द्वारा वे अपना ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, कर पाते हैं

  (लेने, खेल, विकास,जानते, कठिन, तैयार,सरल, मर्जी)

विचार कीजिए

- अगर आप यह कोशिश करें कि बच्चे केवल वही खेल खेलें जो आप उनको खिलाएँ, तोः–

  – आप किस हद तक सफल हो पायेंगे?

  – बच्चों पर आपकी कोशिश का क्या असर पड़ेगा?

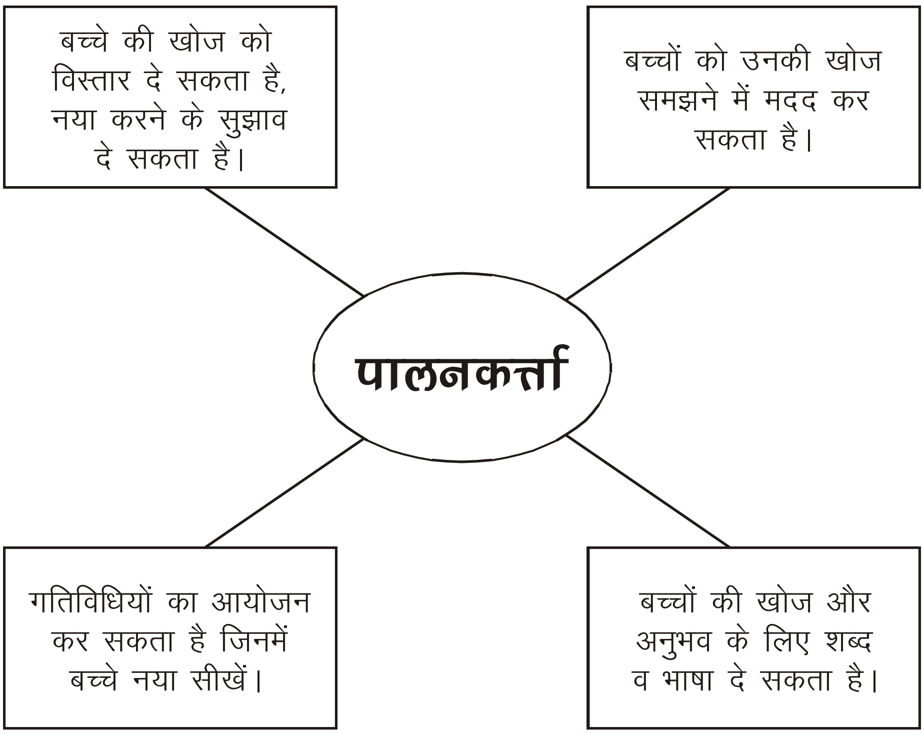

- पालनकर्ता की जो भूमिकायें आकृति में दिखाई गई हैं, उनके लिए एक–एक उदाहरण दीजिए?

आइये करें–

- आप अपने आस–पास के बच्चों को 5 प्रकार के खेल खिलाइए–
- अपने अनुभवों की समीक्षा करिए कि–
    - क्या आपने सही खेल चुना था?
    - क्या सभी बच्चों ने उसमें भाग लिया था?
    - उस खेल को खेलने के लिए सबने क्या सीखा?
    - उन्हें उनमें कितनी देर तक आनंद आया?
    - आपने उन बच्चों के बारे में क्या–क्या सीखा?

खेल कल्पनाशीलता और सृजनात्मक को बढ़ावा देता है

खेल में बच्चे कल्पना द्वारा अलग–अलग भूमिकाएँ निभाते हैं। ऐसा करते हुए उनकी बुद्धि और व्यवहार उसी व्यक्ति के अनुसार होता है जिनकी वह भूमिका कर रहे हैं। इस कारण वे उन व्यक्तियों के विचार और भावनाओं को भी प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणतः खेल बालिका गुड़िया की माँ बनकर गुड़िया को कहती है कि उसे टॉफी नहीं मिलेगी क्योंकि उसके लिए हानिकारक है। शायद उसने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि जब बालिका ने देखा–'खेल में माँ की नकल करके उचित व्यवहार सीख रही है।

नाटक करना बच्चों के खेल का एक अभिन्न हिस्सा है। खेल में बालिका वास्तविकता से कट और बहुत कुछ सृजनात्मक करती है। एक टूटी प्लेट तीन वर्षीय बालिका के लिए टेबल बन जाती है और एक दस वर्षीय बालक के लिए अंतरिक्ष यान। माचिस के डिब्बों की पंक्ति रेलगाड़ी बन जाती है और इस रेलगाड़ी से खेलते हुए बच्चे जंगल से गुजरने नदी पार करने और डकैतों से लड़ने का नाटक करते हैं। आप यह देखकर हैरान हो जाएंगे कि रेल पटरी पर न चल सड़क पर ही चल रही है। यह आवश्यक नहीं है कि खेल यथार्थ ही दर्शाए। खेल कल्पना शक्ति को विकसित करता है और यह बच्चों को दैनिक स्थितियों से जूझने में मदद करता है।

खेल शारीरिक और क्रियात्मक विकास को बढ़ावा देता है

आपने पढ़ा कि शारीरिक और क्रियात्मक कौशलों का विकास अभ्यास करने पर निर्भर करता है। खेल ऐसी क्रिया है जो बच्चों को अभ्यास के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। निम्नलिखित घटना इस बात को स्पष्ट करती है। एक माँ जब चार महीने के शिशु के आगे एक झुनझुना रख देती है। शिशु का ध्यान झुनझुना की तरफ आकर्षित होता है। और वह अपनी पीठ से पेट पर पलट कर उस तक पहुँचने की कोशिश करता है। यह करने के लिये माँसपेशियों का समन्वय जरूरी है। बार–बार झुनझुने तक पहुँचने के प्रयास में शिशु को मिट्टी खाने का अवसर मिलता है और धीरे–धीरे वह आसानी से कर लेता है।

बच्चे जब ईंटों की एक पंक्ति पर चलने की कोशिश करते हैं, दीवार फाँदते हैं, सीढ़ी चढ़ते हैं, झूलों में लटकते हैं, दौड़ने के खेल खेलते हैं, साइकिल की सवारी करते हैं तो उनकी बहुत माँसपेशियों का समन्वय बढ़ता है। खेल–खेल में जमीन में गड्ढे खोदने, फूलों के हार बनाने, चित्र बनाने और उनमें रंग भरने में बच्चों की लघु माँसपेशियों का विकास होता है।

खेल भाषायी विकास में सहायक होता है

इस खंड में आप पढ़ेंगे कि बच्चे खेल–खेल में बोलना कैसे सीखते हैं। परंतु यह तो स्पष्ट है कि भाषा जानने के लिए उनका भाषा को सुन पाना और बोल पाना आवश्यक है। पालनकर्ता के साथ विनोदशील क्रियाओं में बच्ची को भाषा सुनने के बहुत अवसर मिलते हैं जो उसे बोलने के लिए प्रेरित करते हैं। जब बालिका करीब नौ महीने की होती है तब वह ''गा गा गा'', ''बे बे बे'', ''मा मा मा'', ''मम मम'', जैसे कई स्वर निकालती है। इनमें से कुछ वयस्कों की भाषा की शुरूआत हैं। इस अंतः क्रिया के दौरान बालिका विभिन्न ध्वनियों के बीच बोलना सीखती है। यह क्षमता उसे बाद में ''अब्बा'' और ''अम्मा'' जैसे शब्दों में भेद करने मदद करती है और वह उन्हें अलग–अलग शब्दों के रूप में पहचान पाती है।

बच्चे चौकोर, गोल, सीधी और वक्र रेखा जैसी विभिन्न आकृतियों को भी समझने लगते हैं जो बाद में उन्हें भिन्न अक्षरों को पहचानने में मदद करते हैं। खेलते हुए बच्चे यह देखते हैं कि काला और लाल वृत्त या छोटा और बड़ा वृत्त सभी गोलाकार हैं। इससे उन्हें समझने में मदद मिलेगी कि 'क' अक्षर 'क' ही रहता है चाहें वह शब्द के शुरू में हो या अंत में। खेल में वह पहले और बाद, बाएँ और दाएँ, ऊपर और नीचे जैसी संकल्पनाओं का अर्थ सीखती है जो कि लिखना और पढ़ना सीखने के लिए अति आवश्यक हैं। आपने यह देखा कि खेल क्रियात्मक विकास में सहायक होते हैं जो कि लिखना सीखने के लिए आवश्यक होता है।

हम जानते हैं कि बच्चे सहजता से वही सीखते हैं जिनमें उनकी रूचि होती है। यह बात लिखना और पढ़ना सीखने के लिए भी सत्य है। कहानियाँ सुनने से बच्चों में स्वयं उन्हें पढ़ने के लिए इच्छा जागृत होगी और वह पढ़ने और लिखने के लिए प्रेरित होंगे। अगर बालिका को लिखना नहीं आता और पालनकर्ता उस पर लिखने के लिए दबाव डालती है तो सम्भवतः लिखना सीखने की प्रक्रिया को यदि खेल बना दिया जाए जिसमें बालिका जमीन पर लिखे हुए 'क' पर छोटे–छोटे पत्थर रखे, उसकी रूपरेखा पर चले या 'क' अक्षर के बिन्दुओं को जोड़ कर 'क' लिखे तो वह धीरे–धीरे 'क' की रूपरेखा से परिचित हो जाएगी। इस प्रकार उसे मज़ा भी आएगा और वह बिना दबाव के लिखना सीख जाएगी।

खेल द्वारा बच्चे सामाजिक होना सीखते हैं

जब माँ शिशु को नहलाती है, कपड़े पहनाती है, सुलाती है और उसकी अन्य सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखती है तो इन अंतः क्रियाओं के दौरान बालिका माँ को पहचानने लगती है। उसका माँ से लगाव भी बढ़ता है। आप जानते हैं कि यह शिशु का पहला सामाजिक संबंध है, जिसका उसके भावी संबंधों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

जीवन के प्रारंभिक वर्षों में बच्ची अपने हाथों पैरों से तथा आसपास की वस्तुओं से खेलती है। इससे शिशु को यह पता चलता है कि उसका शरीर आसपास की वस्तुओं से अलग है। ऐसा अनुभवों के द्वारा उसकी अपने बारे में धारणा विकसित होती है। खेल के दौरान बालिका यह समझती है कि लोगों और वस्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। वह यह समझने लगती है कि रोने पर माँ उसके पास आएगी, जब वह हँसेगी तो माँ भी हँसेगी और उसे गोद में उठा लेगी। जब वह डिब्बे को धक्का देती है तो वह उससे दूर हो जाता है। इससे बच्चे को पता चलता है कि किस तरह उसकी गतिविधियां वातावरण पर असर डालती है। परिवेश को जानने और विभिन्न स्थितियों से जूझने से बालिका का आत्मविश्वास बढ़ता है और उसे स्वावलंबी होने का अहसास होता है। जैसे–जैसे बालिका बड़ी होती है वह अन्य बच्चों के साथ खेलती है। उनके साथ खेलते हुए आपस में चीजें बाँटना, नियमों का पालन करना, अपनी बारी की प्रतीक्षा करना सीखती है। इस प्रकार वह अन्य लोगों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखना और उनको महत्व देना भी सीखती है।

क्या मजा है इकट्ठे खेलने में।

खेलते समय बच्चे अक्सर वयस्कों की नकल करते हैं। इस प्रकार से उपयुक्त व्यवहार और उन भूमिकाओं को सीखते हैं जो कि उन्हें बड़े होकर निभानी होंगी। खेलते हुए परस्पर क्रिया में वे विभिन्न प्रकार के कार्यों, त्यौहारों, धारणाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

खेल भावात्मक विकास में सहायक होता है

खेल क्रियाएँ बच्चों को हर्ष उल्लास, क्रोध, भय और दुख व्यक्त करने का अवसर प्रदान करती हैं। खेल में कुछ भी मनचाहा करने की छूट होती है बशर्ते कि उससे किसी को हानि न पहुँचे। खेल उन भावनाओं और संवेगों को व्यक्त करने का मौका देता है जो अन्य स्थितियों में अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते। उदाहरणतः खेल में पिता की भूमिका का अभिनय करते हुए बालिका दूसरे बच्चे को अपनी आज्ञा का पालन करने के लिए कह सकती हैं। ऐसा वह अन्य स्थितियों में शायद न कर सके। लड़ाई का दृश्य खेलते समय वह जोर से चिल्ला सकती है, वस्तुएँ इधर–उधर पटक सकती है जिसकी अनुमति उसे आमतौर पर नहीं मिलती। चार वर्षीय रजा को अकसर अपने माता–पिता से मामूली सा नियम तोड़ने पर भी डाँट पड़ती थी। छोटी–से–छोटी गलती के लिए उसे पिता से थप्पड़ खाना पड़ता था। पिता उसे कमर की पेटी से पीटते थे। यह बच्चा प्रायः कुर्सी पर बैठ कर कल्पना करता कि कुर्सी घोड़ा है और कुर्सी को पेटी से मारते हुए कहता ''तेज़ चलो, और भी तेज़''। इससे स्पष्ट है कि बच्चे का मन अपने पिता के प्रति गुस्से और कुढ़न से भरा हुआ है परंतु इन भावनाओं को वह यथार्थ रूप में अपने पिता के प्रति व्यक्त नहीं कर सकता। यह काल्पनिक खेल–स्थिति उसे अपने गुस्से और भावनाओं को व्यक्त करने का मौका देती है। इस तरह खेल द्वारा अव्यक्त भावनाएँ उभर कर सामने आती हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में आपने देखा कि बच्चों के खेल में उनकी भावनाएँ और मनोदशाएँ स्पष्ट रूप से झलकती हैं। इसीलिए खेल उन बच्चों के लिए उपचार या चिकित्सा है जो परिस्थिति के अनुसार सामान्य भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं दर्शाते।

इस चर्चा से आप समझ ही गए होंगे कि खेल बच्चों के विकास में मदद करके उन्हें भविष्य की भूमिकाओं के लिए तैयार करते हैं। खेल–खेल में सीखी गई संकल्पनाएँ पढ़ने–लिखने के कौशल और समूह खेल में हिस्सा लेने की क्षमता तथा बाद में स्कूल में समायोजन में मदद करते हैं। अतः खेल औपचारिकता शिक्षा की तैयारी में सहायक होता है। खेल प्रश्न पूछने और खोजबीन करने की मनोवृत्ति को भी परिपोषित करता है। जैसे–जैसे बच्चे नई चीजें सीखते हैं और उनमें निपुणता प्राप्त करते हैं वह अपने बारे में आश्वस्त होते हैं। यह बढ़ता हुआ आत्म–विश्वास उन्हें चुनौतियाँ स्वीकार करने के लिए तैयार करता है।

कुछ प्रश्न

• निम्नलिखित अनुच्छेद में एक खेल स्थिति का वर्णन है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए और दी हुई जगह में किन्हीं दो विकास क्षेत्रों के बारे में लिखिए जिन्हें इस खेल–स्थिति में प्रोत्साहन मिल रहा है। तीन या चार पंक्तियों में बताइए कि दोनों क्षेत्रों में विकास किस प्रकार हो रहा है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण में है।

खेल–स्थिति– चार वर्षीय बच्चों का एक समूह खुले मैदान में खेल रहा है। उनमें से चार, झूलों पर झूला झूल रहे हैं। हरेक बच्चा झूलने के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा है। एक बच्चा बाकी बच्चों को झूला, झुला रहा है। अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हुए दो बच्चे रेत में खेलने लगते हैं और लकड़ी से आकृतियाँ बनाने लगते हैं। एक कहता है, ''मैंने तोता बनाया है।'' दूसरा कहता है, ''मैंने हाथी बनाया है। तुम्हें पता है जंगल में हाथी को क्या हुआ? वह नदी में गिर गया और ....।'' इस प्रकार बच्चे ने एक काल्पनिक घटना सुनाई। जो बच्चा झूले को धक्का दे रहा था वह झूले की दस पेंगों को गिनता और फिर झूलने वाले बच्चे को उतरने के लिए कहता। फिर अगले बच्चे को झूले पर बैठने की बारी मिलती।

उदाहरण

भाषायी विकास : खेलते समय बच्चे एक दूसरे से बातें कर रहे थे। एक बालिका दूसरे को काल्पनिक घटना सुना रही थी। वह घटनाओं को क्रमबद्ध रूप से रख रही थी और इसके लिए शब्दों का प्रयोग कर रही थी। इस प्रकार बच्चों के भाषायी विकास को प्रोत्साहन मिल रहा था।

क) ....

ख) ....

- खेल किस प्रकार भावात्मक विकास में सहायक होता है?

- एक–एक उदाहरण के साथ वह चार तरीके बताइए जिनके द्वारा पालनकर्ता बच्चों को खेल द्वारा सीखने में मदद कर सकते हैं।

(iii) खेलों के प्रकार

बच्चों की खेल क्रियाओं को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ वर्गीकरण खेल के स्थान का ध्यान में रखते हुए किए जाते हैं, कुछ खेल क्रियाओं की विषयवस्तु पर आधारित होते हैं और अन्य खेल क्रियाओं पर। इन क्रियाओं के सुविधानुसार भिन्न–भिन्न वर्गीकरण किए गए हैं। वस्तुतः सभी वर्गीकरण कुछ अंश तक परस्पर संबद्ध हैं।

मुक्त और संरचनात्मक खेल

पालनकर्ता लक्ष्यों और उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कई खेल क्रियाएँ आयोजित करते हैं। इन क्रियाओं में बच्चे को पालनकर्ता के अनुदेशों का पालन करना पड़ता है। उसके पास खेल क्रिया को बदलने की अधिक स्वतन्त्रता नहीं होती। अपने ढंग से खेलने के लिये बालिका स्वतंत्र है या उसे पालनकर्ता द्वारा बताए गए नियमों का पालन करना पड़ता है–इस आधार पर खेल को मुक्त और संरचनात्मक खेलों में वर्गीकृत किया गया है। उदाहरणतः जब बालिका मिट्टी के साथ किसी वयस्क के हस्तक्षेप/निर्देशन के बिना ही खेल रही हो तब इसे मुक्त खेल कहते हैं। दूसरी ओर आकृति की संकल्पना समझाने के लिये बालिका को जब पालनकर्ता निर्देश देती है जैसे ''चलो बाहर चलकर मिट्टी के कटोरे और थाली बनाएँ'' तब खेल संरचित कहलाता है। इस चर्चा का यह अर्थ नहीं है कि मुक्त खेल से बच्चे कुछ नहीं सीखते। सभी प्रकार के खेलों से बच्चों को सीखने में बढ़ावा मिलता है। अंतर केवल यह है कि संरचित खेल क्रिया से जिस उपलब्धि की आशा होती है वह पालनकर्ता द्वारा पहले से निर्धारित होती है।

दोनों प्रकार के खेल बच्चों के लिए अनिवार्य हैं। मुक्त खेल जिज्ञासा और पहल को बनाये रखता है। और बच्चों को खोज करने के लिए प्रोत्साहित करता है। संरचनात्मक खेल में पालनकर्ता बालिका का ध्यान कुछ विशेष पहलुओं की ओर आकर्षित कर सकती है जिसके बारे में उसने सोचा न हो। इस प्रकार संरचनात्मक खेल विशेष लक्ष्य की प्राप्ति में मदद करता है। पालनकर्ता को यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि दोनों ही प्रकार की खेल क्रियाओं में बच्चों को आनन्द आए।

बाहरी और भीतरी खेल

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, खुले मैदान में खेले जाने वाले खेल बाहरी खेल व घर में खेले जाने वाले खेल, भीतरी खेल कहलाते हैं।

घर के बाहर खेले जाने वाले खेलों में क्रियाओं के अवसर मिलते हैं क्योंकि यहाँ स्थान अधिक व बाधाएँ कम होती हैं। घर के अंदर खेले जाने वाले खेलों के लिए स्थान सीमित होता है और गतिविधियों की स्वतंत्रता अपेक्षाकृत कम होती है। वैसे तो बाहरी व भीतरी खेलों में भिन्नता बहुत कम होती है। कई भीतरी खेल बाहर खेले जा सकते हैं, और बाहरी खेल भी थोड़े से परिवर्तन के साथ अंदर खेले जा सकते हैं। कभी–कभी भीतरी खेल क्रिया को बाहर करने से नीरसता दूर होती है और बच्चे के लिए वही क्रिया नई और रूचिकर बन जाती है।

वैयक्तिक और सामूहिक खेल

जब बालिका स्वयं अकेले खेलती है तो यह वैयक्तिक खेल कहलाता है। जब वह दो या अधिक बच्चों के साथ खेलती है तो वह सामूहिक खेल कहलाता है। समूह में खेलने के लिए आवश्यक है कि बच्ची दूसरों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखे और खेल के नियमों का पालन करे। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं ये योग्यताएँ उम्र के साथ विकसित होती हैं। तीन–चार साल की उम्र तक बच्चे अधिकतर अकेले ही खेलते हैं। अन्य बच्चों के साथ वे केवल थोड़े समय के लिए परस्पर मिल कर खेलते हैं। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं वे दूसरों के साथ खेलना सीखते हैं और फिर उनके खेलने का अधिकांश समय समूह में खेलने में बीतता है। परन्तु समय–समय पर बड़े बच्चे भी अकेले खेलना पसंद करते हैं।

जहां समूह में खेलने से सामाजिक कौशल बढ़ते हैं वहीं वैयक्तिक खेल बच्चों को उन वस्तुओं से खेलने का समय देता है जो उन्हें सबसे रूचिकर लगती है। दोनों ही खेल उसके कौशलों के विकास में सहायक होते हैं।

ओजस्वी एवं शान्त खेल

कई बार वयस्क झुंझलाकर कह उठते हैं, ''बच्चे एक स्थान पर क्यों नहीं बैठ सकते? क्यों इधर–उधर भागते रहते हैं?'' बच्चे भागने, कूदने और उछलने वाले खेल खेलना पसंद करते हैं अर्थात् वह खेल जिसमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऐसी खेल क्रियाएँ ओजस्वी/सक्रिय खेल क्रियाएँ कहलाती हैं। वे खेल जिनमें अधिक शारीरिक क्रिया की आवश्यकता न हो जैसे जमीन पर चॉक से लिखना, चित्र बनाना, मिट्टी से खिलौने बनाना और पत्थरों से मीनार बनाना, बच्चों को आराम देती हैं। ऐसे खेल जिनमें अधिक ऊर्जा व्यय नहीं होती शांत खेल कहलाते हैं।

संवेदी–क्रियात्मक (Sensori motor) और प्रतीकात्मक खेल

शैशवकाल में बच्चों का खेल है वस्तुओं को छूना, सूँघना, चखना और परिवेश की छानबीन करना। इन क्रियाओं में इंद्रियाँ संलग्न होती हैं और माँसपेशियों के समन्वय की आवश्यकता होती है। इसलिए इन्हें संवेदी–क्रियात्मक (Sensori motor) खेल कहा जाता है।

कुछ प्रश्न

- मुक्त और संरचनात्मक खेल के उदाहरण हैं..
- बाहरी और भीतरी खेल हैं..
- वैयक्तिक और सामूहिक खेल का अर्थ है. ....
- ओजस्वी एवं शान्त खेल का अर्थ है. ....
- संवेदी–क्रियात्मक खेल का अर्थ है. ....

शैशवकाल के अंत तक बच्चे नाटकीय खेल में भाग लेने लगते हैं। इस तरह के खेल में बच्चे कल्पना करते हैं कि टीन का डिब्बा घर है या लकड़ी का गुटका हवाई जहाज। इस प्रकार एक वस्तु का उपयोग उसके वास्तविक रूप से हटकर होता है। बच्चे अन्य लोगों की भूमिका निभाते हुए कभी फलवाला, कभी शिक्षक तो कभी फूलवाली होने का ढोंग करते हैं। इस प्रकार खेल में वस्तुओं और लोगों को प्रतीकात्मक रूप में उपयोग करने की ज्ञानात्मक योग्यता की आवश्यकता होती है। ऐसे खेल प्रतीकात्मक खेल कहलाते हैं और ये शालापूर्व वर्षों में मानसिक विकास के परिणामस्वरूप ही संभव है। संवेदी–क्रियात्मक खेल से प्रतीकात्मक खेल तक पहुँचना बच्चों के चिंतन में बढ़ती हुई जटिलता पर आधारित हैं।

संवेदन प्रेरित व कार्यात्मक खेल

प्रतीकात्मक व नाटकीय खेल

आप यह समझ ही गए होंगे कि खेल का यह वर्गीकरण परस्पर संबद्ध है। मुक्त खेल खुले में या भीतर खेला जा सकता है। सामूहिक खेल सक्रिय या शांत हो सकता है। महत्व इस बात को दिया जाना चाहिए कि बच्चे को हर प्रकार के खेल खेलने का मौका मिले क्योंकि हर खेल का अपना महत्व है।

• आप अपने परिवेश में खेले जाने वाले 20 खेलों की सूची बनाएँ और उन खेलों को अपनी समझ के अनुसार विभिन्न वर्गों में बॉटते हुए वर्गीकरण के आधार लिखिए।

(iv) खेल को प्रभावित करने वाले कारक

बच्चे किस प्रकार खेल खेलते हैं, कैसी खेल सामग्री का उपयोग करते हैं, उनके खेल की विषयवस्तु क्या है और वे कितना समय खेल में व्यतीत करते हैं, ये सब कई कारकों से प्रभावित होते हैं। इस भाग में आप यह पढ़ेंगे कि ये कारक कौन से हैं और किस प्रकार खेल को प्रभावित करते हैं।

आयु– बच्चे किस प्रकार के खेल चुनते हैं, यह उनकी उम्र से प्रभावित होता है। एक छः महीने के शिशु के लिए अपने आसपास पड़ी वस्तुओं को उठाना और उनका निरीक्षण करना ही खेल है। एक चार वर्षीय बालक को तिपाहिया साइकिल चलाना और रेत से वस्तुएँ बनाना आनन्ददायक लगता है। एक आठ वर्षीय बालक दोपहिया साइकिल चलाना, पेड़ों पर चढ़ना और स्टापू खेलना पसन्द करता है। बच्चों द्वारा खेल क्रिया का चुनाव उनके कौशलों और योग्यताओं से भी निर्धारित होता है। ऊपर लिखित उदाहरणों में जो खेल चार और आठ वर्षीय बालकों ने चुने वे उनके शारीरिक कौशलों से प्रभावित थे। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं उनकी सामाजिक क्षमताओं

में भी वृद्धि होती है। जिससे उनकी परस्पर अंतः क्रिया में गुणात्मक बदलाव आता है और इस कारण उनके खेल के प्रकार भी प्रभावित होते हैं। जिन खेलों में आपसी सहयोग, टीम में खेलना और नियमों का पालन करना आवश्यक है वे खेल तीन वर्षीय बालकों के सामर्थ्य से बाहर हैं परन्तु आठ वर्षीय बालकों के लिए ऐसे खेलना संभव है। बच्चों के खेल की विषयवस्तु भी उम्र के साथ–साथ बदलती है। छः वर्षीय बालिका और तीन वर्षीय बालिका के गुड़िया से खेलने में भिन्नता होगी। छः वर्षीय बालिका विस्तृत रूप से खेल का आयोजन करती है– वह गुड़िया को स्कूल के लिए तैयार करती है, उसे पढ़ाती है, उसकी प्रगति के बारे में माता–पिता से चर्चा करती है और उसे खेलने के लिए बाहर भी ले जाती है, इत्यादि। तीन वर्षीय बालिका का गुड़िया से खेल इससे कहीं अधिक सरल होगा। एक विशेष खेल क्रिया में बालिका कितना समय व्यतीत करती है, यह उसकी उम्र से निर्धारित होता है। जैसा कि आप जानते हैं बालिका जितनी छोटी होगी उतनी ही कम अवधि तक वह एक खेल क्रिया में ध्यान लगा पाएगी। इसी कारण उसकी क्रियाओं में बार–बार बदलाव होंगे।

हालांकि बच्चों की उम्र उनके खेल को प्रभावित करने में एक निश्चित भूमिका निभाती है तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि खेल में वैयक्तिक भिन्नताएँ और अभिरूचियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। संभव है कि एक पाँच वर्षीय बालिका अपनी उम्र के अन्य बच्चों की अपेक्षा सामूहिक खेल में कम समय व्यतीत करे।

कुछ प्रश्न

- आप अपने परिवेश के अलग–अलग आयु के बच्चों के द्वारा खेले जाने वाले खेलों की सूची तैयार करिये एवं खेलने के नियमों को लिखिए।

लिंग– क्या आप कुछ ऐसे खेलों के नाम बता सकते हैं जो केवल लड़के ही खेलते हों और कुछ ऐसे जो केवल लड़कियाँ ही खेलती हों? क्या आप सोचते हैं कि लड़कों और लड़कियों की खेल में अभिरूचि जन्म से ही अलग–अलग प्रकार की होती है? लडकों एवं लड़कियों के खेल में विभिन्नता होती है शारीरिक क्रियाकलाप खेल की सामग्री और खेल के लिए प्रयुक्त खिलौने, व खेल के विषय में कुछ ऐसे तत्व हैं जिनसे लड़कों व लड़कियों के खेलों में भिन्नता पाई जाती है।

अगर आप शिशुओं के खेल का अवलोकन करें तो उसमें समानता पाएंगे। शैशवास्था में लिंग खेल को प्रभावित नहीं करता। उनका खेल अपने और आसपास की वस्तुओं की खोजबीन से संबंधित होता है। पर जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं तो लड़कों और लड़कियों की रूचियाँ भिन्न होने लगती हैं। ये भिन्नता उम्र के साथ बढ़ती जाती है। लड़कियाँ अपनी माँ के कपड़े पहनना, गुड़िया से खेलना, खाना बनाने का नाटक करना, सिलाई करना और स्टापू खेलना पसंद करती हैं। लड़के अपने पिता के कपड़े पहनना पसंद करते हैं, कुर्सी पर बैठ कर अखबार पढ़ने का नाटक करते हैं, बैलगाड़ी चलाते हैं, खेत जोतते हैं और बंदूकों से खेलते हैं कई अध्ययनों में लड़के और लड़कियों के खेल की तुलना की गई है। उनसे पता चलता है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के खेलों में मारपीट, उठापटक अधिक होती है और वे लड़कियों की अपेक्षा अधिक प्रतियोगी भावना के होते हैं। लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा खेल में अधिक सहयोग दिखाती हैं। लड़के ओजस्वी खेल अधिक खेलते हैं। इसके क्या कारण हो सकते हैं?

एक कारण लड़कों और लड़कियों में शारीरिक भिन्नता हो सकती है। एक बच्चा कितनी शारीरिक क्रिया कर सकता है, यह उसकी शरीर वृत्ति से प्रभावित होता है। इसी का असर बच्चों के खेल चयन पर पड़ता है और इसी कारण लड़के अधिक सक्रिय खेल चुनते हैं। परन्तु बच्चों की अधिकांश खेल अभिरूचियों का कारण शरीर वृत्ति न होकर सामाजिक अपेक्षाएँ और रूढ़ियाँ हैं। बच्चों से लोगों की अपेक्षाएँ उनके लिंग द्वारा प्रभावित होती हैं। इसी का प्रभाव उनके खेल चयन पर पड़ता है। आइए, इसे एक उदाहरण से समझें। आपने अक्सर यह देखा है कि होगा कि एक लड़का, लड़की की अपेक्षा पेड़ पर अधिक आसानी से चढ़ जाता है। ऐसा नहीं है कि लड़की में पेड़ पर चढ़ सकने का सामर्थ्य नहीं है। परन्तु संभव है कि जब लड़की पहली बार पेड़ पर चढ़ने

लगी हो तो उसकी माँ ने उससे कहा हो, ''यह क्या लड़कों वाले काम कर रही हो, नीचे उतरो।'' दूसरी ओर लड़के की इसी प्रयास के लिए अवश्य शाबाशी दी गई होगी अतः लड़का, लड़की की अपेक्षा अधिक कुशलता से पेड़ पर चढ़ना सीख जाता है।

घर पर दैनिक कार्यों में लड़कियों से छोटे भाई–बहनों की देखभाल और घर के काम में मदद की अपेक्षा की जाती है। इसलिए उनके खेलों में भी यही स्थितियाँ झलकती हैं। लड़के पिता की मदद करते हैं, बाहर का काम करते हैं और ऐसी स्थितियों की झलक उनके खेल में भी दिखाई देती है। आजकल विशेषकर शहरों में, लड़कियों को खेल में डॉक्टर और पुलिस की भूमिका में देखा जा सकता है क्योंकि महिलाएँ अब इन व्यवसायों को अपनाने लगी हैं।

माता–पिता भिन्न–भिन्न खेल साधन देकर भी लड़कों और लड़कियों की अभिरूचियों को प्रोत्साहित करते हैं लड़कियों को गुड़िया बर्तन और अन्य इसी प्रकार के खिलौने दिए जाते हैं। लड़कों को बंदूक और कारों जैसे खिलौने दिलवाए जाते हैं। चार वर्षीय हरी को जब उसकी बहन ने गुड़िया से खेलने के लिए बुलाया तब उसने यह कहते हुए स्पष्ट रूप से मना कर दिया, ''मैं लड़कियों वाले खेल नहीं खेलता।'' परन्तु जब वह सोचता है कि कोई उसे नहीं देख रहा, तब वह गुड़ियों से खेलता है। इससे स्पष्ट है कि हरि को गुड़ियों से खेलना अच्छा लगता है। गुड़ियों के खेल के प्रति उसकी प्रत्यक्ष अरूचि जन्मजात नहीं है।

• अपने परिवेश के बच्चों का अवलोकन कीजिये एवम् देखिये कि बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों पर लिंग का क्या प्रभाव दिखाई देता है?

लोगों की सामाजिक अपेक्षायें बच्चों के विकास को बदल देती हैं?

संस्कृति– आप यह जानते हैं कि संस्कृति जीवन–शैली पर असर डालती है। शिशुपालन की परम्पराएँ भी संस्कृति से प्रभावित होती हैं। इन्हीं कुछ परम्पराओं की हम यहाँ चर्चा करेंगे। आइए, अब हम इस प्रकार की कुछ परम्पराओं के बारे में पढ़ें। हमारे देश के कई भागों में शिशुओं की तेल से मालिश करना एक पुरानी प्रथा है। माँ आमतौर पर गाना गुनगुनाती है, बच्चे के साथ बात करती है और खेलती है। भारत के सभी भागों में इस प्रकार के कई माँ और शिशु के खेल हैं। शिशु का यह अनुभव एक अन्य संस्कृति, जहाँ ऐसी अंतः क्रियाएँ नहीं होतीं, में रहने वाले शिशु की तुलना में बहुत भिन्न होगा।

बच्चों की वयस्क जीवन के बारे में कल्पना उनके खेल में झलकती है। वयस्क होने पर वे जो बनना चाहता है उन भूमिकाओं की झलक अकसर उनके खेल में मिलती है और ये भूमिकाएँ संस्कृति द्वारा निर्धारित होती हैं। खेल उनके समाज के पारंपरिक त्यौहारों और रीतियों को भी प्रदर्शित करता है।

सभी संस्कृतियों में खिलौनों की समृद्ध परंपरा होती है। जब सिंधु घाटी जैसी प्राचीन सभ्यताओं की खुदाई हुई तो वहाँ भी खिलौने पाए गए। अध्ययनों से यह पता चलता है कि हमारे देश में भिन्न–भिन्न प्रदेशों की खेल

सामग्री में परस्पर विभिन्नता है। उड़ीसा के सुन्दर मुखौटे और कठपुतलियाँ मशहूर हैं। लकड़ी के खिलौने कर्नाटक के चेन्नापटना और आन्ध्र प्रदेश के कोंडा पल्ली में बनते हैं तमिलनाडु और महाराष्ट्र में लोक परंपरा के खिलौनों के साथ–साथ आधुनिक खिलौने भी बनते हैं। दूसरी ओर मणिपुर और त्रिपुरा में व्यावसायिक खिलौने बहुत ही कम मिलते हैं। यहाँ के निवासी घर पर ही अपने बच्चों के लिए खिलौने बनाते हैं। हमारे देश के अधिकांश भागों में त्यौहारों के समय बहुत से लोक खिलौने बाजारों में मिलते हैं। इन खिलौनों का व्यावसायिक रूप से बनाए गए खिलौनों के समान शैक्षिक महत्व होता है।

सामाजिक वर्ग– निम्न सामाजिक वर्ग में बच्चों का अधिकांश समय माता–पिता के काम में सहायता करते हुए बीतता है। कार्यों में व्यस्त रहने के कारण खेलने के लिए उन्हें बहुत कम समय मिल पाता है। अपने काम के दौरान ही वे खेलने का समय निकालते हैं। मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के बच्चे के पास खेल के लिए अधिक समय होता है क्योंकि आय उत्पादक गतिविधियों में उनका योगदान अनिवार्य नहीं होता। परन्तु इन वर्गों के कुछ परिवारों में माता–पिता पढ़ाई पर बहुत ज़ोर देते हैं और इस कारण बच्चों के खेलने का समय कम कर देते हैं।

आप जानते हैं कि बच्चों को पत्थर, बोतलों के ढक्कन, खाली डिब्बे आदि जमा करना अच्छा लगता है। अगर आप एक बच्चे की जेब खाली करें तो ऐसा संग्रह पाना आश्चर्यजनक बात नहीं है। कई बार बच्चे घर के एक कोने में अपने इकट्ठा किए पत्थर, सीपियाँ और पसंद की अन्य वस्तुएँ रख लेते हैं। महंगी, सजी हुई गुड़िया और समुद्र तट से जमा की गई सीपी–प्रत्येक बालक को, चाहे वह अमीर हो या गरीब ये दोनों ही वस्तुएँ समान रूप से आकर्षित करती हैं जो बच्चे अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के होते हैं वे बाजार में मिलने वाले खिलौने खरीद सकते हैं। जब बने बनाये खिलौने खरीदने का सामर्थ्य परिवार में न हो तो पुराने टायर, पहिये, खाली डिब्बे, माचिस के डिब्बे, पुराने अखबार खेलने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। बच्चों को ऐसी स्थिति में अधिक सृजनात्मक होने की आवश्यकता होती है ताकि वे स्वयं खेल सामग्री बना सकें।

सामाजिक वर्ग से यह भी निर्धारित होता है कि बच्चों को खेलने के लिए कितनी और कैसी जगह मिलेगी। जो बच्चे बड़े मकानों में रहते हैं, जहाँ बाग–बगीचे होते हैं, वे उस जगह को खेलने के लिए उपयोग में ला सकते हैं। जो बच्चे एक कमरे वाले मकानों में रहते हैं उन्हें गलियों और सड़कों पर अपने खेलने का स्थान ढूँढना पड़ता है।

आपने पढ़ा था कि निम्न वर्ग के परिवार के सभी बड़े सदस्य आय उत्पादक गतिविधियों में संलग्न होते हैं। माता–पिता के पास बच्चों के खेल में हिस्सा लेने और उनका मार्गदर्शन करने के लिए बहुत कम समय होता है। मध्यम और उच्च वर्ग के माता–पिता बच्चों के साथ संभवतः अधिक समय व्यतीत कर पाते हैं। आमतौर पर वे अधिक शिक्षित होते हैं और संभव है कि बच्चों के विकास में खेल के महत्व के बारे में अधिक जानते हों अतः वे बच्चों को खेलने के लिए पर्याप्त अवसर देंगे। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि शिक्षा से ही ऐसी अभिवृत्ति बने जो बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हों। अशिक्षित अभिभावक भी बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं और उन्हें खेल के कई विविध अनुभव दे सकते हैं।

परिस्थिति और परिवेश– शहर की भीड़भाड़ में खेलने के लिए खुली जगह कम ही मिल पाती है। फिर भी बच्चे खेलने के लिए जगह ढूँढ ही लेते हैं। आपने उन्हें तंग गलियों में, सड़कों पर और घर की छतों पर खेलते हुए देखा होगा। शहरों में पौधों को देखने का अवसर कम ही मिलता है ग्रामीण और जन– क्षेत्र में खेलने के लिए खुली जगह अधिक मिलती है और बच्चे प्रकृति के अधिक समीप होते हैं।

कुछ प्रश्न

• आपके अनुसार बच्चों के खेल पर सामाजिक वर्ग, परिस्थिति और परिवेश, संस्कृति, लिंग में से किस कारक का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है ? उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिये?

आइए करें

• आपके जिले में क्या कारीगरों द्वारा बच्चों के लिए खिलौने बनाये जाते हैं ऐसे दो खिलौने एवम् उनको बनाने वाले लोगों का परिचय दीजिए?

जनसंपर्क माध्यम– मुद्रित जन संपर्क माध्यम, जैसे कि पत्रिकाएँ और किताबें और श्रव्य–दृष्य माध्यम, जैसे कि रेडियो और टेलीविजन का बच्चों के खेल पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। बच्चों के लिए अनेक चित्रित किताबें और पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं और उनके लिए विशेष रूप से रेडियो और टेलीविजन पर विभिन्न कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं। बच्चे पढ़ी हुई कहानियों का उत्सुकता से अभिनय करते हैं, रेडियो पर सुनी धुन गाते हैं और उत्साह से टेलीविजन के कार्यक्रम को देख पात्रों की नकल करते हैं। जनसंपर्क माध्यम अकसर समाज की रूढ़िबद्ध धारणाओं का समर्थन करते हैं और ये धारणाएँ बच्चों के खेल में झलकती हैं। जनसंपर्क माध्यम दुनिया को बच्चों के करीब लाते हैं और उनकी जानकारी यदि किसी वयस्क के निर्देशन में प्राप्त हो तो बहुत लाभदायक हो सकती है।

मुद्रित और श्रव्य–दृश्य माध्यम जिस प्रकार की प्रेरणा बच्चों को प्रदान करते हैं उसमें भिन्नता होती है। किताबें एक ऐसा माध्यम हैं जिनको स्वयं पढ़कर ही कुछ पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार की सीखने की प्रक्रिया में बच्चों की सक्रिय भूमिका होती है और यह खोजबीन की भावना व जिज्ञासा को बढ़ावा देती है। दूसरी ओर टेलीविजन और रेडियो के कार्यक्रमों को बच्चे अधिकतर बैठे–बैठे ही सुनते और देखते हैं। आमतौर पर ये कार्यक्रम उन्हें खोज का मौका न देकर केवल बताते हैं कि क्या जानना चाहिए। इसी कारण श्रव्य–दृष्य माध्यम में वयस्कों का निर्देशन अनिवार्य हो जाता है।

अनुभवों का स्तर

आपने अभी तक यह पढ़ा है कि किस प्रकार बच्चों की उम्र, लिंग, पारिस्थिति, संस्कृति, परिवार को उपलब्ध साधन और जनसंचार माध्यम उनके खेल के विषय, उसके लिए उपलब्ध समय तथा प्रयुक्त खेल सामग्री को प्रभावित करते हैं। तथापि परिवार और पड़ोस में बच्चों को जो अनुभव होते हैं, वे महत्वपूर्ण ढंग से खेल के स्तर को प्रभावित करते हैं। निम्नलिखित दो उदाहरण इस बात को चित्रित करते हैं।

एक निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार में माता–पिता सुबह ही काम के लिए निकल जाते हैं और शाम को घर वापस आते हैं। काम पर जाने के पूर्व माँ शिशु की मालिश करती है और उस समय उससे खेलती और बातचीत करती है। शाम को जब माता–पिता दोनों वापस आ जाते हैं तब पिता बच्ची के साथ खेलते हैं और माँ घर का काम–काज करती है।

दूसरी स्थिति में, एक शिक्षित माँ, जो अमीर परिवार की है, अपनी बच्ची को अधिकतर पालने में खिलौनों के पास लिटाए रखती है। बच्ची की केवल शारीरिक देखभाल की ओर उसका ध्यान होता है और वह उससे बहुत कम खेलती है। इन दो स्थितियों में यह संभव है कि पहले परिवार की बालिका का बचपन अधिक अच्छा बीतेगा क्योंकि उसे सीखने के कई मौके मिलते हैं और वह सुरक्षित महसूस करती है।

जो अभिभावक और पालनकर्ता खेल का महत्व समझते हैं, वे बच्चों को ऐसा–वातावरण दे सकते हैं जिसमें खेल को बढ़ावा मिले चाहे उनका सामाजिक वर्ग, शिक्षा स्तर या परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो।

कुछ प्रश्न

- आपके आस–पास के किसी बच्चे पर एक लोकप्रिय टी.वी. सीरियल के असर का विवरण दें और आकलन करें कि वह उसके विकास में सहायक था तो किस प्रकार?
- यहां दी गयी तालिका में उपयुक्त वाक्यांश लिखें जो 3 से 8 साल के बच्चों में अंतर को स्पष्ट करें –

गुड़िया का खेल और	
3 साल की बच्ची	**8 साल की बच्ची**
(i) देर तक खेलेगी।,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,	,,,
(ii) ,,	खेल में विस्तार होगा।
(iii) अकेले खेलेगी	,,
(iv) ,,,	लम्बे चौड़े नियम बनाकर खेलेगी।

- शैशव काल में लड़के लड़कियाँ एक समान खेल खेलते हैं बड़े होते होते बच्चों के खेलों में लिंग के आधार पर अन्तर कैसे आने लगता है?
- मजदूर परिवार के बच्चों और मध्यम वर्गीय परिवार के बच्चों को किन–किन कारणों से खेल से वंचित रहना पड़ता हैं?
- अभिभावक का अपना विचार एवम् रूझान बच्चे के लिए बाधायें कैसे दूर कर सकता है?

(v) प्रमुख गतिविधिः खेल

खेल के तीन वर्णन

1. जोसेफ घर–घर के खेल वाली जगह में प्रवेश करता है। एक चम्मच उठाता है, खाने का नाटक करता है, चम्मच रख देता हैं और अलमारी की तरफ जाता है। वह अलमारी खोलकर अन्दर झाँकता हैं। कई बार दरवाजे को खोलता–बन्द करता है। उन दो लड़कों की तरफ देखता है जो साथ बैठकर बातें करते हुए खाना खाने का नाटक कर रहे हैं। जोसेफ उनकी मेज़ पर झुकता है और एक प्लेट आगे पीछे खिसकाता है फिर वह केश–विन्यास के कार्टन की तरफ जाता है और जूते देखता है। दो जोड़ी जूते पंक्ति में रखता है और बिल्डिंग–ब्लॉक–के स्थान की ओर चला जाता है।

2. मरीना घर–घर वाली जगह पर आती है, किसी व्यक्ति–विशेष को सम्बोधित किये बिना बोलती है, 'मैं मम्मी–मम्मी खेल रही हूं। मैं खाना बनाऊँगी, फिर बेबी को नहलाऊँगी।' जिम सिंक में बर्तन धोने लगता है। वह इसे वहाँ से हटा देती है, रहने दो, मत करो। वह सिंक के नीचे की अलमारी खोल कर देखती है। फिर बर्तन धोने लगती है।

3. मैथ्यू और एरिक बिल्डिंग–ब्लॉक वाले स्थान पर हैं। मैथ्यू कहता है, चलो, एक शहर बनाते हैं। सारे लम्बे ब्लॉक चाहिए। इधर से शुरू करो।' एरिक पूछता है, कितने घर बनाएं? एक घर और एक सड़क और सब कुछ।' बनाते समय दोनों एक दूसरे से टकराते रहते हैं। एरिक कहता है मैं बताता हूं, मैं बनाऊंगा और तुम मेरे लिये ब्लॉक लेकर आओगे क्योंकि यहां बिल्कुल जगह नहीं है। मैं बताऊँगा कौन से ब्लॉक

चाहिए। मुझे एक बहुत लम्बा ब्लॉक लाकर दो। मैथ्यू क्रेन की तरह हरकत करता और आवाज निकालता है, हाथ में ब्लॉक उठाता और नीचे झुकाता है,' व्रूम.............टिंग टिंग टिंग...................मैं ब्लॉक को नीचे उतार रहा हूँ।

आरंभिक बाल्यकक्षा में खेल के ये तीन उदाहरण हैं। इन शब्दचित्रों का आप क्या अर्थ लगाएंगे, वह खेल और बच्चे के व्यवहार में उसके महत्व के विषय में आपके विचारों पर निर्भर करता है। अब हम बच्चे के खेल–व्यवहार की व्याख्या के विविध तरीकों और खेल के विषय में वाइगोत्सकीय परिप्रेक्ष्य (Vygotskian Perspective) की चर्चा करेंगे।

कुछ प्रश्न

- उपरोक्त वर्णन में किन बच्चों के नाम आये हैं और आप को उनकी क्या उम्र लगती हैं?
- उनके द्वारा खेले जा रहे खेल उनके व्यवहार के लिए क्या महत्व रखते होंगे अपने विचार लिखें?

खेल की परिभाषा

खेल के बारे में आम धारणा यह है कि यह काम का विलोम है। खेल एक ऐसी स्थिति है जिसमें लोग कोई उपयोगी या विशिष्ट काम नहीं कर रहे होते हैं। खेल के बारे में एक सोच यह भी है कि यह आनन्ददायक, मुक्त और अनायास होता है। यह दृष्टिकोण छोटे बच्चे के विकास में खेल के महत्त्व को नकारता है। कई सालों से कई मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तकार बच्चे के विकास में खेल के महत्त्व पर जोर देने लगे हैं। इन्होंने खेल के अनेक पक्षों पर बल दिया है और बताया है कि खेल कैसे मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। यहाँ हम अनेक सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे : मनोविश्लेषण, सामाजिक विकास का परिप्रेक्ष्य तथा रचनात्मक पद्धति।

खेल का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण

एरिक्सन (Erikson) और अन्ना फ्रायड (Anna Freud) के अनुसार खेल अपूर्ण रह गयी इच्छाओं का स्थानापन्न और अतीत की घातक घटनाओं से मुक्ति और पुनर्जीवन का एक रास्ता है। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति खेल के सामाजिक संवेगात्मक पक्षों पर बल देती है। खेल के द्वारा बच्चा माता–पिता के साथ अपने मानसिक द्वन्द्वों और विवेकहीन, भयों का समाधान करता है। एक बच्ची राक्षस–राक्षस खेल कर अंधेरे के भय पर काबू पाती है, एक बच्चा अपनी गुड़िया को किसी नियम के कल्पित उल्लंघन के लिये उसी तरह सजा देता है जैसे एक माता–पिता उसको सजा देते हैं। एरिक्सन की दृष्टि में प्रीस्कूल चरण के दौरान खेल एक बच्चे के लिये खोज, पहल और स्वतंत्रता का रास्ता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से खेल विरेचक अनुभव में माध्यम से आक्रामकता को दिशा देने का एक तरीका है। यह अतीत के लिये एक प्रतिक्रिया और अतीत की घटनाओं की ओर लौटने की प्रक्रिया का एक तन्त्र भी है।

सामाजिक विकास का एक रूप : खेल

पारटेल और अन्य सिद्धान्तकार खेल को सामाजिक आदान–प्रदान के एक रूप की तरह देखते हैं जो सहपाठियों के साथ सहयोगी कार्यों में संलग्न होने की बच्चे की विकसित होती हुई क्षमता को उत्तम भी बनाता है और प्रतिबिम्बित भी करता है। खेल के आरंभिक चरणों में सहपाठियों के साथ आदान–प्रदान लगभग नहीं या बहुत थोड़ा होता है और उस समय सामाजिक कौशलों के प्रयोग में असमर्थता भी दिखती है।आगे चलकर दूसरे के पक्ष से देखने की क्षमता, विभिन्न भूमिकाओं

> मनोवैज्ञानिकों की नजर में खेल–
> - अतीत से मुक्ति और पुर्नजीवन का रास्ता
> - खोज, पहल और स्वतंत्रता का रास्ता

में समन्वय (जैसे एक माँ, एक बच्चा), खेल की विषयवस्तु के बारे में बातचीत और झगड़ों को सुलझाने की सामर्थ्य का विकास होता हुआ दिखाई देता है। खेल में कल्पित और नाटकीय स्थितियां सामान्यतः सामाजिक आदान–प्रदान की अधिक परिपक्व विधियाँ मानी जाती हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने धक्का–मुक्की वाले खेलों को भी सामाजिक दृष्टिकोण से देखा है। धक्का–मुक्की के अन्तर्गत सब तरह के कुश्ती और 'पकड़ो तो जाने' कोटि के खेल शामिल किये जा सकते हैं। सामाजिक खेलों की तरह धक्का–मुक्की के खेलों में भी भूमिकाएं होती हैं।

कुछ प्रश्न

• बच्चों के द्वारा खेले जाने वाले विभिन्न खेलों का अध्ययन कर बताइये कि उनके द्वारा खेले जाने वाले खेल उनके सामाजिक कौशल के विकास में किस प्रकार सहायक होते हैं उदाहरण सहित स्पष्ट करें?

संरचनावादी सिद्धान्त और खेल

पियाजे (Jean Piaget) के अनुसार बच्चे की विकसित होती हुई मानसिक क्षमताओं में खेल एक बड़ी भूमिका निभाता है। पियाजे खेल के विकास के कई चरण गिनाते हैं। पहला चरण, जिसे वे अभ्यास या कार्यात्मक खेल कहते हैं, संवेदन–प्रेरित क्रिया के दौर का एक लक्षण है। कार्यात्मक खेल में बच्चा वस्तुओं के इस्तेमाल की परिचित पद्धतियों को दोहराता है। उदाहरण के लिए, खाली प्याले से पीता है, हाथों के इस्तेमाल से बालों में कंघी करने का नाटक करता है।

दूसरा चरण, प्रतीकात्मक खेल है जिसका उभार क्रियापूर्व/परिचालनपूर्व (pre-operational) दौर में होता है। यह मानसिक प्रतीकों के इस्तेमाल का दौर है। वस्तुएँ अपने से अलग किसी वस्तु का प्रतीक होती हैं। प्रतीकात्मक खेल में एक लकड़ी के गुटके (ब्लाक) को टेलीफोन, नाव, कुत्ता, केला या हवाईजहाज बनाया जा सकता है। पियाजे ने संरचनात्मक और नाटकीय खेल में अन्तर किया है। संरचनात्मक खेल में दूसरी वस्तुओं को बनाने या रचने के लिए ठोस वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए कार और ट्रक वाले खिलौने के लिए, एक शहर बनाने में लकड़ी के ब्लॉकों का इस्तेमाल किया जा सकता है। नाटकीय खेल में बच्चे शब्दों और मुद्राओं के द्वारा कल्पित स्थितियाँ और भूमिकाएं गढ़ते हैं। वे भूमिकाएं रचते और तय करते हैं कि कौन सा बच्चा किस भूमिका को निभाएगा और एक कल्पित दृश्य के लिए विषयवस्तु और उसके विकास की दिशा की सूझ लेते हैं। नाटकीय खेल का उभार प्रायः संरचनात्मक खेल के कुछ बाहर सतह पर आता है। पियाजे ने इस दौर के कल्पित स्वभाव के खेल को बच्चे के आत्म केन्द्रित विचार के प्रतिबिम्ब के रूप में देखा। पियाजे के अनुसार सात वर्ष की आयु के आसपास ठोस–क्रियात्मक दौर (concrete operational period) के आरंभ में यह समाप्त हो जाता है।

> • पियाजे के अनुसार उम्र के साथ खेल में सहज प्रगति होती हैं।
>
> • स्मालेंस्की एवम् शेफत्या के अनुसार खेल का विकास समाज व बड़ा के पथ–प्रदर्शन में होता हैं।

अन्तिम चरण में खेल नियमबद्ध क्रीड़ा अंग्रेजी में play को game में बदलने की बात कही गयी है। यहाँ हिंदी में 'खेल' और 'क्रीड़ा' में वही भेद किया जा रहा है। क्रीड़ा नियमबद्ध एवं संरचित खेल (structured play) हैं, में बदल जाता है जो ठोस क्रियात्मक दौर में अपनी बुलन्दी पर पहुँचता है। इस दौर की विशेषता यह है कि सामाजिक आदान–प्रदान को आरंभ करने, नियंत्रित करने और जारी रखने तथा समाप्त करने के लिए बाह्य रूप से प्रत्यक्ष नियमों का प्रयोग किया जाता है।

अनेक समकालीन शोधकर्ताओं ने पियाजे की धारणाओं को विस्तार दिया है। स्मालेनस्की और शेफात्या ने इस बात की पुष्टि की है कि खेल के विकास का सीधा सहसंबंध भाषा के विकास, समस्या–समाधान और तर्कसंगत गणितीय चिन्तन के विकास के साथ जुड़ता है। किन्तु स्मालेनस्की और शेफात्या पियाजे की इस अवधारणा से सहमत नहीं हैं। खेल संवेदनप्रेरित क्रिया के चरण से लेकर पूर्वक्रियात्मक और ठोस क्रियात्मक चरण की ओर सहज प्रगति (progression) का परिणाम है। उनका विचार है कि खेल का विकास सामाजिक संदर्भ और बड़ों के पथप्रदर्शन पर निर्भर है। उनका यह विचार भी है कि कुछ बच्चों के लिए खेलों का प्रशिक्षण अनिवार्य

है। इन्होंने अपने शोध से साबित किया है कि बच्चों के खेल के स्तर को वयस्क सफलतापूर्वक बढ़ा सकते हैं। खेल के बढ़े हुए स्तर का सकारात्मक प्रभाव बच्चे के अन्य संज्ञानात्मक कौशलों पर भी होता है।

कुछ प्रश्न : जोड़ी बनाइए –

	अ	ब
(i)	0 –2 साल के बच्चे	संचरित खेल व क्रीड़ा
(ii)	2–7 साल के बच्चे	प्रतीकात्मक खेल
(iii)	7 –11 साल के बच्चे	संवेदी व क्रियात्मक खेल

विचार कीजिए

- बच्चों में अलग –अलग उम्र में खेल का विकास सहज ही हो जाता हैं या यह बड़ों के पथ–प्रदर्शन पर निर्भर होता है आपका अपना अनुभव इनमें से किस विचार के समीप है सोच कर लिखें?

वाइगोत्स्कीय परिप्रेक्ष्य (Vygotskian Perspective) में खेल का स्थान

वाइगोत्स्की (Lev Vygotsky) का विश्वास था कि खेल संज्ञानात्मक, भावात्मक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देता है। ऊपर चर्चित अन्य सिद्धान्तकारों के विपरीत विकास में खेल के महत्व के बारे में वाइगोत्स्की का दृष्टिकोण अधिक समन्वयकारी था।

वाइगोत्स्की के लिए खेल बच्चों को अपने व्यवहार पर नियंत्रण की क्षमता देने वाला मानसिक उपकरण है। खेल में जो कल्पित स्थितियाँ खड़ी की जाती हैं, वे बच्चे के व्यवहार को एक खास तरह से नियंत्रित करने वाली और दिशा देने वाली प्रथम बाधाएँ हैं। खेल व्यवहार को संगठित करता है। उदाहरण के लिए खेल में बच्चा स्वच्छन्द व्यवहार नहीं करता, ''मम्मी–मम्मी' या 'ड्राइवर–ड्राइवर के खेल में वह माँ या ट्रक–ड्राइवर होने का बहाना करता है।

हर कल्पित स्थिति में भूमिकाएं और नियम निश्चित नियम होते हैं जो स्वाभाविक रूप से सतह पर आ जाते हैं। भूमिकाएं चरित्रों की होती हैं जिनको बच्चे खेलते हैं जैसे समुद्री डाकू की या शिक्षक की भूमिका। कल्पित स्थिति की विषयवस्तु बदलने के साथ भूमिकाएं और नियम भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'किराने की दुकान' का, खेल के नियम, 'शेर–शेर' खेलते बच्चों की भूमिकाओं और खेल के नियमों से भिन्न होंगे। खेल के नियम आरंभ में खेल के भीतर प्रच्छन्न होते हैं, आगे चल कर वे सतह पर आ जाते हैं और बच्चों के बीच तय किये जाते हैं।

अतः खेल, में एक प्रत्यक्ष कल्पित स्थिति और कुछ प्रच्छन्न नियम शामिल होते हैं। कल्पित स्थिति बच्चों द्वारा रचित वह स्थिति है जिसके सच होने का बहाना किया जाता है। कल्पित होते हुए भी दूसरों के लिए प्रत्यक्ष हो जाती है क्योंकि बच्चे उसके लक्षण प्रकट कर देते हैं। वे कहते हैं, 'मान लो कि यहां एक कुर्सी और वहां एक मेज़ है। मान लो कि हमारी कक्षा में छः बच्चे हैं और हम शिक्षक हैं।' इशारों और आवाजों से भी वे अपने खेल की कल्पित स्थिति को प्रकट किया करते हैं। जैसे पेट्रोल–पम्प–स्टेशन से निकलते हुए एक ट्रक को प्रकट करने के लिए ''घुर्रर्रर घुर्रर्रर'' की आवाज़ या एक कल्पित घोड़े की लगाम खींचते हुए बच्चे का चींहिंहिंहिं का शोर।''लेकिन नियम प्रच्छन्न माने जाते हैं क्योंकि उनको आसानी से देखा नहीं जा सकता, व्यवहार के द्वारा केवल उनका अनुमान लगाया जा सकता है। नियम किसी विशेष भूमिका के साथ जुड़े हुए व्यवहार के नमूने के रूप में अभिव्यक्त होते हैं खेल की कल्पित स्थिति में हर भूमिका बच्चे के व्यवहार पर अपने नियम लागू कर देती है। पश्चिमी परिप्रेक्ष्य से देखें तो खेल के विषय में यह विचार असाधारण हैं क्योंकि परंपरागत रूप से हम खेल को सर्वथा स्वच्छन्द और निर्बाध समझते आए हैं।

लेकिन वाइगोत्स्की का कहना है कि खेल में बच्चे केवल मनमाना व्यवहार नहीं करते। 'मम्मी–मम्मी के खेल में और 'टीचर–टीचर' के खेल में बच्चे अन्तर करते हैं। हर भूमिका के अनुसार भिन्न मुद्राएं, भिन्न वेषभूषा, यहां तक कि भाषा भी भिन्न होती है। खेल के आरंभिक चरणों में वे इन अन्तरों से अवगत नहीं होते, लेकिन चार वर्ष की उम्र के अधिकांश बच्चे दिखा देते हैं कि वे किसी भूमिका के निर्वाह में होने वाली ग़लतियों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं और अक्सर एक दूसरे को सुधारते भी हैं, मम्मी ब्रीफकेस लेकर चलती हैं, ''तुम टीचर हो तो बच्चों को बैठना पड़ेगा,'' ''टीचर किताब को ऐसे पढ़ती हैं'' इत्यादि। बच्चे मज़ाक की तरह भूमिका के नियमों का उल्लंघन भी करते हैं। तीन वर्ष का टोबी ऊंची कुर्सी पर चढ़कर कहता है, ''अब मैं डैडी हूं।'' फिर वह ठहाका लगा कर हंसता और कहता है, ''डैडी अब अपनी ऊँची कुर्सी पर बैठ नहीं सकते।

कुछ प्रश्न

- बच्चे खेलों के बीच अन्तर करके विभिन्न मुद्राएं, वेशभूषा व भाषा का इस्तेमाल क्यों करते हैं वाइगोत्सकी के विचार में इस बात का क्या महत्व हैं?
- क्या बच्चों का खेल अराजक होता है – आपके अनुभव क्या कहते हैं?

विकास पर खेल का प्रभाव

पश्चिम में हाल के अनुसंधानों का जो सारांश स्मालेनस्की और शेफात्या ने दिया है उसके संकेत के अनुसार नाटकीय खेल के विकास से संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के अलावा स्कूल संबंधी कौशलों को भी लाभ पहुँचता है। उदाहरण के लिए शाब्दिक अभिव्यक्ति, शब्द–भण्डार, समझ, अवधान की अवधि, कल्पनाशीलता, एकाग्रता, आवेश पर नियंत्रण, जिज्ञासा, समस्या–समाधान की और अधिक युक्तियां, सहयोग, सहानुभूति और सामूहिक भागीदारी इनमें शामिल हैं। वाइगोत्स्कीवादियों ने उन क्रियातंत्रों की जांच की है जिनके द्वारा खेल विकास को प्रभावित करता हैं। उदाहरण के लिए मैन्यूलेको और इस्तोमिना ने देखा है कि अधिगम की अन्य गतिविधियों की अपेक्षा खेल के दौरान बच्चों के मानसिक कौशल उच्चतर स्तर पर होते हैं। वाइगोत्स्की ने इसे निकट विकास क्षेत्र (निविक्षे / Zone of Proximal Development - ZPD) के उच्चतर स्तर की तरह पहचाना है। मैन्यूलेको ने पाया कि बाकी की अपेक्षा खेल के समय बच्चों का आत्म–नियंत्रण उच्चतर स्तर पर होता है। एक लड़के को जब खेल में निगरानी रखने का काम दिया गया तो वह जितनी देर तक ध्यान को एकाग्र रखते हुए अपनी जगह पर टिका रहा उतनी देर तक वह शिक्षक द्वारा बताए काम पर ध्यान नहीं रख पाता। इस्तोमिना ने तुलना करके देखा कि प्रयोगशाला में एक समतुल्य स्थिति की अपेक्षा बच्चे 'किराने की दुकान' का खेल खेलते समय कितनी चीजें याद रख पाते हैं। बच्चों को शब्दों की एक सूची याद करने के लिए दी गयी थी। खेल की नाटकीय स्थिति में, किराने की दुकान का खेल खेलते समय बच्चों को यह सूची दी गयी और प्रयोगशाला में परीक्षा की स्थिति में मैन्यूलेको ने पाया कि नाटकीय खेल की स्थिति में बच्चों को ज्यादा संख्या में चीजें याद रहीं।

वाइगोत्स्की के अनुसार खेल विकास को तीन तरीके से प्रभावित करता है :

1. खेल बच्चे के निकट–विकास–क्षेत्र का निर्माण करता है।
2. खेल कार्यों और वस्तुओं को विचार से अलग करने का काम करता है।
3. खेल आत्मनियंत्रण के विकास में सहायक होता है।

खाली स्थान भरिए–

- वाइगोत्सकीवादी शोधकर्ता के नाम–,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

- बच्चे शिक्षक के बताये काम की बजाय किसी खेल में किए जाना वाले काम में ज्यादा देर तक ,,,,,,,,,,,,,रहते हैं।

- बच्चे परीक्षा के लिए चीजों की सूची याद रखने के बजाय ,,,,,,,,,,,,में उपयोग की गयी चीजों को ज्यादा,,,,,,,,,,, रख पाते हैं।

- इस तरह खेल से बच्चों को अपना ,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, क्षेत्र मिल पाता है।

- नाटकीय खेल के लिए सीखे गए संज्ञानात्मक व सामाजिक कौशल के अलावा खेल ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

संबंघी कौशलों का भी विकास करता हैं जैसे शब्द भंड़ार, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,।

निकट विकास क्षेत्र का निर्माण (Zone of Proximal Development)

वाइगोत्स्की के अनुसार खेल बच्चे के लिए निकट–विकास–क्षेत्र का निर्माण भी करता है। खेल में बच्चा हमेशा अपनी आयु से अधिक और अपने दैनिक व्यवहार के स्तर से ऊपर उठकर बर्ताव करता है, मानो खेल के दौरान वह खुद अपने कद से हाथ भर ऊँचा हो गया हो। खेल के भीतर विकास की सारी प्रवृत्तियां, मानो आतशी शीशे के फोकस में, सारभूत रूप से मौजूद रहती हैं ; मानो बच्चा अपने सामान्य स्तर से ऊपर छलांग लगाने को तत्पर हो। खेल और विकास के संबंध की तुलना शिक्षा और विकास के संबंध से की जा सकती है। खेल विकास का स्त्रोत है और निविक्षे की रचना करता है।

खेल की केवल विषयवस्तु ही निकट विकास क्षेत्र को परिभाषित नहीं करती है। खेलने के लिए बच्चा जिस मानसिक प्रक्रिया में संलग्न होता है वह निविक्षे की रचना करती है। बच्चा निकट विकास क्षेत्र के उच्चतर स्तर पर काम कर सके इसके लिए कल्पित स्थितियों से प्राप्त भूमिकाएं, नियम तथा प्रेरणा सहायक सिद्ध होते हैं।

यदि हम खेल और खेल के बाहर की स्थितियों में बच्चे के व्यवहारों की तुलना करेंगे तो हमें निकट विकास क्षेत्र (निविक्षे) के उच्चतर तथा निम्नतर स्तर दिखाई देंगे। खेल के बाहर या वास्तविक जीवन की स्थिति में, एक जनरल स्टोर में लुई एक टॉफी चाहता है। उसकी माँ मना कर देती है। वह रोने लगता है। वह अपने व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर पाता है। टॉफी की चाह के लिए उसकी प्रतिक्रिया स्वतःचलित है। वह कहता भी है, मुझसे रुलाई रुक नहीं रही है। खेल में वह अपने व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है क्योंकि वह परिवार की कल्पित स्थिति को नियंत्रित कर सकता है। वह जनरल स्टोर जाने और न रोने का नाटक कर सकता है। वह रोने और रुलाई रोक लेने का नाटक कर सकता है। वास्तविक स्थिति की अपेक्षा नाटक उसे ऐसे उच्चतर स्तर पर काम करने का अवसर दे सकता है।

उदाहरण के लिए पांच साल की जेसिका अपनी कक्षा में समूह के साथ दायरे में बैठने के समय दिक्कत महसूस करती है। वह अन्य बच्चों पर लदती और साथवाले बच्चे से बात करती रहती है। शिक्षक के शाब्दिक इशारों और मदद के बावजूद वह तीन मिनट से अधिक सीधी बैठ ही नहीं सकती। इसके विपरीत जब वह अपने दोस्तों के साथ स्कूल–स्कूल खेल रही होती है तब वह दायरे में बैठने वाले अभ्यास में काफी देर स्थिर बैठ लेती है। अच्छी छात्रा होने का नाटक करते समय वह ध्यान को एकाग्र करके दिलचस्पी लेने का नाटक दस मिनट तक कर सकती है। इस प्रकार खेल उसे भूमिकाएं, नियम और स्थिति प्रदान करता है जो उसके लिए उच्चतर स्तर पर ध्यान एकाग्र करना और दिलचस्पी लेना संभव बनाता है, जैसा कि वह इस अवलम्ब के बिना नहीं कर पाती।

यदि बच्चे को खेल का अनुभव नहीं मिलता तो हमारे विचार से उसके संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा

सामाजिक विकास को हानि पहुंचेगी। वाइगोत्स्की के शिष्यों लियोन्त्येव (Dmitry Leontiev) और एलकोनिनने (Daniil El'konin) उनके इस विचार को परिष्कृत करके यह अवधारणा बनाई कि खेल एक प्रमुख गतिविधि है। उनका कहना है कि तीन से छः वर्ष के बच्चों के विकास के लिए खेल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण गतिविधि है। इस दौर में बच्चे विभिन्न गतिविधियों से लाभ पाते हैं किन्तु, लियोन्त्येव और एलकोनिन का विश्वास था कि इस आयु के लिए खेल की भूमिका अनूठी है जिसका स्थान अन्य कोई गतिविधि नहीं ले सकती है। एक प्रमुख गतिविधि के रूप में खेल पर इनके अनुसंधान की चर्चा इस अध्याय में आगे की जाएगी।

''एक आतशी शीशे के फोकस में '' कहने से वाइगोत्स्की का तात्पर्य था कि अधिगम की तथा अन्य गतिविधियों की अपेक्षा खेल में नई विकासमान दक्षताएं पहले प्रकट होती हैं। अतः चार साल की उम्र में बच्चे की आगामी संभावनाओं की भविष्यवाणी के लिए खेल जितना उपयुक्त है उतना अक्षर पहचानने जैसी अकादमिक गतिविधियां नहीं। चार साल के बच्चे के खेल में हम एक उच्चतर स्तर पर उसकी ध्यान, प्रतीकन और समस्या के समाधान की क्षमताओं का निरीक्षण कर सकते हैं। हम वस्तुतः आगामी कल के बच्चे को देख रहे होते हैं।

कुछ प्रश्न

• लियोन्त्येव और एलकोनिन का निष्कर्ष था कि ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, से ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, साल के बच्चों के लिए खेल एक ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, गतिविधि हैं।

• दिए गए उदाहरण में टॉफी (चॉकलेट) के लिए रोने वाला लुई अपने व्यवहार को नियंत्रित करना किस स्थिति में बेहतर सीख सकता है।

• दिए गए उदाहरण में तीन मिनट भी सीधी न बैठ सकने वाली जैसिका किस स्थिति में देर तक स्थिर बैठने की क्षमता का विकास कर सकती है।

विचार करें

• "खेल से भविष्य में बच्चों में होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है।" क्या आपके अनुभव में भी ऐसा देखने को मिलता है।

विचार को कार्य और वस्तु से अलग करना

खेल में बच्चे बाहरी यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक विचार के अनुसार कार्य करते हैं। ''बच्चा एक चीज़ देखता है, पर जो देखता है उसकी तुलना में भिन्न प्रकार से व्यवहार करता है। एक स्थिति जाती है जब बच्चा अपने देखे हुए से स्वतंत्र होकर व्यवहार करने लगता है।''

चूंकि खेल में एक वस्तु को दूसरी का स्थानापन्न बनाने की आवश्यकता होती है, बच्चा, वस्तु के विचार या अर्थ को वस्तु से अलग करने की शुरूआत कर देता है। जब वह एक ब्लॉक को नाव की तरह इस्तेमाल करता है तो 'नावपन' का विचार वास्तविक नौका से अलग हो जाता है। जब ब्लॉक को एक नौका बनाना हो तो वह नौका की जगह ले लेता हैं। जैसे–जैसे प्रीस्कूल के बच्चे बड़े होते जाते हैं, वैसे–वैसे इस तरह स्थानापन्न बनाने की उनकी क्षमता में लचीलापन बढ़ता जाता है। अंततः एक साधारण इशारे से या 'मान लो' कहने भर से वस्तुओं को प्रतीकों में बदला जा सकता है। अर्थ का वस्तु से पृथक्करण अमूर्त विचार तथा अमूर्त चिन्तन की तैयारी है। अमूर्त चिन्तन में हम वास्तविक जगत की ओर इशारा किये बिना अपने विचारों तथा अवधारणाओं का मूल्यांकन, इस्तेमाल तथा संचालन करते है। वस्तु को अवधारणा से अलग करने की यह क्रिया लेखन की ओर संक्रमण की तैयारी है, जहां शब्द अपने द्वारा सूचित वस्तु जैसा कुछ नहीं होता। अंत में व्यवहार वस्तु द्वारा संचालित नहीं रह जाता, अब वह प्रतिक्रियात्मक नहीं है। वस्तुओं का प्रयोग दूसरी अवधारणाओं को समझने के लिए उपकरण

के रूप में किया जा सकता है। ब्लॉकों का प्रयोग ब्लॉकों की तरह न करके बच्चा उनका प्रयोग किसी समस्या के समाधान के लिए, जैसे गणित में सहायता सामग्री की तरह करने लगता है।

• यह क्यों कहा गया है कि नाटकीय खेल में उसी सूझ–बूझ की आवश्यकता हैं जिसका प्रयोग उच्चतर मानसिक कार्यो में किया जाता है।

• अमूर्त चिन्तन करने की तैयारी के लिए कौन सी स्थितियों का बनना जरूरी समझा जाता है?

आत्म–नियंत्रण का विकास

चूंकि खेल–विशेष की विषयवस्तु के अनुसार भूमिकाओं और नियमों का निर्वाह करना होता है अतः बच्चों के लिए अपने व्यवहार पर रोक और नियंत्रण जरूरी होता है। खेल में बच्चे मनमानी नहीं कर सकते, उन्हें स्थिति के अनुसार कार्य करना होगा। ढाई वर्ष का लुई घर–घर खेल रहा है और किसी शिशु की तरह रो रहा है। शिशु की तरह भूमिका होने में यह निहित है कि रोते हुए लुई को पिता जब पुचकारे तो वह चुप हो जाए। उसका व्यवहार चोट की प्रतिक्रिया में नहीं है। वह खेल की स्थिति से निकला है इस रुलाई में उसी समझ–बूझ की आवश्यकता है जिसका प्रयोग उच्चतर मानसिक कार्यों में किया जाता हैं अतः खेल वह संदर्भ प्रदान करता है जिसमें लुई समझे–बूझे व्यवहार का अभ्यास कर सकता है ; इससे प्रकट होता है कि वह अपने व्यवहार पर काबू पा सकता है। अन्य संदर्भों की अपेक्षा खेल में अधिक महत्वपूर्ण ढंग से नियंत्रण और समझ–बूझ की आवश्यकता होती है, अतः खेल उच्चतर मानसिक कार्यों के लिए निविक्षे का निर्माण करता है।

खेल का विकास–मार्ग

वाइगोत्स्की के सभी विद्यार्थियों में से केवल एकलोनिन ने ही अपने शोध को खेल पर केन्द्रित किया। शोध ा के द्वारा इन्होंने बड़े बच्चों की अधिगम की गतिविधियों के विकास और खेल के बीच संबंध दिखाने का प्रयास किया। एलकोनिन ने लियोन्त्येव की प्रमुख गतिविधियों की अवधारणा को विस्तृत किया और उन विशेषताओं को भी चिह्नित किया जो खेल को एक प्रमुख गतिविधि बनाती हैं।

शिशु और खेल

एलकोनिन के अनुसार एक से तीन वर्ष तक के छोटे बच्चों के खेल की जड़ें हस्त–संचालन और उसके द्वारा अन्य उपकरणों के प्रयोग की गतिविधियों में होती है। हस्त–प्रयोग के द्वारा बच्चे वस्तुओं की विशेषताओं की तलाश करते हैं और बने बनाएं से उनका इस्तेमाल करना सीखते हैं। इसके बाद बच्चे रोज़मर्रा इस्तेमाल की वस्तुओं का कल्पित स्थितियों में इस्तेमाल करना सीखते हैं। इस प्रकार खेल का जन्म हो जाता है। उदाहरण के लिए दो वर्ष की लीला एक चम्मच उठाती है और उससे खाने का प्रयास करती है। वह चम्मच का इस्तेमाल केवल मेज़ पर पटकने के लिए नहीं, चम्मच की तरह रूढ़ तरीके से करना सीख रही है। खेल का पहला चिह्न तब उभरता है जब अट्ठारह महीने का जॉन चम्मच से अपने भालू को खिलाता है या खुद खाने का बहाना करता है। बच्चे के द्वारा दैनिक प्रयोग की साधारण वस्तुओं की छानबीन से खेल की शुरूआत होती है।

व्यवहार के खेल बनने के लिए जरूरी है कि बच्चा अपने कार्य को शब्दों में एक पहचान दे। व्यवहार को हस्तप्रयोग से खेल में बदलने के लिए भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। शिक्षक बच्चे से पूछता है, अपने भालू को खाना खिलाओगे ?'' इस तरह वह खेल की तरफ संक्रमण में उस बच्चे की मदद करता है जिसने अभी–अभी चम्मच उठाया है। बीस महीने की जोड़ी अपनी खिलौना ट्रक को पीछे से धकेलती और उसकी आवाज सुनती है। उसकी शिक्षिका कहती है, ''अपना ट्रक चला कर इधर क्यों नहीं ले आती? लाकर पेट्रोल भर लो। ''जोड़ी सुनती है और अपने ट्रक को चला कर शिक्षिका के पास ले जाती है जो उसमें पेट्रोल भरने का अभिनय करती हैं। शिक्षिका के साथ शब्दों और हरकतों के इस आदान–प्रदान के बिना जोड़ी केवल ट्रक के पहियों की आवाज

और गति की छानबीन ही करती रह जाती। शिक्षिका के व्यवहार ने एक नया निविक्षे तैयार करके बच्चों के व्यवहार को हस्त–प्रयोग से आगे एक और अधिक परिष्कृत स्तर तक पहुंचा दिया।

इस स्तर पर बच्ची कोई और होने का बहाना कर सकती है या वस्तु को एक प्रतीकात्मक तरीके से इस्तेमाल कर सकती है। पियाजे की तरह एलकोनिन ने भी प्रतीकात्मक कार्य को एक वस्तु का दूसरी वस्तु के पर्याय के रूप में प्रयोग कह कर परिभाषित किया है। खेल का दर्जा पाने के लिए वस्तुओं की छानबीन में प्रतीकात्मक प्रस्तुति का शामिल होना आवश्यक है। जब एक बच्चा किसी वस्तु को दबाता, गिराता या मेज़ पर पटकता है तो वह वस्तु के साथ हाथों का प्रयोग कर रहा है। इसे खेल नहीं कहा जा सकता। अगर वह किसी वस्तु को बत्तख मान कर उसे मेज़ पर तैरा रहा हो और उसे डबलरोटी के टुकड़े खिला रहा हो तो वह खेल है।

कुछ प्रश्न

- एलकोनिन के शोध के अनुसार बच्चों में खेल की शुरूआत कहां से होती हैं?
- दिए गए उदाहरण में ट्रक–ट्रक खेलते बच्चों की शिक्षिका ने उनके खेल में क्या योगदान दिया?
- स्पष्ट करें कि शिक्षिका के योगदान से बच्चों को नया निकट विकास क्षेत्र कैसे मिला?

विचार करें

आप जब बच्चों को खेलते देखते हैं तो क्या प्रतिक्रिया करते हैं? इसके पीछे आपके मन में खेल व बच्चों के बारे में क्या धारणा होती है?

प्रीस्कूल और किण्डरगार्टन में खेल

एलकोनिन के अनुसार प्रीस्कूल के आरंभिक वर्षों में खेल वस्तु की ओर उन्मुख होता है। खेल के केन्द्र में वस्तु होती है और आदान–प्रदान में खेलने वालों की भूमिकाएं गौण होती हैं। तीन साल के जोन और टोमैजो घर–घर खेलते समय एक दूसरे से यह तो कहते हैं कि 'हम घर–घर खेल रहे हैं, लेकिन अपने परिवार के वयस्कों की भूमिकाओं का नाटक नहीं करते। व प्लेटें धोते हैं, गैस पर रखे पतीले, चमचे हिलाते हैं और एक दूसरे से ज्यादा बात नहीं करते।

इसकी तुलना में प्रीस्कूल और किण्डरगार्टन के बड़े बच्चों के खेल के साथ कीजिए जो अधिक समाजोन्मुख होता है। पांच वर्ष के बच्चों के लिए पतीले में चमचा चलाना और प्लेटें धोना उन जटिल भूमिकाओं के लिए एक संदर्भ बन जाता है , जिनका वे अभिनय करते हैं। उनका खेल वस्तु–केन्द्रित नहीं होता है, धोने और चमचा चलाने की क्रियाओं का संक्षेपण या केवल कथन भी हो सकता हैं। समाजोन्मुख खेल में भूमिकाएं बातचीत में तय की जाती और अधिक लम्बी अवधि तक अभिनीत की जाती है। बच्ची जो पात्र खेल रही है, वही बन जाती है। इस प्रकार का खेल चार से छः वर्ष तक के बच्चों के लिए सामान्य है लेकिन किसी न किसी रूप में प्रीस्कूल की पूरी अवधि में चलता रहता है। वाइगोत्स्कीय ढांचे में समाजोन्मुखी खेल में दूसरे बच्चों का शामिल होना अनिवार्य नहीं है। बच्चा वह खेल भी खेल सकता है जिसे 'निर्देशक का खेल' कहा जाता हैं निर्देशक के खेल में बच्चा अपने काल्पनिक साथियों अथवा खिलौनों के साथ खेल का निर्देशन व अभिनय करता है। रुईभरे खिलौनों और गुड़ियों को लेकर आइज़क सिम्फनी ऑर्केस्ट्रा के संचालन का नाटक करता है। माया स्कूल–स्कूल खेलती है। एक पल वह शिक्षक होती है और दूसरे पल अपने विद्यार्थी भालू की ओर से बोलती है। कुछ पश्चिमी शोधकर्ताओं (जैसे पार्टन, 1932) के विपरीत वाइगोत्स्की एकान्त में खेले गये सभी खेलों को अपरिपक्व नहीं मानते हैं। अकेले खेलते हुए बच्चा यदि वहां अन्य लोगों के मौजूद होने का बहाना करता है तो निर्देशक का खेल कल्पित सामाजिक खेल के समकक्ष होता है। पियाजे के विपरीत वाइगोत्सकीवादी यह नहीं मानते कि सात या आठ वर्ष की उम्र तक

पहुंचते–पहुंचते समाजोन्मुख खेल समाप्त हो जाते हैं। दस या ग्यारह साल तक के बच्चे भी इनको खेलते हैं किन्तु एक प्रमुख गतिविधि के रूप में इनका महत्व धीरे–धीरे लुप्त हो जाता है। बच्चे जैसे जैसे बड़े होते हैं वैसे–वैसे वे अपने समाजोन्मुख खेलों के लिए और अधिक स्पष्ट नियम विकसित कर लेते हैं। छः साल का फ्रैंक कहता है, ''यह बुरा आदमी है और बुरा आदमी हमेशा अच्छे आदमी को पकड़ने आता है।'' मेरी जवाब देती है, ''लेकिन वह पकड़ नहीं पाएगा क्योंकि अच्छे लोग ज्यादा तेज़ और उनके हवाईजहाज बेहतर होते हैं, इसलिए वे निकल जाएंगे। ''बड़े होने के साथ–साथ बच्चे भूमिकाएं और कार्य (नियम) तय करने में ज्यादा समय लगाने लगते हैं और उसके बनिस्बत कथा (कल्पित स्थिति) को अभिनीत करने में कम। वस्तुतः छः वर्ष के बच्चे कथा पर विचार–विमर्श करने में कई मिनट खर्च करते हैं और उसको अभिनीत करने में केवल कुछ सेकेण्ड।

कुछ प्रश्न

खाली स्थान पूर्ण कीजिये – (प्रमुख गतिविधि, 11, समाप्त, 8)

• पियाजे मानते थे कि ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, वर्ष की उम्र तक समाजोन्मुख खेल ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, हो जाते हैं।

• वाइगोत्सकीवादी लोग मानते हैं कि ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, साल तक के बच्चे भी समाजोन्मुख नाटकीय खेल खेलते हैं किन्तु एक ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, के रूप में इनका महत्व धीरे–धीरे कम होने लगता हैं।

• आप अपने स्कूल के बचों का अवलोकन करें, उनकी बातचीत सुनें और दर्ज करें। अपने अवलोकनों के आधार पर आप को नाटकीय खेलों में लगे बच्चों की उम्र के बारे में किसका निष्कर्ष ज्यादा सही लगता है – पियाजे का या वाइगोत्सकीवादियों का ,,,,,,,,,?

• जो बच्चे ज्यादा उम्र तक नाटकीय खेलों में संलग्न रहते हैं उनके विकास के लिए वे खेल क्या योगदान दे रहे होते हैं?

क्रीड़ाएँ

यह खेल का एक भिन्न प्रकार है जो पाँच वर्ष के आसपास उभरता है। यह कल्पित स्थिति वाले खेल से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें कल्पित स्थिति प्रच्छन्न रहती हैं तथा नियम प्रकट और विस्तृत रहते हैं।

उदाहरण के लिए शतरंज के खेल में एक काल्पनिक स्थिति रची जाती है क्यों ? क्योंकि उसमें घोड़ा, हाथी, राजा, रानी और इसी तरह सब अन्य केवल एक खास निश्चित प्रकार से ही चल सकते हैं। गोटियों के ऊपर से जाने और गोटियाँ मारने के नियम पूरी तरह से शतरंज की अपनी अवधारणाएं हैं। यद्यपि शतरंज के खेल में वास्तविक जीवन के संबंधों का कोई सीधा स्थानापन्न नहीं है लेकिन फिर भी, यह एक प्रकार की काल्पनिक स्थिति ही है।''

दूसरा उदाहरण फुटबॉल का खेल है। इस खेल के खिलाड़ियों के लिए गेंद को हाथ से छूना मना है। फुटबाल इस अर्थ में एक काल्पनिक स्थिति है कि वास्तविक जीवन में वही खिलाड़ी गेंद को घुमाने के लिए हाथों का प्रयोग कर सकता है लेकिन फुटबॉल के खेल में खिलाड़ियों की सहमति से तय है कि वे अपने हाथों का प्रयोग नहीं करेंगे, उसी तरह जैसे नाटकीय खेल के पहले बच्चे तय कर लेते हैं कि वे खेल के दौरान क्या कर सकते हैं। और क्या नहीं कर सकते।

भूमिकाओं और नियमों के बीच सन्तुलन के स्वरूप को देखते हुए क्रीड़ाएं समाजोन्मुख खेलों से भिन्न हैं। समाजोन्मुख खेल में भूमिकाएं प्रकट हैं, नियम प्रच्छन्न। बच्चे भूमिकाओं और उनकी अपेक्षाओं पर बात करते हैं लेकिन नियमभंग से खेलभंग नहीं होता। बच्चा तयशुदा अनुक्रम से भिन्न भी कुछ कर बैठता है तो उससे खेल में गड़बड़ नहीं होती।

इसके विपरीत क्रीड़ा में नियम स्पष्ट होते हैं। नियम तोड़ कर क्रीड़ा चल नहीं सकती।

कुछ प्रश्न

- क्या क्रीड़ा एक तरह के काल्पनिक खेल है?
- समाजोन्मुखी खेलों से क्रीड़ा किस रूप में अलग है?

क्या सभी खेल एक प्रमुख गतिविधि हैं?

सभी खेलों को एकप्रमुख गतिविधि नहीं माना जा सकता क्योंकि हर प्रकार के खेलों में व्यवहार, विकास को प्रोत्साहित नहीं करता। आगामी अधिगम के लिए बच्चे को तैयार करने वाले खेल की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. प्रतीकात्मक प्रस्तुति और प्रतीकात्मक कार्य
2. परस्पर गुँथी हुई जटिल अन्तर्वस्तु
3. गुँथी हुई जटिल भूमिकाएं
4. समय का विस्तारित ढांचा (अनेक–दिवसीय–अवधि)

तीन साल की उम्र के बच्चों में इन लक्षणों में से कुछ के उभार की शुरूआत ही होती है परन्तु किण्डरगार्टन से बाहर आने तक बच्चे में ये सारे लक्षण विकसित हो जाने चाहिए।

> वाइगोत्सकी और एलकोनिन, के अनुसार विस्तारित अवधि तक जारी रहने वाला नाटक अधिक आत्मनियंत्रण, आयोजन और स्मृति की मॉग करके बच्चे को निकट विकास क्षेत्र के उच्चतम स्तरों की ओर धकेलता है।

1. प्रतीकात्मक प्रस्तुति और प्रतीकात्मक कार्य– खेल के उच्चतर स्तर पर बच्चे वस्तुओं और कार्यों का प्रयोग किन्हीं अन्य वस्तुओं और कार्यों के स्थानापन्न की तरह प्रतीकात्मक ढंग से करते हैं। इस स्तर पर खेलने वाले बच्चे जरुरत का ठीक वही खिलौना या वस्तु न मिले तो अपना खेल बन्द नहीं कर देते। वे केवल किसी और वस्तु को स्थानापन्न की तरह इस्तेमाल कर लेते हैं। यहां तक कि वे बिना किसी भौतिक स्थानापन्न के, उस वस्तु के मौजूद होने का बहाना भी करने को राजी हो सकते हैं। इस स्तर पर वे कार्यों के साथ भी प्रतीकात्मक व्यवहार करते हैं। इमारत के गिरने का खेल खेलने के लिए वे किसी ढाँचे को गिराए बिना ही इमारत को गिरा हुआ मान सकते हैं। उन्हें बस यह कहने की जरूरत है, 'मान लो' गिर गयी। इस तरह के आविष्कार को बढ़ावा देने वाली स्थितियां खेल को और भी प्रोत्साहित करेंगी।

2. गुँथी हुई जटिल विषयवस्तु – उच्चतर खेल में अनेक विषयवस्तु हो सकती हैं, जो आपस में गुँथ कर एक संपूर्ण इकाई बन जाती हैं। खेल के प्रवाह में बच्चे बिना किसी रुकावट के दूसरे लोगों, खिलौनों और विचारों को शामिल कर लेते हैं। असम्बद्ध सी दिखने वाली विषयवस्तुओं का एकीकरण भी वे अपनी कल्पित स्थिति में कर लेते हैं। उदाहरण के लिए एम्बुलेंस की मरम्मत का खेल खेलते समय वे अचानक किसी मिस्त्री की तबियत बिगड़ जाने का खयाल भी उसमें जोड़ सकते हैं। अब डाक्टर को बुलाना होगा या मिस्त्री को अस्पताल ले जाना होगा। इस तरह वे गैरेज की विषयवस्तु को अस्पताल की विषयवस्तु के साथ गूँथ देते हैं।

3. गुँथी हुई जटिल भूमिकाएँ – उच्चतर स्तर पर खेल में बच्चे एक ही समय में अनेक भूमिकाएँ अपना सकते हैं, उनको समन्वित कर सकते हैं। निम्नतर स्तर पर वे एक ही विषयवस्तु से जुड़ी रूढ़ भूमिकाएँ करते हैं जैसे मम्मी की भूमिका में वे शिशु को दूध पिलाते, प्लेटें धोते हैं। खेल जब उच्चतर स्तर पर आ जाता है तो माँ काम के लिए दफ़्तर जाती है, बीमार बच्चे को लेकर अस्पताल जाती है, फिर डाक्टर बन कर बच्चे का इलाज करती है, इसके बाद रोता हुआ बच्चा भी बन जाती है और इस सबके बाद माँ की अपनी मूल भूमिका में वापस लौट आती है।

4. संयम का विस्तारित ढाँचा – उच्चतर स्तर पर खेल में समय के विस्तारित ढाँचे से खेल के दो पक्ष प्रकट होते हैं। एक तो यह कि बच्चा कितने समय तक खेल को चला सकता है। विभिन्न भूमिकाओं के निर्वाह को बच्चा जितने ही लम्बे समय तक बनाए रख सकता है, खेल का स्तर उतना ही उच्च होता है। दूसरे, यह कि खेल एक दिन से अधिक चलता है या नहीं। बड़े बच्चे, युद्ध या अस्पताल का वही खेल कई–कई दिनों तक लगातार खेल सकते हैं। चार साल का बच्चा भी मदद के द्वारा एक खेल को कई दिन तक खेल सकता है। आरंभिक बाल्यकाल के शिक्षक खेल को विस्तारित अवधि तक नहीं चलाते। वे खेल को अधिकतर एक दिन के लिए सीमित रखते हैं। वाइगोत्स्की और एलकोनिन, के अनुसार विस्तारित अवधि तक जारी रहने वाला नाटक अधिक आत्मनियंत्रण, आयोजन और स्मृति की माँग करके बच्चे को निविक्षे के उच्चतम स्तरों की ओर धकेलता है।

कुछ प्रश्न

• तीसरी – चौथी कक्षा के बच्चे मिल कर कोई खेल खेलने में तल्लीन हैं आप किन बातों के आधार पर तय करेंगे कि उनका खेल उनके लिए एक प्रमुख गतिविधि कहला सकता है या नहीं?

• क्या खेल एक प्रमुख गतिविधि है? अपने विचारों की पुष्टि उदाहरण देकर कीजिये?

खेल की समृद्धि

शिक्षक को जब हम खेल में मदद करने की सलाह देते हैं तो हमारा तात्पर्य यह नहीं कि वे स्वयं बच्चों के साथ खेलें या उनके समूह का एक सदस्य बन कर खेल का संचालन करें। याद, रखें, खेल के लिये बच्चे का सक्रिय और उत्साहित होना जरूरी है। बच्चे विभिन्न कारणों से खेलते हैं। वैसा वयस्कों के साथ उनके आदान–प्रदान में नहीं होता है। एक वयस्क के साथ आदान–प्रदान बच्चे को अधीनता की भूमिका में रख देता है। शिक्षक चाहे जो भी करे, बच्चा एक बच्चा ही बना रहता है। खेल में बच्चे अनेक भूमिकाएँ अपनाते और आजमाते हैं। शिक्षक यदि खेल में कुछ ज्यादा ही अगुआई करता है तो बच्चे को कभी इस बात का मौका नहीं मिलता कि नाटक (pretend) करें।

इसका एक और नुकसान यह है कि शिक्षक को भी इस बात की झलक नहीं मिलेगी कि हर बच्चे के निविक्षे में क्या मौजूद है। शिक्षक के कार्यों में बच्चे के ही पक्ष को उजागर करने की प्रवृत्ति होती है। पीछे हटकर बच्चे को अपने साथियों के साथ आदान–प्रदान करते देखकर ही शिक्षक यह समझ पाएगा कि भिन्न सामाजिक संदर्भों में उसकी संभावनाएँ क्या हैं। भिन्न सामाजिक संदर्भ शिक्षक को बच्चे का वह पक्ष दिखाएंगे जिसका उसको अन्य किसी तरह से पता नहीं चल सकता है।

इसके बावजूद खेल की प्रक्रिया में शिक्षक की मदद की भूमिका महत्वपूर्ण है। कक्षा में खेल के स्तर पर उपयुक्त अवलम्ब प्रदान करने वाले संवेदनशील शिक्षक का बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। खेल में आधार प्रदान करने के लिए शिक्षक निम्नलिखित उपाय कर सकते हैं :

1. इस बात का ध्यान रखे कि बच्चों के पास खेल के लिए पर्याप्त समय हो।
2. खेल की योजना बनाने में बच्चों की मदद कीजिए।
3. खेल की प्रगति पर आँख रखिए।
4. अवलम्ब और खिलौनों का चुनाव उपयुक्त हो।
5. खेल के लिए ऐसी विषयवस्तु दीजिये जो एक दिन से दूसरे दिन तक ले जाई जा सके।

6. जिन बच्चों को मदद की जरूरत है उन्हें व्यक्तिगत स्तर पर सिखाइये।

7. अलग–अलग विषयवस्तुओं को एक दूसरे के साथ गूँथने के बारे में सलाह दीजिए और करके दिखाइए।

8. झगड़ों के समाधान के उपयुक्त तरीके गढ़िए।

कुछ प्रश्न

• बच्चों के खेल में शिक्षक या किसी वयस्क की भूमिका कैसी होनी चाहिए– इसके 8 सुझावों पर विचार कीजिए। इन भूमिकाओं के लिए आपको क्या–क्या सीखना होगा, सोच कर लिखें?

खेल का विकास सहज है या पथ प्रदर्शन पर आधारित है इस पर अपना विचार व्यक्त कीजिये?

1. इस बात का ध्यान रखें कि बच्चों के पास खेल के लिए पर्याप्त समय हो। प्रीस्कूल और छोटे बच्चों को वस्तुओं के आदान–प्रदान के दौरान पथप्रदर्शन और सामाजिक टकराहटों के समाधान के लिए वयस्कों के आस–पास रहते हुए समय चाहिए। इस उम्र के बच्चों को प्रीस्कूल के थोड़ा बड़े बच्चों की अपेक्षा वयस्क–पथप्रदर्शन की जरूरत अधिक होती है। शिक्षकों को खेल के लिए पर्याप्त समय का ऐसा आयोजन करना चाहिए कि वह इन्हें खेलते हुए देख सके तथा जरूरत पड़ने पर आदान–प्रदान के लिए प्रेरित कर सके।

समृद्ध सामाजिक खेल के लिए विषयवस्तुओं और भूमिकाओं के विकास के लिए प्रीस्कूल के बड़े बच्चों को एक ठोस समय की निश्चित अवधि की आवश्यकता होती है। उन्हें हर दिन समय चाहिए ताकि विषयवस्तु को एक दिन से दूसरे दिन तक ले जाया जा सके। खेल के लिए समय भी पर्याप्त –तीस से चालीस मिनट तक – निर्धारित होना चाहिए ताकि खेल निर्बाध रूप से चल सके।

किण्डरगार्टन और पहली दूसरी कक्षा में लिए खेल एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। किण्डरगार्टन के बच्चों को आम तौर से स्कूल में खेल के लिए समय नहीं दिया जाता है अतः खेल के लिए मिश्रित आयु समूहों का एक यह नकारात्मक परिणाम हो सकता है कि खेल के भीतर आदान–प्रदान के लिए किण्डरगार्टन के बच्चों का समय कम रह जाएगा। आरंभिक प्राथमिक कक्षाओं में खेल प्रतिदिन के कार्यक्रम का हिस्सा नहीं हुआ करता। अपेक्षा की जाती है कि बच्चे मध्यावकाश में खेलेंगे। हमारा विश्वास है कि स्कूल के आरंभिक वर्षों में खेल अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। खेल के लिए समय मध्यावकाश के अलावा निश्चित किया जाना चाहिए अथवा मध्यावकाश की अवधि को बढ़ा देना चाहिए।

2. खेल की योजना बनाने में बच्चों की मदद कीजिए। खेल आरंभ होने के पहले बच्चों से पूछिए कि वे क्या करने जा रहे हैं। बच्चों को किसी विशेष योजना के अनुसार चलने की जरूरत नहीं है लेकिन विचारों को मुखर कर लेने से समझ बेहतर होती है और साझे की गतिविधि के लिए परिस्थिति की रचना को प्रोत्साहन मिलता है।

खेल के आरंभ से ठीक पहले का समय योजना बनाने के लिए सबसे अच्छा समय है। कहीं–कहीं दिन शुरू करते समय योजनाकाल में दिनभर का कार्यक्रम वर्णित किया जाता है लेकिन चूंकि प्रीस्कूल के अधिकांश बच्चों के पास सुविचारित (deliverate) स्मृति नहीं होती, उनके लिए कई घण्टे पहले का तयशुदा कार्यक्रम याद रखना कठिन होता है। यदि उन्हें शुरू करने के ठीक पहले योजना की याद न दिलाई जाए तो वह योजना और कार्यन्वयन के बीच संबंध नहीं जोड़ पाएंगे। कहीं–कहीं दिन के अंत में बच्चों से दिन भर के अनुभवों का लेखा–जोखा लिखाया जाता है किन्तु यह अन्तराल भी योजना और कार्य के बीच संबंध जोड़ने के लिए पर्याप्त नहीं है। दिन के अन्त में दिनभर के कार्य अनकी स्मृति में शायद न बचे हों। यदि आपके कार्यक्रम में योजनाकाल सुबह के समय पर है तो भी खेल के ठीक पहले आपको योजना की याद बच्चों को दिलानी होगी।

खेल समाप्त होने के बाद बच्चों से पूछिये कि क्या कल भी वे इसे चलाएंगे और उन्हें यह सोचने को प्रेरित कीजिए कि कल के लिए क्या बचाकर रखें। अगले दिन खेल की शुरूआत के पहले पिछले दिन की योजना और गतिविधियों पर नज़र डालिये। याद रहे, योजना से चिपके रहना अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है। यह केवल एक साधन है जो अपने काम में लगे रहने में बच्चों की मदद करता है।

3. खेल की प्रगति पर आँख रखिए। खेलते वक्त बच्चे क्या कर रहे हैं, इस पर निगाह रखिए। सोचिए कि खेल के दौरान परिपक्व खेल के लक्षणों और उनके कौशलों के विकास के लिए आप क्या सुझाव दे सकते हैं। यह ध्यान रखना जरूरी है कि आपके सुझाव और उनका हस्तक्षेप कहीं ज्यादा न हो जाएं। खेल लिए, पूछिये, '' आप डॉक्टर हैं या मरीज ?'' या, अच्छा, तो ''मेरी'' काम पर जा रही है?''

4. उपयुक्त अवलम्ब और खिलौनों का चुनाव कीजिए। वाइगात्स्की के अनुसार शिक्षक को खेल के स्थान पर खिलौने और बहुद्देशीय अवलम्ब जमा करके रखने चाहिए। उदाहरण के लिए रंग बिरंगे कपड़ों के कई बड़े टुकड़े राजकुमारी की एक खास पोशाक से ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं राजकुमारी को संस्कृतियों के खिलौनों का उपयोग। यदि बच्चों को ठीक अवलम्ब न मिले, तो स्वयं खिलौने बनाने के लिए उनको प्रोत्साहित कीजिए वे किसी स्थानापन्न वस्तु का उपयोग कर सकते हैं या वस्तु के मौजूद होने का नाटक कर सकते हैं।

5. उन्हें ऐसी विषयवस्तु दीजिये जो एक दिन से दूसरे दिन तक ले जाई जा सके। खेल की विषयवस्तुओं को कहानियों, फील्ड–ट्रिप, कक्षा की गतिविधियों व बच्चों के विचारों में तलाश किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कला की कक्षा में चित्र बनाकर बच्चा चित्रकार होने का नाटक कर सकता है। आरंभ में बच्चों को भूमिकाओं और घटित हुई घटनाओं को याद करने के लिए मदद की जरूरत होती है किन्तु एक बार मदद के बाद वे अक्सर अपने आप खेल को चला ले जाते हैं।

6. जिन बच्चों को मदद की जरूरत है, उन्हें व्यक्तिगत स्तर पर सिखाइए। खेल के स्थान से कतराने वाले बच्चों पर निगाह रखिए। इन बच्चों को समूह के साथ जुड़ने, नये साथी को शामिल करने या नये विचारों को स्वीकार करने में मदद की जरूरत हो सकती है।

बच्चे के खेल के स्तर को देखिए। अगर वह मुख्यतः वस्तुओं से ही खेल रहा है तो विकास के अगले स्तर तक ले जाने के लिए अवलम्ब लाभप्रद होगा। बच्चे की मदद के लिए शिक्षक उसके खेल को किसी काल्पनिक संदर्भ से जोड़ सकता है। उदाहरण के लिए मिट्टी के केक बनाते हुए बच्चे से पूछा जा सकता है कि ये केक तुम खाने के लिए बना रहे हो या बाजार में बेचोगे? ' कभी–कभी काल्पनिक खेल की शुरूआत के लिए बस इतना सा इशारा काफी होता है।

7. विषयवस्तुओं को एक दूसरे के साथ गूंथने के बारे में सलाह दीजिए और करके दिखाइये। एक ही विषयवस्तु पर विभिन्न कहानियां पढ़कर सुनाइये। उदाहरण के लिए जूं से सम्बंधित भालू के बारे में और जंगल में रहनेवाले भालू के बारे में कहानियां सुनाकर यह दिखाया जा सकता है कि एक ही विषयवस्तु कैसे बदल जाती है। अलग–अलग दिखने वाली विषयवस्तुओं को जोड़ने के लिए आप 'अगर यह होता' भी खेल सकते हैं। उदाहरण के लिए मीरा स्कूल–स्कूल खेलना चाहती है और टोनी कार–कार खेलना चाहता है। शिक्षक उन्हें यह

सुझाव दे सकते हैं कि अगर मीरा की कक्षा फील्ड–ट्रिप पर जा रही है तो टोनी उसकी मदद के लिए क्या कर सकता है।

9. झगड़ों के समाधान के उपयुक्त तरीके गढ़िये। खेल में बच्चे सामाजिक झगड़ों का समाधान करना सीखते हैं। शिक्षक को यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि बच्चे इनका समाधान अकेले ही कर लेंगे। दुर्बल सामाजिक कौशल वाले बच्चों को मदद की जरूरत होती है। शिक्षक को बातचीत के ऐसे आदर्श तरीके गढ़ने होंगे जो असहमतियों को निपटाने में सहायक होंगे , जैसे कि ''मुझे लगता है ––––'' , ''मुझे पसन्द नहीं कि ––– '', या फिर, '' अगर हम ––– इसकी बजाए––– ? '' जिन बाह्य मध्यस्थों की चर्चा यहां की गई है, उनका प्रयोग भी मददगार हो सकता है। एक शिक्षक कक्षा में एक ''कलह–पिटारी'' या 'खटपट–झोली' 4 रखते हैं जिसके भीतर एक सिक्का, एक पासा, विभिन्न लम्बाईयों की तीलियाँ, एक तकली5 और तुकबन्दियाँ (जैसे एक आलू दो आलू, झगड़ा बन्द दोस्ती चालू) लिखे हुए कार्ड रहते हैं जिनकी मदद से बच्चे अपने झगड़े सुलझा सकते हैं।

कुछ प्रश्न

- आपके आस–पास के स्कूलों में कक्षा 1 व 2 के बच्चों के लिए खेल के समय को लेकर क्या चलन देखने को मिलता है? क्या आपके विचार में उसमें संशोधन की जरूरत है?

सारांश

खेल बच्चे की स्वाभाविक क्रिया है। भिन्न–भिन्न आयु वर्ग के बच्चे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते है ये विभिन्न प्रकार के खेल बच्चों के समपूर्ण विकास में सहायक होते हैं। खेलों के प्रकारों में अन्वेषणात्मक, संरचनात्मक, काल्पनिक और नियमबद्ध खेल शामिल हैं। खेलों में सांस्कृतिक विभिन्नताएं भी देखी जाती हैं। खेल से बच्चों का शारीरिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक, सामाजिक एवम् नैतिक विकास को बढ़ावा मिलता हैं किन्तु अभिभावकों कि खेल के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति एवम् क्रियाकलाप ने बुरी तरह प्रभावित किया हैं। अतः यह अनिवार्य हैं कि शिक्षक और माता–पिता खेल के महत्व को समझें।

खेल से मनुष्य की मनोवैज्ञानिक जरूरतें पूरी होती हैं। तथा वह मनुष्य को सामाजिक कौशलों के विकास का भी अवसर देता है। पियाजे के अनुसार खेल बच्चों की मानसिक क्षमताओं के विकास में भी एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। पहले चरण में बच्चा वस्तुओं के साथ संवेदन प्राप्त करने व कार्य संचालन करने का प्रयास करता है। दूसरे चरण में बच्चा कल्पनाओं को रूप देने के लिए वस्तुओं को किसी के प्रतीक के रूप में उपयोग करने लगता है। अन्तिम चरण में (7 से 11 वर्ष) काल्पनिक भूमिकाओं के खेलों की तुलना में बच्चा नियमबद्ध खेल (या क्रीड़ाओं) में संलग्न रहता है। खेलों से तार्किक क्षमता व स्कूल सम्बन्धी कौशलों को विकसित होने में मदद मिलती है।

वाइगोत्स्की उसके विचारों से प्रेरित शोधकर्त्ता यह नहीं मानते कि खेलों में उम्र के साथ सहज परिवर्तन हो जाता है। वे वयस्कों व सामाजिक सन्दर्भों से मिलने वाले मार्ग दर्शन को इसके लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार बच्चों के खेल के स्तर को वयस्क बढ़ा सकते हैं।

वाइगोत्स्की के अनुसार – जटिल भूमिकाओं वाले खेलों में बच्चों का अपने व्यवहार को संगठित करने का बेहतर व सुरक्षित अवसर मिलता है जो वास्तविक स्थितियों में नहीं मिलता। इस तरह खेल बच्चे के लिए निकट विकास का क्षेत्र बनाते है। स्कूली स्थिति की तुलना में खेल के दौरान बच्चों की एकाग्रता, स्मृति आदि उच्चतर स्तर पर काम करती हैं। खेल में बच्चे की नई विकास मान दक्षताएँ पहले उभर कर आती हैं। खेल नाटकों में बच्चा अपने आन्तरिक विचार के अनुसार काम करता है और मूर्त रूप में दिखने वाली चीज़ों से बँधा नहीं रहता। यहीं से उसमें अमूर्त चिन्तन व विचार करने की तैयारी होने लगती है। यह लेखन की भी तैयारी होती है क्योंकि लिखित रूप में शब्द वस्तु जैसा नहीं होता, उसके विचार का प्रतीक होता है।

जितनी उम्र तक खेल में जटिल और विस्तृत भूमिकाओं व भाषा का प्रयोग होता है वह बच्चे के विकास के लिए एक प्रमुख गतिविधि बना रहता है। यह स्थिति 10–11 साल तक के बच्चों में कम रह सकती है। धीरे–धीरे इसका महत्त्व कम होने लगता है। शिक्षक बच्चों को खेलने का पर्याप्त समय व साधन देकर विषयों का सुझाव देकर, झगड़ों का समाधान करके खेल को और समृद्ध बना सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. कक्षा पाँचवी के विद्यार्थियों की भाषा विकास तथा शारीरिक विकास के खेलों की सूची बनाईये?
2. उम्र समूह के आधार पर खेल किस प्रकार प्रभावित होते हैं स्पष्ट करें?
3. स्मालेनस्की और शेफात्या के शोध के प्रश्न से क्या पता चलता है?
4. ''एक आतशी शीशे के फोकस में'' पर वाइगोत्सकी के विचार को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए?
5. बचपन में आपके द्वारा खेले गये खेल से आपको आपके विकास में क्या–क्या एवम् किस प्रकार सहायता मिली? उस खेल का नाम और खेलने का तरीका बताईये।
6. निकट विकास क्षेत्र का निर्माण (Zone of Proximal Development) को समझाईये?
7. बच्चों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने– समझने के लिए हमें कौन सी बातों से बचना वाहिए और किन्हें व्यवहार में लाना चाहिए?
7. क्रीड़ा के नियम साफ होते हैं और नाटकीय खेलों में भूमिकायें – इस अन्तर को उदाहरण दे कर स्पष्ट कीजिए?
8. किसी चीज को बतख मानकर व फर्श को नदी मानकर उसमें बतख को तैराने के काम में लगा बच्चा मन में क्या कर रहा होता है?
9. किसी चीज को फर्श पर पटकने– लुड़काने में लगा बच्चा अपने मन में क्या कर रहा होता है?

अध्याय – 6
विशेष आवश्यकता वाले बच्चे

पाठ की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- उद्देश्य
- विशिष्ट बच्चों से क्या अभिप्राय है?
- सामान्य कार्यशीलता में निर्णायक क्षेत्र–
  - दृष्टि
  - श्रवण शक्ति
  - गतिशीलता
  - संप्रेषण
  - सामाजिक–भावात्मक संबंध
  - बुद्धिमत्ता
  - आर्थिक रूप से सुविधावंचित बच्चे
- क्षति, अपंगता एवं क्षमता
- अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी मान्यताएँ एवं अभिवृत्तियाँ
- विभिन्नताओं में समानता
- बच्चे पर अपंगता का प्रभाव
- शिक्षक की भूमिका
  - अभिनिर्धारण
  - बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाना
  - अभिभावकों के साथ संपर्क रखना
  - बच्चे में आत्म विश्वास जागृत करना
- सारांश
- टिप्पणियाँ
- मानसिक मंदता
  - सामान्य परिचय
  - मानसिक मन्दता क्या है?
  - मानसिक मन्दता के स्तर
  - मानसिक मन्दता के कारण
  - मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के साथ कार्य करना
  - कुछ सिद्धांत
  - मानसिक मन्दता मानसिक रोग नहीं
  - अन्यथा सक्षम व्यक्तियों के अधिकार एवं नीतियाँ
- अभ्यास के प्रश्न

सामान्य परिचय

एक कक्षा में विभिन्न तरह के बच्चे होते हैं जिनकी अपनी अपनी आवश्यकताएँ हो सकती हैं। जैसे – कुछ बच्चे अक्षरों को उल्टा लिखते हैं, कुछ की श्रवण शक्ति कम होती हैं, कुछ मंद बुद्धि वाले होते हैं। सभी बच्चे सामान्य गति से नहीं सीख पाते हैं। कुछ बच्चों का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता है जिसके कारण इन बच्चों का विकास एवं दैनिक कार्यशीलता प्रभावित होती है। इस इकाई का मूल उद्देश्य ''विशिष्ट बच्चे'' अथवा ''विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे'' से हमारा क्या अभिप्राय है? इन बच्चों को विशेष जरूरतें, उनके विकास और उनकी दैनिक कार्यशीलता को कैसे प्रभावित करती हैं? विद्यार्थियों में पाई जाने वाली विशिष्टताओं अथवा विषमताओं को समझना, तथा इनका विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे समझना है। इन बच्चों के प्रति समाज का सामान्यतः क्या रवैया होता है ? यदि आपकी शाला में कोई विशिष्ट बच्चा हो तो शिक्षक होने के नाते आप क्या कर सकते हैं?

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ''विशेष आवश्यकताएं'' और ''विशिष्ट बच्चे'' – इन शब्दों की व्याख्या कर सकेंगे।
- यह समझ पाएँगे कि बच्चे की अपंगता उसके दिन–प्रतिदिन के कार्यो को किस प्रकार प्रभावित करती है।
- विशेष जरूरतों वाले बच्चों के साथ संवेदनशील और अनुकूल ढंग से व्यवहार कर सकेंगे।
- ''क्षति'', ''अपंगता'' और ''अक्षमता'' शब्दों के अर्थ समझ तथा समझा पाएँगे।
- आपके संपर्क में आने वाले वयस्कों में विशिष्ट बच्चों के प्रति संवदेनशीलता और उनकी विशेष आवश्यकताओं का बोध विकसित कर सकेंगे।
- अनुभव कर सकेंगे कि कुछ क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने वाली विभिन्नताओं के बावजूद, विशिष्ट बच्चे कई प्रकार से अपनी आयु के सामान्य बच्चों के समान होते हैं।
- अभिभावकों को यह समझने में मदद कर सकेंगे कि उनका रवैया और व्यवहार काफी हद तक यह निर्धारित करेगा कि उनका विशिष्ट बच्चा अपनी अपंगता का सामना कैसे करता है।

विशिष्ट बच्चों से क्या अभिप्राय है?

बाल विकास के विद्यार्थी के लिए शब्द ''विशिष्ट बच्चे'' का एक अलग ही अर्थ है। इसे समझने के लिए आइए, कुछ देर के लिए अपने बचपन की यादों को तरोताजा करें। संभवतः बचपन में आप पढ़ाई के मामले में अपनी बहन से आगे रहे हों। शायद आपका मित्र लोगों में आसानी से घुल–मिल जाता होगा जबकि आप एक अंतर्मुखी बच्चे की तरह हमेशा शर्माते हों और धीरे–धीरे ही लोगों के साथ खुलते हों। शायद आपका कोई सहपाठी रहा होगा जिसे बाकी सब ''दिन में सपने देखने वाला'' कहते होंगे–जिसका ध्यान हमेशा कहीं और लगा रहता होगा या शायद कोई साथी ऐसा रहा हो जो लोगों के साथ हमेशा लड़ता रहता हो या फिर कोई सहपाठी जो 'ड' को 'ब' लिखता होगा, किंतु धीरे–धीरे, शिक्षक के धैर्यपूर्ण रवैये और अथक प्रयास के कारण, ठीक ढंग से लिखना सीख गया होगा।

ऐसी ही भिन्नताओं के कारण हर बच्चे का अपना–अपना अलग व्यक्तित्व होता है। हमारा रोजमर्रा का घर और स्कूल का माहौल व वातावरण इन भिन्नताओं से निपट सकता है। एक स्वप्नदृष्टा बच्चा होता है जिसको कार्य करने के लिए कई बार याद दिलाना पड़ता है, अंततः वह अपने काम कर ही लेता है। उसकी दिन में स्वप्न देखने की आदत उसके आसपास के लोगों को थोड़ा परेशान कर सकती है, किंतु उसकी यह आदत उसकी कार्यशीलता में बहुत ज्यादा बाधक नहीं होती। इसी प्रकार, भले ही आपकी बहन पढ़ने में आप से अच्छी न रही हो, फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में उसकी उपलब्धि अन्य कई बच्चों के बराबर रही होगी। आखिरकार, स्कूल जाने वाले सभी बच्चों के कौशल और योग्यताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं। स्कूल का वातावरण इन भिन्नताओं से निपटने योग्य होता है। लेकिन, कुछ बच्चों के व्यवहार के निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण पर गौर करें :

रूपा आठ वर्षीय बालिका है। पहली बार देखने पर वह किसी अन्य आठ वर्षीय बच्चे की तरह लगती है, लेकिन कुछ देर बाद आपको लगेगा कि वह एक ही तरफ टकटकी लगाकर घूरती रहती है। उसकी आँखें, आम लोगों की तरह, आसपास की चीजों का अवलोकन नहीं करती हैं। यदि आप उससे बात करें तो आप पाएँगे कि वह आपकी ओर मुँह करके आपसे आँखें नहीं मिलाती, अपितु अपना मुँह थोड़ा फेर कर रखती है। वह किसी भी अन्य आठ वर्षीय बच्चे की भाँति बोलती है और बुद्धिमतापूर्ण बात करती है। वह नेत्रहीनों के स्कूल में दूसरी

कक्षा की छात्रा है। जब मैं उसके घर गई तो उसने मुझे अपनी कुछ किताबें दिखाई जो ब्रेल (नेत्रहीनों की लिपि) में लिखी हुई थीं। जब वह पुस्तक में से कुछ पढ़ रही थी, तो उसका छोटा भाई कुछ शरारत करने के इरादे से वहाँ आया। उसने रूपा को छेड़ा और उसकी पुस्तक छीन ली। रूपा अपनी किताबें लेने उसके पीछे भागी और फिर आम घरों की तरह, बहन–भाई के बीच होने वाले शोरगुल और लड़ाई का दृश्य सामने आया। रूपा काफी सहज़ता से इधर–उधर घर में घूम रही थी – अपने भाई का पीछा करते समय वह फर्नीचर से टकराई नहीं।

श्याम आठ वर्षीय बालक है। उससे मिलने के बाद सबसे पहली बात जिसकी ओर ध्यान जाता है वो है कि वह किसी भी वस्तु या कार्य पर कुछ सेकेण्ड से अधिक ध्यान स्थिर नहीं कर पाता। उसका ध्यान एक चीज़ से दूसरी ओर अतिशीघ्र विचलित हो जाता है–कुछ समय के लिए वह अध्यापक की ओर ध्यान देता है; फिर उसका ध्यान पेंसिल पकड़े हुए एक बच्चे की ओर चला जाता है। जैसे ही वह उस बच्चे की ओर बढ़ने लगता है, उसका ध्यान खिड़की में से नज़र आने वाले पंछी की ओर आकर्षित हो जाता है। खिड़की की ओर पहुँचने के लिए वह तेज चलना शुरू करता है लेकिन अचानक कुछ सोचता है और दूसरी ओर कमरे से बाहर चला जाता हैं। श्याम की बोली साफ नहीं है, पहली बार आप उसकी बात नहीं समझ सकते लेकिन जब आप एक बार उससे बात करने लगे तो आप उसकी बोली समझ सकते हैं। वह अपनी जरूरतों के बारे में दूसरों को बता सकता है। श्याम को रंग, नंबर, आकृति तथा वर्णमाला की पहचान नहीं है। उसे एक दिन पूर्व की घटित घटनाएँ केवल थोड़ी बहुत ही याद रहती हैं। जब कार्यकर्ता अपने समूह के बच्चों के साथ कोई परिचित बालगीत शुरू करती है, तो श्याम मात्र कुछ शब्द बुदबुदाता हुआ कमरे की ओर वापस भागता है। गीत गाते हुए कार्यकर्त्ता के हाव–भाव का अनुकरण वह बहुत जोश के साथ करता है, किंतु उसके चेहरे से ऐसा व्यक्त होता है कि वह गीत को ज्यादा नहीं समझ रहा है। निश्चित रूप से, अन्य बच्चों की अपेक्षा, उसे पूरा गीत नहीं आता। आठ वर्ष का होते हुए भी वह किंडरगार्टन में ही है।

चार वर्षीय सोमू अपने घर की नज़दीक वाले नर्सरी स्कूल में जाता है, वहाँ पर वह पिछले छः महीने से पढ़ रहा है। उसकी शिक्षिका का कहना है कि सोमू शांत बालक है, वह कक्षा में न तो किसी से बात करता है और न ही उसका कोई मित्र है। खेल के समय वह एक कोने में खड़ा रहता है या अपने आप खेलता रहता है। कक्षा में शिक्षिका जैसा कहती है, सोमू वैसा ही करता है और सभी निर्देशों का पालन करता है। जब बच्चे गीत गाते हैं तो वह समूह में सम्मिलित हो जाता है, किंतु गाता कभी–कभार ही है। शालापूर्व केन्द्र (pre school) की शिक्षिका समूह के साथ जो भी क्रियाकलाप करती है, सोमू उसे ग्रहण करता है और समझता है। सोनू की माँ बताती है कि घर पर सोमू के बहुत मित्र हैं – वह उनके साथ और अपने बड़े भाई के साथ खेलता है प्रतिदिन स्कूल से घर लौटने पर वह स्कूल में सिखाए गए गीत गाता है और अपनी माँ को स्कूल की दिनचर्या के बारे में बताता है। उसकी माँ को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ जब उन्हें, शिक्षिका ने बताया कि स्कूल में सोमू का व्यवहार घर से बिल्कुल अलग है।

> उपर्युक्त विवरणों से यह काफी स्पष्ट हो गया है कि तीनों बच्चे अन्य कई बच्चों से मूल रूप से भिन्न हैं आपके विचार में इन विवरणों से कौन –कौन से अंतर दृष्टिगत हो रहे है। अब इस पर अपनी टिप्पणियाँ लिखें।

इन्हीं भिन्नताओं के कारण इन बच्चों के पालन–पोषण में कुछ भिन्न या विशिष्ट तरीके अपनाने की आवश्यकता होगी, उनकी शिक्षा के लिए विशेष योजना बनानी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि उनके अनुकूलतम विकास को बढ़ावा मिले। अभिभावकों और शिक्षकों को इन बच्चों को बोलना सिखाने, चलने–फिरने, मित्र बनाने और वे कौशल और संकल्पनाएँ, जो सामान्य बच्चे विकास के दौरान सहज़ और स्वाभाविक रूप से प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें अर्जित करने और सिखाने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। इन बच्चों की कुछ ऐसी

आवश्यकताएँ हैं जो अधिकांश बच्चों की जरूरतों से भिन्न होती हैं, अर्थात् उनकी कुछ विशेष जरूरतें होती हैं। आइए, रूपा, श्याम और सोमू की विशेष आवश्यकताओं को पहचानें।

रूपा हमारे सामान्य विद्यालयों में अध्ययन नहीं कर पाएगी, क्योंकि वह पढ़ नहीं सकती। वह केवल ब्रेल में लिखी पुस्तकें ही पढ़ सकती है। अतः उसे एक विशेष विद्यालय में पढ़ने की आवश्यकता है। उसे अपने घर में चलना–फिरना, यहाँ तक की दौड़ना भी, आसान लगता है क्योंकि वहाँ की व्यवस्था से वह परिचित है। किन्तु जब वह किसी नए स्थान में जाएगी तो, कम से कम प्रारंभ में उसकी गतिशीलता काफी सीमित हो जाएगी।

श्याम की एक समस्या तो यह है कि वह साफ नहीं बोल पाता। उसे एक वाक्–चिकित्सक की मदद की आवश्यकता है। श्याम के एक ही कार्य पर अपना ध्यान स्थिर न कर पाने के कारण किंडरगार्टन में संभवतः समूह के सभी बच्चों को बाधा होती है और वह स्वयं भी शालापूर्व केन्द्र में हो रही गतिविधियों का अधिक लाभ नहीं उठा पाता। उसे एक ऐसे शिक्षक/शिक्षिका की आवश्यकता है जो, कम से कम आरम्भिक अवस्था में, केवल उसी के साथ काम करे और उस पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे।

सोमू के विषय में हमें यह समझने की आवश्यकता है कि नर्सरी स्कूल में वह अन्य बच्चों के साथ क्यों नहीं बोलता और उनसे अंतःक्रिया क्यों नहीं करता। तत्पश्चात्, उसे वहाँ सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करनी होगी।

दूसरे शब्दों में, इन बच्चों की अन्य सामान्य बच्चों के समान आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ विशेष आवश्यकताएँ भी हैं। धीरे–धीरे आपको ''विशिष्ट बच्चों'' की संकल्पना शायद स्पष्ट हो रही होगी।

ये ऐसे बच्चे हैं जिनमें कुछ असमर्थताएँ होती हैं, जो परिवार, समाज या विद्यालय में ठीक प्रकार से कार्य करने के रास्ते में बाधक होती हैं। इन्हीं कठिनाईयों के कारण इन्हें पूर्ण रूप से समर्थ होने में समस्या आती है। ये कठिनाईयाँ/असमर्थताएँ शारीरिक, संज्ञानात्मक, भाषायी, सामाजिक, भावात्मक या मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं। इन कठिनाईयों से निपटने के लिए इन बच्चों पर विशेष और अतिरिक्त ध्यान देने व प्रयास करने की आवश्यकता है।

कुछ प्रश्न

- यहाँ किस–किस तरह की विशिष्टताओं की चर्चा की गई है? किसी एक के बारे में विस्तार से लिखिए।

डाउनस सिंड्रोम वाले बच्चे को सीखने के लिए विशेष सहायता की जरूरत होती है।

सामान्य कार्यशीलता में निर्णायक क्षेत्र

यदि आप थोड़ा सोचें, तो आप पाएँगे कि सामान्य रूप से कार्य करने के लिए छः क्षेत्र निर्णायक हैं। इनमें से किसी एक क्षेत्र में भी कठिनाई व्यक्ति के लिए बाधा उत्पन्न कर सकती है और व्यक्ति को इस असमर्थता से निपटने के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता होती है। कोई बच्चा अथवा व्यक्ति जो इन क्षेत्रों में से एक या उससे अधिक क्षेत्रों में कोई कठिनाई महसूस करता है, वह विशिष्ट बच्चा/व्यक्ति कहलाता है। क्या आप कार्यशीलता के इन निर्णायक क्षेत्रों को पहचान सकते हैं? हम इन्हें एक–एक करके पढ़ेंगे।

दृष्टि

यदि कोई व्यक्ति दृष्टिहीन हो तो उसकी कौन सी गतिविधियाँ/क्रियाएँ सबसे अधिक प्रभावित होंगी? मुख्य रूप से चलने–फिरने, पढ़ने और लिखने की क्षमता पर असर पड़ेगा। अन्य शब्दों में, घर और कक्षा में सीखने–पढ़ने के लिए दृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम सभी की दृष्टि तीक्ष्णता अलग–अलग होती है। हम में से कुछ लोगों की नजर बहुत बढ़िया होती है और वे काफी दूर के चिन्हों को पढ़ने में भी समर्थ होते हैं। हम में से अधिकतर लोगों की नजर औसत होती है और ये बिना चश्मा लगाए अच्छी तरह काम कर सकते हैं। जिन लोगों की नजर औसत से कम होती है, उन्हें चश्मे की आवश्यकता होती है। लेकिन जैसे–जैसे नजर और कमजोर होनी शुरू होती है, तब चश्मा भी ज्यादा लाभ नहीं पहुँचा पाता और तब यह एक समस्या का रूप लेने लगती है। जब नजर इतना कम हो जाए कि वस्तु 200 फीट की दूरी पर लानी पड़े ताकि वह व्यक्ति उन्हें देख सके, तो वह व्यक्ति कानूनी तौर पर नेत्रहीन माना जाता है। ऐसे व्यक्ति केवल तभी पढ़ सकते हैं जब मुद्रित अक्षर बड़े हों। दूसरे शब्दों, में इन व्यक्तियों की आंशिक दृष्टि होती है। लेकिन कई ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो बिल्कुल ही नहीं देख सकते।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि दृष्टि–तीक्ष्णता की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं – श्रेणी के एक छोर पर वे व्यक्ति हैं जिनकी नजर उत्तम है और दूसरे छोर पर वे व्यक्ति है जो बिल्कुल नहीं देख सकते।

दृष्टि तीक्ष्णता की श्रेणी

जब बच्चे की नजर इतनी कमजोर हो जाए कि वह सामान्य मुद्रित अक्षर न पढ़ सके और उसे पढ़ने में सहायता के लिए विशेष साधनों की आवश्यकता हो, तो उसे विशिष्ट आवश्यकताओं वाला बच्चा माना जाता है।

श्रवण शक्ति

सुन पाना अनुकूलतम वृद्धि एवं विकास के लिए उतना ही महत्वपूर्ण हैं जितना कि दृष्टि। यदि कोई बालिका सुन नहीं सकती, तो उसके लिए बोलना सीख पाना मुश्किल हो जाता है। ऐसा भी संभव है कि वह कभी भी बोलना सीख ही न पाए।

हम श्रवण इंद्रिय को भी नजर की भांति श्रेणीबद्ध कर सकते हैं। एक ओर बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जिनकी श्रवण इंद्रियाँ इतनी तीव्र होती हैं कि वे ऐसी ध्वनि भी पकड़ लेते हैं जो हम में से कई सुन भी नहीं सकते। हममें से कुछ ऐसे हैं जो कोई भी ध्वनि सुन नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति श्रेणी के दूसरे छोर पर हैं। इन दोनों छोरों के बीच भिन्न स्तर के श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति आते हैं। हम में से अधिकांश औसत श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति

होते हैं। जैसे–जैसे किसी को सुनने में कठिनाई महसूस होने लगती है, वह समस्या श्रेणी में आता जाता है। ऐसे व्यक्ति को सुनने में सहायक उपकरणों या वाक्–चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। जब व्यक्ति कोई सार्थक ध्वनि सुन ही नहीं सकता, तो उसे अपने विचारों के आदान–प्रदान के लिए अन्य माध्यमों पर निर्भर होना पड़ता है । वे बच्चे जिनकी श्रवण शक्ति समस्या श्रेणी में आती है, वे विशिष्ट बच्चे होते हैं और उन्हें कुछ सहायता की आवश्यकता होती है।

कुछ भी नहीं सुन सकते	आंशिक श्रवण शक्ति	औसत	उत्तम

श्रवण क्षमता की श्रेणी

गतिशीलता

अनुकूलतम विकास के लिए यह तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है। अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह चल फिर पाना एक बच्चे के जीवन को कई प्रकार से प्रभावित करता है। संभवतः कुछ बच्चे जो आम बच्चों की तरह नहीं चल पाते हैं, वे लकड़ी, बैसाखी अथवा पहियों वाली कुर्सी (व्हील चेयर) की मदद से इधर–उधर घूम सकते हैं। कुछ लोग बिल्कुल ही नहीं चल सकते और पूर्ण रूप से गतिहीन हो जाते हैं। वे सभी बच्चे जिनके लिए सामान्य व्यक्तियों की भांति सामान्य रूप से चल फिर पाना संभव नहीं होता, विशिष्ट बच्चे होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी इस कठिनाई को दूर करने के लिए विशेष उपकरण का सहारा लेना पड़ता है।

चल पाने में असमर्थ	आंशिक रूप से गतिशील	औसत	उत्तम जैसे धावक

गतिशीलता की श्रेणी

संप्रेषण

संप्रेषण से हमारा तात्पर्य दूसरों को समझने और स्वयं को समझा पाने (अपने विचारों को अभिव्यक्त कर पाने) की क्षमता से है। विभिन्न संकल्पनाओं की समझ विकसित करने तथा लोगों के साथ संबंध बनाने के लिए स्पष्टतः सम्प्रेषण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है संप्रेषण के लिए हम प्रमुख तौर पर शब्दों पर निर्भर करते हैं। अतः वे लोग जिन्हें बोलने या सुनने में कठिनाई होती है, उनको संप्रेषण (विचारों के आदान–प्रदान) की समस्या होती है। कुछ बच्चे बिल्कुल ही नहीं बोल पाते और कुछ अन्य बोल तो लेते हैं परन्तु बोलते समय वे रूक–रूक कर या हकलाकर बोलते हैं। कुछ मामलों में, बच्चों की बोली और श्रवण शक्ति तो ठीक होती है, किन्तु दिमाग के किसी हिस्से के क्षतिग्रस्त होने के कारण भाषा समझने में उन्हें कठिनाई होती है। ऐसे बच्चों को भी श्रेणीबद्ध किया जा सकता है – एक छोर पर तो अच्छे संप्रेषक हैं और दूसरे छोर पर वे लोग जो सम्प्रेषण कर ही नहीं सकते। इस संदर्भ में, हम केवल शब्दों द्वारा सम्प्रेषण की बात कर रहे हैं वे बच्चे जिन्हें सम्प्रेषण में कुछ समस्या होती है, विशिष्ट बच्चे होते हैं।

बिल्कुल संप्रेषण न कर पाना	संप्रेषण में समस्या महसूस होना	औसत	प्रभावशाली ढंग से संप्रेषण कर पाना

सम्प्रेषण क्षमता की श्रेणी

सामाजिक–भावात्मक संबंध

इस आयाम से अभिप्राय है कि अपने दैनिक जीवन में हम दूसरों के साथ कैसे संबंध स्थापित करते हैं, किस प्रकार भावात्मक बंधन बनाते हैं और रोजमर्रा की ज़िन्दगी में दूसरों के साथ कैसे अंतःक्रिया करते हैं। कुछ व्यक्ति आसानी से दूसरों से संबंध स्थापित कर लेते हैं – उन्हें सभी पसंद करते हैं और वे लोकप्रिय होते हैं। हम में से अधिकांश व्यक्तियों के आपसी संबंधों में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं और हम इनसे निपटते रहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनके संबंध किसी के साथ भी सौहार्दपूर्ण/मैत्रीपूर्ण नहीं होते। यह व्यक्ति अत्यन्त शर्मीला हो सकता है जो किसी से भी बात नहीं करता, जिनका कोई मित्र नहीं होता और जो आत्म–केन्द्रित होकर अपने आप में रहना पसंद करता है, अथवा बहुत उग्र स्वभाव का व्यक्ति हो सकता है, अथवा ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो अन्य व्यक्तियों द्वारा बढ़ाए गए मित्रता के हाथों का तिरस्कार कर देता है।

किसी व्यक्ति को सामाजिक–भावात्मक समस्या है या नहीं – यह स्पष्ट रूप से कह पाना बहुत ही कठिन है। इसका एक कारण तो यह है कि सामाजिक–भावात्मक संबंध बनाने में कठिनाई कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे मापा जा सके, जैसे नेत्रहीनता या बधिरता के स्तर को मापा जा सकता है। दूसरा, एक ही व्यक्ति के बारे में अलग–अलग व्यक्तियों की भिन्न–भिन्न राय होती है। एक व्यक्ति जो दूसरों पर बहुत ही हावी रहना चाहता है और केवल अपनी बात मनवाना चाहता हो। हो सकता है कि आपके विचार में उसे सामाजिक–भावात्मक समस्या हो, लेकिन आपके ही साथी इस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में आपकी इस राय से असहमत हों और वे यह मानते हों कि अपनी बात मनवा पाना उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का सकारात्मक पहलू है। इन दोनों कारणों की वज़ह से यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन हो जाता है कि किसी व्यक्ति विशेष को सामाजिक–भावात्मक क्षेत्र में समस्या है। इसलिए यह निर्धारित करने के लिए कि किसी व्यक्ति को सामाजिक–भावात्मक समस्या है या नहीं, हमें कुछ समय तक उस व्यक्ति का भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में अवलोकन करना होगा और यह देखना होगा कि वह व्यक्ति अलग–अलग स्थिति में कैसा व्यवहार करता है ? कुछ व्यक्तियों के संदर्भ में तो आसानी से ज्ञात हो जाता है कि उन्हें सामाजिक–भावात्मक क्षेत्र में कुछ कठिनाई है, परन्तु कुछ व्यक्तियों के संदर्भ में यह अनुमान लगाना कठिन होता है।

जब किसी बच्चे को अन्य लोगों के साथ संबंध बनाने और इन संबंधों को बनाए रखने में कठिनाई होती है, तो उसे सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चे विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे होते हैं।

व्यक्तियों से संबंध स्थापित कर पाना	संबंध बनाने और बनाए रखने में कठिनाई महसूस करना	औसत	बहुत अच्छी तरह से घुल–मिल जाना

सामाजिक–भावनाओं क्रिया की श्रेणी

बुद्धिमत्ता

यह ऐसा शब्द है जिसके अभिप्राय को तो हम सभी समझते हैं किन्तु इसे परिभाषित कर पाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। हम सभी प्रायः ऐसा कहते हैं कि ''वह एक होशियार लड़का है'', या ''वह एक चुस्त व स्मार्ट लड़की है'' और यह मानकर चलते हैं कि हम सभी इन शब्दों के अभिप्राय को समझते हैं। काफी हद तक हमारी बुद्धिमत्ता हमारी शैक्षिक उपलब्धि, चुनौतियों का सामना कर पाने और कठिन परिस्थितियों से निपटने और स्वयं को वातावरण के अनुकूल ढालने की हमारी क्षमता को निर्धारित करती है।

हम सभी का किसी न किसी प्रकार ऐसे व्यक्तियों से सामना हुआ होगा जो अक्सर निर्देश भूल जाते हैं, जिनके साथ हमें बातें सरलता से करनी पड़ती है, जो अपनी आसपास घटित घटनाओं को समझ नहीं पाते और जो एक निश्चित सीमा के बाद, कुछ भी नया नहीं सीख पाते । यदि हम बुद्धिमत्ता की विशेषता को श्रेणी के रूप में निरूपित करें तो हम पाएँगे कि हम में से कुछ अत्यन्त बुद्धिमान होते हैं, कई बौद्धिक क्षमता में औसत और कुछ औसत से कम होते हैं।

वे व्यक्ति/बच्चे जो बौद्धिक कार्यशीलता (बुद्धिमत्ता) में औसत से कम होते हैं, उन्हें अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई होती है। उनकी विशेष जरूरतें होती हैं। हो सकता है उन्हें पैसों को संभालने में कठिनाई हो; वे साधारण निर्देश अथवा संकल्पनाएँ समझ न पाएँ और दिन–प्रतिदिन की परिस्थितियों से निपटने में भी उन्हें सहायता की आवश्यकता हो । यह पता लगाने के लिए कि कोई बच्चा/व्यक्ति विशेष, बुद्धिमत्ता के आयाम में समस्या श्रेणी में आता है या नहीं, यह देखना चाहिए कि वह अपनी आयु के अन्य सामान्य बच्चों/व्यक्तियों की तरह कार्य करता है, या नहीं।

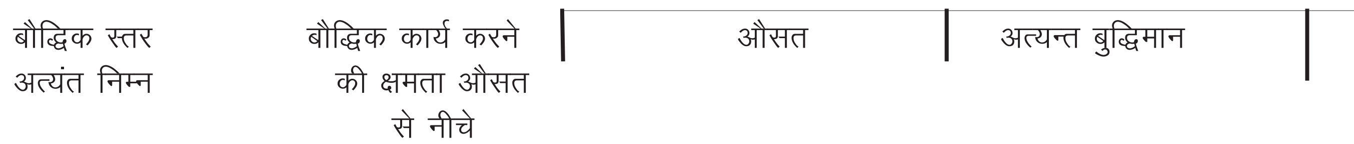

चित्र 6.6 : बौद्धिक कार्य करने की श्रेणी

आर्थिक रूप से सुविधावंचित बच्चे

ये बच्चे निर्धनता में जीवनयापन करते हैं और इसी कारण जीवन के कई अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। वे स्कूल नहीं जा सकते क्योंकि उन्हें बचपन से ही काम शुरू करना पड़ता है, ताकि वे परिवार की आय बढ़ा सकें। लड़कियों को अक्सर घर पर ही रोक लिया जाता है ताकि वे छोटे भाई–बहनों (बच्चों) का ध्यान रख सकें और घर के कामकाज़ कर सकें। इन बच्चों की उस प्रकार की समस्याएँ तो नहीं होतीं जिनकी हमने ऊपर चर्चा की है, किन्तु निर्धनता उन्हें कई प्रकार के अनुभवों से वंचित कर देती है। हमें उनकी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को बेहतर बनाना है ताकि उन्हें भी एक ऐसा बचपन मिल सके जिसमें उन्हें अपने संपूर्ण कौशलों व सामर्थ्य को विकसित करने के हर संभव अवसर मिल सकें।

> क्या आप नियमित कक्षा में किसी प्रकार की अशक्तता वाले बच्चों की विशिष्ट आवश्यकताओं का उचित ध्यान रखते हैं? यदि हाँ तो कैसे?

अब तक आपको स्पष्ट हो गया होगा कि विशिष्ट बच्चों से हमारा क्या अभिप्राय है। ये वे बच्चे हैं जिन्हें विकास के दौरान विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी कार्यशीलता के रास्ते में अवरोधक होती हैं और जो उनको अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुंचने में बाधक होती हैं। चूंकि स्कूल, परिवार या समाज के दायरे में सीखने या काम करने के संदर्भ में उन्हें कठिनाइयाँ आती हैं, इस कारण ये ''विशिष्ट'' की श्रेणी में आ जाते हैं और इसके लिए उन्हें और किसी प्रकार के अन्तःक्षेप की आवश्यकता पड़ती है। अन्तःक्षेप से हमारा तात्पर्य हमारे उन सब प्रयासों से है जो हम विशिष्ट बच्चों की सहायता के लिए करते हैं ताकि वे स्वयं और परिवेश के बीच सामंजस्य स्थापित कर सकें। कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चे जिनकी हम सहायता कर सकते हैं, वे हैं–आंशिक रूप से दृष्टि वाले एवं नेत्रहीन; कम सुनने वाले एवं बधिर ; चलने–फिरने की समस्याओं वाले बच्चे; मंदबुद्धि बच्चे; व्यवहार संबंधी समस्याओं से ग्रस्त बच्चे; आर्थिक रूप से सुविधावंचित बच्चे; सीखने में असमर्थ बच्चे; भावात्मक समस्याओं से ग्रस्त बच्चे।

कुछ प्रश्न

क्या आप लड़कियों की शिक्षा की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने की विधि में, लड़कों की तुलना में कोई विभिन्नता का अनुभव करते हैं? एक अध्यापक के रूप में इन विभिन्नताओं की आप किस प्रकार व्याख्या करेंगे तथा लड़कियों की सकारात्मक छवि उभारने की दिशा में क्या प्रयास करेंगे?

एक क्रियाकलाप

• आपने कभी किसी विशिष्ट बच्चे के साथ अंतःक्रिया अवश्य की होगी । शायद आपके पड़ोस, कार्य–स्थल या परिवार में कोई विशेष बच्चा/बालिका होगा/होगी । इस बच्चे की गतिविधियों का कुछ दिनों के लिए अवलोकन करें और ध्यान दें कि आम बच्चों की जरूरतों के अलावा उसकी और विशेष जरूरतें क्या हैं ?

• सामान्य रूप से काम कर पाने के लिए कौन से क्षेत्र निर्णायक हैं ?

क्षति, अपंगता एवं क्षमता

आपने विशिष्ट बच्चों के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द शायद सुने होंगे – क्षति, अपंगता, विकलांग बच्चे, अक्षमता और अक्षम बच्चे। तथापि, प्रत्येक शब्द का एक विशेष प्रयोग एवं अर्थ है। हम प्रायः सभी शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग करते हैं। इन शब्दों में अन्तर को समझना महत्वपूर्ण है चूंकि यह इन समस्याओं से पीड़ित बच्चों के प्रति हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करेगा।

यदि बच्चे को जन्म के समय पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन न मिल पाई हो, तो हो सकता है कि दिमाग का कोई ऊतक (tissue) क्षतिग्रस्त हो जाए। यदि पैर का ऊतक रोगग्रस्त होने के कारण सड़ जाए, तो वह क्षतिग्रस्त हो जाता है। जन्म चिह्न भी एक विकारग्रस्त होने के कारण ऊतक होता है। उपर्युक्त उदाहरण क्षति के उदाहरण हैं। क्षति के लिए अन्य शब्द जो इस पाठ्यक्रम में प्रयुक्त होंगे, वे हैं –दोष, हानि, क्षीणता, विकार।

अपंगता से अभिप्राय है शरीर अथवा अंग के किसी विशेष भाग का न होना अथवा शरीर के किसी भाग के कार्य करने की क्षमता का कम होना। यदि बच्चे की आँख का कॉर्निया सूख जाए और झुर्रीदार हो जाए, जैसा विटामिन ''ए'' की कमी से हो जाता है, तो बच्चे की नज़र धीरे–धीरे चली जाएगी। अतः कॉर्निया का क्षतिग्रस्त होना (उसका सूखना और झुर्रीदार होना) अपंगता को जन्म देता है। (दिखाई देना बंद हो जाना अर्थात् आँख का काम न करना) एक व्यक्ति जो, दिमाग के एक विशेष हिस्से के खराब हो जाने के कारण (अर्थात्, दिमाग के किसी ऊतक के क्षतिग्रस्त होने के कारण) बोलने के लिए अपेक्षित कोशिकाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता, वह संप्रेषण कर पाने में असमर्थ होता है। एक व्यक्ति जिसका पैर गैंगरिन (एक तरह की बीमारी है जिसमें

अधिक सर्दी के कारण शरीर तक गल जाते है) की वज़ह से काट दिया गया हो, शारीरिक रूप से अपंग हो जाएगा। परन्तु जन्मचिह्न (एक क्षति) किसी अपंगता को जन्म नहीं देता , क्योंकि जन्मचिह्न के कारण व्यक्ति के दैनिक जीवन के कार्य करने में कोई बाधा नहीं होती। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति के सुनने में कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो कान की वह क्षति अपंगता नहीं मानी जाएगी। यहाँ पर इस बात पर ज़ोर डाला जा रहा है कि एक क्षति के कारण व्यक्ति अपंग हो भी सकता है और नहीं भी।

अक्षमता से आशय क्षतिग्रस्त या अपंग व्यक्तियों को अंतःक्रिया करने और परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में होने वाली समस्याओं से है।

यदि नेत्रहीन व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन के कार्यकलापों के दौरान कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है या उसकी नेत्रहीनता उसके अन्य लोगों के साथ संबंध बनाने, विद्या अर्जित करने में और तत्पश्चात् नौकरी में बाधा उत्पन्न करती है, तो उसकी अपंगता (नेत्रहीनता) अक्षमता का कारण बन जाती है। तथापि, यदि उसे नेत्रहीनता के कारण कोई समस्या नहीं होती अथवा बहुत कम/न्यूनतम समस्या होती है, तो वह अपंग होने के बावजूद भी अक्षम नहीं है। आपने शायद शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों को दूर–दराज की जगहों पर भ्रमण हेतु यात्रा की योजना बनाते देखा होगा। निश्चित रूप से उन्हें इस भ्रमण के लिए किसी विशेष उपकरण की अथवा अपने निकट संबंधियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती होगी, परन्तु वे आम व्यक्ति की भांति कई काम कर लेते हैं। तो क्या आप ऐसे व्यक्तियों को अक्षम कहेंगे? यदि किसी व्यक्ति के चेहरे पर जन्मचिह्न है, तो संभवतः फिल्मों में काम कर पाने के नज़रिए से वह जनमचिह्न उसके लिए बाधा बन सकता है। परन्तु चूँकि यह क्षति व्यक्ति के दिन–प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित नहीं करती और उसकी दैनिक कार्यों में बाधा नहीं डालती, अतः जन्मचिह्न को अक्षमता नहीं माना जाएगा। अक्षमता से हमारा तात्पर्य अपंगता अथवा क्षति के प्रभावों से है। यदि प्रभाव सूक्ष्मतम/उपेक्षणीय/कम हैं, तो व्यक्ति क्षति अथवा अपंगता के साथ आसानी से समझौता कर लेता है। यही हमारा लक्ष्य भी होना चाहिए – जहाँ तक संभव हो सके क्षति अथवा अपंगता के प्रभाव को कम किये जाने की कोशिश की जानी चाहिए, ताकि व्यक्ति स्वयं को हीन महसूस न करे। चर्चा के दौरान हम अक्षमता के लिए स्थान–स्थान पर 'विकलांग' व 'बाधाग्रस्त' शब्दों का प्रयोग भी करेंगे।

क्षति से अभिप्राय एक बीमार अथवा दोषपूर्ण ऊतक (tissue) अथवा ऊतक के दोषपूर्ण भाग से है। उदाहरण के तौर पर, यदि आँख का कॉर्निया (श्वेत मंडल) सूख जाए एवं उसमें झुर्रियाँ पड़ जाएँ, तो उसमें खराबी आ जाती है और वह क्षतिग्रस्त हो जाता है।

अक्षमता के प्रति एक दृष्टिकोण

चर्चा के इस चरण पर अक्षमता के प्रश्न को एक बिल्कुल ही दूसरे दृष्टिकोण से देखेंगे। इससे उपरोक्त चर्चा भी स्पष्ट हो जाएगी।

जैसा कि हमने कहा है, अक्षमता वह है जो व्यक्ति को अपने परिवेश के साथ सफल रूप से अंतःक्रिया करने में बाधा पहुँचाती है। जैसा कि आप जानते हैं कि ''परिवेश'' से हमारा तात्पर्य केवल भौतिक परिवेश न होकर सामाजिक परिवेश भी है; अर्थात् हमारे आसपास के लोग तथा उनके साथ हमारे संबंध। शायद आप किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जानते होंगे जिसका उग्र स्वभाव है और जिसे बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता है और उसे लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने में काफी समस्या होती है। क्या यह व्यक्ति अपने सामाजिक संबंधों को बनाए रखने में अक्षम नहीं है, यद्यपि उसमें उस प्रकार की कोई अपंगता नहीं है, जिनकी अभी तक हमने इस इकाई में चर्चा की है? एक अन्य महिला जिसे अपने पर भरोसा नहीं है, जिसमें आत्म–विश्वास की कमी है तथा निर्णय लेने में हिचकिचाती है, उसे ऐसी परिस्थितियों में जहाँ पर तत्काल निर्णय लेना अहम होता है, अक्षमता

महसूस हो सकती है। यद्यपि इस महिला में किसी प्रकार की क्षति अथवा अपंगता नहीं है, फिर भी वह निश्चित तौर पर कुछ परिस्थितियों में अक्षम है और शायद नेत्रहीनता तथा शारीरिक विकलांगता से पीड़ित व्यक्ति से कहीं अधिक अक्षम है।

पारंपरिक तौर पर और दैनिक भाषा में हम न केवल 'अपंगता' और अक्षमता शब्दों का फेरबदल करके प्रयोग करते हैं, बल्कि इनका सीमित ढंग से भी प्रयोग करते हैं। अर्थात् इन शब्दों का प्रयोग केवल उन व्यक्तियों के संदर्भ में किया जाता है जिन्हें बोलने, सुनने, शरीर के अंगों जैसे हाथों और पैरों का प्रयोग करने में, बौद्धिक कार्य करने में या कोई व्यवहार संबंधी कठिनाई महसूस होती है। किन्तु यदि हम ''अक्षमता'' के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण रखें जैसे कि अभी हमने उपर्युक्त अनुच्छेद में विवेचना की है, तो हमारा नज़रिया पूरी तरह से बदल जाएगा। इस स्थिति में कोई व्यक्ति अक्षम है या नहीं, यह उस व्यक्ति की परिस्थिति से मुकाबला कर पाने की उस व्यक्ति की अपनी योग्यता/क्षमता पर निर्भर करता है।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई क्षति अथवा अपंगता व्यक्ति को कुछ क्षेत्रों में अक्षम बना सकती है परन्तु अन्य क्षेत्रों में वह उस क्षति या अपंगता के कारण अक्षम नहीं होता। एक नेत्रहीन व्यक्ति को चलने–फिरने में बाधा महसूस हो सकती है, विशेषकर अनजानी ज़गहों पर किन्तु, उदाहरण के लिए, गाना गाने के क्षेत्र में वह स्वयं को अक्षम महसूस नहीं करता ।

अक्षमता के प्रति ऐसा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अपंग बच्चों और लोगों के प्रति हमारे रवैये को प्रभावित करेगा। यदि आपको इस बात का अहसास हो कि आप भी अपने कुछ व्यवहार पद्धतियों के कारण कुछ परिस्थितियों में अक्षमता महसूस करते हैं, तो आप किसी अपंग व्यक्ति की भावनाओं को समझने में और उसके प्रति सहानुभूति महसूस करने में अधिक समर्थ होंगे । आपको यह अहसास हो जाएगा कि अपंग व्यक्ति आप से अलग नहीं होते और न ही उनकी उपेक्षा की जानी चाहिए। ऐसा नज़रिया होने पर ''हम'' और ''वे;'' ''सामान्य'' (वे; अक्षम) की भावना नहीं होगी। अपंग व्यक्ति, सामान्य व्यक्तियों से अलग नहीं होते । अपंगों के प्रति हमारी धारणाएँ, मान्यताएँ तथा अभिवृत्तियाँ (रवैया) अगले दो उपभागों में चर्चा का विषय रहेगा।

अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी मान्यताएँ एवं अभिवृत्तियाँ

अधिकांशतः एक अपंग बच्चा/ व्यक्ति अन्य सभी से अलग नज़र आता है। हालाँकि, कभी–कभी बधिर बच्चों अथवा ऐसे बच्चों को जिनकी बौद्धिक कार्य करने की क्षमता औसत से केवल थोड़ी सी ही कम है, उन्हें पहली बार देखने से पता नहीं चलता कि वे अपंग हैं। हम सभी की विशिष्ट बच्चों के प्रति अलग–अलग प्रतिक्रिया होती हैं–कुछ उनके प्रति सुग्राही होते हैं, कुछ की उनके प्रति सहानुभूति की भावना होती है, तटस्थ रहते हैं और कुछ लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हम विशिष्ट बच्चों या वयस्कों को देखकर किस प्रकार की प्रतिक्रिया दिखाते हैं, यह काफी हद तक हमारे अपने जीवन के अनुभवों, हमारे आसपास के व्यक्तियों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है।

दुर्भाग्यवश, हम में से कई लोगों की अपंगों के प्रति गलत मान्यताएँ हैं जिसकी वजह से उनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण एवं भावनाएँ जन्म लेती हैं। अंधविश्वास एवं डर एक आम प्रतिक्रिया है। हममें से अब भी कई ऐसे व्यक्ति हैं जिनका विश्वास है कि अपंग व्यक्ति में कोई भूत अथवा प्रेतात्मा का प्रवेश है। ऐसा विश्वास उन बच्चों के मामले में और भी सुदृढ़ हो जाता है जो बौद्धिक कार्यक्षमता में औसत से कम हैं क्योंकि वे समुचित रूप से व्यवहार नहीं करते अथवा निरर्थक एवं अनापशनाप बोलते हैं। लोग बिना सोचे–समझे उन्हें ''मूर्ख'', ''पागल व्यक्ति'', ''मूढ़ व्यक्ति'' या ''मंद बुद्धि'' नाम दे देते हैं। हममें से कई अपंग व्यक्तियों को नज़रअंदाज करते हैं क्योंकि वे असामान्य लगते हैं अथवा हमें यह डर रहता है कि उनके साथ तालमेल रखने से हमें भी ''अपंगता'' हो सकती है। यदि सारे समुदाय की ही अपंगों के प्रति ऐसी नकारात्मक धारणा हो जाए, तो आप

समझ सकते हैं कि अपंगों पर क्या गुजरेगी । वे पूरी तरह से अलग–थलग, वंचित और पराया महसूस करेंगे। उनके पास विकास का कोई अवसर नहीं होगा । क्योंकि वे शिक्षा, प्रेम, सुरक्षा, लोगों से अंतःक्रिया के अनुभवों –वे सब अनुभव जो एक व्यक्ति को स्वस्थ होने की भावना का अहसास दिलाते हैं –से वंचित रह जाएँगे। ऐसी परिस्थिति में, व्यक्ति समुदाय का हिस्सा होते हुए भी स्वयं को समुदाय से अलग–थलग महसूस करता है।

लोकप्रिय फिल्मों के खलनायक के व्यक्तित्व में भी यह रवैया चित्रित होता है कि जो व्यक्ति शरीर से ''सामान्य'' नहीं है उसका दिमाग भी ''सामान्य'' नहीं होता या यह कि अपंग शरीर वाले की आत्मा भी दुष्ट होती है। इन फिल्मों में बुरे आदमी का चेहरा या शरीर विकृत दिखाया जाता है – वह या तो लंगड़ा कर चलता है या काना होता है या ऐसी हरकतें करता है जो सामान्य नहीं मानी जातीं।

कुछ निर्दयी व्यक्तियों को अपंगों का मज़ाक उड़ाने में मज़ा आता है। उनके लिए शारीरिक रूप से अपंग व्यक्ति मनोरंजन का स्त्रोत होता है। हकलाने वाला व्यक्ति, नकल उतारने अथवा उपहास का पात्र बन जाता है। छोटे बच्चे अक्सर पहली बार किसी अपंग साथी को अपनी कक्षा में देखने पर इसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। यह रवैया बच्चे घर में बड़ों को ऐसा करते देखकर सीखते हैं। लोकप्रिय फिल्मों में हास्य अभिनेता अक्सर हकलाता है, अस्पष्ट उच्चारण करता है – अर्थात् यह दर्शाया जाता है कि हकलाना इत्यादि मनोरंजन का कारण है। कुछ फिल्मों में, हास्य अभिनेता या अभिनेत्री को औसत से कम बुद्धि वाला/वाली दिखाते हैं, जिसके ''सनकी''/मूर्खतापूर्ण'' और उपहासास्पद कथन मनोरंजन का स्त्रोत होते हैं।

हममें से कुछ लोग अपंगों से घृणा करते हैं, विशेषकर यदि उनका शरीर विकृत होता है, जिसके कारण वह भद्दा लगता है। उनकी उपस्थिति से परेशानी या असुविधा अनुभव करने पर हम उस स्थिति से निकलने/बचने का प्रयास करते हैं और इस कारण, जहाँ तक हो सके, उनसे कम से कम अंतःक्रिया करते हैं।

इसके विपरीत, दया एक अन्य भावना है जो कुछ व्यक्ति अपंगों के प्रति अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपंग बच्चों को देखकर अक्सर यह कहते हैं– ''बेचारा बच्चा''! कितने अफ़सोस की बात है, सच में दुर्भाग्य की बात है।'' ऐसे व्यक्ति बच्चे की हँसी नहीं उड़ाते, न ही वे बच्चे को अन्य लोगों के साथ अंतःक्रिया के लिए रोकते हैं और स्वयं भी उन बच्चों के साथ अंतःक्रिया करते हैं। किन्तु इसके अलावा वे और कुछ भी नहीं करते। व्यावहारिक रूप से वे बच्चे के लिए कुछ भी नहीं करते, क्योंकि वे यह सोचते हैं कि बच्चे की स्थिति दुःख प्रकट करना ही पर्याप्त है और इस प्रकार उन्होने अपना फर्ज निभा दिया है।

हम में से कुछ व्यक्ति अपंगों की उपस्थिति में आकुल हो जाते हैं, असमंजस में पड़ जाते हैं और हमें समझ नहीं आता कि हम क्या करें। हम सोचते हैं कि हमें उनकी कुछ मदद करनी चाहिए और यह विचार इस भावना को जन्म देता है : ''क्या मैं इसकी मदद करूँ? लेकिन मेरे ऐसा करने से कहीं उसके आत्म–सम्मान को ठेस तो नहीं पहुँचेगी? मुझे इसकी मदद करनी चाहिए या नहीं?'' जब हमारे मन में यह दुविधा उत्पन्न होती है, तो हम उस व्यक्ति की उपस्थिति को नज़रअंदाज़ करते हैं या ऐसा दिखावा करते हैं जैसे सब कुछ सामान्य है।

अपंगों के प्रति अंधविश्वास और भय का दृष्टिकोण बिल्कुल निराधार है; उपहास करना या नकल उतारना अक्षम व्यक्ति की जरूरतों एवं भावनाओं के प्रति संवेदनशून्यता को प्रतिबिंबित करता है। इसका विकलांग व्यक्ति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि दया की भावना उनके प्रति चिंता दर्शाती है, वास्तव में यह भावना व्यर्थ है, चूँकि यह आपको विकलांग व्यक्ति के लिए कुछ ठोस कदम उठाने के लिए प्रेरित नहीं कर पाई है।

अशिक्षित बनाम अशिक्षणीय

अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी प्रमुख धारणाओं में सामान्य धारणा यह है कि उनके कार्य करने के स्तर को बढ़ाने में उनकी कोई सहायता नहीं की जा सकती। हम यह मान कर चलते हैं कि एक व्यक्ति जिसका दायाँ

हाथ नहीं है, कभी भी लिखना नहीं सीख सकता या एक नेत्रहीन साइकिल नहीं चला सकता। निम्नलिखित कथन आमतौर पर सुनने को मिलते हैं :

- राजू तो बहरा है। उससे बात करने का कोई फायदा नहीं है।
- उसे यह पुस्तक न ही दो तो अच्छा है। उसे ज्यादा कुछ समझ नहीं आता और यह उसके किसी काम नहीं आएगी।
- क्या कमला तैरने के लिए जा सकती है ? लेकिन वह तो प्रमस्तिष्क सस्तंभ (Cerebral Palsy) से आक्रांत बालिका है। तुम्हें मालूम है कि उसकी भुजाओं में समन्वय नहीं है।
- वह क्या काम करेगा ? कोई भी ऐसे व्यक्ति को नौकरी नहीं देगा जिसके दाहिने अंग को लकवा मार गया हो।
- राजू को स्कूल भेजना धन बर्बाद करना है। वह न तो सुन सकता है, न ही बात कर सकता है।
- इसे संख्या संबंधी कोई समस्या है। मैंने इसे जोड़ करने के मूल सिद्धांत को सिखाने की चेष्टा की है, लेकिन लगता है वह सब निरर्थक है। मैंने अब इसलिए छोड़ दिया है। हिसाब इसकी समझ से बाहर है।
- लेकिन वह नेत्रहीन है। उसे ''किसी भी शो में'' ले जाने का क्या फायदा है? वह केवल चीजों को ठोकर मारेगा।

इन कथनों से ऐसा आभास होता है कि अपंग बच्चों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए तथा उनके कार्य करने के स्तर को सुधारने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता । पर क्या आपकी स्वयं के बारे में ऐसी ध ारणाएँ हैं ? यदि आप बुनना नहीं जानते तो क्या आप कहेंगे कि आप कभी भी सीख नहीं सकते ? शायद कोई वजह रही होगी कि आपने कभी बुनना सीखने का कभी प्रयास नहीं किया, किन्तु निश्चित तौर पर आप यह नहीं मानते होंगे कि आप में कोई कमी है जो आपको बुनाई सीखने से रोकती है। उसी प्रकार से किसी व्यक्ति ने यदि साइकिल चलाना नहीं सीखा, तो उससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि वह प्रयास करने पर भी साइकिल चलाना सीख ही नहीं सकता। तब हम यह क्यों मान लेते हैं कि एक अपंग बच्चे की कार्यशीलता का स्तर अपरिवर्तनीय ही रहेगा और उसे सुधारा नहीं जा सकता ? हर व्यक्ति पहले एक शिक्षार्थी होता है; बाद में वह कुछ और है। हर व्यक्ति की अपनी–अपनी सीमा होती है कि वह कितना और कैसा (कितना अच्छा) सीख सकता है; लेकिन ऐसा कोई नहीं है जिसकी कार्य–क्षमता सुधारने में मदद नहीं की जा सकती ।

चर्चा के इस मोड़ पर यह दोहरा लेना ठीक होगा कि कोई भी व्यक्ति किस प्रकार से काम करता है, यह दो कारकों द्वारा निर्धारित होता है :

क्षमता (Capacity) : इससे आशय है हमारी सक्षमताओं एवं अंतनिर्हित विशेषताओं से है जो आनुवांशिकता और जन्म–पूर्व तथा प्रारम्भिक वातावरण द्वारा निर्धारित होती है।

विभिन्न प्रकार के अनुभव एवं उनकी प्रकृति (Range and nature of expriences) : इससे आशय घर, परिवार के विस्तृत दायरे, आस–पड़ोस और समाज में हमारे अनुभवों से है।

ये दो कारक परस्पर अंतःक्रिया करते हुए हमारी कार्य करने के स्तर को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है एक व्यक्ति में एक अच्छा धावक बनने की योग्यता हो, परन्तु परिवार में शारीरिक कौशल के विकास को प्रोत्साहित करने वाला वातावरण न मिल पाने के कारण, वह व्यक्ति अपनी इस क्षमता को विकसित नहीं कर पाएगा।

यद्यपि हम किसी व्यक्ति की क्षमता अथवा उसके प्रारम्भिक अनुभवों के स्वरूप के बारे में कुछ नहीं कर सकते (अर्थात उन्हें अब बदल नहीं सकते), लेकिन हम उसकी कार्यशीलता के वर्तमान स्तर को स्वीकार करते हुए उसके भावी अनुभवों तथा कार्यशीलता के संबंध में बहुत कुछ कर सकते हैं। यह बात सभी व्यक्तियों पर लागू होती है तथा शिक्षा का भी यही लक्ष्य है।

इस संदर्भ में उपरोक्त चर्चा महत्वपूर्ण बन जाती है। यदि हम यह मानकर चलें कि अपंग बच्चे को पढ़ाया ही नहीं जा सकता, तो हम इस बारे में प्रयास भी बहुत कम करेंगे। लेकिन यदि हम सोचते हैं कि वह अशिक्षित हैं तो हम यह कह रहे हैं कि उसे शिक्षित किया जा सकता है। पहला दृष्टिकोण यह संप्रेषित करता है कि अपंग व्यक्ति का भविष्य पूर्वनिर्धारित और आशाहीन है, लेकिन दूसरा दृष्टिकोण इस बात पर ज़ोर डालता है कि अपंग बच्चे हर क्षेत्र में उस हद तक सफल हो सकते हैं जिस हद तक वे स्वयं प्रयास करते हैं और परिवार या समुदाय उनकी सहायता करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम यह मान लें कि अपंगता व्यक्ति की क्रियाओं में बाधक नहीं होती । निश्चित रूप से अपंगता व्यक्ति के कार्य के क्षेत्र को सीमित करती है। लेकिन अपंग बच्चे क्या कर सकते हैं, इस संबंध में हमारे विचार मुक्त होने चाहिए क्योंकि काफी हद तक संभव है कि अपंग बच्चे के बारे में हमारे अवलोकन बिल्कुल गलत हों। मानव–तंत्र अत्यंत जटिल है। उत्प्रेरण, आशावादिता, धैर्य, प्रोत्साहन, स्नेह तथा उचित अनुभव वास्तव में चमत्कार कर सकते हैं। एक महिला जिसका पैर कटा हुआ है, उसके द्वारा लकड़ी के पैर के सहारे शास्त्रीय नृत्य का अध्ययन जारी रखना और इसमें श्रेष्ठता हासिल करना, इसी चमत्कार उदाहरण है। आप समझ ही गए होंगे कि हम किसी और नहीं अपितु सुधा चन्द्रन की बात कर रहे हैं। ऐसी उपलब्धियाँ निश्चित ही 'चमत्कार' लगती हैं। लेकिन ऐसे ''चमत्कार'' अपंग व्यक्ति की कड़ी मेहनत और पक्की लगन का ही परिणाम है तथा परिवार की ओर से मिलने वाली सहायता तथा प्रोत्साहन से ही संभव है। कोई लड़की जो चल नहीं पाती थी, अगर वह घुटनों के बल चलना शुरू कर देती है तो हम यह नहीं कह सकते कि वह चलने में असमर्थ हैं। यदि एक बधिर लड़का इशारों तथा सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हुए ''बोल'' सकता है, तो हम यह नहीं कह सकते कि वह ''संचार करने योग्य नहीं है।''

चित्र क्र. 6.2

चित्र क्र.6.3

उन बच्चों के प्रति जो क्षतिग्रस्त या अपंग होने के कारण अन्य बच्चों की तुलना में कम भाग्यशाली हैं, उनके प्रति हमारा रवैया सहानुभुतिपूर्ण होना चाहिए। ऐसे नजरिया वाला व्यक्ति मानता है कि जैसे हर सामान्य बच्चे की अपनी योग्यताएँ और कमजोरियाँ होती हैं, उसी प्रकार अपंग बच्चे की अपनी योग्यताएँ और कमजोरियाँ होती है। हमारा प्रयास बच्चे की योग्यताओं को और मज़बूत बनाना और उसकी कठिनाइयाँ दूर करने में उसकी मदद करने का होना चाहिए। जिस प्रकार अधिकांश बच्चे दुलार, प्रोत्साहन तथा सहायता के वातावरण में पलते व बढ़ते हैं, उसी प्रकार का सकारात्मक वातावरण अपंग बच्चे को भी मिलना चाहिए।

अपंग व्यक्तियों के प्रति समाज के उपरोक्त रवैये के विवरण में आप स्वयं को कहाँ पाते हैं ? उनके बारे में आपके क्या विचार और धारणाएँ हैं ? इस मुकाम पर एक निष्पक्ष आत्म–मूल्यांकन की आवश्यकता है। यदि आप अपना दृष्टिकोण एवं भावनाएँ लिखें, तो इससे आपको उनसे अवगत होने में मदद मिलेगी, और यदि आवश्यकता पड़ी तो, अनावश्यक अभिवृत्तियों को बदल पाएंगे।

कुछ भाव

पी.आर.रामानुजम–मुझे अच्छी तरह से याद है कि किस प्रकार मुझे गाँव के ईसाई मिशनरी प्राथमिक स्कूल में भर्ती किया गया था। मेरी माँ मुझे प्रधानाध्यापक के पास ले गई जिन्होंने मुझसे प्रश्न पूछे ''तुम्हारा नाम क्या है' ? तुम कितने वर्ष के हो ? तुम्हारे पिता का क्या नाम है ? तुम्हारी माता का क्या नाम है ?'' उत्तर देने पर मुझे झट से भर्ती कर लिया गया। मैं अपने सहपाठियों के साथ जाकर बैठ गया, जो मिलकर एक साथ तमिल वर्णमाला दोहरा रहे थे। उसी दिन से सीखना मेरी धुन बन गया, यद्यपि वह शक्ति अब मेरे में नहीं है । यह सब हमारे घर आने वाले बूढ़े दूधवाले के बार–बार आग्रह करने से हुआ। वह प्रतिदिन हमारी गाय भैसों का दूध लेने आता था, तो मुझसे बातें किया करता था। उसी ने मेरी दादी और माँ को समझाया। वह मेरी दादी और माता–पिता से कहा करता था कि ''इस लड़के को स्कूल में भर्ती करवा दो। यदि इसकी आठवीं तक पढ़ाई पूरी हो जाती है, तो इसे किसी परचूनिए की दुकान पर लिपिक या लेखाकार की नौकरी मिल जाएगी। फिर इसे जिन्दगी जीने के लिए किसी का मोहताज़ नहीं होना पड़ेगा। जब तक यह बच्चा है और जब तक आप लोग जीवित हैं, सब ठीक है; लेकिन आपके बाद, इसका क्या होगा ? क्या यह दूसरों से उसी प्यार और सहायता की उम्मीद रख सकता है जो आप इसे देते हो ? इसलिए, बेहतर यही है कि इसे स्कूल में डाल दो।'' बूढ़ा व्यक्ति अनपढ़ जरूर था, लेकिन था समझदार।

मेरे स्कूल की पढ़ाई मेरी माता के लिए ध्यानाकर्षण साबित हुई, जिसकी बहुत जरूरत थी। जब भी मेरी माँ के पास खाली समय होता, वह मुझे कठोर व्यायाम करवाती। मुझसे बात करते हुए बीच–बीच में अक्सर रो देती। मेरे रोग को ठीक करने हेतु वह सभी देवताओं से प्रार्थना करती। जब अन्य लोग मेरी प्रगति के बारे में पूछते, वह उन्हें हमेशा आशापूर्ण उत्तर देते हुए कहती कि उसका बेटा अब किसी भी समय सामान्य रूप से चलना शुरू कर देगा–शायद कुछ दिनों अथवा हफ्तों की बात है कि वह फिर से चलेगा और कूदेगा, ठीक उसी प्रकार जैसे मैं 15 महीने की आयु में करता था – यहीं उसका सपना था। आज साठ वर्ष से ज्यादा उम्र में भी वह यही सपना संजोए है।

पोलियोमाइलिटिस मेरे गाँव में एक महामारी की तरह फैल गया था। मेरी उम्र के लगभग 32 बच्चे इस बीमारी के शिकार हो गए थे। मेरा सबसे गंभीर मामला था। मेरे पिता आज भी दूसरे बच्चे जो मेरे साथ पीड़ित हुए थे, उनकी विकृति की विभिन्न कोटियों का विवरण दे सकते हैं। अन्य बच्चे आंशिक रूप से या पूरी तरह से दोबारा स्वस्थ हो पाए, किंतु मेरी टांगों तथा बाएँ हाथ की शक्ति छिन गई थी। मेरी माँ कहती है कि वास्तव में 10 दिनों तक मैं मौत के मुँह में था। उनके बुलाने पर मेरा कुछ अंतःक्रिया कर पाना ही उनके आशा की एकमात्र किरण थी।

मेरी माँ के दुःख, प्रेम और ममता व स्नेह से मुझे अपनी अपंगता से लड़ने की शक्ति व सुदृढ़ता मिली। मेरी माँ मुझे चारपाई के सहारे खड़ा करवा कर चलना सिखाती थी। वह मुझे बताती कि यदि मैं चल सकूं तो मैं क्या कुछ कर सकता हूं। कभी–कभी वह ''अंधे देवताओं'' को कोसती जिन्होंने उसके बच्चे के साथ–जो पहले ''शेर के बच्चे'' की तरह घूमता था–यह सब कुछ होने दिया। जब कभी मैं उनकी आँखों में आँसू देखता, मैं उन्हें ढाढस बँधाता : माँ, मैं सारे व्यायाम करूँगा, दोबारा चलूंगा, मजबूत बनूंगा अच्छी तरह पढ़ूंगा और डॉक्टर बनूंगा या फिर सेना में भर्ती हो जाऊंगा। ''तब मेरी माँ मुझे गले लगाकर और भी ''रोती''।

स्पष्टतः शारीरिक रूप से अपंग होने पर भी मैंने विशेष कठिनाईयाँ महसूस नहीं कीं। मैं अपने बचपन में मित्रों के साथ घुटनों के बल चलता हुआ घूमता था। मुझे कभी यह अहसास नहीं हुआ कि मैं उनसे (सामान्य बच्चे से) अलग हूँ, और न ही मुझे ऐसा कोई क्षण याद आता है जब मेरे बचपन के मित्रों ने मुझसे कभी भेदभाव बरता हो। किंतु वयस्कों, प्रौढ़ व्यक्तियों और रिश्तेदारों की बात अलग थी। वे मेरी विकलांगता को अलग–अलग नजरिए से देखते थे। ''शालीन'' व्यक्ति मेरे बारे में बात करते समय मुझे हमेशा ''रंगाराजन'' या ''वह लड़का जो चल नहीं सकता'' कहकर पुकारते थे। लेकिन कुछ अन्य व्यक्ति और वे जिन्हें मेरे माता–पिता के प्रति कोई दुर्भावना थी, मेरे लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते थे। मुझे कहना चाहिए मैं खुशकिस्मत था कि मुझे सभी अध्यापक अच्छे मिले। अधिकांश अध्यापकों ने मुझे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित ही किया ; यदि मुझे चलने–फिरने में मदद की आवश्यकता होती, तो वे मेरी मदद ही करते थे। वह प्राथमिक स्कूल जिसमें मैने शिक्षा प्राप्त की, हमारे घर से ज्यादा दूर नहीं था। मैं तीन पहियों वाले लकड़ी के वॉकर के सहारे स्कूल जाता था। लेकिन जब मैं उच्च स्कूल में गया, तो मुझे दुगना चलना पड़ता था। तब एक छोटी ठेला गाड़ी (चार पहियों वाली) का प्रबंध किया गया। मैं उसमें बैठ जाता था और मेरे घर का कोई सदस्य, ज्यादातर मेरे भाई–बहन, और मेरे मित्र उसे खींचते थे। 14–15 वर्ष की आयु में मद्रास के अपंगचिकित्सा केन्द्र में मेरा इलाज चला, जहाँ मैंने बैसाखियों और कैलीपर (चलने में सहायक उपकरण) के सहारे चलना सीखा। आठवीं कक्षा की सालाना परीक्षा देने के पश्चात् उसी वर्ष मई की गर्मी की छुट्टियों में, मुझे अस्पताल में भर्ती किया गया और अगले वर्ष जनवरी में मुझे अस्पताल से छुट्टी मिली। मेरे सभी सहपाठी नवीं कक्षा की सालाना परीक्षा की तैयारी में व्यस्त थे। चूँकि मैं नवीं कक्षा के दो–तिहाई शैक्षिक वर्ष में अनुपस्थित रहा, अतः मैं इस बात के लिए तैयार था कि मुझे पढाई का एक साल गंवाना पड़ेगा। लेकिन तब ही एक अप्रत्याशित घटना घटी।

''पोंगल'' की छुट्टियों के पश्चात् स्कूल खुला। मैं अपने मित्रों और शिक्षकों से मिलने विद्यालय गया। उस दिन जिले के शैक्षणिक अधिकारी स्कूल का दौरा करने आए हुए थे। जब वे कक्षाओं का निरीक्षण करने आए तब मैं नवीं कक्षा में बैठा था। मेरी बैसाखियों और कैलीपर्स के कारण उनका ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने मेरे इलाज के बारे में पूछा। मैंने उस दोपहर उनसे मिलने का समय माँगा। मैंने उनसे निवेदन किया कि कक्षा में मेरी उपस्थिति की अनिवार्यता की शर्त खत्म कर दी जाए और मुझे सालाना परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाए। वह मेरा निवेदन सुनकर पहले तो कुछ हैरान हुए, किन्तु फिर उन्होंने एकदम से कहा कि यदि मेरे में सफलतापूर्वक परीक्षा देने का आत्म–विश्वास है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। मैंने दो महीने पश्चात् होने वाली परीक्षाएँ दी और मैं सभी परीक्षाओं में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ। इस प्रकार मैंने अपना पूरा एक साल बचाया।

जब मैं दसवीं कक्षा में गया तो मेरा विद्यालय हमारे गाँव से दो किलोमीटर की दूरी पर स्थानान्तरित हो गया। अब यातायात एक अहम मुद्दा बन गया । खतरनाक और खराब पायदान तथा ड्राइवर और संवाहकों की जल्दी मचाने की आदत के कारण, प्रतिदिन बस में सफर करना कठिन और जोखिम भरा था। ऐसी स्थिति में मैं अपने मित्रों पर आश्रित था जो मुझे अपनी साईकिल पर ले जाते थे। जी हाँ, मैं साईकिल के कैरियर पर बैठ जाता था, यद्यपि कभी–कभी यह बहुत खतरनाक साबित हुआ। किसी–किसी दिन मैं पैदल भी चला जाता था। इस दूरी को तय करने में मुझे दो घंटे लगते थे। मैं पैदल चलने को एक व्यायाम के रूप में लेता था। हाँ, मुझे

प्रतिदिन चलने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इस विषय में मुझे सबसे अधिक सहायता अपने मित्र गोपालस्वामी से मिली। मैं उसकी और अपने अन्य मित्रों की सहायता करने की भावना को कभी भूल नहीं सकता।

एस.एस.एल.सी. में 75 प्रतिशत अंक मिलने कि वजह से मुझे कॉलेज में प्रवेश मिलने में कोई परेशानी नहीं हुई। मदुरई में दाखिला मिलने पर मैंने पहली बार कॉलेज देखा। मेरे लिए यह किसी अज्ञात ग्रह को खोजने के बराबर था। मुझे भवनों के आकार, खान–पान, आवास और रहन–सहन एवं दैनिक दिनचर्या के बारे में कुछ भी नहीं पता था। दूसरे शब्दों में, मैं कॉलेज के वातावरण से पूर्णतः अनभिज्ञ था। मुझे इस बात का अनुभव नहीं था कि मैं अपनी व्यवस्था किस हद तक खुद कर पाऊँगा और किस हद तक दूसरों पर निर्भर रहना होगा। किन्तु जब मैंने वास्तव में कॉलेज जीवन में प्रवेश किया तो, कुछ दैनिक कार्यकलापों को छोड़कर मुझे कॉलेज का जीवन वास्तव में बड़ा रोमांचकारी लगा। वहाँ विकलांगों के लिए प्रसाधन की विशेष सुविधाएँ नहीं थीं। छात्रावास और कक्षा के बीच की दूरी, कम से कम मेरे लिए तो, काफी थी और इस समस्या के समाधान के लिए कॉलेज में परिवहन की भी कोई सुविधा नहीं थी। मैं इतना धनवान नहीं था कि इस कठिनाई को दूर करने के लिए कोई विशेष व्यवस्था कर सकूँ। अपने आप को कॉलेज की इन परिस्थितियों के अनुकूल बनाना ही इसका एकमात्र हल था। मैं स्नानागार में एक फोल्डिंग अथवा लकड़ी की कुर्सी का इस्तेमाल करता था। सुबह 5.00 बजे जब अन्य लोग सो रहे होते, तब मैं उठ जाता ताकि स्नानागार गीला, गंदा और फिसलन भरा होने से पहले मैं उसका उपयोग कर सकूँ। सुबह 7.30 बजे मैं भोजन कक्ष की ओर चलना आरम्भ कर देता, जो कक्षाओं के समीप ही था। प्रातः 8.00 बजे तक अन्य छात्र नाश्ते के लिए आ जाते । नहाने के बाद भोजन कक्ष पहुँचने के लिए सुबह 30 मिनट तक चलना कोई मज़ाक नहीं है। मैं जब तक कक्षा में पहुँचता तो पसीने से मेरी कमीज़ लगभग भीगी होती थी और कई बार शारीरिक रूप से मैं पूरी तरह थक चुका होता था। परन्तु मेरे इस कठिन परिश्रम के लिए मुझे प्रोत्साहन भी मिला और इसका अच्छा परिणाम भी हुआ। मासिक परीक्षा में अंग्रेजी में सबसे अधिक अंक मुझे प्राप्त हुए और इस कारण मैं बहुंत जल्दी मशहूर हो गया। पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में, हालांकि मैं गणित, भौतिकी और रसायन शास्त्र पढ़ना चाहता था किन्तु मेरे प्राचार्य ने भौतिकी और रसायन शास्त्र में प्रयोग के लिए आवश्यक प्रयोगशाला संबंधी व्यावहारिक कठिनाईयों के कारण मुझे गणित, अर्थशास्त्र और वाणिज्य पढ़ने की राय दी। इस बात से मैं कुछ निराश हो गया कि मुझे स्वयं यह सोचने का अवसर नहीं दिया गया कि मैं प्रयोगशाला संबंधी कार्य कर पाऊँगा या नहीं। बहरहाल, अर्थशास्त्र और वाणिज्य में मेरा कार्य निष्पादन काफी अच्छा रहा। वास्तविकता तो यह है कि कॉलेज में अर्थशास्त्र में मैंने प्रथम स्थान प्राप्त किया ।

अपने कॉलेज के दिनों में मैंने यह महसूस किया कि समय पर मित्रों की थोड़ी सहायता मिलने से मैं उन सभी बाधाओं को दूर कर सका जो शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों के लिए करना मुश्किल होगा। बस, लारी, ट्रक, रेलगाड़ी, साइकिल और यातायात में सफर करना तब उतना मुश्किल नहीं लगता, जब आपके मित्र आपको इस बात का अहसास ही न होने दें कि आप अपंग हैं। मित्रों का सहायता करने का यह दृष्टिकोण और बिना कहे सहायता करने का तरीका, अपने मित्रों के इतना निकट ले आता है कि आप परिणाम की परवाह न करते हुए किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए अपने को समर्थ समझते हैं। ऐसे कई अवसर आए जब मेरे मित्रों ने मुझे स्वयं उठाकर लारी आदि के अंदर बिठाया, भवन की दूसरी या तीसरी मंजिल तक उठाकर ले गए, परन्तु ऐसा करते हुए उन्होने मुझे किसी प्रकार की शर्म या एहसान कि भावना महसूस नहीं होने दी। हमारी मित्रता विश्वास और समानता पर आधारित थी। अगर आप मुझसे मेरे जीवन का सबसे अच्छा समय पूछें तो मैं यही कहूँगा कि अपने कॉलेज के इन छः वर्षों में मैने जीवन के बारे में सीखा – इन वर्षों में मुझे वह शिक्षा मिली जिसने मुझे एक ओर तो प्रबल रूप से आत्मनिर्भर बना दिया तो दूसरी ओर मुझे अपने मित्रों के साथ इतनी सहज़ता से जोड़ दिया कि मुझे वास्तव में अपनी शारीरिक विकलांगता कभी भी बाधा नहीं लगी।

अपनी जिन्दगी में कोई भी व्यक्ति सदैव मित्रों के साथ रहने की आशा नहीं कर सकता। कॉलेज/विश्वविद्यालय

की पढ़ाई के बाद, व्यक्ति को जिन्दगी का सामना अलग ढंग से करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी में अपनी अलग–अलग जरूरतें और बंधन होते हैं। सबको अपनी–अपनी राह स्वयं चलनी होती है। नौकरी का चयन करते समय मेरे लिए परिवहन और संचार के माध्यम की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण कारक है–बाकी सभी चीजों के बिना अधिक परेशानी के प्रबंध किया जा सकता है। बड़े शहरों के संदर्भ में, जहाँ मानवीय संबंध बहुत वैयक्तिक होते हैं, यह बात और भी सही है। आज भी, मुझे केवल सम्प्रेषण के माध्यम की उपलब्धता की चिंता होती है–यदि आप अपने मित्रों से और सहकर्मियों से सम्पर्क नहीं कर सकते, तो आपकी पहल की प्रवृत्ति कम होती जाती है। जब तक आपको सहायता या सूचना मिलती है, जिसकी आपको अत्यंत आवश्यकता थी, आप अपने काम में निश्चित रूप से पिछड़ जाते हैं–चाहे वह कार्य शैक्षिक हो अथवा सामाजिक। परन्तु फिर भी, अन्य कई लोगों के लिए भी, जो मेरी तरह विकलांग नहीं है, जीवन का यही रूप है। (लेखक इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।)

> आपके आस–पास ऐसे विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे/व्यक्ति होंगे जिन्होंने अपने विशिष्टता को अपनी जीवन में बाधक नहीं बनने दिया हो, यदि आपके परिवेश में इस तरह के सफल लोग हैं तो इनके बारे में विस्तृत जानकारी लेवें?

आमतौर पर बच्चों में अपंग बच्चों के प्रति नकारात्मक भावनाएँ नहीं होती । सामान्यतः वे अपंग बच्चे को इस आधार पर महत्व देते हैं कि वह बालक/बालिका क्या कर सकता/सकती है। यदि एक बालिका जिसे चलने–फिरने में कठिनाई होती है, अगर नम्बर गेम (खेल) में अच्छी है तो निश्चित रूप से ऐसे खेल के समय अन्य बच्चे उसे ज्यादा महत्व देंगे। उसकी उम्र के अधिकांश बच्चे उसे अपने ग्रुप में लेना चाहेंगे। तथापि वे यह जरूर पहचानते हैं कि उनमें और उस बालिका में अंतर है। हो सकता है कि कभी–कभार उसे इस बारे में ताने भी मारें और व्यंग्य कसें। यह रूढ़िबद्ध धारणाएँ और नकारात्मक भावनाएँ जो बच्चे अपने विकलांग साथियों की ओर दिखाते हैं, अधिकतर अपने बड़ों से सीखते हैं। बच्चे इन गलत धारणाओं और नकारात्मक भावनाओं को बड़ों की अपेक्षा जल्दी छोड़ भी सकते हैं। एक संवेदनशील वयस्क बच्चों की अपंग व्यक्तियों के प्रति इन नकारात्मक और पूर्वाग्रही भावनाओं से छुटकारा दिलवा सकता है। कार्य करने अथवा खेल के दौरान बच्चे वयस्कों की तुलना में अपंग साथियों को आसानी से स्वीकार कर लेते हैं।

कुछ प्रश्न

1. क्या आप निम्नलिखित कथनों से 'सहमत' हैं या 'असहमत'? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

   क. क्षति हमेशा अपंगता का कारण बनती है।

   ख. एक अपंग व्यक्ति कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में अक्षम होता है।

   ग. हम में से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप से अक्षम है।

   घ. बच्चे अपंग व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और भावनाएँ बड़ों से ग्रहण करते हैं।

   ङ. एक व्यक्ति जिसका शरीर 'सामान्य' नहीं है, उसका दिमाग भी 'सामान्य नहीं होता।

   च अपंग बच्चे/व्यक्ति की कार्यक्षमता सुधारने में उसकी मदद की जा सकती है।

2. निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं?

   क. क्षति ख. अपंगता ङ. अक्षमता

3. विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं से ऐसे बच्चों/व्यक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त करें जिन्होंने निःशक्तता के बावजूद महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। उनकी इस जानकारी का आप कक्षा में किस प्रकार उपयोग करेंगें? लिखिए।

विभिन्नताओं में समानता

अभी तक की चर्चा में इस बात पर बल दिया गया है कि विशिष्ट जरूरतों वाले बच्चे अन्य बच्चों से अलग होते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण एक बधिर बच्चा है, जो श्रवणबाधित होने के कारण उन सारे अनुभवों से वंचित रह जाता है जो बाकी सब सामान्य व्यक्तियों को उपलब्ध होते हैं। नदी का बहना, चिड़ियों का चहचहाना, खतरे की घंटी की आवाज़ या अपने भाई की आवाज़– जो हम में से अधिकतर लोगों के दैनिक अनुभव हैं–अत्याधिक (गंभीर रूप से) बधिर व्यक्तियों की दुनियाँ में ये अनुभव पहुँचते ही नहीं। परन्तु अपंग और सामान्य बच्चों के बीच अंतर की चर्चा करने के बाद, यह भी याद रखना उतना ही महत्वपूर्ण है कि कई मामलों में विशिष्ट बच्चे बिल्कुल अन्य सामान्य बच्चों की तरह ही होते हैं। काश बच्चे की अपंगता की ओर ध्यान केन्द्रित करते समय हम यह देख भी पाते कि वह कई प्रकार से अन्य बच्चों के समान है। दुर्भाग्यवश, अपंगता बच्चे के अन्य सामान्य, बाल सुलभ हरकतों को आच्छादित कर देती है।

चित्र क्र. 6.4

आइए, हम इसी तथ्य पर थोड़ा चिंतन करें। यदि आपने कभी ऐसी बलिका के साथ अंतःक्रिया की हो जो देख नहीं सकती, तो आपने देखा होगा कि अन्य बच्चों की तरह वह भी खेलना, कहानियाँ सुनना और गीत गाना पसंद करती है। जब वह गुस्से में हो या उसका मूड खराब हो, तो वह भी चाहती है कि उसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाए। वह भी अन्य बच्चों की तरह भाग सकती है और कूद सकती है, सीढ़ियाँ चढ़ सकती है और बातचीत कर सकती है। उसके भी मित्र हैं; उसमें भी निकटतम व्यक्तियों के प्रति प्यार और लगाव हैं; वह भी

अपने भाई–बहनों के साथ बड़े होने के सामान्य सुख और पीड़ाओं को अनुभव करती हैं; हमारी ही तरह उसमें रोष, व्यथा, प्रसन्नता और ईर्ष्या की भावना है। यदि उसे लगे कि उसे प्यार नहीं किया जाता या उसे कोई नहीं चाहता अथवा उसकी उपेक्षा की जा रही है, तो किसी भी अन्य बच्चे की तरह, उसकी भावनाओं को भी ठेस पहुंचती है और वह अकेलापन महसूस करती हैं। संभव है वह भी रोज़गार का कोई क्षेत्र चुने, शादी करे और परिवार चलाए।

उसी प्रकार, वह बच्चा जिसकी टाँगें खराब हैं, अपने हम उम्र अन्य बच्चों की तरह घुटनों के बल चल नहीं पाएगा, और न ही दौड़ पाएगा परन्तु लगभग दूसरे सभी पहलुओं में वह अन्य बच्चों के समान ही होगा। यह संभव है कि व्यायाम से और चिकित्सीय हस्तक्षेप से वह स्वयं खड़ा होना सीख ले और बड़ी उम्र में चलना भी शुरू कर दे। किसी का भी बचपन दो मुख्य कारकों से प्रभावित होता है, चाहे वह बच्चा किसी भी समुदाय में क्यों न पैदा हुआ हो। ये कारक निम्नलिखित हैं :

- बचपन के दौरान सभी क्षेत्रों में विकास बहुत तेज़ गति से होता है, और इस विकास के दौरान बच्चों में कई बदलाव आते हैं। आपने विकास के इन मानकों के बारे में विस्तार से पढ़ा है।
- बच्चा काफी लम्बे समय तक विश्वसनीय और जिम्मेदार व्यक्तियों पर निर्भर रहता है।

चित्र क्र. 6.5

एक विशिष्ट बच्चे के मामले में सर्वप्रथम कुछ विकासात्मक परिवर्तन पूरी तरह से उन मानकों के अनुरूप नहीं होते। उदाहरण के तौर पर, जिस बालिका की श्रवण शक्ति अत्यधिक क्षीण है, उसकी वाक्–शक्ति का विकास उसी समान गति से नहीं होगा जैसा कि सामान्य रूप से सुनने की क्षमता रखने वाले बच्चों की वाक्–शक्ति का विकास होगा। वह सामान्य बच्चों की भांति उन्हीं की आयु में कूंजन (Cooing) करना और बबलाना तो शुरू करेगी, परन्तु इसके बाद जबकि सामान्य बच्चों का भाषा अर्जन में आगे विकास होगा, बधिर बालिका का बबलाना (Babbling) धीरे–धीरे कम हो जाएगा और अंततः खत्म हो जाएगा। यदि उसकी श्रवणशक्ति को सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया जाएगा, तो शायद वह कभी भी बोलना नहीं सीख पाएगी। तथापि, इस बालिका का क्रियात्मक और शारीरिक विकास बिल्कुल अन्य बच्चों की तरह होगा। जैसे–जैसे वह बड़ी होगी, यदि उसने भाषा के अतिरिक्त सम्प्रेषण का कोई अन्य माध्यम अर्जित नहीं किया, तो कई संकल्पनाओं को समझना उसके लिए कठिन हो जाएगा और वह संज्ञानात्मक विकास में पिछड़ जाएगा। दूसरी ओर अगर वह बोलना सीख जाए या सांकेतिक भाषा या इशारों के माध्यम से सम्प्रेषण सीख जाए, तो उसकी विचार शक्ति

और संकल्पनाओं के बारे में उसकी समझ सामान्य बच्चों से शायद न पिछड़े। जैसा कि आप जानते हैं कि भाषा का विकास और विचार शक्ति का विकास एक दूसरे से संबद्ध है।

दूसरे, विशिष्ट बच्चे वयस्कों पर ज्यादा देर तक निर्भर रहेंगे – यह तो स्पष्ट है। यदि बच्चे अपनी अधिकांश मूल आवश्यकताओं को स्वयं पूरा नहीं कर सकते, तो उन्हें दूसरों की मदद की जरूरत होती है।

उपरोक्त चर्चा से दो सिद्धांत उभर कर सामने आते हैं :

1) किसी भी व्यक्ति की अपंगता उसके व्यक्तित्व का आंशिक हिस्सा है; अन्यथा अपंगता के अलावा वह व्यक्ति हर लिहाज़ से सामान्य होता है।

यदि आप दो सूचियाँ बनाएँ–पहली जिसमें आप वह कार्य लिखें जो एक अपंग व्यक्ति कर सकता है और दूसरी जिसमें आप वह कार्य लिखें जो वह नहीं कर सकता – तो आप स्वयं यह देखकर हैरान होंगे कि पहली सूची में आप कई कार्य लिख सकते हैं। आप ऐसा वास्तव में करके देखिए।

अपंगता निश्चित रूप से व्यक्ति की क्रियाओं के दायरे को सीमित कर देती है, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है कि अपंगता के कारण व्यक्ति पूर्ण रूप से कुछ भी न कर पाए। कई मामलों में केवल यह पता लगाने की आवश्यकता होती है कि अपंग व्यक्ति क्या करने में समर्थ है और फिर उन योग्यताओं को पूरा इस्तेमाल करने में उसकी मदद करें और इस प्रकार, जिसका उसे अभाव है उसकी क्षति–पूर्ति करें। कई लोगों में अपंगता अल्पकोटि की ही होती है और इस कारण उसके नकारात्मक प्रभावों के होने की संभावना भी कम रहती है।

अधिकांश अपंग वयस्क किसी न किसी क्षेत्र में सक्षम कार्य करने योग्य होते हैं। हमें करना यह है कि उनकी समर्थता के क्षेत्र को खोजें और इस क्षेत्र में अपनी योग्यताओं/क्षमताओं का पूरा प्रयोग करने हेतु उन्हें प्रशिक्षण दें। वे काम जहाँ पर इधर–उधर घूमने की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती, जैसे किसी दुकान या डाकघर में नौकरी, शारीरिक रूप से अपंग व्यक्ति के लिए सुविधाजनक होगी। एक व्यक्ति जो अत्यधिक गंभीर रूप से बधिर है, एक अध्यापक बनने योग्य नहीं है किंतु खेत में काम कर सकता है।

अपंगता अक्सर दैनिक जीवन में दैनिक कार्य करते समय बीच में रुकावट बनती है। एक नेत्रहीन बालिका के लिए शुरुआत में घर में इधर–उधर घूमना और स्वयं खाना खाना कठिन होगा, लेकिन यदि आप बालिका को इससे परिचित कराएं कि घर में कहां–कहां सामान रखा है, किस व्यवस्था से घर में फर्नीचर रखा है, तो आप पाएँगे कि धीरे–धीरे वह घर में आसानी से घूमने लगेगी और बहुत से काम अपने आप कर पाएगी। खाना खाने के समय यदि बर्तन और खाने की चीज़ें मेज़ पर रोज़ एक निश्चित ज़गह और क्रम से रखी गई हों, तो बालिका धीरे–धीरे अनुमान लगा पाएगी कि कहाँ क्या पड़ा है और वह स्वयं ही खाना परोसने लगेगी। दैनिक कार्य पूरे करने के लिए आत्मनिर्भर हो पाना अपंग बच्चों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

चित्र क्र. 6.6

आपने पढ़ा है कि किसी भी बच्चे में दक्षता, समर्थता एवं स्वयं कार्य कर सकने के बोध को विकसित करना आवश्यक है। अपंग बच्चों के लिए यह और भी महत्वपूर्ण बन जाता है। वे स्वयं को अन्य लोगों से अलग पाते हैं और दिखाना चाहते हैं–स्वयं को दूसरों को, कि वे औरों के समान ही हैं। दैनिक कार्य स्वयं कर पाने के अनुभव

अपंग बच्चों का आत्मविश्वास बढाएंगे, उन्हें अपने बारे में और आश्वस्त कराएँगे और अगली चुनौती का सामना करने के लिए तैयार करेंगे—एक सार्थक व पूर्ण ज़िन्दगी जीने की ओर ये छोटे, किंतु निश्चित कदम हैं।

चित्र क्र. 6.7

अक्षम बच्चों से सामान्य बर्ताव करें। इसका आशय यह नहीं है कि आप उसकी अपंगता को नज़रअंदाज करें। उसकी अपंगता को ध्यान में रखें और यह समझें कि वह कई रवैये और क्रियाओं से उसे यह संप्रेषित करें कि आप उसे अन्य लोगों की तुलना में हीन नहीं मानते और न ही यह मानते हैं कि अन्य लोगों की अपेक्षा उसमें कार्य करने का सामर्थ्य कम है। कई अपंग व्यक्ति विशेष योग्यताएँ प्रदर्शित करते हैं। इनमें से कुछ व्यक्ति नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न होते हैं। कई अपंग लोग अपने चुने हुए व्यवसाय में कठिन परिश्रम द्वारा सफलता और ख्याति प्राप्त कर पाए हैं। किंतु वे अपंग व्यक्ति जो इन ऊंचाइयों तक नहीं पहुँचे, उनकी भी कुछ उपलब्धियाँ हैं। आप अपने इर्द–गिर्द बहुत से ऐसे लोग पाएंगे जो अपनी अपंगता के बावजूद भी अपनी परिस्थितियों से अच्छी तरह निपटते हैं। वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं, अपनी देखभाल स्वयं करते हैं; हो सकता है वे परिवार में अन्य लोगों का सहारा भी हों। उन्होंने समाज में अपने लिए एक स्थान बनाया है। तब क्या हमारा इन व्यक्तियों की केवल अपंगता पर अपना ध्यान केन्द्रित करना उचित है?

चित्र क्र. 6.8

कुछ प्रश्न

• अपने परिवार, पड़ोस या कार्य क्षेत्र में एक अपंग बच्चे या व्यक्ति का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें। उसके साथ घनिष्टता स्थापित करें और उसे सही मायने में जानने का प्रयत्न करें। आपके विचार में उस व्यक्ति की क्या उपलब्धियाँ हैं ?

इस चर्चा का आशय यह नहीं निकालना चाहिए कि हम इस तथ्य की उपेक्षा कर रहे हैं कि बहुत से अपंग व्यक्ति गंभीर रूप से अक्षम हैं और उन्हें लगातार सहायता की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन कहने का तात्पर्य यह है कि विशिष्ट बच्चे अन्य बच्चों के कितने समान हैं, इस बात पर ध्यान केन्द्रित करने से हमें उनके सकारात्मक गुण नजर आएँगे और उन गुणों और कौशलों को फिर आप और बढ़ावा दे सकते हैं। ऐसा रवैया होने पर आप विशिष्ट बच्चों को इन नज़रिए से देखेंगे कि वे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं। इस प्रकार आप उनकी विदित शारीरिक या मानसिक अपंगता से आगे सोच पाएँगे।

"मैं अपना काम खुद कर सकता हूँ।"

चित्र क्र. 6.9

2) हमें अपंगता को व्यक्ति के वर्तमान और भावी परिस्थितियों के संदर्भ में आँकना चाहिए।

इसका अर्थ है कि अपंगता अक्षम बनाती है या नहीं, यह व्यक्ति की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि एक नेत्रहीन बालिका को एक ऐसे स्कूल में भर्ती होने का अवसर मिलता है जहाँ पर शिक्षा ब्रेल द्वारा दी जाती है, तो जहाँ तक शिक्षा ग्रहण करने का सवाल है, उसकी नेत्रहीनता उसे उस गंभीरता से अक्षम नहीं बनाती।

यदि एक व्यक्ति जो हकलाता है यदि उसे डाकिए की नौकरी मिलती है, तो उसका हकलाना उसकी नौकरी में बाधक नहीं होगा। यदि वह विक्रेता होता, तो यह अपंगता उसकी अक्षमता या अड़चन बन सकती थी।

इस संदर्भ में धन भी एक विचारणीय कारक है। यदि कोई व्यक्ति चल नहीं सकता किन्तु पहिए वाली कुर्सी खरीद सकता है तो, जहाँ तक घर में इधर–उधर घूमने का प्रश्न है, वह अक्षम नहीं है। आपने मोटर संचालित गाड़ियाँ भी देखी होंगी, जो विशेषकर शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों के लिए बनाई जाती हैं। इन गाड़ियों को प्रत्येक व्यक्ति की अपंगता की जरूरतों के अनुरूप ढ़ाला जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति इसे खरीद सकता है, तो उसके लिए कम दूरी के रास्ता तय करना आसान हो जाएगा और बहुत सारे विकल्प जो पहले उस व्यक्ति के लिए बंद थे, अब उन पर फिर से गौर किया जा सकता है।

एक व्यक्ति एक तरह की परिस्थितियों में अक्षम हो सकता है, लेकिन अन्य परिस्थितियों में नहीं। एक लड़का, जिसकी बौद्धिक कार्य करने की क्षमता औसत से केवल कुछ ही कम है, उसे स्कूल में पढ़ाई संबंधी कठिनाई हो सकती है। पढ़ाई में उसका स्तर अपनी आयु के बच्चों से निम्न होगा। तथापि घर के माहौल में आप उसे दूसरों से अलग नहीं पाएँगे। वास्तव में हो सकता है वह घर की जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभाता हो। हो सकता है वह छोटे बहन–भाइयों और घर की देखभाल करता हो, घर के छोटे–मोटे काम करता हो या परिवार की आय बढ़ाने के लिए कुछ काम करता हो, जैसे समाचार–पत्र या खाने की चीजें बेचना। इस लड़के के विषय में औसत से कुछ कम बौद्धिक क्षमता केवल स्कूली पढ़ाई में बाधा डालती है। ऐसे बच्चे के लिए उच्चतर स्तर की शिक्षा निरर्थक है। उसे किसी उपयुक्त काम में प्रशिक्षण देना ज्यादा सार्थक होगा ताकि वह आगे चलकर सफल जीवन बिता सके।

इस विवेचन से हमारा आशय यह था कि अपंग बच्चों के लिए योजना बनाते समय उनके वर्तमान और भविष्य की परिस्थितियों को साथ–साथ देखें और यह भी देखें कि वे परिस्थितियाँ उनके लिए कैसे बाधक अथवा सहायक बन सकती हैं। इस बात का भी अनुमान लगाएँ कि इन परिस्थितियों को कैसे सुधारा जा सकता है ओर बच्चों का जीवन किस प्रकार से व्यवस्थित किया जाए कि परिस्थितियाँ उन्हें अनुकूल रूप से प्रभावित कर सकें। जब आप इस और अगले खंड की अगली इकाईयाँ पढ़ेंगे तो ये सिद्धांत आपको स्पष्ट होते जाएँगे।

बच्चे पर अपंगता का प्रभाव

स्पष्टतः अपंग व्यक्ति ही अपनी अपंगता से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। अपंगता के शारीरिक और स्पष्ट परिणामों से भी अधिक गंभीर उसके मानसिक प्रभाव हो सकते हैं।

एक अपंग बालिका कुछ काम अन्य बच्चों के समान कर लेती है; दूसरे कार्य वह अन्य बच्चों से कुछ ज्यादा समय लेकर या कुछ शारीरिक पीड़ा सहते हुए करती है, किन्तु उन्हें सक्षमता से कर लेती है; और कुछ ऐसे कार्य हैं जो वह बिल्कुल भी नहीं कर सकती। अपंग बच्चे को यह तथ्य स्वीकार करना होगा। लेकिन यह बात कहने में जितनी आसान है, करने में उतनी ही मुश्किल। यह स्वीकार कर पाना तब और भी कठिन हो जाता है जब बालिका जन्म से ही अपंग न हो अपितु उसमें यह अपंगता जन्म के कुछ वर्षों बाद आई हो। यदि जन्म से ही अपंगता हो, तो उससे समझौता करना कुछ हद तक थोड़ा आसान होता है। लेकिन जो बालिका पहले कुछ वर्षों में सामान्य रूप से कार्य करने की आदी हो और अचानक अपंग हो जाने के कारण उसके कार्यो पर प्रतिबंध लग

जाए तो उस स्थिति के साथ समझौता करना बहुत कठिन हो सकता है। यह उसे मानसिक आघात भी दे सकता है। जो कार्य उसे अपंगता से पहले करना बड़ा स्वाभाविक लगता था और जो सहज़ ही हो जाता था, अब वही कार्य करने के लिए विस्तार से योजना बनाना और सरल काम करने के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना किसी पीड़ा से कम नहीं है। इसी कारण उसके बहुत से क्रियाकलाप कम हो जाएँगे और जीवन का मज़ा जाता रहेगा।

तथापि, किसी प्रकार की अपंगता, चाहे बाद में आए या जन्म से ही हो, बच्चे के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। बालिका निश्चित रूप से अपने आप को दूसरों से अलग मानती है। उसमें हीन भावना पैदा हो सकती हैं और इसी कारण हो सकता है वह लोगों से मिलना–जुलना भी बंद कर दे। संभव है कि वह अपरिचित व्यक्तियों से मिलने में हिचकिचाए–उसे शर्म महसूस हो या वह और लोगों से अलग–थलग रहे। दूसरी ओर उसकी अपंगता उसे कठिनाइयों का सामना करने और उनसे निपटने के लिए प्रेरित भी कर सकती है। अक्सर बच्चे ही निर्भय और दृढ़ निश्चयी होने की पहल करते हैं ओर उनका यह सकारात्मक रवैया परिवार को भी उनकी सहायता करने के लिए विवश करता है।

बालिका अपनी अपंगता की ओर किस प्रकार की प्रतिक्रिया ज़ाहिर करती है, यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके जीवन में उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों (माता–पिता, भाई और बहन, मित्र व अन्य रिश्तेदारों) का उसके प्रति कैसा व्यवहार है? उनका रवैया बहुत हद तक यह सुनिश्चित करता है कि बालिका अपनी अपंगता से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित कर पाएगी।

आप जानते हैं कि बच्चे में स्व–योग्यता और आत्म–सम्मान की भावनाओं के विकास का एक आधार है–दूसरे लोगों की प्रतिपुष्टि। यदि अभिभावक सहायक और प्रोत्साहित करने वाले हैं और बच्चे को यह संप्रेषित कर पाते हैं कि वे प्रत्येक परिस्थिति में उसके साथ हैं तो धैर्य, आशीर्वाद और समझदारी से बच्चे की अपंगता के कई नकारात्मक प्रभावों पर काबू पाया जा सकता है। ऐसे वातावरण में बालिका अपने बारे में सकारात्मक विचार और पूर्णता/पर्याप्तता की भावना विकसित करती है।

इस सकारात्मक नज़रिए के ठीक विपरीत कुछ अभिभावक अपंग बच्चे का मज़ाक उड़ाते हैं या उसे शर्मिंदा करते हैं या बच्चे को यह जतलाते हैं कि वह किसी काम का नहीं है। कुछ अन्य माता–पिता स्वयं को अपने बच्चे की अपंगता का जिम्मेदार ठहराते हैं और इस कारण दोषी महसूस करते हैं। इस कारण वे अपने बच्चे को जरूरत से ज्यादा सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं और उसे कुछ भी अपने आप नहीं करने देते। यद्यपि वे सोचते हैं कि ऐसा हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यदि उनका यही रवैया ज्यादा देर तक ज़ारी रहता है, तो बच्चे को अपनी प्रतिभा विकसित करने का अवसर ही नहीं मिलता। कुछ अभिभावक अपने अपंग बच्चे के प्रति शर्म महसूस करते हैं। संभवतः वे बच्चे को सबके सामने नहीं अपनाएँ और घर पर यदि कोई मिलने आए, तो उसे छुपा दें। ऐसे हर मामले में अभिभावक अप्रत्यक्ष रूप से अपने अपंग बच्चे को यह संप्रेषित कर रहे हैं कि उनके विचार में वह सामान्य नहीं है और न ही दूसरे बच्चों की भांति है। इसका बच्चे पर अवश्य ही नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मैं भी चल सकता हूँ

चित्र क्र. 6.10

परिवार के सदस्यों के अपंग बच्चे के प्रति रवैये कितने भिन्न हो सकते हैं, यह निम्नलिखित दो स्थितियाँ बहुत ही स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं।

छह वर्षीय नीलू गेंद को दीवार पर टिप्पा मारकर पकड़ने का प्रयास कर रही थी। गेंद बार–बार नीचे गिर जाती क्योंकि नीलू के दाहिने हाथ की तीन अंगुलियाँ नहीं थीं। कुछ समय तक प्रयास करने के बाद हारकर, नीलू ने गेंद को छोड़ दिया और उदास होकर बगीचे की तरफ जाने लगी। नीलू का दस वर्षीय बड़ा भाई उसे देख रहा था। उसे निराश होता देखकर वह उसके पास जाकर बोला : आओ मेरे साथ खेलो ! मैं गेंद फेंकता हूँ और तुम उसे पकड़ने का अभ्यास करो। इसके बाद तुम दीवार पर टिप्पा मारकर पकड़ने की कोशिश करना। अपने भाई की बात सुन नीलू की आँखों में चमक आ गई। वह वापिस आई ओर दोनों कुछ देर तक गेंद से खेलते रहे।

यह एक छोटी सी घटना है लेकिन यह दर्शाती है कि एक भाई (या कोई अन्य साथी) कितना संवेदनशील हो सकता है। ऐसे प्रोत्साहन प्रदान करने वाले अनुभव यदि बार – बार हो तो इससे बच्चे को यह समझ में आने लगता है कि थोड़े से अतिरिक्त प्रयास करने से वह अपनी अक्षमता की सीमाओं को लांघ सकती है।

उपरोक्त घटना से आगे वर्णित स्थिति से तुलना कीजिए।

एक परिवार के तीन बच्चों को पड़ोस में हो रही जन्मदिन की पार्टी में आमंत्रित किया गया था। माँ ने तो बसे बड़े और सबसे छोटे बच्चे को तो जाने के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु बीच वाले को जाने से रोक दिया। 'तेरा जाने का क्या फायदा' उसने कहा। 'तुम देख तो सकते नहीं और न ही दूसरे बच्चों के साथ खेल पाओगे। तुम घर पर रहो और मेरे साथ मटर छीलने में मेरी मदद करो।

थोड़ी सी मदद मिलने पर, डाउनज़ सिंड्रोम वाला बच्चा बाहरी खेलों का आनन्द ले सकता है।

चित्र क्र.6.11

यदि ऐसे अनुभवों का सामना अक्षम बच्चों को अक्सर करना पड़े तो वे न केवल स्वयं को अस्वीकृत महसूस करेंगे अपितु यह भी सोचेंगे कि क्या वे वास्तव में असमर्थ और अयोग्य हैं? उनके मन में निरर्थकता और अयोग्यता की भावना पैदा होगी। उपरोक्त तरह के कथन भविष्य में नकारात्मक वाणी का काम करते हैं। अपंग बच्चा यह सोचने लगता है कि वह निकम्मा है और इस कारण वह अप्रभावी व्यवहार करने लगता है और इस अप्रभावी व्यवहार से बच्चे की अपने बारे में नकारात्मक भावनाएं और भी प्रबल हो जाती हैं। इस तरह से यह प्रक्रिया चलती रहती है।

कुछ प्रश्न

• यदि संभव हो तो अवलोकन करें कि किसी विशिष्ट बच्चे/वयस्क का परिवार, उसके साथ कैसा व्यवहार करता है। क्या आपको लगता है कि परिवार ने बच्चे/वयस्क की सकारात्मक रूप से मदद की है।

निश्चित रुप से उपरोक्त वर्णित घटनाओं से जैसा प्रतिबिंबित होता है, भावनाओं की परस्पर क्रिया इससे भी कहीं जटिल है। दैनिक जीवन की जरुरतें अपंग बच्चे और उसके परिवार से भारी कर वसूल करती है।

शिक्षक की भूमिका

आइए, अब देखें यदि आपकी कक्षा में कोई विशिष्ट बच्चा है तो एक शिक्षक होने के नाते आपसे क्या आशा की जाती है।

अभिनिर्धारण

आपको सबसे पहले यह निरीक्षण करना है कि कौन से बच्चे अपंग/अक्षम हैं। कई बार अभिभावक समझ ही नहीं पाते की उनका बच्चा अपंग है। स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने वाली अपगंता जैसे नेत्रहीनता, अत्याधिक बहरापन अथवा किसी अंग का न होना तो फौरन नजर आ जाता है। लेकिन कई अपंगताएँ काफी समय तक पकड़ में नहीं आतीं और इसका परिणाम यह होता है कि वह बहुमूल्य समय बीत जाता है जिस दौरान अपंगता को विशेषज्ञों की मदद से बिगड़ने से बचाया जा सकता था या उसका सामना करने में बच्चे की मदद की जा सकती है।

उदाहरण के तौर पर एक बच्चा जो बधिर है, वातावरण में सुनाई देने वाली ऊंची आवाजों को सुन पाएगा। शायद वह ऊँची आवाज में चल रहे वार्तालाप को समझ भी ले। अतः अभिभावक शायद यह समझ न पाएं कि उसे सुनने में कठिनाई है। परन्तु वह काफी वार्तालाप सुन नहीं पाएगा, जिसमें फुसफुसाना और पार्श्व से आने वाली आवाजें भी शामिल हैं।

इनके सम्भावित परिणाम निम्नलिखित हो सकते हैं इससे संकल्पनाओं को सीखने में भी विलंब हो सकता है, जिसकी वजह से कक्षा में उसका कार्य निष्पादन औसत से कम हो सकता है। बार–बार अल्प कार्य निष्पादन के कारण उस पर मंदबुद्धि का लेबल भी लग सकता है। यदि इस बच्चे की अपंगता को समय पर ही पहचान लिया जाता और उसे श्रवण में सहायक उपकरण दे दिए जाते, तो ऐसे नकारात्मक परिणाम न होते?

इसी प्रकार से यदि नेत्रहीन बच्चे शीघ्र ही पहचान लिए जाते हैं। जबकि वे बच्चे जिनकी दृष्टि आंशिक रूप से खराब है, उन्हें पहचानने में बहुत समय लग सकता है।

सामान्यतः ऐसे सूचक होते है जिनसे पता लग जाता है कि बच्चे को कोई समस्या है, किन्तु अज्ञानता के कारण, कई अभिभावक इन सूचकों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते। बच्चे की अपंगता न पहचान पाना दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अभिभावक अपंगता को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। यह चकित लगने वाला तथ्य अवश्य लग सकता है, लेकिन यह एक आम प्रतिक्रिया है। अभिभावकों को यह संदेह हो सकता है कि बच्चा पूरी तरह से ठीक नहीं है। लेकिन वे इस बात को स्वीकार नहीं करते और यह आशा करते है कि अपंगता धीरे–धीरे अपने आप ही गायब हो जाएगी। किन्तु ऐसा कभी नहीं होता और स्थिति बद से बदतर हो जाती है। अभिभावकों को बच्चे की अपंगता के बारे में बताना आपका कर्तव्य है। निश्चित रूप से यह सब आपको बड़ी संवेदनशीलता के साथ करना होगा। इस खण्ड की अगली इकाइयों तथा अगले खण्ड में आप कुछ अपंगताओं से सम्बन्धित लक्षणों के बारे में पढ़ेंगे और ये भी पढ़ेंगे कि अभिभावकों को यह पता चलने के बाद कि उनके बच्चे को कोई समस्या है, वे इस समस्या का सामना करने में किस प्रकार मदद कर सकते हैं।

बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाना

यद्यपि यह उस व्यक्ति का कार्य है जिसे अपंग बच्चों के साथ काम करने की विशेषज्ञता प्राप्त हो। आपको यह ध्यान रखना है कि बच्चे को इस प्रकार के विशेषज्ञ से मदद मिलने में काफी समय लग सकता है। इस अंतराल में आपको इस बच्चे के लिए उसकी योग्यताओं और कमियों के आधार पर अपनी शिक्षा नीति को भी बदलने की आवश्यकता होगी।

अभिभावकों के साथ संपर्क रखना

जैसा कि हमने पहले कहा है कि अभिभावकों को बच्चे की अपंगताओं के बारे में सूचित करने का काम आपको करना पड़ सकता है। यह संवेदनशील मामला है और इसमें बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए। अभिभावक अलग–अलग तरीके से प्रतिक्रिया जाहिर करेंगे और यह आप पर निर्भर करेगा कि अभिभावक बच्चे की अपंगता को कैसे स्वीकार करते हैं।

अभिभावकों के साथ अंतक्रिया यहीं नहीं समाप्त होती। एक अपंग बच्चे की मदद करना एक अकेले व्यक्ति का कार्य नहीं, यह सामूहिक कार्य है। बच्चे को, परिवार को और आपको आपसी तालमेल के साथ बच्चे के हित के लिए काम करना होगाा। आपको अभिभावकों से नियमित रूप से संपर्क करना होगा ताकि बच्चे के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें। माता–पिता के साथ मिलकर आपको बच्चे की अक्षमता का सामना करने के लिए नीतियां बनानी होंगी।

बच्चे में आत्म विश्वास जागृत करना

आपकी शाला से निकलने के बाद बच्चे को इस दुनिया में जीवित रहने के लिए बहुत विरोधाभासी और प्रतिकूल स्थितियों का सामना करना पड़ेगा। परिस्थितियाँ उसके पक्ष में हो भी सकती हैं और नहीं भी। बालिका उन चुनौतियों का सामना किस प्रकार करती है यह उसके प्रारंभिक वर्षो में पड़ी नींव पर निर्भर करता है। बालिका में विश्वास की भावना पैदा करें उसमें स्वयं और लोगों के प्रति आत्मविश्वास बढ़ाएं और उनकी स्मरण शक्ति बढ़ाएं। एक अक्षम बच्चे के साथ काम करने में बहुत धैर्य, दृढ़ निश्चय और प्रेम की आवश्यकता होती है। आप में यह योग्यताएं होनी चाहिए।

कुछ प्रश्न

1. पाठशाला में तथा उसके बाहर अनुकूलन और भेद–भाव रहित वातावरण को प्रेरित करने में आप से किन–किन भूमिकाओं की अपेक्षा की जा सकती हैं। एक उपयुक्त सूची प्रस्तुत कीजिए?

2. परिवार के सदस्यों का रवैया क्या विशिष्ट बच्चे की स्वयं के बारे में धारणा को प्रभावित कर करता है। तर्क सहित उत्तर दें।

3. अपंगता केवल आंशिक होती है, बाकी हर लिहाज में व्यक्ति हर प्रकार से सामान्य होता है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं। तर्क सहित उत्तर दें।

4. आपके आस–पास ऐसे विशेष आवश्यकता वाले व्यक्ति देखे हैं जो सामान्य व्यक्तियों की तरह ही जीवन यापन कर पा रहे है इन व्यक्तियों की विशिष्टताओं को लिखिए?

सारांश

इस इकाई में आपको 'विशिष्ट बच्चे एवं विशेष आवश्यकताओं' जैसे शब्दों से परिचित कराया गया है। सामान्य कार्यशीलता में छः क्षेत्र बहुत निर्णायक हैं। ये है–दृष्टि, श्रवण शक्ति, गतिशीलता, बुद्धिमत्ता, सम्प्रेषण तथा सामाजिक–भावनात्मक संबंध। वे बच्चे जो इनमें से किसी एक या एक से ज्यादा क्षेत्रों में कठिनाइयों का सामना करते हैं, 'विशेष बच्चे होते हैं।' यह कठिनाईयां उनके समाज तथा विद्याालय में ठीक प्रकार से सामंजस्य स्थापित करने में और उनकी कार्यकुशलता में बाधा डालती हैं।

इन बच्चों की अन्य सामान्य बच्चों के समान आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ विशेष आवश्यकताएं होती हैं। 'क्षति', 'अपंगता' और अक्षमता शब्द विशिष्ट बच्चों के संदर्भ में अक्सर प्रयोग किए जाते हैं। प्रत्येक शब्द का विशेष अर्थ होता है और उनका उपयुक्त प्रयोग किया जाना चाहिए। 'क्षति का आशय खराब या बीमार ऊतक या उसके भाग से है। अपंगता से शरीर या अंग के किसी विशेष भाग के कार्यशीलता में कमी होने से है।

अक्षमता से आशय अपंगता के प्रभाव से है। कोई क्षति, अपंगता का रूप भी ले सकती है और नहीं भी। अपंगता से अक्षमता पैदा हो सकती है और नहीं भी। एक अपंग व्यक्ति कुछ क्षेत्रों/परिस्थितियों में अक्षम हो सकता है सभी में नहीं।

जबकि अपंग बच्चे या वयस्क सामान्य बच्चों या व्यक्तियों से कुछ प्रकार से अलग होते हैं। यह भी ध्यान में रखना उतना ही महत्वपूर्ण है कि कई क्षेत्रों में विशिष्ट बच्चे अपनी उम्र के अन्य बच्चों जैसे ही होते हैं। ध्यान रखने की बात यह है कि अपंगता केवल आंशिक होती है, व्यक्ति बाकी सभी मायनों में सामान्य होता है। हमें अपंगता को व्यक्ति के वर्तमान एवं भावी परिस्थितियों के संदर्भ में देखना चाहिए।

अपंगता के स्पष्ट शारीरिक परिणाम होते ही हैं। इसके अलावा अपंगता व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से भी प्रभावित करती है। एक विशिष्ट बालिका अपने बारे में क्या सोचती है, यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि अन्य महत्वपूर्ण लोग जैसे—अभिभावक, सहपाठी और भाई—बहन उसके बारे में क्या सोचते हैं और उसके प्रति कैसा व्यवहार करते हैं। बालिका के अपने बारे में विचार काफी हद तक निर्धारित करते हैं कि बालिका अपनी अक्षमताओं से पैदा हुई बाधाओं को दूर कर पाएगी कि नहीं और किस हद तक स्व—योग्यता और आत्मविश्वास की भावनाओं को विकसित कर पाएगी।

दुर्भाग्यवश हममें से अनेक लोग अपंगताओं के प्रति गलत धाराणाएं रखते हैं जो कि नकारात्मक दृष्टिकोण और भावनाओं को जन्म देती है। अंधविश्वास और भय आम प्रतिक्रियाएँ हैं। ऐसे लोग सोचते है कि वे व्यक्ति जिनका शरीर सामान्य नहीं है उनका दिमाग भी सामान्य नहीं होता। कुछ लोग अपंगों का मजाक उड़ाते हैं, अन्य घृणा करते हैं, कुछ दया महसूस करते हैं और कुछ अपंगों की स्थिति में आकुल हो जाते हैं। यह कहना आवश्यक है कि यह सब दृष्टिकोण हमें अपंगों के प्रति कुछ सकारात्मक करने से रोकते हैं।

विशिष्ट बच्चों के प्रति सहानुभूति का बोध होना आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति जिसका ऐसा दृष्टिकोण हो वह यह मानता है कि जिस प्रकार सामान्य बच्चे के अपने गुण एवं दोष होते हैं, उसी प्रकार अपंग बच्चे के भी होते हैं। अपंग बच्चा हर क्षेत्र में सफल हो सकता है यदि वह प्रयास करे और उसकी मदद की जाए।

कुछ प्रश्न

• यदि आपके कक्षा में कोई अपंग बच्चा है तो क्या आप कक्षा के लिये योजना बनाते समय इस बात का ख्याल रखते है कि ये परिस्थितियाँ उस अपंग बच्चे के विकास में सहायक है या नहीं।

टिप्पणियाँ

1) ये क्षेत्र हैं— दृष्टि, श्रवण शक्ति, गतिशीलता, सम्पेषण, बुद्धिमता तथा सामाजिक भावनात्मक संबंध।

2) विशिष्ट बच्चे वे हैं जो कार्यशीलता के एक या एक से अधिक क्षेत्र में कठिनाई महसूस करते हैं। कठिनाई के कारण इन बच्चों की अन्य सामान्य बच्चों के समान आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ विशेष आवश्यकताएँ भी होती हैं। अपंगता के कारण उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने में और अपनी संपूर्ण क्षमताओं को विकसित करने के लिए उन्हें विशेष अथवा अतिरिक्त सहायता कि आवश्यकता होती है।

उत्तर— पृष्ठ 217

(1) क) असहमत यदि एक अंग या ऊतक की क्षति उस अंग की कार्यशीलता में कोई बाधा नहीं लाती तो वह क्षति अपंगता का रूप नहीं लेती।

ख) असहमत। यदि अपंगता किसी व्यक्ति की भौतिक और सामाजिक परिवेश के साथ अंतः क्रिया में बाधा नहीं डालती किंतु वह व्यक्ति को कुछ कार्य करने में बाधा डालती है। अतः व्यक्ति उन क्षेत्रों में अक्षम हो सकता है। तथापि अन्य क्षेत्रों में अपंगता यदि व्यक्ति की कार्यशीलता को प्रभावित नहीं करती तो वह उन क्षेत्रों में अक्षम नहीं है।

ग) सहमत। इस इकाई में वर्णित अपगंताओं और क्षति से यद्यपि हम प्रभावित ना हों तो भी हमारा दृष्टिकोण और आचरण हमें कुछ परिस्थितियों में अक्षम बना सकता है। कुछ कौशलों का न होना भी हमें कुछ परिस्थितियों में अक्षम बनाता है।

घ) सहमत। बच्चे बहुत सी रूढ़िबद्ध अवधारणाएं एवं भावनाएं वयस्कों के व्यवहार से अर्जित करते हैं।

ड) असहमत। हममें से अधिकांश लोग यह मान्यता रखते हैं, हालाकि यह बिल्कुल निराधार मान्यता है।

च) सहमत। किसी व्यक्ति की कार्यशीलता का स्तर उसकी क्षमताओं (जो वंशानुगत हैं) तथा उसके अनुभवों की श्रेणी द्वारा निर्धारित होते हैं। यद्यपि हम किसी विशिष्ट बच्चे की क्षमताओं तथा पिछले अनुभवों को प्रभावित नहीं कर सकते। फिर भी हम उसे वर्तमान तथा भावी संदर्भ में अनुकूल अनुभव प्रदान कर सकते हैं ताकि वह बच्चा वर्तमान क्षमताओं को उभार सके।

(2) क) क्षति से अभिप्राय रोगयुक्त या खराब ऊतक/अंग अथवा उसके किसी भाग से है।

ख) अपंगता से अभिप्राय शरीर के किसी भाग का न होना तथा किसी भाग या अंग की क्रियाशीलता में कमी होना है।

ग) अक्षमता से अभिप्राय क्षति या अपंगता से है। यदि कोई अपंगता उस व्यक्ति द्वारा उसके परिवेश में सामंजस्य स्थापित कर पाने में बाधक होती है तो वह अक्षमता को जन्म देती है।

उत्तर– पृष्ठ 226

2. जी हाँ। किसी बच्चे/व्यक्ति की स्व–संकल्पना का विकास उसके जीवन के महत्वपूर्ण लोगों से प्राप्त हुई प्रतिपुष्टि पर आधारित होता है। बच्चे के जीवन में उसके परिवार के सदस्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि वे यह सोचते हैं कि विशिष्ट बच्चा उन पर एक बोझ है, निष्क्रिय है कुछ भी सीख पाने में अक्षम है, उस पर शर्म महसूस करते हैं या उस पर व्यंग्य करते हैं, तब बच्चा अपने बारे में नकारात्मक भावनाएँ पालने लगता है। दूसरी ओर यदि वे बच्चे को प्रोत्साहित करते हैं, उसके प्रयासों की सराहना करते हैं, तब बच्चे में आत्मविश्वास तथा योग्यता की भावना उत्पन्न होती है।

3. जी हाँ! अपंगता क्रियाशीलता के कुछ क्षेत्रों में कठिनाई पैदा करती है। अन्य क्षेत्रों में बच्चा/वयस्क अन्य लोगों की भाँति कार्य कर सकता है। इस उत्तर का उपयुक्त उत्तर देते हुए विस्तार से वर्णन करें।

मानसिक मंदता

सामान्य परिचय

''विशिष्ट बच्चों को समझना'', में आपने मनुष्य के सामान्य कार्यों को करने में शारीरिक क्रियाओं के महत्व के विषय में पढ़ा था। इन कार्यो में से एक कार्य जो शामिल था, वह था– मानसिक रूप से काम कर पाना। यहाँ हम उन बच्चों/व्यक्तियों के विषय में पढ़ेंगे जिनकी बौद्धिक रूप से कार्य कर पाने की क्षमता सामान्य से निम्न होती है और इसी कारण उनकी विशेष आवश्यकताएँ होती हैं।

एक 14 वर्ष की बालिका की कल्पना कीजिए। चलिए हम उसका नाम ममता रख लेते हैं। वह अपने माता–पिता के साथ रहती है। उसके दो भाई हैं और दोनों ही उससे छोटे हैं। ममता स्कूल जाती है, किन्तु वह अपनी आयु के अन्य बच्चों की तरह नौवीं कक्षा में न होकर, तीसरी कक्षा में ही है। सात वर्ष की होने तक भी वह स्कूल नहीं जा पाई थी। उसके बाद उसे तीसरी कक्षा तक पहुँचने में छह वर्ष लगे। ममता ढाई साल की उम्र तक नहीं चल पाई थी और पाँच वर्ष की उम्र तक वह ज्यादा बोल भी नहीं पाती थी। उसकी माँ कहती है

कि सामान्य दैनिक कार्यों जैसे भोजन करने, हाथ धोने, कपड़े पहनने, जूते पहनने आदि में भी उसे बारह वर्ष की आयु तक ममता की सहायता करनी पड़ती थी। केवल पिछले दो वर्षों में ही ममता ने कुछ हद तक आत्मनिर्भर होना सीखा है। 14 वर्ष की आयु में ममता लगभग वह सब कार्य कर लेती है जो कि अधिकतर 6–7 साल तक के बच्चे कर लेते हैं। उसको स्कूल के वह पाठ समझ में आते हैं जोकि एक आठ वर्ष का सामान्य बच्चा समझ लेता है स्पष्ट ही है कि ममता की मानसिक क्षमताएँ उसकी आयु के अनुपात में विकसित नहीं हुई हैं। उसका बौद्धिक स्तर अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में काफी निम्न है। ममता अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में मानसिक रूप से अक्षम है, अर्थात् उसकी बौद्धिक कार्यशीलता सामान्य से कम है। ऐसी स्थिति मानसिक मन्दता कहलाती है।

टिप्पणीः इस इकाई में प्रयुक्त निम्नलिखित शब्द–मानसिक मंदता, मानसिक रूप से अक्षम, मंदबुद्धि, मानसिक अक्षमता–समान अर्थ रखते हैं।

मानसिक मंदता क्या है?

जब मानसिक (बौद्धिक) काम करने की क्षमता स्थायी रूप में कम होती हैं। तो उसे मानसिक अक्षमता या मानसिक मन्दता कहते हैं। मानसिक अक्षमता एक ऐसी स्थिति है जो कि मानसिक विकास और शारीरिक वृद्धि कि गति को धीमा कर देती है। यह कोई रोग या बीमारी नहीं है, वरन् मस्तिष्क के पूरी तरह से विकसित न हो पाने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न एक स्थिति है । वे बच्चे जिनमें यह स्थिति पाई जाती है, वे मन्दबुद्धि या मानसिक रूप से अक्षम बच्चे कहलाते हैं। हो सकता है कि बच्चे में मानसिक मन्दता जन्म से ही हो अथवा जन्म के समय या जन्म के बाद आए।

जिस प्रकार बच्चे के शरीर की वृद्धि और विकास उसकी आयु के अनुरूप होता है, उसी प्रकार मानसिक योग्यताएँ भी आयु के साथ–साथ बढ़ती जाती हैं। बच्चे की मानसिक योग्यताओं के विकास की दर उसकी ''मानसिक आयु'' (Mental age) कहलाती है। सामान्य बच्चों में, वर्षो के आधार पर आंकी गई आयु (जिसे कालानुक्रमिक आयु भी कहा जाता है) व मानसिक आयु साथ–साथ बढ़ती हैं। यदि यह कहा जाता है कि किसी बच्चे का मानसिक विकास सामान्य है, तो इसका अर्थ यह होता है कि उसकी मानसिक क्षमताएँ उसकी आयु के अधिकतर अन्य सामान्य बच्चों के स्तर की हैं। किन्तु एक मानसिक रूप से मन्द बच्चे में, मानसिक विकास की दर धीमी पड़ जाती है तथा उसकी मानसिक आयु उसकी कालानुक्रमिक आयु से कम रह जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालिका जो छह वर्ष की है, उसका मानसिक विकास तीन वर्ष के बच्चे के बराबर हो सकता है। मानसिक रूप से अक्षम बच्चों को चलना शुरू करने, खाना खा पाने, बोलना शुरू कर पाने व विकास के अन्य निर्धारित मानदंडों (Milestone) तक पहुंचने में सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक समय लगता है। संभव है कि मानसिक रूप से अक्षम बच्चा, जो कि पाँच वर्ष का है, एक तीन वर्ष के बच्चे अथवा दो वर्ष के बच्चे के समान या उससे भी कम आयु के बच्चे के समान, बात व व्यवहार करे। कुछ मंदबुद्धि बच्चों का विकास अन्य मंदबुद्धि बच्चों की तुलना में ज्यादा तेज गति से होता है। लेकिन निश्चय ही, सभी मानसिक रूप से मन्द बच्चों का विकास उसी आयु के सामान्य बच्चों की तुलना में धीरे होता है। यह जाँचने के लिए कि कोई बच्चा मानसिक रूप से मन्द है या नहीं, एक संकेत यह है कि कई क्षेत्रों में उस बच्चे का विकास विलम्ब से होगा। कई क्षेत्रों में उसका विकास उसकी आयु के आधार पर अपेक्षित विकास से धीरे होगा। कुछ क्षेत्र जो मंदबुद्धि की स्थिति में सामान्य रूप से प्रभावित होते हैं, वे निम्न प्रकार हैंः

1) सम्प्रेषण– मानसिक रूप से अक्षम बच्चे को भाषा और क्रिया, दोनों के माध्यम से संप्रेषण में कठिनाई होती है। वास्तव में, मानसिक रूप से मन्द बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में देर से बोलना सीखते हैं। उनका शब्द भण्डार कम होता है और उन्हें ठीक तरह शब्दों का उच्चारण करने में भी कठिनाई होती है। उनका उच्चारण अस्पष्ट हो सकता है और इसलिए, संभव है कि दूसरों को उनकी बात समझ न आए।

2) क्रियात्मक विकास– मानसिक रूप से मन्द बच्चों की स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक गतिविधियों में समन्वय का अभाव होता है। क्रियात्मक विकास के निर्धारित मानदंडों तक पहुँचने में सामान्य बच्चों की अपेक्षा विलंब हो सकता है।

3)स्वयं की देखभाल– मानसिक रूप से मन्द बच्चों को अपनी दैनिक आवश्यकताओं के कार्यो को करना सीखने में अधिक समय लगता है जैसे – स्वयं खाना खा पाना, नहाना, तैयार होना या शौचालय जाना आदि।

4)सामाजिक कौशल– मानसिक रूप से मन्द बच्चों को औरों के साथ अंतः क्रिया करने में कठिनाई होती हैं। उनमें अन्य बच्चों एवं बड़ों के साथ अंतःक्रिया करने के कौशल प्रशिक्षण तथा प्रयासों द्वारा विकसित किए जा सकते हैं।

5)आत्म निर्देश– मन्द बुद्धि बच्चों के कार्य उद्देश्य पूर्ण (purposeful) नहीं होते। वे बिना किसी कारण के कोई कार्य कर सकते हैं, जैसे बैठे–बैठे अपने आपको हिलाना शुरू कर सकते हैं या बिना किसी कारण कुछ करना प्रारम्भ कर सकते हैं।

6)स्वास्थ्य एवं सुरक्षा– मानसिक रूप से मंद बच्चों को वयस्क हो जाने पर भी अपने स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का ध्यान रखने के लिए औरों की सहायता की आवश्यकता होती है। कुछ मानसिक रूप से अक्षम मन्द व्यक्तियों को, असुरक्षित स्थानों पर अकेले छोड़ा ही नहीं जा सकता, भले ही वे वयस्क हो गये हों।

7)शैक्षिक कार्य– सामान्यतः जब बच्चे अपेक्षित आयु पर पढ़ना व लिखना नहीं सीख पाते, तो हम यह मानते हैं कि उनका मानसिक विकास उनकी आयु की तुलना में धीमा है। हो सकता है इनमें से कुछ अपनी मानसिक सीमाओं के कारण कभी भी स्कूल नहीं जा पाएँ, जबकि अन्य मंदबुद्धि बच्चे प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी करने में ही अपनी आयु के अन्य सामान्य बच्चों की तुलना में अधिक समय लगाएँ। मन्दबुद्धि कहलाए जाने वाले बच्चों में भी योग्यताओं की श्रेणियाँ या कोटियां तथा स्तर होते हैं।

8)आराम एवं काम– मानसिक रूप से मन्द बच्चे अधिकतर मनोरंजनात्मक सुविधाओं एवं आनन्द प्राप्त करने के अन्य अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते हैं। उनमें किसी काम को स्वतन्त्र रूप से प्रारम्भ कर पाने के लिए पहल करने का भी अभाव होता है। वे एकाग्रचित होकर किसी काम को नहीं कर पाते और इसलिए वे लापरवाह प्रतीत होते हैं। इसलिए उनको कुछ कार्य करने के लिए परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों या सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

उपरोक्त चर्चा में बताई गई मानसिक रूप से मन्द बच्चों की सीमाओं के बारे में पढ़ने के बाद हो सकता है आपको ऐसा लगे कि मानसिक रूप से मन्द बच्चे कुछ भी कर पाने योग्य नहीं होते। परन्तु यह धारणा गलत है। वे कई प्रकार से और कई क्षेत्रों में काफी सक्षम भी होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी मानसिक रूप से मन्द बच्चों को उपरोक्त वर्णित सभी क्षेत्रों में कठिनाइयाँ नहीं होंगीं। साथ ही, किसी क्षेत्र में विकास किस सीमा तक प्रभावित होगा, यह भी प्रत्येक बच्चे के संदर्भ में भिन्न –भिन्न होगा। यह बच्चे की मन्दता की दर पर निर्भर करेगा। मन्दता का स्तर बहुत कम भी हो सकता है और बहुत अधिक भी। वास्तव में मन्दता का यह स्तर काफी हद तक बच्चे की क्रियाशीलता तथा काम करने के स्तर को निर्धारित करता है। उपरोक्त वाक्य ''मानसिक रूप से मन्द बच्चों में भी योग्यताओं की श्रेणियाँ/कोटियां होती है'' का भी यही अर्थ है।

मानसिक मन्दता के स्तर

मोटे तौर पर, मन्दबुद्धि व्यक्तियों को उनकी बौद्धिक एवं सामाजिक क्रियाशीलता के आधार पर चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। मानसिक मन्दता–अल्प, मध्यम, गंभीर या अति गम्भीर स्तर की हो सकती है।

क) अल्प स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे की मानसिक योग्यताएँ उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित क्षमताओं के आधे से अधिक परन्तु तीन चौथाई से कम होतीं हैं, तो उसमें अल्प स्तर की मन्दता होती है। उदाहरणस्वरूप, दस वर्ष की बालिका में छह–सात वर्ष की बालिका के बराबर की मानसिक योग्यताएं एवं व्यवहार का होना अल्प मंदता है।

ख) मध्यम स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे का मानसिक विकास उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित विकास के एक चौथाई से अधिक परन्तु आधे से कम हो तो, उसमें मध्यम स्तर की मन्दता होती है। उदाहरणस्वरूप, एक 12 वर्ष के बच्चे में 4–5 वर्ष के बच्चे के स्तर की मानसिक योग्यताएँ होना।

ग) गंभीर स्तर की और अति गंभीर स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे का मानसिक विकास उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित विकास के एक चौथाई से भी कम हो, तो मन्दता गंभीर कहलाती है। इससे भी कम मानसिक विकास को अति गम्भीर मन्दता कहते हैं।

परम्परागत, किसी व्यक्ति की बुद्धिमता या बौद्धिक कार्य–क्षमता का स्तर

मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों (Standardised intelligence tests) के आधार पर मापा जाता है, जिससे कि किसी व्यक्ति की बुद्धिलब्धि (Intelligence Quotient; I.Q; आई. क्यू.) का पता लगता है। आई. क्यू. के आधार पर किसी व्यक्ति को ''प्रतिभावान'', ''सामान्य बुद्धिमता वाला'', ''अल्प'', ''मध्यम'', ''गम्भीर' या ''अति गम्भीर मन्दता'' स्तर वाला कहा जाता है। इन परीक्षणों का एक व्यक्ति कितनी अच्छी तरह निष्पादित कर पाता है, इसी आधार पर उसकी मानसिक मन्दता की कोटि का अनुमान लगाया जाता है। ये परीक्षण मुख्य रूप से पश्चिमी देशों द्वारा विकसित किए गये हैं। इनको भारत में प्रयोग करने हेतु, कुछ भारतीय विद्वानों ने इन परीक्षणों के प्रश्नों में कुछ रूपांतरण किया है, ताकि ये परीक्षण भारत के संदर्भ में अधिक उपयुक्त बन सकें।

फिर भी, इन परीक्षणों के प्रयोग पर काफी प्रतिवाद है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि इस प्रकार बुद्धि की जाँच करना किसी व्यक्ति के बौद्धिक कार्यशीलता का मूल्यांकन करने का सही तरीका नहीं है। उनका कहना है कि इनमें से कई परीक्षणों में ऐसे प्रश्न हैं जो कि शहरी क्षेत्रों में रहने वाले ऐसे व्यक्तियों के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं जिन्हें स्कूल जाने का अवसर मिला है और इस कारण वे इन परीक्षणों के प्रश्नों का उत्तर सरलता से दे सकते हैं। इस प्रकार एक ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाला व्यक्ति जो कि उतना ही बुद्धिमान है जितना कि शहर में रहने वाला हमउम्र हो सकता है वह शहरी व्यक्ति की तुलना में वह इन परीक्षणों में सम्मिलित विशेष प्रकार के प्रश्नों का उत्तर न दे पाए और इस कारण उसे कम अंक प्राप्त हों।

इसलिए, ये विशेषज्ञ यह तर्क देते हैं चूंकि बुद्धिमत्ता का तात्पर्य इस बात से है कि ''कोई व्यक्ति अपने वातावरण के साथ किस हद तक सामंजस्य स्थापित कर पाता है'', ''अतः यह अधिक उपयुक्त होगा कि किसी बच्चे या व्यक्ति की बुद्धिमत्ता का अनुमान उसके दिन–प्रतिदिन की कार्यशीलता, व्यवहार, व्यक्तियों से संबंध स्थापित कर पाने की उसकी क्षमता, उसके संप्रेषण संबंधी कौशल तथा उपयुक्त आयु पर विकास के मानदंडों के प्राप्त होने या न होने के आधार पर लगाया जाए।

इस इकाई में मानसिक अक्षमता की चर्चा करते समय तथा मन्द बुद्धि वाले बच्चों को पहचानने की चर्चा करते समय यही उपर्युक्त दृष्टिकोण अपनाया गया है।

मानसिक मन्दता के कारण

यहां एक प्रश्न उठ सकता है कि बच्चे जन्म से ही मंदबुद्धि होते हैं या फिर बड़े होते–होते उनमें मन्दता आती जाती है। इस भाग में हम उन कुछ कारकों के संबंध में पढ़ेंगे जो मानसिक अक्षमता का कारण बन जाते

हैं। इस चर्चा से हमें यह समझने में भी सहायता मिलेगी कि किस प्रकार मन्दता से बचा जा सकता है या उसे नियंत्रित किया जा सकता है।

मोटे तौर से, मानसिक मन्दता के दो प्रकार के कारण होते हैं। एक प्रकार की मानसिक मंदता तो वह है जिसे बच्चे माता– पिता से आनुवांशिक रूप में प्राप्त करते हैं और इसे आनुवांशिक कारण कहते हैं। दूसरे प्रकार के कारण परिवेश के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

(क) आनुवांशिक कारक (Genetic Factors)

आपने पढ़ा है कि गर्भधारण के समय 'जीन्स' (genes) माता–पिता से सन्तान में आ जाते है 'जीन्स' में ही विकास के कोड (Code) निहित होते हैं, जिसके कारण माँ के गर्भ में एक निशेचित अंडाणु एक बच्चे के रूप में विकसित होता है।

यह संभव है कि माता अथवा पिता या माता–पिता दोनों, के 'जीन्स' के माध्यम से नवजात में कुछ दोष भी संचरित हो जाएँ। इसका अर्थ है कि माता–पिता दोनों में या माता अथवा पिता में से किसी एक में ऐसे दोषपूर्ण 'जीन' हैं जिसके कारण मन्दता आई है। अतः यदि माता या पिता, अथवा माता–पिता दोनों में, दोषपूर्ण 'जीन' हैं जिसके कारण माँ के गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे के मस्तिष्क को क्षति पहुँचती है, तो स्थिति को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। सौभाग्यवश, ऐसे माता–पिता की संख्या, जिनमें ऐसे दोषपूर्ण 'जीन' हैं, बहुत ही कम होते हैं। वास्तव में वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा इस बात का पता लगाना संभव हो गया है कि माता–पिता में ऐसे दोषपूर्ण 'जीन' है या नहीं। अतः इस प्रकार के कारणों से होने वाली मानसिक मन्दता से बचा जा सकता है। यदि माता–पिता में से किसी एक के परिवार (चाहे वह पति पक्ष हो या पत्नी पक्ष का) में भी मानसिक मन्दता का इतिहास हो, तो उन्हें गर्भधारण से पहले ही आनुवंशिक–परामर्श (genetic counselling) लेना चाहिए। इससे दम्पत्ति को पता लग सकेगा कि सामान्य बच्चे को जन्म देने की कितनी संभावना है।

एक अन्य संभावना यह है कि गर्भधारण के समय कोशिका विभाजन या गुणन की प्रक्रिया में विकार आ गया हो और इस प्रकार गर्भ धारण किए गए बच्चे में कोई दोष आ गया हो, चाहे माता–पिता दोनों में से किसी के भी 'जीन्स' में इस प्रकार का दोष न रहा हो। इस प्रकार की स्थिति का एक उदाहरण '' डाउन'' सिंड्रोम (Down' syndrome) है। इस स्थिति में बच्चे में गुणसूत्रों (chromosome) की संख्या संबंधी दोष आ जाता है (आवश्यकता से एक अधिक गुणसूत्र होता है), जिसके परिणामस्वरूप बच्चे के चेहरे की बनावट विशेष प्रकार की होती है, जिससे कि बच्चे को देखते ही पहचाना जा सकता है कि वह डाउन सिंड्रोम वाला बच्चा है। इस स्थिति के कारण मानसिक मन्दता भी आ जाती है। बच्चे की आँखें तिरछी, नाक छोटी व चपटी, गोल सिर व चेहरा छोटा किन्तु चौड़ी ऊंगलियाँ व हथेली पर खुरदरी त्वचा होती है।

(ख) परिवेश संबधी कारक

जैसा कि आप जानते हैं, परिवेश में हमारा तात्पर्य उन सब व्यक्तियों, घटनाओं, अनुभवों और वस्तुओं से है जो बच्चे को तबसे प्रभावित करना प्रारम्भ कर देतीं हैं जब बच्चा, माँ के गर्भ में भ्रूण के रूप में होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि गर्भ धारण के दौरान माता का स्वास्थ्य और उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति, गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे को प्रभावित करती है। जन्म लेने के पश्चात, भौतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जगत बच्चे का परिवेश निर्मित करते हैं। इस प्रकार जन्म से पूर्व, जन्म के दौरान तथा जन्मोत्तर के परिवेश संबंधी कारक, बच्चे की मानसिक अक्षमता का कारण बन सकते हैं।

जन्मपूर्व कारक

आपने पढ़ा है कि गर्भवती महिला को पौष्टिक भोजन खाना चाहिए, स्वस्थ रहना चाहिए तथा मानसिक तनाव से बचना चाहिए। उसे पर्याप्त विश्राम भी करना चाहिए। इसका कारण यह है कि माँ के गर्भ में बढ़ रहे शिशु का विकास उसके भोजन, उसके क्रियाकलापों व उसके स्वास्थ्य से प्रभावित होता है।

जहाँ कुछ द्रव्य पदार्थ माता तथा गर्भस्थ शिशु दोनों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, वहीं कुछ अन्य द्रव्य/पदार्थ माता को प्रभावित न करके, केवल गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करते हैं। इनका प्रभाव इतना तीव्र भी हो सकता है कि गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँच जाए और, परिणामस्वरूप बच्चे में मानसिक मन्दता आ जाए। माता के पौष्टिक भोजन के अभाव से, डाक्टर के परामर्श के बिना औषधियों का प्रयोग करने से, माता द्वारा मद्यपान या धूम्रपान करने से, एक्स–रे कराने से, विशेष रूप से गर्भधारण के पहले तीन महीनों के दौरान, व माता को किसी प्रकार का भावात्मक धक्का लगने से अथवा दुर्घटना के कारण, गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँच सकती है।

यदि माता को कोई संक्रामक रोग हो जाता है जैसे–जर्मन खसरा (रूबैला) या सिफलिस, तो उससे भी बच्चे का मस्तिष्क प्रभावित हो सकता है तथा उसको क्षति पहुँच सकती है। यदि माता को मधुमेह (diabetes) या हार्मोन विकार संबंधी किसी प्रकार की शिकायत है, तो उससे भी गर्भस्थ शिशु में मानसिक मन्दता आ सकती है।

निरोधक उपाय

1) सबसे अच्छा यह होगा कि माता 20 से 35 वर्ष की आयु में बच्चों को जन्म दे। इस दौरान स्वस्थ बच्चे को जन्म देने की संभावना अधिक होती है जीवन के इस चरण में उसका प्रजनन तंत्र पूर्णतः विकसित होता है तथा गर्भ में आए नए जीव के विकास को ग्रहण कर लेता है।

2) आपने शायद कभी यह सोचा हो कि गर्भवती महिला को परिवार के सदस्य कोई सदमा क्यों नहीं पहुंचने देते या कोई बुरी खबर क्यों नहीं देना चाहते तथा क्यों परिवार के बड़े–बूढ़े गर्भवती महिला को प्रसन्नचित्त व शान्त (तनावरहित) रहने का परामर्श देते हैं। इसका एक वैज्ञानिक कारण है– बहुत से तत्व मां के रक्त से गर्भस्थ शिशु के रक्त में जा सकते हैं। जिसमें माँ के हार्मोन भी शामिल हैं। माता की भावात्मक स्थिति (प्रसन्नता या व्यग्रता) से उसके हार्मोनों के स्तर में भी परिवर्तन आता है। यदि वह प्रसन्न होती है, तो स्तर में अच्छाई के लिए परिवर्तन आता है; किन्तु यदि वह क्रोधित या परेशान है, तो उसका हार्मोनों के स्तर परहानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। बहुत ही व्यग्र माताओं में समय से पूर्व ही शिशु को जन्म देने, जन्म के समय कठिनाई या जन्म उपरान्त समस्याएँ होने की संभावना अधिक रहती है और यह सभी स्थितियाँ बच्चे के लिए बहुत जोखिमपूर्ण होतीं हैं। कुछ मामलों में इनके परिणामस्वरूप, नवजात शिशु के मस्तिष्क को भी क्षति पहुँच सकती है।

प्रसवकालीन कारक (जन्म के दौरान के कारक)

अधिकांश महिलाएँ सामान्य रूप से बच्चे को जन्म देतीं हैं, चाहे वे घर पर हों या अस्पताल में। फिर भी, बहुत–सी ऐसी महिलाएँ भी हैं जिनको बच्चे को जन्म देने में बहुत कठिनाई होती है और कठिनाई पूर्ण प्रसव के परिणामस्वरूप भी शिशु में मानसिक मन्दता आ सकती है। यदि माता 24 घंटों से अधिक प्रसव पीड़ा में रहती है और बच्चा पैदा नहीं होता, यदि प्रसव के दौरान बच्चे का सिर ज्यादा दब जाए, यदि शिशु के सिर का आकार बहुत बड़ा हो, यदि नाभि– रज्जु बच्चे के गले के चारों तरफ लिपट गई हो, यदि प्रसव जल्दी करने के लिए दवाइयों का प्रयोग किया गया है, यदि शिशु को जन्म देने के लिए औजारों का प्रयोग किया हो और उनके प्रयोग से शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँची हो, यदि शिशु जन्म के फौरन बाद रोया नहीं, यदि शिशु का जन्म समय पूर्व ही हो गया हो (यानी गर्भावस्था के 36 सप्ताह से पहले)–तो इन सबसे शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुंचने की संभावना हो सकती है। इस प्रकार कि परिस्थितियों में, यदि विशेष ध्यान नहीं रखा गया हो, तो मस्तिष्क की क्षति संभव है, जिसका एक प्रभाव शिशु में मानसिक मन्दता हो सकती है।

इसलिए, यह बहुत आवश्यक है कि प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही प्रसव कराया जाए, चाहे जन्म घर पर हो या अस्पताल में, जिससे कि यदि कोई आकस्मिकता आए तो उसका सामना किया जा सके।

जन्मोपरान्त कारक

शिशु के सामान्य रूप से जन्म लेने के बाद भी परिवेश संबंधी कारकों से बाल्यावस्था में बच्चे में मानसिक मन्दता आ सकती है। प्रथम कुछ वर्षो में कुपोषण–जिसमें बालिका गंभीर प्रोटीन–कैलोरी की कमियों से ग्रस्त होती है और आहार में अनिवार्य विटामिनों का अभाव रहता है, के कारण मन्दता सहित कई गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। संक्रमण, जिनसे मस्तिष्क ज्वर हो जाता है– जैसे तंत्रिका शोध (मैनिनजाइटिस) या मस्तिष्क शोथ (encephalitis)–मस्तिष्क को क्षति पहुँचती हैं। गिरने या पीटे जाने के परिणामस्वरूप सिर को लगी चोट भी बहुत खतरनाक सिद्ध होती है। अतः उससे शिशु को बचाना चाहिए। तेज ज्वर के साथ दौरे पड़ना, बहुत अधिक दस्त तथा शरीर में पानी की कमी से भी मानसिक मन्दता आ सकती है।

निरोधक उपाय

1) ध्यान रखें कि छोटे बच्चे करवट लेते हुए बिस्तर या पालने से नीचे न गिरें। उन्हें सीढ़ियों आदि के पास अकेला न छोड़ें।

2) जन्म के समय से ही, शिशुओं को उनकी आयु के अनुरूप समुचित पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए। आहार में प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज आादि पौष्टिक तत्व सम्मिलित होने चाहिए। जब तक संभव हो, बच्चे को स्तनपान कराइए। तथापि, चौथे माह के उपरान्त स्तनपान के साथ–साथ पूरक आहार देना भी प्रारम्भ कर दीजिए।

3) बच्चों को संक्रामक रोगों से बचाव के टीके निर्धारित आयु पर अवश्य लगवाएं। फिर भी, यदि बच्चे को संक्रमण हो जाता है, तो तत्काल चिकित्सीय सहायता ली जानी चाहिए ताकि स्थिति को बिगड़ने से रोका जा सके।

4) यदि स्वास्थ्य व सफाई के सामान्य नियमों का पालन किया जाए, तो अधिकांश संक्रमणों से बचा जा सकता है।

5) यदि बच्चे को तेज ज्वर हो जाता है या दौरे पड़ते हैं, तो स्वास्थ्यकर्ता से परामर्श लें। बच्चे के हाथों, पैरों तथा माथे पर ठंडा गीला कपड़ा रखें।

बच्चों को कभी भी सिर पर नहीं मारना चाहिए क्योंकि इन प्रहारों से मस्तिष्क को क्षति पहुँच सकती है। वास्तव में, बच्चों को कभी भी मारना ही नहीं चाहिए।

कुछ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर लिखिए।

- जन्मोपरान्त कौन से ऐसे कारक हैं जिनके परिणामस्वरूप मानसिक मन्दता आ सकती है? इसकी रोकथाम कैसे की जा सकती है?

वे कारण जिनसे बच्चों को मानसिक मन्दता हो सकती है उनमें से अधिकांश कारणों से बच्चों को बचाया जा सकता है।

मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के साथ कार्य करना

मानसिक रूप से अक्षम बच्चों की देखभाल करने तथा उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण देने संबंधी चर्चा हम दो संदर्भो में करेंगे। घर के संदर्भ में, जबकि माता–पिता को यह मालूम हो चुका हो कि बालिका में मानसिक मंदता है तथा प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षण केन्द्र के संदर्भ में, जब बालिका वहाँ जाना प्रारम्भ कर दे। दोनों स्थितियों में आपकी भूमिका महत्वपूर्ण होगी।

कुछ सिद्धांत

हम सबसे पहले कुछ ऐसे पहलुओं का वर्णन करेंगे जिन्हें आपको मन्दबुद्धि बच्चों के साथ काम करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। ये सिद्धांत घर पर बच्चे के साथ कार्य करते हुए तथा शाला में– दोनों स्थितियों में – समान रूप से लागू होते हैं।

पद्धति (विधि)	व्याख्या
1. जैसे ही यह पता लगे कि बालिका मानसिक रूप से मन्द है, तो जल्दी से जल्दी उसे प्रेरणा तथा प्रेरक अनुभव, प्रशिक्षण तथा शिक्षा प्रदान कराना प्रारम्भ कर दीजिए।	1. प्रारम्भिक वर्षो में, बालिका की सभी क्षेत्रों में विकास की गति तीव्र होती है और वह सकारात्मक अनुभवों तथा नकारात्मक अनुभवों के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। इस प्रारंभिक वर्षो में यदि समय को खो दिया, तो बाद में इसकी पूर्ति करना संभव नहीं हो पाता।
2. जब भी बालिका कोई काम ठीक से करे, तो उसकी प्रशंसा कीजिए, उसे गोद में लीजिए या कोई पुरस्कार दीजिए। उसके छोटे से छोटे प्रयास की भी प्रशंसा की जानी चाहिए। पुरस्कार के रूप में टॉफी न दें, तो बेहतर होगा।	2. प्रशंसा से बच्चे को खुशी मिलती है। काम ठीक न कर पाने पर डांट पड़ने की अपेक्षा, काम ठीक होने पर मिलने वाली प्रशंसा बच्चे को और बेहतर काम करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यदि वह कोई कार्य करने में सफल न हो, तो उसे फिर से कोशिश करने के लिए प्रोत्साहित कीजिए।
3 सीखने की प्रक्रिया को मनोरंजक बनाइए। यह प्रयास कीजिए कि सीखने की क्रिया में बालिका को आनन्द व मजा आए। खेल–खेल में तथा खेल पूर्ण ढंग से बच्चों को सिखाना सबसे अच्छा तरीका है। एक क्रिया को तब तक करें, जब तक कि बच्चे को उससे आनन्द मिलता है व उसकी रूचि बनी रहती है। जब वह उसमें रूचि दिखाना बन्द कर दें, तो क्रिया को बदल दीजिए या कुछ समय के लिए उस क्रिया को स्थगित कर दीजिए।	3. बच्चे सबसे अच्छी तरह तब ही सीखते हैं जब उन्हें की जा रही क्रिया में आनन्द आता है।
4. बच्चे को केवल उतनी ही सहायता कीजिए जितनी की आवश्यकता हो। उसका सारा काम मत कीजिए । चाहे उसे स्वयं कार्य करने में आपकी अपेक्षा अधिक समय लगेगा, लेकिन जहाँ तक संभव हो, उसे कार्य अपने आप करने दीजिए। इससे बच्चे का आत्मबल बढ़ेगा । आपकी ऐसी नीति अपनाने से जब उसकी मदद के लिए कोई नहीं होगा, तब भी वह क्रियाएँ करने का प्रयास करेगी।	4. पूरा प्रोत्साहन व थोड़ी सहायता देना बच्चे को धीरे–धीरे स्वावलम्बी बनाने के लिए एक अच्छी नीति है।

5. बालिका को नियमित रूप से शिक्षा प्रदान कीजिए व प्रोत्साहित कीजिए।	5. मानसिक रूप से मन्द बच्चों को सीखने व समझने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।
6. क्रिया को कई बार दोहराइए।	6. उनकी स्मरण शक्ति भी कम होती है और वे एक दिन पहले सिखाई गई बात को भूल भी सकते हैं। यदि प्रशिक्षण व प्रेरणा नियमित नहीं हो तो बालिका पहले बताई गई बातें भूल जाएगी और आपको सब फिर से सिखाना पड़ेगा।
7. क्रिया को कई चरणों में विभक्त कर लीजिए और एक समय पर एक ही चरण सिखाइए। यह सिद्धांत किसी भी क्षेत्र की किसी भी क्रिया के दूसरे चरण की ओर तभी अग्रसर हों जब बच्चे ने पहला चरण अच्छी तरह से सीख लिया हो। जब बालिका दूसरा चरण सीख लें, तो पहले व दूसरे चरण को दोहराइए।	7. अधिकतर सभी बच्चे इस प्रकार ही सीखते हैं; लेकिन हम आमतौर पर किसी क्रिया को इतने चरणों के रूप में नहीं देखते क्योंकि सामान्य बच्चे जब जल्द ही क्रिया सीख लेते हैं और सभी चरणों को एक साथ आसानी से कर लेते है। चूँकि मन्द बुद्धि बच्चे बात को समझने में समय लेते हैं, इसलिए कुछ भी सीखने में उसके साथ प्रत्येक चरण पर अधिक समय लगाने की आवश्यकता होती है।
8. बालिका के साथ कार्य करते समय धैर्य रखिए। उसके साथ सीखने के लिए जबरदस्ती मत कीजिए। यदि बालिका आपके द्वारा बताया काम न कर पाए, तो क्रिया को थोड़ी देर के लिए छोड़ दिजिए और थोड़ी देर बाद फिर उसे शुरू कीजिए।एक ही दिन में किसी परिणाम की आशा मत कीजिए। प्रगति धीमी होने पर भी निराश मत होइए।	8. जब बालिका कोई कार्य नहीं कर पा रही हो तो उसकी हंसी मत उड़ाईये और उसे दण्ड मत दीजिए। उस काम को पूरा करने के लिए दबाव डालने से वह आत्मविश्वास खोने लगती है तथा हो सकता है, वह फिर से कोशिश करने में हिचकिचाहट महसूस करे। उस पर हँसने व उसका मज़ाक उड़ाने से उसमें अपने संबंध में हीन भावना आती है।
9. सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बालिका को यह अहसास व विश्वास दिलाइए कि उसे प्यार किया जाता है और सब लोग उसे चाहते हैं।	9. जब बच्चे ऐसे परिवेश में रहते है जहाँ वे भावात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करते है, तो उनका अनुकूलतम विकास होता है।

मानसिक मन्दता मानसिक रोग नहीं है

चर्चा के आगे बढ़ने से पहले यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि मानसिक मन्दता और मानसिक रोग में बहुत अन्तर हैं। आमतौर पर ऐसा पाया गया है कि मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति को मानसिक रोगी के रूप में देखा जाता है और उसे ''पागल'' कहकर पुकारा जाता है। ऐसा इसलिए हो जाता है क्योंकि, सरसरी तौर पर, मानसिक रूप से बीमार और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों के कुछ व्यवहार एक से प्रतीत होते हैं। किन्तु आपको इस संदर्भ में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है तथा अपने आसपास के लोगों के प्रति भी सतर्क रहने की जरूरत है, ताकि यदि वे बच्चे की मन्दता को गलत दृष्टिकोण से (यानी रोग में) देख रहें हैं, तो आप उन्हें उनकी गलती का अहसास दिला सकें।

मानसिक रूप से रोगी वयस्क बच्चे की बुद्धिमता का स्तर, मानसिक रूप से मन्द बच्चे वयस्क की अपेक्षा, सामान्य या उच्च कोटि का हो सकता है। तथापि, तनावपूर्ण अनुभवों या मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली बीमारी के कारण–उसमें कुछ अवांछनीय व्यवहार विकसित हो जाते हैं।

मानसिक रोग एक बीमारी है जो कि किसी भी आयु में, किसी को भी, हो सकती है। मानसिक रोग के कारण बच्चे वयस्क ऐसा व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं जिसमें वे लगातार लम्बी अवधि तक शरीर को आगे–पीछे

हिलाते रहते हैं (rocking behaviour) दीवार पर सिर मारते हैं और अपने को नुकसान पहुंचाने वाले अन्य व्यवहार कर सकते हैं। कुछ इस प्रकार के मानसिक रोग भी होते हैं जिनमें बच्चे वयस्क यह कल्पना करने लगते हैं, कि उन्हें अजीब आवाजें सुनाई दे रही हैं या कुछ दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आप उन्हें समझाने का चाहे कितना भी प्रयास करें कि ऐसा वास्तव में नहीं है, परन्तु वे आपकी बात का विश्वास नहीं करेंगे। कुछ अन्य मामलों में मानसिक रोग से ग्रस्त बच्चे वयस्क अपने आसपास के परिवेश से अपने आप को बिल्कुल अलग कर लेते हैं और अकेला व चुपचाप रहना पसंद करते हैं।

एक मन्दबुद्धि बालिका, विशेष रूप से वह जिसमें गंभीर या अति गम्भीर कोटि की मन्दता है, वह भी शरीर को आगे–पीछे हिलाने का व्यवहार प्रदर्शित कर सकती है या अपना सिर दीवार से मार सकती है, किन्तु वह निश्चित रूप से ऐसी कल्पना नहीं करती कि उसे आवजें सुनाई दे रही हैं या दृश्य दिखाई दे रहे हैं। न ही वह आमतौर पर स्वयं को लोगों से दूर कर लेती है। जब एक मानसिक रूप से मन्द बालिका असामान्य रूप से व्यवहार करती है, जो कि एक मानसिक रोगी के व्यवहार के समान ही लगता है, तो वह ऐसा इसलिए कर रही है क्योंकि उचित व्यवहार करने का तरीका वह सीख ही नहीं पायी है घर या स्कूल में उपयुक्त प्रशिक्षण द्वारा उसके ऐसे व्यवहार को कम किया जा सकता है व अधिकतर मामलों में ऐसे व्यवहार को समाप्त करने में भी उसकी सहायता की जा सकती है। किन्तु मानसिक रोगियों के संदर्भ में प्रशिक्षण द्वारा ऐसे व्यवहारों को सुधारना संभव नहीं है।

एक मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति को चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता पड़ती है, जिससे कि उसका रोग कम या बिल्कुल ठीक हो सकता है। दूसरी तरफ, मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति को मुख्य रूप से अपनी योग्यताओं को विकसित करने सुधारने के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कुछ मंदबुद्धि व्यक्तियों को थोड़े बहुत चिकित्सकीय इलाज की भी आवश्यकता हो सकती है, किन्तु कहने का मतलब यह है कि मानसिक मन्दता का चिकित्सा द्वारा उपचार नहीं किया जा सकता। मानसिक रूप से अक्षम बच्चे बड़े होने पर अन्य बच्चों की तरह सामान्य नहीं हो सकते। परन्तु उनको सीखने के लिए प्रेरित व प्रशिक्षित किया जा सकता है।

अब आप यह समझ सकते हैं कि यदि मन्दबुद्धि बालिका को मानसिक रोगी का लेबल लगा दिया जाए, तो माता–पिता शायद उसको शिक्षा देने व प्रशिक्षित करने का प्रयत्न ही नहीं करेंगे, क्योंकि उनको इस बात में विश्वास नहीं कि शिक्षा तथा प्रशिक्षण द्वारा उसमें सुधार लाया जा सकता है। यदि माता–पिता ऐसा दृष्टिकोण अपना लेते हैं, तो बच्चे के प्रारम्भिक वर्षो का मूल्यवान समय नष्ट, हो जायेगा। इसलिए ठीक से लक्षणों को पहचानना और शीघ्र ही बच्चे के विकास में सकारात्मक अंतःक्षेप करना, मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण है।

कुछ प्रश्न

- मानसिक मंदता क्या हैं स्पष्ट कीजिये?
- मानसिक मदंता के स्तरों का वर्णन कीजिए? मानसिक मंदता क्या है?
- मानसिक मंदता के कारण प्रभावित होने वाले क्षेत्र कौन–कौन से हैं?
- मानसिक मंदता के कारकों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?
- व्याख्या कीजिए कि मानसिक मंदता रोग नहीं है?
- मानसिक मंदता युक्त बच्चों से संबंधित कोई 5 सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए?
- एक शिक्षक के रूप में आप मानसिक मंदता युक्त बच्चों के साथ किस तरह से कार्य करेगें?

अन्यथा सक्षम व्यक्तियों के अधिकार व नीतियां

भारत सरकार द्वारा अनुमोदित अन्यथा सक्षम व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का कन्वेंशन (1 अक्टूबर, 2007) है कि उन्हें –

1. बिना किसी प्रकार के भेदभाव के समान अवसरों के साथ जीवन के हर चरण में, समावेशी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।
2. अपने समुदाय में रहते हुए गुणवत्ता पूर्ण व निःशुल्क आरम्भिक शिक्षा एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा होनी चाहिए।
3. ऐसे माहौल में अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों को पूरा करने की व्यवस्थाएँ होनी चाहिए जिसमें उनका अधिकतम अकादमिक व सामाजिक विकास हो जाए और समाज में उनके पूर्ण रूप से समाविष्ट होने का लक्ष्य पूरा हो सके।

अतः अब हमारी शिक्षा नीति में यह माना गया है कि विशेष ज़रूरत वाले लोगों की शिक्षा के लिए अलग संस्थाओं के विकास की बजाय सामान्य स्कूलों की व्यवस्था व शिक्षण पद्धति का सुधार करना ज़रूरी है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ. 2005) : समावेशी शिक्षा यानी शिक्षा में सबको साथ लेकर चलना

विशेष ज़रूरतों के प्रति बदलती सोच

चरण एक : विशेष स्कूल– 1880 से चली आ रही सोच – विशेष ज़रूरत वाले लोगों को अलग संस्थाओं में भेज कर शिक्षा देनी चाहिए, उनकी ज़रूरतें सामान्य स्कूलों में पूरी नहीं की जा सकती।

चरण दो : एकीकृत शिक्षा– 1970 से चली आ रही सोच – अन्यथा सक्षम लोगों को चुने हुए सामान्य स्कूलों में एकीकृत करके शिक्षा देना। उनकी ज़रूरतों के अनुसार शिक्षण व खेल की सामग्री देना व स्कूल के शिक्षकों को प्रशिक्षण व परामर्श देना।

चरण तीन : समावेशी शिक्षा– 1990 से चली आ रही सोच – हर प्रकार की विशेष ज़रूरतों वाले बच्चों यानी, सभी बच्चों को अपने पड़ोस के सामान्य स्कूल में सबके साथ शिक्षा देना, सभी बच्चों के लिए उपयुक्त बनने के लिए पाठ्यक्रम व परीक्षा में संशोधन करना। 2002 से लागू हुए सर्वशिक्षा अभियान में ''ज़ीरो रिजेक्शन पॉलिसी'' अपनाई गई है और कई अलग–अलग योजनाओं को एक साथ जोड़कर विशेष ज़रूरत वाले बच्चों की अनेक ज़रूरतों की व्यवस्था की जा रही है।

स्कूल की एक सामान्य दिनचर्या में विशेष ज़रूरत वाले बच्चों के लिए किस प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है, इसे समझने के लिए एक उदाहरण को विस्तार में देखते है।

समावेशी शिक्षा के उदाहरण

गौरव के जीवन में एक दिन

गौरव अपने नन्हें हाथों से मां कमला के कंधे को छू कर उसे सुबह, सुबह उठाता है। छह बजे हैं और उसे शौचालय तक जाना है। मां उठकर अपने चार साल के बेटे की आंखों में झांकती है। गौरव को सुनाई कम देता है। वह मां को उसके साथ आने के लिए इशारा करता है। फिर उसे सुबह का नाश्ता चाहिए और वह इशारे से मां के सामने अपनी फर्माइश रख देता है। पिछले दिन कई मेहमान आए थे और कमला की थकान पूरी तरह उतरी नहीं है। वह पोहा बनाकर गौरव को देती है जो टेबल पीट–पीट कर इंतजार कर रहा था और नाश्ता मिलते

ही उसे झटपट खा डालता है। सन्तुष्ट हो, गौरव खेलने में लग जाता है। कमला उसकी कमीज उसे पहना देती है पर बाकी के काम वह खुद कर लेता है। जब वह तैयार हो जाता है तो कमला उसे पास के एक प्री–स्कूल में छोड़ने के लिए चल पड़ती है। स्कूल पहुंचने पर गौरव मां को हाथ हिला कर विदा करता है और कमला अचरज़ से गिर जाती है। इसके पहले जब वह उसे स्कूल में छोड़ती थी तो वह रोने लगता था। उसे खुशी होती है कि गौरव का अब स्कूल में मन लगने लगा है। स्कूल में गौरव दूसरे बच्चों के साथ ही बैठता है। शिक्षिका उसका श्रवण यंत्र जांचने आती है और गौरव उसकी मदद करता है। अन्य बच्चे भी जिज्ञासावश उन्हें घेर कर खड़े हो जाते हैं और उनके प्रयास को देखते हैं। फिर गौरव लकड़ी के गुटकों और अन्य गुड्डों व खिलौनों के साथ खेलता है। फिर शिक्षिका सबको एक कहानी सुनाती है और गौरव के लिए संकेतों का प्रयोग साथ–साथ करती जाती है। ये संकेत हैं जिनका इस्तेमाल गौरव की मां उससे 'बात' करने के लिए करती है। इन संकेतों का उपयोग एक अन्य लड़के के द्वारा भी किया गया था जो अब प्राथमिक शाला में चौथी कक्षा में पढ़ रहा है।

कुछ और गतिविधियां करने के बाद आधी छुट्टी हो जाती है और गौरव सब बच्चों के साथ स्वल्पाहार करता है। आधी छुट्टी के बाद गौरव पास के एक विशेष विद्यालय से आए हुए वाक् चिकित्सक के साथ काम करता है। स्कूल के बाद गौरव की मां उसे घर ले जाती है। घर आकर वह टी.वी. के सामने बैठकर क्रिकेट मैच देखता है। जब भी भारतीय बल्लेबाज चौका व छक्का लगाते है वह ज़ोर से तालियां बजाता है। उसे दर्शकों के साथ तालियां बजाने में बहुत ही मज़ा आता है। बाद में वह मोहल्ले के लड़के–लड़कियों के साथ खेलने के लिए बाहर चला जाता है।

कमला रात का भोजन तैयार करती है और अपने पति कृष्णा के काम से आने का इन्तजार करती है। कृष्णा शाम छः बजे तक घर आते है और गौरव दौड़ कर उनकी बांहों में समा जाता है। कृष्णा उसे उठा कर कंधों पर बिठा लेते है, और कुछ देर उसके साथ खेलते है। फिर वे टी.वी. पर समाचार देखने लगते हैं। जब खाना लग जाता है तो गौरव कृष्णा को खाने के लिए बुला कर लाता है।

अब सोने जाने का समय हो चला है और गौरव बिस्तर में घुसने की तैयारी कर रहा है।

''तुम्हारी गिनती'' – बोलते और इशारे करते हुए कमला उसे याद दिलाती है। गौरव संकेतों से एक से तीन की गिनती बताता है और दस पर जाकर रूकता है। ''शाबाश बेटा'' कमला ताली बजाती है और गौरव को सुला देती है।

समावेश का अर्थ यह नहीं कि विशेष सहायता से वंचित किया जाए।

प्रभु आठ साल का है और अपने पड़ोस के स्कूल में पढ़ता है जहां उसकी बड़ी बहन मीना भी पढ़ती हैं। शुरू में प्रभु के कोई दोस्त नहीं थे। लोगों के साथ कैसे सही व्यवहार करें यह समझने में प्रभु को काफी जूझना पड़ा था। वह अपने साथियों को कस के पकड़ लेता था जो उन्हें अच्छा नहीं लगता था। वे उसे ऐसा करने से रोकते रहते थे। धीरे–धीरे उसे समझ में आया कि उसका व्यवहार लोगों को पसन्द नहीं और उसने वैसा करना छोड़ दिया। यद्यपि वह साथियों की बहुत सी बातचीत अब भी नहीं समझ पाता, वह उनके आसपास रहता है और खुशी महसूस करता है। मौका मिले तो थोड़ा खेल भी लेता है। भाषा की कक्षा में उसके लिए अलग लक्ष्य रखे गए हैं। जब अन्य बच्चे कहानियां पढ़ते हैं वह उन्हें सुनता है और चित्रों को देखता है। धीरे–धीरे वह दोस्तों की मदद से कुछ शब्द पढ़ने भी लगा है, और घर–घर अपने तीन साल के भतीजे को कक्षा में सुनी कहानियां बोलकर सुना भी देता है। ऐसा करके वह बहुत 'बड़ा' और 'सक्षम' महसूस करता है। भाषा की कक्षा की और बहुत सी गतिविधियां हैं जिन्हें करने में बड़ा मज़ा आता है। जैसे शिक्षिका निर्देश देती है, ''सिर के ऊपर अपने हाथ रखो'', ''अपने घुटनों को उंगली से छुओ'' आदि। इन कामों को करने में और ऊपर, नीचे आदि की अवधारणाएं समझने में बड़ा अच्छा लगता है। थोड़ी देर बाद जब बाकी बच्चे कुछ लिखने का कार्य कर रहे होते

हैं, उसकी शिक्षिका उसे पास बुलाती है और पैसों की अवधारणाएं सिखाने की कोशिश करती है। प्रभु अलग–अलग सिक्कों को पहचानता है और जानता है कि कितने सिक्के मिल कर एक रुपया बनाते हैं। गणित प्रभु के लिए एक कठिन विषय है पर उसकी शिक्षिका मालिनी 'मुझसे नहीं बनता' सुनने को तैयार ही नहीं होती है। वह अपने सभी छात्रों से बहुत ऊंची अपेक्षाएं रखती है और उसका विश्वास है कि असफलता कुछ होती ही नहीं, सिर्फ सीखना होता है। इससे सभी छात्रों को प्रेरणा मिलती है और प्रभु किसी की भी मदद के बिना सिक्के गिन लेता है। स्कूल से लौट के प्रभु मोहल्ले के बच्चों के साथ क्रिकेट के खेल का आनन्द लेता है। उसे गेंद बाजी करना पसन्द है और जब वह सफलतापूर्वक खेलता है और बच्चे उसकी प्रशंसा करते है तो वह खुश होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. आपने आस–पास के किसी विशेष आवश्यकता वाले (मंदबुद्धि छोड़कर) बच्चे की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए बच्चे के संज्ञानात्मक विकास पर प्रकाश डालें।
2. आप अपने आस–पास के लोगों से बातचीत कर यह जानने का प्रयत्न करें कि वे इन विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों या व्यक्तियों के प्रति क्या दृष्टिकोण रखते हैं? एक शिक्षक के रूप में आप इस अनुभव का कैसे उपयोग करेंगे?
3. आपके आस–पास ऐसे विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे/व्यक्ति होंगे जिन्होंने अपने विशिष्टता को अपनी जीवन में बाधक नहीं बनने दिया हो, यदि आपके परिवेश में इस तरह के सफल लोग हैं तो इनके बारे में विस्तृत जानकारी लें?
4. आप अपनी कक्षा के विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के अभिभावकों को उनके उचित लालन–पालन एवं शिक्षा हेतु किस प्रकार प्रोत्साहित करेंगे?
5. आप एक शिक्षक होने के नाते विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के सकारात्मक विचार को प्रोत्साहित करने हेतु क्या–क्या प्रयास करेंगे?
6. विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं से ऐसे बच्चों/व्यक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त करें जिन्होंने निशक्तता के बावजूद महत्वपूर्ण कार्य किए है। उनकी इस जानकारी का आप कक्षा में किस प्रकार उपयोग करेंगे?
7. ''तारे जमीं पर'',/''पा',/''ब्लैक'',/''कोशिश'', में से किसी एक फिल्म की समीक्षा कीजिए। यदि आप इस प्रकार के बच्चे के शिक्षक/पालक हो तो अपनी भूमिका के बारे में लिखिए?
8. विशिष्ट आवश्यकता से आप क्या समझते हैं?
9. विभिन प्रकार के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों का विस्तृत वर्णन कीजिए?
10. अपंगता किस प्रकार बच्चे या व्यक्ति के कार्यशीलता को प्रभावित करती है?
11. ऐसे विशेष आवश्यकता वाले व्यक्ति जो आम व्यक्ति की भांति कई काम कर लेते है तो क्या आप ऐसे व्यक्तियों को अक्षम कहेंगे?